डॉ० ज़ाकिर हुसैन

व्यक्तित्व और विचार

भारत के तृतीय राष्ट्रपति के व्यक्तित्व और कृतित्व का
देश के मूर्धन्य मनीषियो द्वारा मूल्याङ्कन
तथा
उनके प्रेरणादायक विचारो का सग्रह

●

सम्पादक :
ताराचन्द वर्मा

चिन्मय प्रकाशन

डॉ० जाकिर हुसैन : व्यक्तित्व और विचार

प्रस्तावना

प्रोफेसर ए० चन्द्रहासन

महामहिम राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन के व्यक्तित्व और विचारो से सम्बन्धित विभिन्न विद्वतापूर्ण अन्तरग लेखो तथा काव्याजलियो के इस महत्वपूर्ण सकलन की प्रस्तावना लिखने का कार्य सौंप कर आपने मुझे गौरवान्वित किया है। शैक्षणिक चितन एव अनुशीलन के क्षेत्र मे उनका सहयोग सर्वोपरि एव अप्रतिम रहा है। राजनीति तथा शिक्षा के समन्वय ने उनके व्यक्तित्व को जो गरिमा प्रदान की है, उसके फलस्वरूप उनके विचार तथा चितन पद्धति सदैव मानवता की प्रगति एव सास्कृतिक तथा सार्वजनिक विकास की ओर अग्रसर रहे है। उन्होने प्राथमिक, माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षण पद्धति के विकास मे जो योगदान दिया है, वह स्तुत्य है। बुनियादी शिक्षा का जो बीजारोपण महात्मा गाधी के करकमलो द्वारा सम्पन्न हुआ था, उसका क्रमिक विकास तथा प्रतिष्ठापना डा० हुसैन द्वारा सभव हुई। वस्तुत डा० जाकिर हुसैन सच्चे अर्थो मे गाधीवादी है।
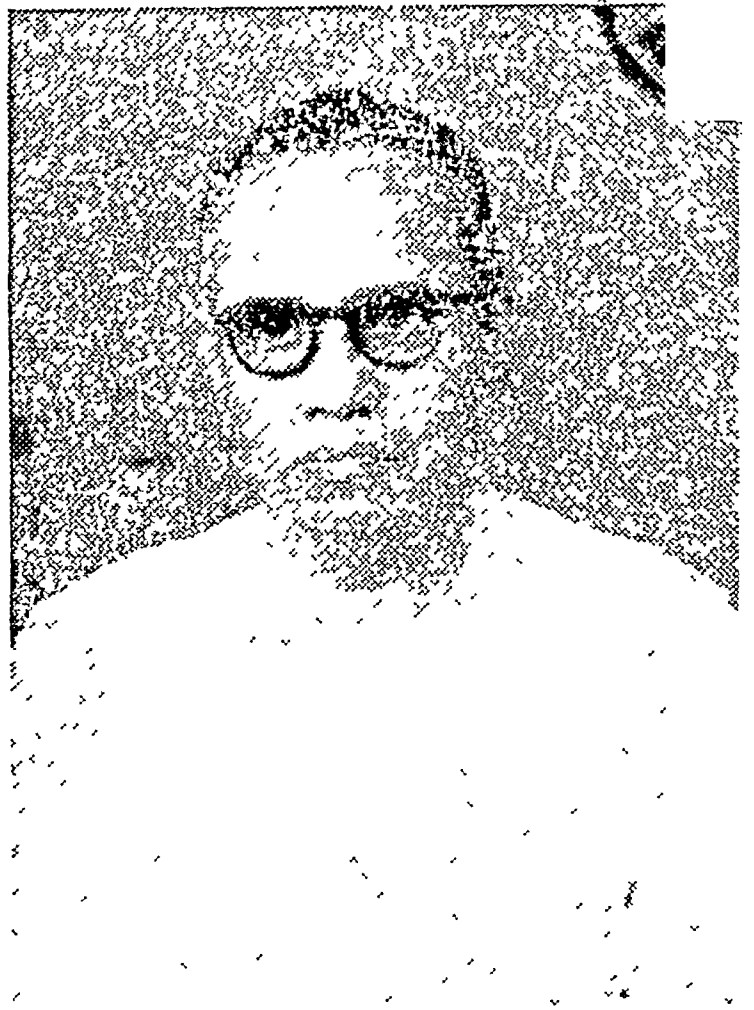
डा० हुसैन का व्यक्तित्व अत्यन्त आकर्षक, सादगीभरा तथा दिलचस्प है। उनके व्यवहार में बच्चो की सी सरलता तथा कार्यकलाप मे अजेय व्यक्तित्व की झलक दिखाई देती है। विभिन्न अवसरो पर दिये गये उनके भाषण तथा शिक्षा सम्बन्धी पुस्तके इस बात की साक्षी है। वे जितने सफल शिक्षाविद् है, उतने ही कुशल अर्थशास्त्री तथा साहित्यकार भी। अग्रेजी तथा उर्दू भाषा के प्रकाण्ड विद्वानों मे उनकी गणना होती है। शिक्षा, सस्कृति तथा साहित्य का अभूतपूर्व सगम उनके व्यक्तित्व मे परिलक्षित होता है। आज का समाज या आने वाली पीढी उनके व्यक्तित्व को एक आदर्श की तरह स्मरण रखेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

प्रस्तुत पुस्तक मे सकलित लेखो मे उनके व्यक्तित्व की यह तस्वीर साफ दिखाई देती है। "जामिया मिलिया" के सरक्षक, प्रस्तावक तथा आदर्श अध्यापक के रूप मे डा० हुसैन के कर्मठ शिक्षा-शास्त्री-जीवन के सम्बन्ध मे अत्यन्त रोचक तथा अनुकरणीय प्रसग इस पुस्तक मे सकलित है। उनके मित्रो, सहयोगियो तथा विभिन्न कवि, साहित्यकारो एव राजनीतिज्ञो द्वारा प्रदत्त यह स्नेहाजलियाँ डा० हुसैन के व्यक्तित्व की व्यापक और सर्वांगीण व्याख्या प्रस्तुत करती है।

निश्चय ही, यह पुस्तक उस महान् व्यक्ति के जीवन और आदर्श से सम्बन्धित है जो इस शताब्दी का एक महत्वपूर्ण व्यक्ति है और दुनिया के सबसे बड़े गणतन्त्र का राष्ट्रपति। पुस्तक मे उनके विभिन्न अवसरो पर दिए गए भाषणो को सग्रहीत कर इसकी उपादेयता को बढ़ाया गया है। मैं सकलित सामग्री के लेखको को साधुवाद देता हूँ व राष्ट्रपति के प्रति अपनी स्नेहाजलि अर्पित करता हूँ।

ए० चन्द्रहासन

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय नई दिल्ली। निदेशक

सम्पादकीय

हमारे राष्ट्रपति डॉ० जाकिर हुसैन इतने महान् हैं, उनका व्यक्तित्व इतना बहुमुखी है कि एक ग्रन्थ के सीमित पृष्ठो में उन्हे पर्णतया चित्रित कर पाने का प्रयास गागर मे सागर भरने का सा कार्य है। विद्वानो के आशीर्वाद और स्नेहियो के सहयोग से मै इसमे कहा तक सफल हुआ हूँ यह निर्णय तो कृपालु पाठक ही करेगे, मुझे बस इतना सतोष है कि अपनी ओर से मैने कोई प्रयत्न उठा नही रखा है।

कुछ व्यक्ति जन्म की अपेक्षा कर्म से बडे होते है। हाँ, उनका जन्म व बचपन उनके भावी जीवन के कुछ सूत्र दे जाता है, और उनका शैशव अनेक ऐसे सदर्भ-सकेत समय की शिला पर अङ्कित करता रहता है जो कि उनके निरतर प्रगतिशील जीवन की महानता के सूचक होते है। डॉ० जाकिर हुसैन साहब का निष्ठावान, अनुशासनमय, तपस्वी जीवन इसका प्रमाण है। उनके जैसा कर्णधार किसी भी राष्ट्र के लिए गर्व की बात है, भारत उन्हे पाकर धन्य है। ऐसे महामानव के अभिनन्दन मे कितना ही कुछ कहा जाय, सूर्य को दीपक दिखाने के समान है, हमारा उद्देश्य केवल इतना है कि हम उनकी जीवनगत आस्था, कर्मठता और त्याग का सन्देश जन-जन तक पहुँचाएँ ताकि देशवासी उससे अनुप्रेरित हो सके, उनके युगप्रेरक विचार हमे नई दिशाएँ, नये आयाम दे सके। यही इस ग्रन्थ की अनिवार्यता और उपादेयता है।

डॉ० जाकिर हुसैन साहब को निकट से जानने का जो सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है उसके आधार पर मै कह सकता हूँ कि जितना कुछ मै इस ग्रन्थ के माध्यम से अभिव्यक्त कर पाया हूँ, व्यक्तिगत रूप से मै उससे कही अधिक उनके विराट व्यक्तित्व से प्रभावित हूँ। सर्व प्रथम डॉ० साहब से एक प्रकाशक के रूप मे मिलते रहने का सौभाग्य उस समय प्राप्त हुआ जब कि वे सैण्ट्रल बोर्ड ऑफ सैकेण्ड्री एजूकेशन, अजमेर के अध्यक्ष थे। यह काल अपने प्रभाव की अमिट रेखाएँ मेरे मानस पटल पर छोड गया। मैंने देखा कि डॉ० साहब सर्व प्रथम एक सहृदय, विनयशील इन्सान है, एक आदर्श अध्यापक, शिक्षा-प्रेमी है, बाद मे कुछ और। मेरा अपना भी आरम्भ से ही शिक्षा से लगाव रहा है, अत यह स्वाभाविक था कि ऐसे कर्मठ शिक्षा शास्त्री के अभिनन्दन का विचार मेरे मन मे अकुरित हो। कई वर्षो के बाद स्वर्गीय प्रधान मन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री के स्मृति ग्रन्थ के प्रकाशन के सिलसिले मे पुन मझे डॉ० साहब के, जो कि उन दिनो उपराष्ट्रपति थे, सम्पर्क में आने का अवसर मिला। उनसे मुलाकातो से मुझ पर उनका प्रभाव और भी गहरा होता गया। अन्त मे गत वर्ष मैने ग्रन्थ के प्रकाशन की योजना बना ही डाली। इस प्रकार प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रकाशन मेरे लिए प्रकाशनो की लम्बी शृ खला मे एक और कड़ी न होकर एक पुरानी अभिलाषा की पूर्ति है।

डा० जाकिर हुसैन साहब के बहुमुखी व्यक्तित्व की समग्र और अ तरग झाकी प्रस्तुत करने के लिए मैने कितनी लगन और परिश्रम से प्रयास किया है, इसका अनुमान कृपालु पाठक इसी बात से लगा सकते है कि केवल उनसे स्वय से मुलाकातो और उनके स्वजनो, मित्रो, परिचितो से सामग्री सग्रह कर लेने पर ही सतोप न कर मै स्वय तीर्थ-यात्री की तरह जेठ की तपती दोपहर और प्रचण्ड लू की

सम्पादकीय

हमारे राष्ट्रपति डॉ० जाकिर हुसैन इतने महान् है, उनका व्यक्तित्व इतना बहुमुखी है कि एक ग्रन्थ के सीमित पृष्ठो मे उन्हे पर्णतया चित्रित कर पाने का प्रयास गागर मे सागर भरने का सा कार्य है। विद्वानो के आशीर्वाद और स्नेहियो के सहयोग से मै इसमे कहा तक सफल हुआ हूँ यह निर्णय तो कृपालु पाठक ही करेगे, मुझे बस इतना सतोष है कि अपनी ओर से मैने कोई प्रयत्न उठा नही रखा है।

कुछ व्यक्ति जन्म की अपेक्षा कर्म से बडे होते है। हाँ, उनका जन्म व बचपन उनके भावी जीवन के कुछ सूत्र दे जाता है, और उनका शैशव अनेक ऐसे सदर्भ-सकेत समय की शिला पर अङ्कित करता रहता है जो कि उनके निरतर प्रगतिशील जीवन की महानता के सूचक होते है। डॉ० जाकिर हुसैन साहब का निष्ठावान, अनुशासनमय, तपस्वी जीवन इसका प्रमाण है। उनके जैसा कर्णधार किसी भी राष्ट्र के लिए गर्व की बात है, भारत उन्हे पाकर धन्य है। ऐसे महामानव के अभिनन्दन मे कितना ही कुछ कहा जाय, सूर्य को दीपक दिखाने के समान है, हमारा उद्देश्य केवल इतना है कि हम उनकी जीवनगत आस्था, कर्मठता और त्याग का सन्देश जन-जन तक पहुँचाएँ ताकि देशवासी उससे अनुप्रेरित हो सके, उनके युगप्रेरक विचार हमे नई दिशाएँ, नये आयाम दे सके। यही इस ग्रन्थ की अनिवार्यता और उपादेयता है।

डॉ० जाकिर हुसैन साहब को निकट से जानने का जो सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है उसके आधार पर मै कह सकता हूँ कि जितना कुछ मै इस ग्रन्थ के माध्यम से अभिव्यक्त कर पाया हूँ, व्यक्तिगत रूप से मै उससे कही अधिक उनके विराट व्यक्तित्व से प्रभावित हूँ। सर्व प्रथम डॉ० साहब से एक प्रकाशक के रूप मे मिलते रहने का सौभाग्य उस समय प्राप्त हुआ जब कि वे सैण्ट्रल वोर्ड ऑफ सैकेण्ड्री एजूकेशन, अजमेर के अध्यक्ष थे। यह काल अपने प्रभाव की अमिट रेखाएँ मेरे मानस पटल पर छोड गया। मैने देखा कि डॉ० साहब सर्व प्रथम एक सहृदय, विनयशील इन्सान है, एक आदर्श अध्यापक, शिक्षा-प्रेमी है, बाद में कुछ और। मेरा अपना भी आरम्भ से ही शिक्षा से लगाव रहा है, अत यह स्वाभाविक था कि ऐसे कर्मठ शिक्षा शास्त्री के अभिनन्दन का विचार मेरे मन में अकुरित हो। कई वर्षो के बाद स्वर्गीय प्रधान मन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री के स्मृति ग्रन्थ के प्रकाशन के सिलसिले मे पुन मझे डॉ० साहव के, जो कि उन दिनो उपराष्ट्रपति थे, सम्पर्क में आने का अवसर मिला। उनसे मुलाकातो से मुझ पर उनका प्रभाव और भी गहरा होता गया। अन्त में गत वर्ष मैने ग्रन्थ के प्रकाशन की योजना बना ही डाली। इस प्रकार प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रकाशन मेरे लिए प्रकाशनो की लम्बी शृखला मे एक और कडी न होकर एक पुरानी अभिलाषा की पूर्ति है।

डा० जाकिर हुसैन साहब के बहुमुखी व्यक्तित्व की समग्र और अतरग झाकी प्रस्तुत करने के लिए मैने कितनी लगन और परिश्रम से प्रयास किया है, इसका अनुमान कृपालु पाठक इसी बात से लगा सकते है कि केवल उनसे स्वय से मुलाकातो और उनके स्वजनो, मित्रो, परिचितो से सामग्री सग्रह कर लेने पर ही सतोप न कर मै स्वय तीर्थ-यात्री की तरह जेठ की तपती दोपहर और प्रचण्ड लू की

हमारे राष्ट्रपतिजी

विनय व नम्रता का मूर्त रूप

●

सारा भारत मेरा घर है और उसके लोग मेरा परिवार। मै सच्ची लगन से इस घर को सुन्दर और मजबूत बनाने की कोशिश करूँगा ताकि वह मेरे महान् देशवासियो का उपयुक्त घर हो।

हमारे राष्ट्रपतिजी

गहरे विचारों में डूबे हुए

President of United Arab Republic

I have received your message concerning the publication of a special commemorative volume on the occasion of the birthday of H E Dr. Zakir Hussain, President of the Republic of India

It is a great pleasure that I avail of this occasion to convey to H E. the President and the people of India my greetings and best wishes.

H E Dr Zakir Hussain is not only a towering personality in the history of cultural, educational and national struggle of India but holds to his credit significant and useful international contributions in the earnest endeavour of the non-aligned countries towards the establishment and assertion for all mankind of the rights of education, culture, peace, justice and freedom.

He is, therefore, a person to be highly esteemed by his people as well as by others all over the world who recognize his contributions.

Gamal Abdel Nasser

V. V. Giri

VICE-PRESIDENT OF INDIA

bringing out the special Volume Birthday of our revered Rashtra is year I have had the privilege r Zakir Hussain intimately well Uttar Pradesh in 1957 and even ernor of the National Planning , who has come in close contact an, will fail to be impressed by idance, and above all his all-Founder-father of Jamia Milia Dr. Zakir Hussain's dedicated reconstruction have been largely instrumental in helping the ment of a net-work of Rural Universities to gather momentum. ersonality, Dr Zakir Hussain has been a tower of strength lenging task of bringing into fruition national regeneration the embodiment of refinement in thought, word and deed and ceaseless yearning for attaining excellence in every field of tellectual or administrative The 'best birthday present' we can
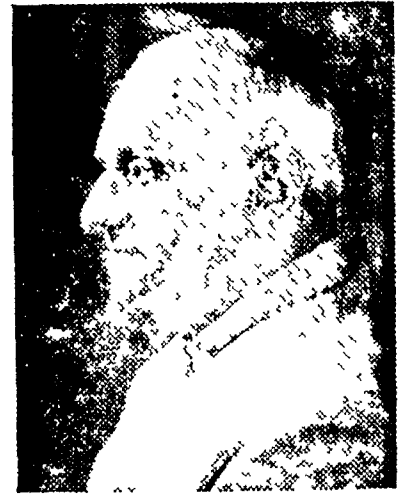
एच. वाई. शारदा प्रसाद
प्रधान मन्त्री जी के उप-सूचना
सलाहकार

इन्दिरा गाधी
प्रधान मन्त्री

आपका पत्र प्राप्त हुआ। प्रधान मन्त्री जी को यह जान कर प्रसन्नता हुई कि माननीय राष्ट्रपति जी के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करने के लिए आप अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित करने जा रहे है। आपके इस प्रयास की सफलता के लिए वे अपनी हार्दिक शुभ कामनाएं भेजती है।

सधन्यवाद,

गृह मंत्री, भारत

यशवंतराव चव्हाण

मुझे यह जान कर बडी खुशी हुई कि राष्ट्रपति डॉ० जाकिर हुसैन की वर्षगाँठ पर आप अभिनन्दन ग्रन्थ निकाल रहे है।

डॉ० जाकिर हुसैन आज भारत के सर्वोच्च पद को सुशोभित कर रहे है। परन्तु उनकी महानता का राज उनके पद से भी अधिक उनके गरिमामय व्यक्तित्व मे है। उन पर गाँधीजी के जीवन-दर्शन का बडा प्रभाव पडा है। वे प्रकाण्ड शिक्षाविद् है और भारत की भावी-पीढी की समुचित शिक्षा-दीक्षा के बारे मे गहरी दिलचस्पी लेते हैं।

मुझे आशा है, अभिनन्दन ग्रन्थ द्वारा डॉ० जाकिर हुसैन के बहुमुखी व्यक्तित्व को पूरी तरह से पाठको के सन्मुख रखा जा सकेगा। मैं आपके प्रयास की सफलता चाहता हूं।

जगजीवनराम

खाद्य एव कृषि मन्त्री, भारत

, जाकिर हुसैन की वर्षगाठ के अवसर पर
द्वारा एक अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित किया जारहा है
है।

सैन देश के विख्यात शिक्षाविद्, राष्ट्रवादी एव देश-
र मे ही नही राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र मे भी
ान रखती है। डा० जाकिर हुसैन द्वारा राष्ट्रपति
ने देश के धर्म-निर्पेक्षता के सिद्धान्त की परिपुष्टि
। मे अपने पूर्ववर्ती राष्ट्रपतियो द्वारा स्थापित परम्परा
गर आदर्श स्थापित कर रहे हैं। डॉ जाकिर हुसैन का
नीतिक मान्यताओं का अभिनन्दन है।
नन्दन ग्रन्थ मे उनकी सेवाओं, आदर्शो और सिद्धान्तो का समुचित दिग्दर्शन हो।
डा० जाकिर हुसैन दीर्घायु हो एव देश और राष्ट्र की सेवा मे सदा रत रहे।
र उपयोगी सिद्ध हो।

सत्यनारायणसिंह

के० के० शाह

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप डॉ जाकिर हुसैन को श्रद्धाजलि भेंट करने के लिए एक अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित कर रहे है। डॉ० जाकिर हुसैन का जीवन श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर स्तर ढूँढने का प्रयास है। वे भारत मे शिक्षा आन्दोलन के आचार्य और नेता रहे हैं। बुनियादी शिक्षा के क्षेत्र मे तो उन्होने अग्रगामी कार्य किया है। उनकी विद्वत्ता और उनका साहित्य भारतीय साहित्य की निधि है। मुझे आशा है कि यह ग्रन्थ भारतीय जनता को प्रेरणा प्रदान करने मे अत्यन्त उपयोगी होगा।

मन्त्री, सूचना और प्रसारण
भारत

पैट्रोलियम और रसायन एवं समाज
कल्याण मन्त्री,
भारत

हर्ष का विषय है कि आप माननीय राष्ट्रपति के "व्यक्तित्व और विचार" सम्बन्धी विभिन्न विचारधारा के लेखो का समावेश एक अभिनन्दन ग्रथ के रूप मे उनकी वर्ष गाठ के शुभावसर पर प्रकाशित करने जा रहे है।

अशोक मेहता

सी० एम० पुनाचा

ाटर प्रसन्नता हुई कि चिन्मय प्रकाशन, जयपुर,
अभिनन्दन ग्रन्थ' प्रकाशित कर रहा है ।

ा और महान राजनीतिज्ञ होने के साथ-साथ
समग्र देश के सर्वोच्च पद पर आसीन हैं । मुझे
द्विमत्तापूर्ण निर्देशन मे हम एक दिन अवश्य ही
ो स्थापना मे सफल होगे। इस उद्देश्य की
आज सामने आ रही हैं वे अस्थायी हैं ।

रेल मंत्री,
भारत

पर मैं कामना करता हूं कि वे दीर्घायु हों और देश को अनेक वर्षों तक उनकी निष्ठापूर
रहे ।

Education Minister,
India

दिनेश सिंह

वाणिज्य मंत्री,
भारत

प्रसन्नता की बात है कि डा० जाकिर हुसैन अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित होने जा रहा है। हमारे राष्ट्रपति देश के सादे स्वभाव एवं उच्च आदर्श के प्रतीक है। वे उद्भट विद्वान होने के साथ-साथ कुशल राजनीतिज्ञ भी है। उनके संरक्षण मे देश निश्चय ही उन्नति के पथ पर अग्रसर होता रहेगा। मै कामना करता हू कि वे चिरायु हो।

पी० गोविन्द मेनन

विधि मंत्री,
भारत

यह जान कर प्रसन्नता हुई कि आप राष्ट्रपति डॉ० जाकिर हुसैन के सम्मान मे उनकी वर्ष-ग्रन्थि के शुभ अवसर पर "डॉ० जाकिर हुसैन अभिनन्दन ग्रन्थ" प्रकाशित करने की योजना बना रहे है। यह प्रयास सराहनीय है।

Minister of Transport
& Shipping
India

A K R V Rao

I am glad to know that the Chinmay Prakashan is bringing out a commemoration Volume on the occasion of the Birthday of our respected President, Dr Zakir Hussain

He is not only a renowned educationist, but a true Gandhian whose life has been one of dedicated and fearless service to the country His election to the high office of President of India is not only a tribute to the greatness and warmth of his personality but also a visible vindication of the basic spirit underlying our Constitution May God Almighty bestow on him long years of health and life for his continued service of the nation.

Fakhruddin Ali Ahmed

Minister of Industrial
Development & Company
Affairs
Govt of India

शेरसिंह

शिक्षा राज्य मंत्री, भारत

मुझे यह जानकर बडी प्रसन्नता हुई कि आप राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन के सम्मानार्थ एक अभिनन्दन ग्रन्थ छाप रहे है।

राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन हमारे समाज के सुयोग्य शिक्षाविद् और शिक्षक हैं। उन्होने जिन-जिन संस्थाओ मे कार्य किया है, उन सभी मे अपने व्यक्तित्व की एक अमिट छाप छोडी है। देश के ऐसे महान् समाज-सेवी को देश का प्रथम नागरिक चुना जाना वस्तुत उनके व्यक्तित्व और कृतित्व के प्रति देश की एक अपूर्व श्रद्धाजलि थी।

मुझे विश्वास है कि आपका यह अभिनन्दन-ग्रन्थ देश की इस श्रद्धाजलि को ही साकार रूप प्रदान करेगा। मैं आपके आयोजन की सफलता चाहता हू।

अन्ना साहब पी० शिन्दे

राज्य मन्त्री, खाद्य तथा कृषि, भारत

मुझे यह जानकर बडी प्रसन्नता हुई कि राष्ट्रपतिजी की वर्षगाठ के अवसर पर एक अभिनन्दन ग्रंथ प्रकाशित किया जा रहा है।

आशा करता हू कि अभिनन्दन ग्रन्थ से डा० जाकिर हुसैन के बहुमुखी जीवन का वृतान्त जनता के सम्मुख आ सकेगा।

मैं आपके इस आयोजन की सफलता चाहता हूं।

परिमल घोष

रेलवे राज्य मन्त्री, भारत

बडी प्रसन्नता की बात है कि चिन्मय प्रकाशन राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसेन की वर्ष गाठ के अवसर पर 'डा० जाकिर हुसैन' अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित कर रहा है।

हमारे राष्ट्रपति अनेक विशेषताओ के धनी है। वे भारत के उच्चतम पद पर आसीन होने के नाते ही नही, अपनी सहृदयता तथा अन्य मानवीय गुणो के कारण भी आदरणीय है। वर्षगाठ पर उनका सादर अभिनन्दन है।

प्रकाशन की सफलता की कामना सहित।

उप रेल मन्त्री, भारत

भक्त दर्शन

यह जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई कि चिन्मय प्रकाशन हमारे मानवीय राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन की आगामी वर्षगाठ के शुभावसर पर एक अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित करने का आयोजन कर रहा है। आपका यह निश्चय बहुत ही स्वागत योग्य है और मै उसकी हृदय से प्रशसा करता हू।

उपमत्री परिवहन तथा नौवहन, भारत
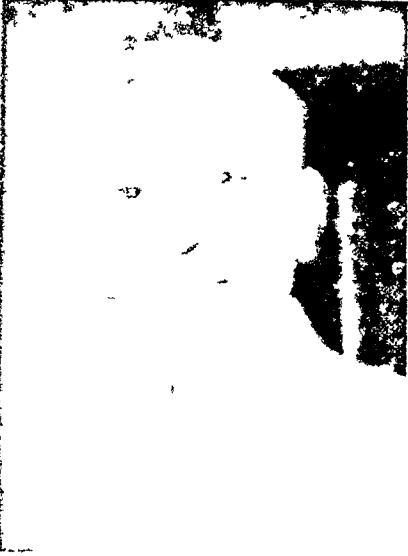
डा० जाकिर हुसैन के व्यक्तित्व मे हम उन सभी गुणो का समन्वय पाते है, जिनके कारण हमारा देश अभी भी आदर का स्थान प्राप्त करता है। उनमे विद्वता के साथ नम्रता है तथा वे अगाध राष्ट्रप्रेम की भावना ओत-प्रोत है। उनका सारा जीवन देश और समाज की निरन्तर नि.स्वार्थ सेवा मे व्यतीत हुआ है। शिक्षा के क्षेत्र मे तो उन्होने ऐसी सेवाए की है जो कभी भी नही भुलाई जा सकेगी। हम लोग सौभाग्यशाली है कि उनके रूप मे हमे एक आदर्श राष्ट्रपति प्राप्त हुए है। मुझे पूरा विश्वास है कि उनकी सक्षरता मे हमारा देश तेजी के साथ प्रगति करेगा और प्रभु अभी उन्हे अनेक वर्षो तक जीवित रखेगे, ताकि वे हमारे देश का नेतृत्व अभी और वर्षो तक कर सके।

मैं आपके आयोजन की सफलता के लिए हार्दिक शुभकामनाएं प्रेषित करता हू।

धन्यवाद के साथ।

M. M Lal Jain, Secretary to the Governor

HARYANA

With regard to your request to the Governor to agree to be nominated on the Advisory Board for the compilation of Dr. Zakir Hussain Abhinandan Granth, I am desired to say that owing to his very heavy pre-occupations because of the President's Rule in the State of Haryana, it would not be possible for him to do so.

Governor

He, however, wishes a success to your efforts.

राज्यपाल, गुजरात
राज भवन, अहमदाबाद

मोहनलाल सुखाड़िया

मुख्य मत्री (राजस्थान)

मुझे यह जान कर प्रसन्नता हुई है कि राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन की वर्षगाठ के शुभ अवसर पर एक अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है। हमारे राष्ट्रपति जी का सम्पूर्ण जीवन शिक्षा और समाज की सेवा मे ही बीता है। गाधीजी की प्रेरणा से बुनियादी शिक्षा के क्षेत्र मे इन्होने जो कार्य किया है उससे हमारे शिक्षा जगत मे एक क्रान्तिकारी वातावरण की सृष्टि हुई है। ये एक महान् राष्ट्रवादी है और हमारी धर्म-निर्पेक्षता के प्रतीक है। राष्ट्रपति पद पर निर्वाचित होने से पूर्व उप-राष्ट्रपति एव राज्य सभा के अध्यक्ष के रूप मे इनका जो व्यक्तित्व सामने आया उसने सबको प्रभावित और प्रेरित किया है।

मुझे आशा है कि इनके मार्ग-दर्शन मे हमारा देश निरन्तर प्रगति की ओर अग्रसर होता रहेगा। मै इस अवसर पर राष्ट्रपति जी के लिए सुदीर्घ एव स्वस्थ जीवन की कामना करता हू तथा अभिनन्दन ग्रन्थ की सफलता चाहता हू।

यह गौरव का विषय है कि माननीय राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन की वर्ष गाँठ पर आप अभिनन्दन-ग्रन्थ प्रकाशित करने जा रहे है। बुनियादी शिक्षा व विभिन्न क्षेत्रों मे उनके द्वारा की गई सेवाये भावी नेतृत्व के लिए अदर्श है, तथा उनका सर्वतोमुखी व्यक्तित्व हमारे लिये चिर प्रेरणास्पद रहेगा।

कमलनयन बजाज

ईश्वर उन्हे देश और समाज के हितार्थ स्वस्थ रखे व शतायु करे, यही मेरी हार्दिक कामना है।

बरकतुल्ला खाँ

यह जानकर बडी प्रसन्नता हुई कि आप डा० जाकिर हुसैन पर एक अभिनन्दन ग्रन्थ निकाल रहे है। आपका यह प्रयास स्वागत योग्य है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि ग्रन्थ राष्ट्रपति महोदय के बहुमुखी व्यक्तित्व का पाठको को दिग्दर्शन करायेगा।

शिक्षा मन्त्री, राजस्थान

पावर मन्त्री, राजस्थान

शिवचरण माथुर

मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि चिन्मय प्रकाशन, जयपुर डा० जाकिर हुसैन अभिनन्दन ग्रन्थ के रूप मे स्वर्गीय श्री जवाहर लाल नेहरू, स्व० श्री लालबहादुर शास्त्री और वर्तमान प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी सम्बन्धी विशिष्ट ग्रन्थो की शृ खला मे एक और महत्वपूर्ण कडी जोडने जा रहा है।

हमारे राष्ट्रपति, श्रद्धेय डा० जाकिर हुसैन धर्म-निरपेक्ष भारत की आदर्श परम्पराओ के प्रतीक है। उनका अभिनन्दन भारत की महानता का अभिनन्दन है। अभिनन्दन ग्रन्थ की रूप रेखा को देख कर मै कह सकता हू कि यह प्रकाशन उनके युग-प्रवर्तक विचारो तथा बहुमुखी व्यक्तित्व का दर्पण ही नही, प्रेरणा-स्रोत भी सिद्ध होगा।

मै ग्रन्थ की सफलता और आदरणीय डा० जाकिर हुसैन की दीर्घ आयु की कामना करता हू।

वसन्तराव नाईक

मुख्यमन्त्री, महाराष्ट्र

[illegible] राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैनजी से परिचय बहुत पुराना तो नही [illegible], लेकिन जो भी कुछ उनसे सम्पर्क आया उसमे मुझ पर उनके महान् [illegible] का असर जरूर पड़ा है। उनकी वर्षगाठ के अवसर पर [illegible] शुभकामनाए व्यक्त करना मै अपना फर्ज समझता हू।

[illegible] नही है कि उनका स्वभाव दर्शन ठीक रूप से कर सकू। [illegible] हाल ही मे जो मैने उनके साथ दो-तीन बार मुलाकाते की उनसे मै [illegible] प्रभावित हुआ हू। विभिन्न विषयो का उनका ज्ञान तथा अभ्यास [illegible] उन विषयो पर चर्चा करने का उनका ढग मुझे विशेष जँचा। आधुनिक विज्ञान की मदद से मानव चाहे [illegible] भौतिक प्रगति करे, किन्तु जब तक ज्ञान की तीव्र सस्कृति एव मानवता के साथ न हो तब तक हमारा जीवन [illegible]। उसमे यथार्थता मे सफलता नही आ पावेगी, यह उनका विश्वास है और मेरी राय मे इन दोनो का [illegible] उन मे हुआ है, जिससे वे आज वैचारिक समतोल के लिए ख्यातनाम हुए है।

[illegible] बापूजी के समय मे जितने व्यक्ति भारत जानता है, उनमे से डा० साहब है। उनकी पीढी के [illegible]। मै प्रार्थना करता हू कि भगवान उन्हे दीर्घ आयु दे और उनकी नई विचारधारा का [illegible] मिलता रहे।

Hitendra Desai

Dr Zakir Hussain occupies a unique position in our political and educational life His services as an ardent patriot and educationist are inestimable He is an apostle of national unity and communal harmony and represents a true image of India's secularism

On this auspicious occasion, I heartily wish that the Almighty may bestow on him many more years of happy life to enable him to serve the people of the country

I wish the publication of Abhinandan Granth success

वसन्तराव नाईक

मुख्यमन्त्री, महाराष्ट्र

मेरा राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैनजी से परिचय बहुत पुराना तो नही है, लेकिन जो भी कुछ उनसे सम्पर्क आया उससे मुझ पर उनके महान् व्यक्तित्व का गहरा असर पड़ा है। उनकी वर्षगाठ के अवसर पर हार्दिक शुभकामनाए व्यक्त करना मै अपना फर्ज समझता हू।

मै कोई लेखक नही हू कि उनका स्वभाव दर्शन ठीक रूप से कर सकू। लेकिन हाल ही मे जो मैने उनके साथ दो-तीन बार मुलाकाते की उनसे मै काफी प्रभावित हुआ हू। विभिन्न विषयो का उनका ज्ञान तथा अभ्यास

Hitendra Desai

Dr Zakir Hussain occupies a unique position in our political and educational life His services as an ardent patriot and educationist are inestimable He is an apostle of national unity and communal harmony and represents a true image of India's secularism

On this auspicious occasion, I heartily wish that the Almighty may bestow on him many more years of happy life to enable him to serve the people of the country

I wish the publication of Abhinandan Granth success

बरकतुल्ला खाँ

यह जानकर बडी प्रसन्नता हुई कि आप डा० जाकिर हुसैन पर एक अभिनन्दन ग्रन्थ निकाल रहे है। आपका यह प्रयास स्वागत योग्य है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि ग्रन्थ राष्ट्रपति महोदय के बहुमुखी व्यक्तित्व का पाठको को दिग्दर्शन करायेगा।

शिक्षा मन्त्री, राजस्थान

पावर मन्त्री, राजस्थान

शिवचरण माथुर

मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि चिन्मय प्रकाशन, जयपुर डा० जाकिर हुसैन अभिनन्दन ग्रन्थ के रूप मे स्वर्गीय श्री जवाहर लाल नेहरू, स्व० श्री लालबहादुर शास्त्री और वर्तमान प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी सम्बन्धी विशिष्ट ग्रन्थो की शृंखला मे एक और महत्वपूर्ण कडी जोडने जा रहा है।

हमारे राष्ट्रपति, श्रद्धेय डा० जाकिर हुसैन धर्म-निरपेक्ष भारत की आदर्श परम्पराओ के प्रतीक है। उनका अभिनन्दन भारत की महानता का अभिनन्दन है। अभिनन्दन ग्रन्थ की रूप रेखा को देख कर मैं कह सकता हू कि यह प्रकाशन उनके युग-प्रवर्तक विचारो तथा बहुमुखी व्यक्तित्व का दर्पण ही नहीं, प्रेरणा-स्रोत भी सिद्ध होगा।

मै ग्रन्थ की सफलता और आदरणीय डा० जाकिर हुसैन की दीर्घ आयु की कामना करता हू।

अपर निदेशक
प्राथमिक एव माध्यमिक शिक्षा
राजस्थान, बीकानेर

राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन पर "चिन्मय प्रकाशन" द्वारा ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है, यह जानकर खुशी है। यह प्रयास राजस्थान के लिये सराहनीय है।

पुस्तक का महत्व संग्रहणीय होने से जहा प्रत्येक पुस्तकालयो के लिए विशिष्ट है, वहा भावी पीटी के लिए किशोर, किशोरियो को भी इस पुस्तक के अवलोकन का अवसर मिलना नितान्त आवश्यक है कि इससे प्रेरणा लेकर अपने जीवन को तदनुरूप ढालकर राष्ट्र की सेवा कर सके तथा देश को प्रत्येक दृष्टि से सफल बना सके।

मुझे आशा है कि यह ग्रन्थ भारतीय जनता को प्रेरणा प्रदान करने मे अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।

हरिमोहन माथुर

प्राथमिक एव माध्यमिक शिक्षा,
राजस्थान, बीकानेर

यह जानकर बडी प्रसन्नता हुई है कि राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित करने का निर्णय लिया है। यह हमारे देश का सौभाग्य है कि डा० राधाकृष्णन् तथा डा० जाकिर हुसैन दोनो ही शिक्षा शास्त्री तथा शिक्षक है। इनके राष्ट्रपति पद को सुशोभित करने के कारण राष्ट्रपति केवल प्रथम नागरिक न हो कर भारत का प्रथम शिक्षक भी हो गया है।

डा० जाकिर हुसैन महान् शिक्षा शास्त्री होने के अतिरिक्त श्रेष्ठ मानवतावादी विचारक भी हैं। मेरा विश्वास है कि उनका अभिनन्दन करने के लिए प्रकाशित ग्रन्थ मे आप इन विषयो पर श्रेष्ठ विचारको द्वारा लिखे निबन्ध अवश्य प्रकाशित करेंगे।

अनिल बोर्दिया
भूतपूर्व अपर निदेशक

अनुक्रमणिका

व्यक्तित्व : खंड-

काव्याँजलियाँ : खंड–२

विचार : खंड–३

प्रमुख घटनाएँ व चित्र : खंड–४

खण्ड : १

अभिनन्दन

श्री पी० गोविन्द मेनन्

विधि मंत्री, भारत

राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन हमारे उन अग्रगण्य राष्ट्रनायकों में से है जिन्होने अपना समूचा जीवन राष्ट्र के लिए अर्पित कर दिया है। देश के वयोवृद्ध राजनीतिज्ञ होने के साथ-साथ वे एक सफल शिक्षा शास्त्री भी है। राजनीति के क्षेत्र में वे सही अर्थो मे महात्मा गाधी के अनुयायी है। वे एक ऐसे समाज के निर्माण के लिए सतत् प्रयत्न-शील रहे है जो बन्धुत्व, सौहार्द, प्रेम और एकता पर आधारित हो और जिसमे गरीब और कमजोर लोगो के प्रति अपार सहानुभूति हो। सत्य और अहिसा को वे ऐसे समाज का अभिन्न अग मानते है और उनका विश्वास है कि ऐसे समाज का निर्माण करके ही हम गाधी जी की कल्पना के आदर्श राज्य, अर्थात् राम राज्य की स्थापना की दिशा मे आगे बढ सकते है। वे सकीर्ण साम्प्रदायिकता के घोर विरोधी और धर्मनिरपेक्षता के प्रबल समर्थक रहे हैं।

धीर, गम्भीर एव सरल व्यक्तित्व वाले इस महान् राजनीतिज्ञ का प्रमुख कर्मक्षेत्र शिक्षा का क्षेत्र रहा है। गाधीजी की बुनियादी शिक्षा की योजना के सबध में उनके महत्वपूर्ण योगदान को भुलाया नही जा सकता। उनका विश्वास है कि देश के निर्माण मे शिक्षा का महत्व बहुत अधिक है और इसीलिए इस ओर बहुत अधिक ध्यान भी दिया जाना चाहिए। शिक्षा की तुलना वे मैदान मे मद गति से बहने वाली सरिता से करते है जो मनुष्यो मे जीवन के शाश्वत मूल्यो और अनन्त सहन-शीलता के प्रति आस्था को पनपाती है।

सुन्दर फूल उनको बहुत प्रिय है। वे चाहते है कि मानव जीवन भी उन फूलो जैसा ही सुन्दर, मोहक और सब को हर्षित करने वाला हो।

मैं जब-जब भी उनसे मिला हूँ, मैंने यही अनुभव किया कि मैं अपने कुटुम्ब के किसी बुजुर्ग से बाते कर रहा हूँ। उनका व्यक्तित्व इतना सरल और प्रेरक है कि बार-बार उनसे मिल कर बाते करने को जी चाहता है। उनकी इस ७१ वी वर्षग्रन्थि के शुभ अवसर पर मैं उनका सादर अभिनन्दन करता हूँ। ऐसे परम मनीषी और मानवतावादी राष्ट्रनायक का नेतृत्व हमारे राष्ट्र को चिरकाल तक मिलता रहे, यही हमारी कामना है। ●

एक जटिल और संवेदनशील जीवन

प्रो० मुजीब

लगभग २५ वर्ष हुए एक चित्रकार ने डा० जाकिर हुसैन का एक चित्र वनाया था, जिसमे उनके एक फोटो-चित्र को ही वडे आकार मे प्रस्तुत किया गया था। उसे फोटो-चित्र का ही वडा रूप कहा जा सकता था। उन्नत मस्तक, सवेदनशील और आभिजात्य को प्रकट करने वाली नासिका तथा अच्छी प्रकार छटी हुई दाढी, जिसमे कोई-कोई सफेद वाल भी थे। वह चित्र उनके चरित्र का एक अध्ययन था। उसमे उनकी आँखो के भाव-पूर्ण रूप से प्रतिविम्वित नही हुए थे, परन्तु चित्र को देखकर उनके विपय मे कल्पना की जा सकती थी। वह काफी वडा चित्र था और फ्रेम-सहित इतना भारी हो गया था कि जामिया मिलिया के वडे कमरे भी उसे रखने के लिए छोटे प्रतीत होते थे, तथा उसे दीवार मे टागने का भी कोई उपाय समझ मे नही आता था। अत कुछ दिनो तक वह मेरे कमरे मे मेटल-पीस पर रखा रहा था। उन्ही दिनो एक वार स्व० मैगडा नैकमैन मेरी मेहमान वनी थी। कमरे मे घुसते ही चित्र को देख कर उसके पास तक गयी तथा उसे ध्यान से देखकर उसकी ओर पीठ करके खडी हो गयी। उनके चेहरे से परेशानी प्रकट हो रही थी। मैंने पूछा कि "इसमे क्या त्रुटि है?" "इसमे त्रुटि?" उन्होने तिरस्कार के साथ उत्तर दिया, "इससे खराव कोई चित्र हो ही नही सकता। इसमे न कोई रग है, न जीवन। यह पूर्णतया मिथ्या है।"

जव मैं पिछले ४४ वर्षों पर एक दृष्टि डालता हूँ, जव कि मैं उनके सम्पर्क मे रहा हूँ, और १५ वर्ष तो जामिया मिलिया मे उनका निकट सहयोगी रहा हूँ, आज भी मैं यह महसूस करता हूँ कि उनका जो शब्द चित्र मैं प्रस्तुत

करूँगा, उसमें रंग और जीवन नही होगा, जिसके कारण वह मिथ्या प्रतीत हो सकता है। सग परिस्थितियों और आवश्यकताओं के प्रति वे इतने जीवन्त, इतने जटिल, इतने सवेदनशील हैं कि उं कोई सूक्ष्म और संतोषजनक चित्र प्रस्तुत करना अत्यन्त कठिन है।

मनोविज्ञान का यह प्रसिद्ध तथ्य है कि हमारे आचरण मे हमारे आन्तरिक उद्वेग प्रतिफलित होते हैं। डा० जाकिर हुसैन के व्यक्तित्व में समाज की परिस्थितियो से उत्पन्न गतिशील उद्वेगों की जटिलता है, जिनमें से कुछ का अध्ययन मैने किया है।

डा० जाकिर हुसैन प्रभुत्व जमाने की भावना से घृणा करते है तथा ऐसी भावना को व्यर्थ कर देने वाली प्रतिक्रियाओ का स्वागत करते है। ऐसी प्रतिक्रियाओ का मूल्याकन वे बहुत ऊँचे मापदण्ड से करते है, परन्तु उनके दृष्टिकोण के अनुसार वे मानदण्ड बुद्धि और भावना युक्त मानव-प्राणी के लिए न्यूनतम है। वे किसी बात को आदेश के रूप में नही कहते। जिन बातो को वे अनिवार्यतः क्रियान्वित होते देखना चाहते है उनको प्रश्नों या विरोधाभासो में प्रस्तुत करते है, परन्तु जब लोग उनका मतलब नही समझ पाते तो उनको बड़ी परेशानी और निराशा होती है। पिछले वर्षों में मैने उनसे बहुधा यह अनुरोध किया कि वे अपनी बात को सीधे सादे ढग से कहे, परन्तु यह उनको बहुत ही कठिन प्रतीत होता है। शायद यह उनकी प्रकृति के विरुद्ध है। किसी व्यक्ति से गलती होने पर वे उसके विरुद्ध तत्काल कार्रवाई नही करते है, परन्तु फिर भी उससे सुधार की आशा करते है, जो स्वय उनकी दृष्टि में उस व्यक्ति के लिए असम्भव होता है। इसका कारण यह है कि उनके अन्तर में एक सच्चे अध्यापक का विश्वास है, जो कि मनुष्य स्वभाव के सुधार की आशा रखता है। इसका यह अर्थ नही कि वे व्यक्ति को पहचानते नही। वे उदारता का व्यवहार करते है, परन्तु उनको धोखा नही दिया जा सकता।

व्यक्तियो से विचारो तथा परिस्थितियों के प्रति स्वस्थ प्रतिक्रिया की आशा के पीछे उनका आत्म-शिक्षा का सिद्धान्त रहता है, जिसके लिए स्वतत्र चिन्तन, निर्णय-शक्ति, सुविचारित योजना तथा किये हुए कार्य का निर्मम मूल्याकन आवश्यक होता है। आत्म-शिक्षा के सिद्धान्त को डा० जाकिर हुसैन ने स्वय अपने जीवन में अपनाया है तथा कितने ही कटु अनुभवो के बाद भी उन्होने दूसरो से यह आशा रखना नही छोड़ा है कि वे भी इस सिद्धान्त को अपनायेगे। मै नही जानता कि उन्होने राजनीतिज्ञों को आत्म-शिक्षा की प्रेरणा दी है या नही। परन्तु शिक्षा और विकास पर उन्होने जो कुछ कहा है उसका साराश यदि एक शब्द मे कहना हो तो हम कह सकते है कि वे भारतीय जनता को आत्म-शिक्षा का उपदेश देते रहे है।

डा० जाकिर हुसैन के व्यक्तित्व में परिलक्षित दूसरा उद्वेग-समूह उत्कृष्टता की महत्वाकाक्षा पर केन्द्रित है। वे सदैव ऐसे व्यक्ति की खोज में रहते है जो उत्कृष्टता प्राप्त करने के लिए उत्सुक है। इसका यह अर्थ नही कि वे प्रतिभाओ को खोजते रहते है। वे तो केवल ऐसे मानव चाहते है जिनमें आत्म-सुधार की तीव्र लालसा हो, जो अपने काम में अधिकाधिक दक्षता प्राप्त करने के इच्छुक हो तथा जो अपनी योग्यता बढ़ाने के हर अवसर का लाभ उठाना चाहते हो।

अभी कुछ दिन पूर्व उदाहरण के रूप मे उन्होने मुझे एक नवयुवक के विषय मे बताया था, जो उनके माली का सहायक नियुक्त हुआ था पौधो और पुष्पो में अपनी रुचि के कारण इस नवयुवक ने समस्त पौधो के वनस्पति-शास्त्रीय नाम याद कर लिये और उनको सही रूप मे लिखने का भी अभ्यास कर लिया। बाग मे जो ३५० प्रकार के गुलाब लगे थे उन सब की किस्मो के नाम उसने याद कर लिये और फूलदान मे रखने के समय वह प्रत्येक के साथ उसके नाम की एक चिट लगाने लगा। प्रत्येक चिट पर उस गुलाब का नाम सुन्दर अक्षरो में सही-सही लिखा होता था। यह सब वह इसलिए नही करता था कि उसे इसके लिए आदेश दिया गया था। उसे केवल यह पता चला था कि डा० जाकिर हुसैन की यह इच्छा है। इनसे पूर्व उनकी यह इच्छा पूर्ण नही हुई थी। इस नवयुवक के विपरीत डा० जाकिर हुसैन को रोज ऐसे बीसियो व्यक्तियो से साबका पड़ता है जो ऐसा काम मागते हैं जिसे वे अपने लिए काफी अच्छा और लाभदायक समझते है, परन्तु इस सिद्धान्त से सर्वथा अपरिचित रहते है कि जितना पारिश्रमिक मिले उतना परिश्रम अवश्य करना चाहिए।

डा० जाकिर हुसैन की आलोचना हमेशा स्वीकार होनी चाहिए, क्योकि उत्कृष्टता के प्रति उनका प्रेम सच्चा और उत्कट है। उनके निकट सम्पर्क मे व्यतीत किये पिछले ४४ वर्षो मे मैंने उनको बेमन से किये गये किसी काम की उपेक्षा करने को तैयार होते नही पाया। हो सकता है कि शालीनतावश वे स्पष्ट आलोचना न करे, परन्तु उनके भावो से दर्शक को यह समझते देर नही लगती कि उन्होंने त्रुटियो को भाप लिया है और उनको क्षमा नही किया है। जो कुछ भी वे स्वय करते है या अपनी देख-रेख मे करवाते है उसकी प्रत्येक सूक्ष्म से सूक्ष्म बात की पहले से योजना बना लेते है, और यद्यपि सदैव सफल होते है, परन्तु कार्य समाप्त होने तक उनके मन में भय और संदेह उठते रहते है। इन भयो और संदेहो के कारण वे अपनी जिम्मेदारी किसी अन्य पर छोडने को तैयार नही होते, किसी का भरोसा नही करते. दोहरा-तिहरा कर वे सब बातें निश्चित कर लेते है, अपने सबसे विश्वसनीय और प्रवीण मित्रो पर भी उनको यह सशय रहता है कि कही वे असावधानी न कर दे।

अपराध होगा—केवल उस गरिमामय अवसर के कारण ही नही, बल्कि उनकी अपनी सख्त और निर्मम अन्तरात्मा के भय के कारण ।

उनके व्यक्तित्व का तीसरा भावसमूह उनकी बहुमुखी प्रतिभा से सम्बन्धित है । उनकी बुद्धि बडी प्रखर है जो हर परिस्थिति का सामना करने की सामर्थ्य रखती है तथा अपनी प्रखरता को मापने के लिए नये-नये क्षेत्रो की खोज में रहती है । उनके मस्तिष्क में नये-नये विचार भरे रहते है, जिनमे क्रियान्वित होने के लिए प्रतिद्वन्द्विता होती रहती है । इसका परिणाम यह होता है कि उनके विषय मे यह धारणा बन जाती है कि वे बहुत अधिक काम, बहुत शीघ्र तथा निश्चय ही सर्वश्रेष्ठ कोटि का करवाना चाहते है, जिससे लोग कुछ भयभीत हो जाते है । उनकी कल्पना तथा मस्तिष्क की उर्वरता से वे लोग अवश्य ही परेशान हो जाते है, जो सोचने और काम करने के बधे-बधाये तरीको से सन्तुष्ट रहते है और जिनको समय या परिणाम की कोई परवाह नही होती । परन्तु यदि कही ऐसे लोग हो जो अच्छे से अच्छा काम करने को दृढ प्रतिज्ञ हों तो उनके बीच डा जाकिर हुसैन एक आदर्श नेता सिद्ध होगे, क्योकि वे लगातार सोचेगे, योजना बनायेगे, तुलना करेगे, जो प्रशसा के योग्य होगे उनकी हार्दिक प्रशसा करेगे तथा अपने आचरण के द्वारा स्पष्ट चिन्तन, सूझ-बूझ, तथा शीघ्र निर्णय का आदर्श प्रस्तुत करेगे, जिससे उनके सहकर्मियो (वे किसी को अपने अधीनस्थ नही समझना चाहते) को अपनी कार्यक्षमता में उत्तरोत्तर उन्नति की प्रेरणा मिलेगी । क्या कोई आशा है कि उनको कोई ऐसा अवसर मिलेगा ? या चतुर्दिक् के वातावरण की उदासीनता उन्हे अपने आप मे सीमित होने तथा व्यक्तियो और घटनाओ के प्रति उदासीन बनने को विवश कर देगी ?

इन समस्त सवेगो और भावनाओ के होते हुए कोई व्यक्ति सुखी नही रह सकता । इतना ही नही बल्कि उसका जीना दूभर हो जायगा । परन्तु डा० जाकिर हुसैन मे अपार धैर्य है जिसकी जडे उनकी प्रकृति में इतनी दृढ और गहरी है कि निराशा से अधीर होने पर भी वे उस पेड़ की तरह अचल रहते है जिनकी पत्तियाँ उडती है और शाखाएँ हवा में झूलती है, परन्तु तना अपने स्थान से नही हटता । उनका यह धैर्य प्राय अनासक्ति के रूप में दिखाई पडता है । यह कोई आध्यात्मिक अनासक्ति नही है, जो प्रत्येक नाशवान वस्तु को असार समझती है, बल्कि सासारिक मूल्यो के सबसे उग्र तूफान में लगर का काम देने वाली अनाशक्ति है । धैर्य और अनासक्ति जिस रूप मे हमें डा० जाकिर हुसैन में दृष्टिगोचर होते है वह अद्वितीय है क्योकि वे बडे स्वाभाविक ढग से मिलकर एक हो गये है और उनके सपूर्ण व्यक्तित्व में व्याप्त हो गये है । यह सच है कि घनिष्टता के वार्तालाप मे वे मुख्यत अपनी असफलता और पराजयो की ही चर्चा करते है, परन्तु वे अपने व्यक्तित्व की शक्ति से अपरचित नही है, तथा किसी भी परिस्थिति की चुनौती का सामना करने को तैयार है । उनको मानसिक निष्क्रियता, स्वाभाविक तथा सुचिन्तित स्वार्थपरता, जिद या अभद्र व्यवहार से पराजित नही किया जा सकता है । वे जानते है कि मनुष्य जाति के ये शत्रु आमतौर से लोगो में पाये जाते है । परन्तु उनमे महान साहस है तथा उनकी व्यवहार-कुशलता के समान ही उनकी बौद्धिक श्रेष्ठता भी अजेय है । उनकी सबसे बडी दुर्बलता यह है कि वे दूसरो की भावनाओ को चोट पहुँचाने से घबराते है और यही उनका सबसे सराहनीय गुण है । यदि उनमे यह गुण न होता तो शिक्षा में कताई को स्थान न मिलता तथा बेसिक शिक्षा का आज कुछ और ही रूप होता ।

अभी कुछ दिन पूर्व उदाहरण के रूप मे उन्होने मुझे एक नवयुवक के विषय मे बताया था, जो उनके माली का सहायक नियुक्त हुआ था पोधो और पुष्पो मे अपनी रुचि के कारण इस नवयुवक ने समस्त पौधो के वनस्पति-शास्त्रीय नाम याद कर लिये और उनको सही रूप मे लिखने का भी अभ्यास कर लिया। बाग मे जो ३५० प्रकार के गुलाब लगे थे उन सब की किस्मो के नाम उसने याद कर लिये और फूलदान मे रखने के समय वह प्रत्येक के साथ उसके नाम की एक चिट लगाने लगा। प्रत्येक चिट पर उस गुलाब का नाम सुन्दर अक्षरो मे सही-सही लिखा होता था। यह सब वह इसलिए नही करता था कि उसे इसके लिए आदेश दिया गया था। उसे केवल यह पता चला था कि डा० जाकिर हुसैन की यह इच्छा है। इससे पूर्व उनकी यह इच्छा पूर्ण नही हुई थी। इस नवयुवक के विपरीत डा० जाकिर हुसैन को रोज ऐसे बीसियो व्यक्तियो से सावका पडता है जो ऐसा काम मागते है जिसे वे अपने लिए काफी अच्छा और लाभदायक समझते है, परन्तु इस सिद्धान्त से सर्वथा अपरिचित रहते है कि जितना पारिश्रमिक मिले उतना परिश्रम अवश्य करना चाहिए।

डा० जाकिर हुसैन की आलोचना हमेशा स्वीकार होनी चाहिए, क्योकि उत्कृष्टता के प्रति उनका प्रेम सच्चा और उत्कट है। उनके निकट सम्पर्क मे व्यतीत किये पिछले ४४ वर्षो मे मैने उनको बेमन से किये गये किसी काम की उपेक्षा करने को तैयार होते नही पाया। हो सकता है कि शालीनतावश वे स्पष्ट आलोचना न करे, परन्तु उनके भावो से दर्शक को यह समझते देर नही लगती कि उन्होने त्रुटियो को भाप लिया है और उनको क्षमा नही किया है। जो कुछ भी वे स्वय करते है या अपनी देख-रेख मे करवाते है उसकी प्रत्येक सूक्ष्म से सूक्ष्म बात की पहले से योजना बना लेते है, और यद्यपि सदैव सफल होते है, परन्तु कार्य समाप्त होने तक उनके मन मे भय और सदेह उठते रहते है। इन भयो और सदेहो के कारण वे अपनी जिम्मेदारी किसी अन्य पर छोडने को तैयार नही होते, किसी का भरोसा नही रखते, दोहरा-तिहरा कर वे सब बाते निश्चित कर लेते है, अपने सबसे विश्वसनीय और प्रवीण मित्रो पर भी उनको यह सशय रहता है कि कही वे असावधानी न कर दे।

अपराध होगा—केवल उस गरिमामय अवसर के कारण ही नही, बल्कि उनकी अपनी सख्त और निर्मम अन्तरात्मा के भय के कारण।

उनके व्यक्तित्व का तीसरा भावसमूह उनकी बहुमुखी प्रतिभा से सम्बन्धित है। उनकी बुद्धि बडी प्रखर है जो हर परिस्थिति का सामना करने की सामर्थ्य रखती है तथा अपनी प्रखरता को मापने के लिए नये-नये क्षेत्रो की खोज में रहती है। उनके मस्तिष्क में नये-नये विचार भरे रहते है, जिनमे क्रियान्वित होने के लिए प्रतिद्वन्द्विता होती रहती है। इसका परिणाम यह होता है कि उनके विषय में यह धारणा बन जाती है कि वे बहुत अधिक काम, बहुत शीघ्र तथा निश्चय ही सर्वश्रेष्ठ कोटि का करवाना चाहते है, जिससे लोग कुछ भयभीत हो जाते है। उनकी कल्पना तथा मस्तिष्क की उर्वरता से वे लोग अवश्य ही परेशान हो जाते है, जो सोचने और काम करने के बधे-बधाये तरीको से सन्तुष्ट रहते है और जिनको समय या परिणाम की कोई परवाह नहीं होती। परन्तु यदि कही ऐसे लोग हो जो अच्छे से अच्छा काम करने को दृढ प्रतिज्ञ हो तो उनके बीच डा जाकिर हुसैन एक आदर्श नेता सिद्ध होगे, क्योंकि वे लगातार सोचेंगे, योजना बनायेगे, तुलना करेगे, जो प्रशसा के योग्य होगे उनकी हार्दिक प्रशसा करेंगे तथा अपने आचरण के द्वारा स्पष्ट चिन्तन, सूझ-बूझ, तथा शीघ्र निर्णय का आदर्श प्रस्तुत करेंगे, जिससे उनके सहकर्मियो (वे किसी को अपने अधीनस्थ नही समझना चाहते) को अपनी कार्यक्षमता मे उत्तरोत्तर उन्नति की प्रेरणा मिलेगी। क्या कोई आशा है कि उनको कोई ऐसा अवसर मिलेगा ? या चतुर्दिक् के वातावरण की उदासीनता उन्हे अपने आप में सीमित होने तथा व्यक्तियो और घटनाओ के प्रति उदासीन बनने को विवश कर देगी ?

इन समस्त सवेगो और भावनाओ के होते हुए कोई व्यक्ति सुखी नही रह सकता। इतना ही नही बल्कि उसका जीना दूभर हो जायगा। परन्तु डा० जाकिर हुसैन मे अपार धैर्य है जिसकी जड़े उनकी प्रकृति में इतनी दृढ और गहरी है कि निराशा से अधीर होने पर भी वे उस पेड की तरह अचल रहते है जिनकी पत्तियाँ उडती है और शाखाएँ हवा में झूलती है, परन्तु तना अपने स्थान से नही हटता। उनका यह धैर्य प्राय अनासक्ति के रूप में दिखाई पडता है। यह कोई आध्यात्मिक अनासक्ति नही है, जो प्रत्येक नाशवान वस्तु को असार समझती है, बल्कि सासारिक मूल्यो के सबसे उग्र तूफान में लगर का काम देने वाली अनाशक्ति है। धैर्य और अनासक्ति जिस रूप में हमें डा० जाकिर हुसैन में दृष्टिगोचर होते है वह अद्वितीय है क्योकि वे बडे स्वाभाविक ढग से मिलकर एक हो गये है और उनके सपूर्ण व्यक्तित्व में व्याप्त हो गये है। यह सच है कि घनिष्टता के वार्तालाप में वे मुख्यत. अपनी असफलता और पराजयो की ही चर्चा करते है, परन्तु वे अपने व्यक्तित्व की शक्ति से अपरचित नही है, तथा किसी भी परिस्थिति की चुनौती का सामना करने को तैयार है। उनको मानसिक निष्क्रियता, स्वाभाविक तथा सुचिन्तित स्वार्थपरता, जिद या अभद्र व्यवहार से पराजित नही किया जा सकता है। वे जानते है कि मनुष्य जाति के ये शत्रु आमतौर से लोगो मे पाये जाते है। परन्तु उनमे महान साहस है तथा उनकी व्यवहार-कुशलता के समान ही उनकी बौद्धिक श्रेष्ठता भी अजेय है। उनकी सबसे बडी दुर्बलता यह है कि वे दूसरो की भावनाओ को चोट पहुँचाने से घबराते है और यही उनका सबसे सराहनीय गुण है। यदि उनमें यह गुण न होता तो शिक्षा मे कताई को स्थान न मिलता तथा बेसिक शिक्षा का आज कुछ और ही रूप होता।

डा० जाकिर हुसैन से जो लोग स्वय उनके बारे मे प्रश्न करते है उनका सामना वे विरोधाभासपूर्ण तथा स्पष्ट उत्तरो द्वारा करते है। कुछ ही समय हुआ बम्बई से एक मित्र ने उनको एक पत्र लिखा जिसमे यह प्रार्थना की कि एक नवयुवक को अपने पूर्व जीवन के विषय मे कुछ बताने की कृपा करे, जो कि उनकी जीवनी लिखना चाहता था। उन्होने उत्तर लिखा—"मैं किसी को अपने भूतकाल के विषय मे क्या बता सकता हूँ ? मेरा कोई भूतकाल नही है, मेरा जीवन तो अभी प्रारम्भ हुआ है।" मैने भी जब कभी कुछ जानना चाहा तो मुझे भी कुछ इसी प्रकार के उत्तरो से चुप कर दिया गया।

अत. यदि मै यहाँ उनके धार्मिक या राजनीतिक विश्वासो के विषय मे कुछ लिखूँ, तो वे ऐसे व्यक्ति के अध्ययन मात्र समझे जायँ, जिसने डा० जाकिर हुसैन को निकट से देखा है, बहुत से विषयो मे उनमे मतभेद रखे है तथा सराहना की भावना को समझने की इच्छा पर हावी न होने देने का हमेशा प्रयास किया है। यह भी ध्यान रहे कि डा० जाकिर हुसैन के बुनियादी विश्वासो पर कुछ लिखने का आधार अनुमान ही हो सकता है। प्राय. मेरी धारणा रही है कि उनको इसमे आनन्द आता है कि लोग उनके विषय मे अनुमान करते रहे। कभी-कभी मुझे उनके वचन और कार्य उनके बुनियादी विश्वासो से गम्भीर साम्य रखते प्रतीत होते है। मै कह सकता हूँ कि वे अपनी नैतिक स्वतन्त्रता की रक्षा हर कीमत पर करने के लिए दृढ सकल्प है। इस कथन मे सब बाते आ जाती है या कोई भी बात नही आती। यदि और स्पष्ट रूप मे कहा जाय, तो कह सकते है कि वे अनुयायी नही बल्कि प्रवर्तक होने की महत्वाकाक्षा रखते है, आदेश का पालन करने वाले के स्थान पर आदेश देने वाला बनना चाहते है। परन्तु इसे भी स्पष्ट करने के लिए विस्तृत व्याख्या आवश्यक है।

ईश्वर के प्रति डा० जाकिर हुसैन की निष्ठा और आस्था को जानने का प्रयास मैंने किया है। उनकी निष्ठा मे मेरा अटूट विश्वास है, परन्तु उसको पूर्ण रूप से मै तभी समझ सकूँगा जब मेरी निष्ठा भी उसी रूप और अवस्था की हो जाय। परन्तु मै उसके विषय मे कुछ नही कहूँगा। देश के अन्य सब लोगो के समान ही मै भी यह जानता हूँ कि वे मुस्लिम है, परन्तु वे मेरे जैसे या मेरे परिचित अन्य किसी मुस्लिम जैसे मुस्लिम नही है। मुस्लिमो के सूफी सन्तो से परिचित व्यक्ति को इसमे कुछ भी आश्चर्यजनक नही लगेगा। डा० जाकिर हुसैन धर्म के बाह्य क्रिया-कलाप के प्रति सूफियो जैसी उदासीनता रखते है, परन्तु वे उन क्रियाओ का सम्मान भी करते है। स्वय अपने धर्माचरण के विषय मे सूफियो जैसी अनुत्तरदायित्वपूर्ण बाते भी वे कर दिया करते है। सबसे बडी बात यह है कि सूफियो के समान उन्होने ईश्वर से सम्पर्क स्थापित करने का प्रयास किया है, जिसमे अन्य लोग कोई दिलचस्पी नही रखते। अबू सुलेमान अल-दरानी ने इस स्थिति का वर्णन बहुत पहले निम्न शब्दो मे किया था. "तसव्वुफ (सूफीवाद) यह है कि घटनाएँ व्यक्ति पर से गुजरती जाय, जो कि अल्लाह को ही विदित होती है, और व्यक्ति हमेशा अल्लाह के सम्पर्क मे रहे, जिसका रूप अल्लाह ही जानता है।" डा० जाकिर हुसैन के व्यक्तित्व की जडे मुस्लिम सन्तो और कवियो के अध्यात्मिक तथा नैतिक सिद्धान्तो और साहित्य मे है, विशेषत जलालुद्दीन रूमी के ज्ञान के सौरभ मे। परन्तु वे नियम से प्रतिदिन कुरान भी पढते है, और आजकल शिक्षित मुसलमानो में बहुत ही कम करते है। यदि ऐसा व्यक्ति दूसरे के पैर छूता है तो उसके द्वारा कौन सम्मानित होता है ?

डा० जाकिर हुसैन का राष्ट्रवाद, जहाँ तक मै समझ सका हूँ, गाधी जी के राष्ट्रवाद के समान है, जो कि सर्वोच्च नैतिक मूल्यो के प्रति उनकी निष्ठा का प्रतिबिम्ब है। वे सास्कृतिक मूल्य उनके व्यक्तित्व मे एकाकार हो गये है। उनका राष्ट्रवाद उधार लिये हुए सिद्धान्तो पर आधारित नही है और उसकी प्रेरणा जनता की प्रशसा से नही मिलती। उनके राष्ट्रवाद मे तात्कालिक स्वार्थ सिद्धि के लिए लक्ष्य को सकुचित करने की कोई गुंजाइश नही है, बल्कि व्यक्ति के मानसिक धरातल को इतना ऊँचा उठाने की माँग है कि वह अन्तिम लक्ष्य को समझ सके। मूलत नैतिक तथा सास्कृतिक मूल्यो की अभिव्यक्ति होने के कारण उनका राष्ट्रवाद व्यक्ति के लिए उस स्वतत्रता की माँग करता है, जो लोकतत्र का सार है। उसका राष्ट्रवाद उस अनुशासन की माग करता है, जो लोकतत्रीय नागरिकता का आधार है, तथा समाज-हित के साथ उस अभिन्नता की अनुभूति की माग करता है जो व्यक्ति के जीवन को सार्थकता प्रदान करता है। और यदि यह राष्ट्रवाद डा० जाकिर हुसैन के माधुर्य, व्यवहारकुशलता, यथार्थवाद तथा गम्भीर मानववाद के रूप मे साकार हो उठा है, तो भारत की जनता उससे क्या आशाएँ नही कर सकती? ●

देर न कीजिए "खुदा के लिए इस मुल्क की सियासत को सुधारिए और जल्द से जल्द सियासत की बुनियाद डालिए, जिसमें कौम कौम पर भरोसा कर सके, कमजोर को जोरावर का डर न हो, गरीब अमीर से बचा रहे, जहाँ हर एक वह बन सके, जिसके बनने की उसमें योग्यता है। मै जानता हूँ कि इन बातो का कह देना सरल है और करना किसी एक आदमी के बस की बात नही। ———हमारी यह मुश्किल दूर कीजिए अब भी बहुत देर हो चकी है। और देर न जाने क्या दिन दिखाये।

—१९४१ मे दूसरी बुनियादी तालीमी कान्फ्रेस मे दिये गये भाषण से

एक आदरांजलि

श्री अन्ना साहब शिन्दे

राज्य मन्त्री, खाद्य व कृषि, भारत

डा० जाकिर हुसैन देश की उन अन्यतम विभूतियो मे से है, जिन्होने देश के गौरव को वढाया है। राष्ट्र ने उन्हे उच्चतम पद देकर उनके महान् व्यक्तित्व और राष्ट्रभक्ति की भावना-को मान्यता दी है।

विद्यार्थी जीवन मे वडी कठिनाइयो के वावजूद उन्होने अलीगढ विश्वविद्यालय से स्नातक तथा वर्लिन विश्वविद्यालय से पी०-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। विद्यार्थी जीवन से ही उनके वहुमुखी व्यक्तित्व की झलक मिलने लगी थी।

१९२० मे गाधी जी के असहयोग आदोलन के प्रारम्भ के साथ ही वे गाधी जी के सम्पर्क मे आए। वे गाधी जी के जीवन से वडे प्रभावित हुए। वास्तव मे डा० जाकिर-हुसैन उन लोगो मे से है जो आज भी गाधी जी के साचे मे ढले है और उनके आदर्शो को राष्ट्रीय जीवन मे उतारना चाहते है। वे वैयक्तिक व सामाजिक जिन्दगी मे सादगी और महान् उद्देश्यो की पूर्ति मे पवित्र साधनो के उपयोग मे विश्वास रखते है। समाज के कमजोर और पिछडे वर्गों के प्रति वे सक्रिय और सच्ची सहानुभूति रखते हैं। उनमे देश के विभिन्न वर्गो के लोगो के वीच एका पैदा करने की भी उत्कट भावना है।

वे उन कुछ देशभक्त भारतीयो मे है, जिन्होने राष्ट्र की सेवा मे शिक्षा के क्षेत्र में जीवन अर्पित किया है। डा० जाकिर हुसैन ने ही १९२० मे महात्मा गाधी को दिल्ली में जामिया मिलिया स्थापित करने के लिए प्रेरित किया। उनका विचार था कि राज-नीति के सकीर्ण माध्यम से राष्ट्र का पुनरुत्थान सभव नही है। उनके विचार मे राष्ट्र का

उत्थान शिक्षा और सस्कृति में नया दृष्टिकोण अपनाने और राष्ट्रीय चेतना को नया स्वरूप देने से ही संभव है।

डा० जाकिर हुसैन का लक्ष्य था कि जामिया मिलिया के माध्यम से एक ऐसी शिक्षा प्रणाली का विकास किया जाए, जो राष्ट्रीय सस्कृति के अनुरूप हो। स्वतन्त्रता से पहले स्वतन्त्रता के बाद भी डा० जाकिर हुसैन ऐसी शिक्षा प्रणाली तैयार करने के लिये काम करते रहे, जो राष्ट्र के विकास में सहायक हो।

धार्मिक सहिष्णुता और प्रजातन्त्र में डा० जाकिर हुसैन का अटूट विश्वास है। सरल, सौम्य, डा० जाकिर हुसैन का कला-प्रेम तो सोने में सुहागे की तरह है। ●

धक्के खाने से अक्ल आयेगी!

जब जात-पात, मजहब, जुबानो के फर्क से हमारा देश टुकडे-टुकडे नजर आता है। जिस मुल्क मे स्टेशनों पर मुसलमान पानी और हिन्दू दूध मिलता है, जहाँ एक का सच दूसरे का झूठ है——इस मुल्क मे नौजवानो से ऐसे मिलकर काम करने की आस जरा मुश्किल है, मगर दिल यही गवाही देता है कि थोडे दिन और धक्के खाने के बाद इस मुल्क के नौजवान मुल्क की सेवा के लिए एक-दिल हो जाएंगे।

—काशी विद्यापीठ मे दिये गये भाषण से।

हमारे जाकिर साहब

अब्दुल लतीफ आजिमी

डा० जाकिर हुसैन साहब भारतवर्ष के राष्ट्रपति चुन लिये गये—इस शानदार कामयावी मे जाकिर साहव के प्यारे व्यक्तित्व और उनकी सेवाओ का हाथ है। मगर इस जीत मे सिर्फ उनकी या काग्रेस की ही जीत नही है, वल्कि हिन्दुस्तानी राष्ट्रीयता की जीत है, धर्मनिरपेक्षवाद की जीत है, इससे ज्यादा शराफत और भलमनसाहत की जीत है। जाकिर साहव ने अपने सार्वजानिक जीवन में वहुत से हैरान कर देने वाले काम किये है, उदाहरण के लिए १९४६ मे काग्रेस और मुस्लिम लीग के नेताओ को, जव कि उनमें सख्त खीचातानी थी, एक दूसरे की शक्ल देखना भी गवारा नही था, जाकिर साहव के प्यारे व्यक्तित्व ने उन्हे जामे के प्लेटफार्म पर इकट्ठा कर दिया। इसी प्रकार वल्कि इससे भी ज्यादा आज जव कि वहुसख्यको तक के काग्रेस उम्मीदवारो की कामयावी निश्चित नही समझी जाती एक अल्पसख्यक वर्ग के व्यक्ति की मुल्क के सवसे वडे ओहदे के लिए कामयावी यकीनन हैरान कर देने वाली है। इसे जाकिर साहव के व्यक्तित्व का जादू भी कह सकते है, या फिर इनके इरादो और लक्ष्यो की लगन जो अपना असर दिखाये वगैर नही रहती।

नेक और शरीफ लोग राजनीति से दूर भागते है और आजकल तो इसकी गन्दगी वर्दाश्त की हद से वाहर निकल गयी है। प० जवाहरलाल नेहरू जैसे भारी-भरकम व्यक्तित्व और उन जैसे प्यारे नेता के उठ जाने के वाद हिन्दुस्तान की राजनीति, खासतौर पर चौथे आम चुनाव के वाद, वहुत ही खराव हो गयी है, लेकिन इतमीनान और खुशी की वात है कि मुल्क के वहुमत ने जाकिर साहव की

सेवाओं को माना, उनकी शराफत और राजनीतिक सूझ बूझ की सराहना की और उनकी हिमायत में सैकड़ो बल्कि हजारो पत्र छपे।

जाकिर साहब के व्यक्तित्व और सेवाओं को सामने रखते हुए यह सब कुछ होना ही चाहिए था। न होता तो हैरानी और अफसोस होता। मगर दो कारणों से मेरे नजदीक इनका बडा महत्व है। पहला, इस कारण कि जाकिर साहब सक्रिय राजनीति से हमेशा अलग रहे। इनकी राष्ट्र-सेवाएं शिक्षा-जगत् तक ही सीमित थी, जिनके महत्व को खास-खास लोग ही समझ सकते है और कद्र कर सकते है। दूसरे, आजकल देश की राजनीतिक परिस्थिति में इतना बड़ा परिवर्तन आ गया है कि कांग्रेस पहले की तरह मजबूत नही रही, लेकिन इसके बावजूद जाकिर साहब की जो एक अल्प सख्यक वर्ग से ताल्लुक रखते है, इस जोश-खरोश के साथ हिमायत करना और इतने भारी बहुमत से मुल्क के सब से बडे ओहदे के लिए चुनना कोई मामूली बात नही। मै विश्वास करता हूँ कि धर्मनिरपेक्ष हिन्दुस्तान के इतिहास में यह स्वर्णाक्षिरो मे लिखा जायगा।

जाकिर साहब राजनीतिक जोड़-तोड के आदमी नही है। उन्होंने उम्र का बडा और बेहतरीन हिस्सा तालीम की खिदमत में खपाया। उन्हे अपनी शराफत, नेकी और दिल मोह लेने वाले ढग से विरोधियो को वश मे करने, दुश्मनों को दोस्त बनाने और दोस्तों की दोस्ती को बनाए रखने का गुर खूब आता है।

हिन्दुस्तान का राष्ट्रपति यद्यपि सिर्फ सवैधानिक अध्यक्ष होता है, असल ताकत ससद् को हासिल है, मगर जाकिर साहब की सूझ-बूझ और उनके प्यारे व्यक्तित्व की बिना पर यकीन है कि मौजूदा हालत में, जब कि हकूमत के अन्दर कोई बुजुर्ग और प्रभावशाली व्यक्तित्व नही रहा, और केन्द्र तथा राज्यो के बीच खीचातानी का डर है, इनका राष्ट्रपति चुना जाना वाकई एक अच्छा शगून है।

जाकिर साहब का व्यक्तित्व राष्ट्रीय समस्याओ के हल करने मे जितना सहायक हो सकता है, उतना ही इससे अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध बनाने में मदद मिल सकती है। उन्होने अपने उपराष्ट्रपतित्व-काल में बड़े लाभदायक काम किये है। राष्ट्रपति की हैसियत से वे पहले से भी ज्यादा लाभदायक सेवाए कर सकते है। हमारे बाज पड़ौसी देश दिन रात इस कोशिश में लगे रहते है कि दूसरे मुल्को से खास तौर पर मुसलमान मुल्को से हमारे मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बाकी न रहे। इसका बेहतरीन जवाब जाकिर साहब की यह शानदार कामयाबी है।

अब वे खुद राष्ट्र के अध्यक्ष है। इस समय भी देश की हालत १९४१ से अधिक भिन्न नही। इसलिए सही तौर पर उनसे उम्मीद की जा सकती है कि वे अपने प्रभाव का देश के साम्प्रदायिक वातावरण के सुधार में प्रयोग करेंगे। लेकिन इसके साथ-साथ हम यह भी महसूस करते है कि उनके हाथ मे कोई जादू की छड़ी नही है कि मुल्क और कौम को तमाम खराबियो को, जिनकी जड़ें बडी गहरी और मजबूत है, अपने थोड़े से कार्यकाल में दूर कर देगे। फिर यह कि वे इनसान है, फरिश्ता नही। उनमे कमजोरिया भी है। उनकी सब से बडी कमजोरी मुरव्वत है। एक दर्दमन्द दिल रखते है, जो समाज की खराबियो और बेइन्साफियो पर बहुत जल्द भर आता है। मगर वह जिस बड़े ओहदे पर है, इसके

र्द-गिर्द परम्पराओ तथा नियमो का कैसा मजबूत किला है, जिसे नजरन्दाज नही करना चाहिए। इनसे उम्मीदे बाधते वक्त इस बात को खास तौर पर सामने रखने की जरूरत है।

बहरहाल जाकिर साहब का राष्ट्रपति चुन लिया जाना अपने आप मे बहुत बड़ी घटना है। हम इस चुनाव पर कौम को मुबारकबाद देते है और उम्मीद रखते है कि जिस तरह इसने चुनाव के वक्त अपने फैसले को पक्षपात से खराब नही होने दिया, इसी तरह अपना सहयोग देकर इन्हे कौम, मुल्क की सेवा का मौका देगे।

हम जाकिर साहब को भी मुबारकबाद देते हैं, जिनको मुल्क के सब से बडे ओहदे पर चुन कर कौम ने उन पर कोई अहसान नही किया है। मुल्क के सम्मान को दुनिया की नजरो मे ऊंचा करके खुद अपने ऊपर अहसान किया है। हमे पूर्ण विश्वास है कि कौम ने जाकिर साहब पर जिस भरोसे और विश्वास का सबूत दिया है, इसमे उसे कभी मायूसी नही होगी।

हिन्दुस्तान ने एक मुसलमान को राष्ट्रपति चुनकर अपने धर्मनिरपेक्ष होने की लाज रख ली। इस पर मुबारकबाद के हकदार खुद राष्ट्रपति नही, उनके चुनने वाले है।

हमारे जाकिर साहब के चरित्र का साराश यदि एक शब्द मे रख देना चाहे तो वह एक शब्द "नराफत" होगा। अपनी शराफत के नमूने यो तो वे जिन्दगी भर पेश करते रहे, लेकिन इसका सबसे बडा और असर करने वाला नमूना तो ऐन इसी आम चुनाव के सिलसिले में देखने में आया। विरोधी दलो मे से बाज तो कमीनगी की जिस घटिया सतह पर उतर आये थे, उस पर हर आख हैरान और हर कान दग था। इन सब बातो को बर्दाश्त करना और इन हमलो का जवाब इस शानदार खामोशी से देना बस इन्ही का हिस्सा था। शायर ने कहा है –

वो तेरी गली की कयामतें, कि लिहद से मुर्दे निकल पड़े।
ये मेरी जबीने नियाज थी कि जहा धरी थी, धरी रही।

●

सौम्यता व सज्जनता के आदर्श

रंगनाथ रामचन्द्र दिवाकर
(भूतपूर्व राज्यपाल, बिहार)

स्वतन्त्रता के पश्चात् पिछले २० वर्षो में भारत के सौभाग्य से उसे योग्य राष्ट्रपति प्राप्त हुए है। यद्यपि संविधान निर्माण से पूर्व यह पद गवर्नर जनरल के रूप में प्रसिद्ध था परन्तु उसे भी राष्ट्रपति ही समझना चाहिए।

इन सभी राष्ट्रपतियों ने इस पद की मान मर्यादा को बढाया है क्योकि वे लोग पहले ही प्रख्यात व्यक्ति थे। श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, डा० राजेन्द्र प्रसाद, डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् तथा डा० जाकिर हुसैन। सभी भारत की सर्वोच्च विभूतियाँ है जिन्होने इसके सार्वजनिक जीवन व इतिहास में पर्याप्त योगदान किया है। केन्द्र तथा राज्यों के विधायको को यह श्रेय जाता है कि उन्होने भारत के प्रथम नागरिक तथा विश्व के सबसे बडे जनतत्र के अध्यक्ष का चुनाव करने में विवेकशीलता से काम लिया। उन्होने धर्मनिरपेक्षता के महत्व को स्वीकार किया और विश्व के समक्ष उसकी स्वीकृति प्रस्तुत की।

यद्यपि राज्यों में राजनैतिक सतुलन बदल जाने के कारण दुर्भाग्य से पिछली मई में राष्ट्रपति का चुनाव दलगत राजनीति का विषय बन गया पर सौभाग्य से परिणाम उचित ही निकला। फलस्वरूप डा० जाकिर हुसैन हमारे राष्ट्रपति बने। यह कहा जा सकता है कि भारत के इस सर्वोच्च पद पर उन्हे चुन कर हमने अपनी गौरवशाली परम्पराओ का पुन. परिचय दिया है। यह सही है कि उनके पूर्ववर्त्ती राजनीतिक व सास्कृतिक देन के नाते उनसे अधिक प्रसिद्ध रहे है पर इसका कारण यही है कि जाकिर हुसैन कुछ ऐसे सगठनात्मक कार्यो मे लगे रहे कि अन्य क्षेत्रो

मे उन्होंने अपने को जाने से बरबस रोका । पर भारत की स्वाधीनता प्राप्ति के बाद उनकी परिपक्व, प्रतिभा व सेवाओ का राष्ट्र ने भरपूर उपभोग किया । वे गत दशक में बिहार के समान बडे राज्य के राज्यपाल के रूप मे तथा राज्य सभा के अध्यक्ष व उप–राष्ट्रपति के रूप मे अपनी योग्यता व विद्वत्ता का परिचय दे चुके हे । इस तरह यद्यपि शिक्षा व साहित्य के क्षेत्र मे उनकी उपलब्धिया बहुत अधिक है किन्तु प्रशासन मे भी उन्होने सुविचारिता, सौजन्य, सहृदयता एव उच्च व्यक्तित्व की छाप छोडी है । उन्होंने कभी भी आत्म प्रचार की ओर ध्यान नही दिया । चू कि शिक्षा के क्षेत्र मे उनका जीवन प्रचार व विज्ञापन से दूर ही रहा । अत इसके फलस्वरूप उनके विचारो मे अधिक परिपक्वता व गहनता आ गई है । वे सादगी पसन्द, अध्ययन प्रिय और सौम्य व्यक्तित्व का आदर्श प्रस्तुत करते हैं ।

भारतीय विश्वविद्यालयो से सर्वोच्च शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् उन्होने जर्मन विश्वविद्यालय मे शिक्षा प्राप्त की । तत्पश्चात् उन्होने शिक्षा के क्षेत्र को ही अपने लिए चुना । राष्ट्रीय विचारो से ओत-प्रोत होने के कारण उन्होने अनुभव कर लिया कि हमारी शिक्षा पद्धति मे राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के मूल तत्वो का अभाव हे इसी कारण उन्होने शिक्षा विभाग का एक अधिकारी बनने की अपेक्षा जामिया मिलिया मे साधारण शिक्षक रहना अधिक पसन्द किया । उनके पास कई प्रस्ताव आये जिन्हे स्वीकार कर वे सुखी जीवन व्यतीत कर सकते थे पर उन्होने सिद्धान्तो का बलिदान करने की अपेक्षा समृद्ध व ऊची आय के पद का बलिदान कर दिया । यह उनके चरित्र की दृढता व आत्मशक्ति की परीक्षा थी । जब वे जामिया मिलिया मे उप कुलपति बने तो उन्होने एक वास्तविक श्रेष्ठ व राष्ट्रीय शिक्षा पर विशेष जोर दिया जिसे प्राप्त कर वे भारत को आधुनिक राष्ट्र बना सके । शिक्षा के क्षेत्र मे उन्होने एक सतुलनात्मक पद्धति का समर्थन किया है । वे चाहते है कि अपनी शिक्षा के माध्यम से हम पूर्व को पहले समझे और उसके बाद पश्चिम को । उन्होने अपनी पुस्तको व भाषणो मे इस दृष्टि बिन्दु को विशेष रूप से सामने रखा है ।

जब महात्मा गाधी ने डा० जाकिर हुसैन को बुनियादी शिक्षा का सदेश दिया तो उन्होने उस प्रणाली को अपना लिया । बुनियादी शिक्षा पद्धति को रूप व आकार देने मे उन्होने प्रमुख भाग लिया । उन्होंने इसका सागोपाग अध्ययन किया व कार्यान्वित हेतु इसे प्रस्तुत किया । पर दुर्भाग्यवश सभी लोगो द्वारा इसकी सराहना करने के बावजूद बुनियादी शिक्षा हमारी शिक्षा पद्धति का आवश्यक अ ग नही बन सकी । डा० जाकिर हुसैन को इसका बडा खेद है परन्तु डा० जाकिर हुसैन या बुनियादी शिक्षा के समर्थको का इसमे कोई दोष नही हे । हमारी शिक्षा पद्धति का निष्प्राण ढाचा ही इस नवीन पद्धति को ग्रहण करने मे असमर्थ रहा ।

बुनियादी शिक्षा के अलावा भी शिक्षा की वैज्ञानिक पद्धति के विकास मे डा० जाकिर हुसैन ने जीवन का दीर्घ समय दिया है । जामिया मिलिया इसका एक आदर्श उदाहरण है जिसमे उन्होने अपने अनुभवो और प्रयत्नो को साकार रूप प्रदान किया है । यह उनके जीवन की एक लबी साधना का प्रमाण है ।

डा० जाकिर हुसैन अंग्रेजी तथा उर्दू भाषा के प्रकाण्ड विद्वान है। दोनो भाषाओ मे वे विशुद्ध व मधुर शब्दों का उपयोग कर सकते है। वे जर्मन भाषा के भी ज्ञाता है परन्तु मुझे ज्ञात नही है कि उसमे उन्होने कोई पुस्तक लिखी अथवा नही। वे भाषण बहुत कम देते है। वे बिना गूढ पर्यवेक्षण व अनुभव के कभी कोई विचार प्रकट नही करते। चाहे वे सामान्य वेतन पाने वाले अध्यापक रहे अथवा भारत के राष्ट्रपति, वे सदा मानव की स्वतत्रता, प्रतिष्ठा, चरित्र की सत्यता, सज्जनता व प्रेम से ही मनुष्यो से व्यवहार करते है। अपने इन सभी गुणों सहित वे राष्ट्रपति के सर्वोच्च पद पर विराजमान है और इस पद को स्वीकार कर उन्होने इसकी मान मर्यादा को बढाया है।

गधे से मुलाकात!

यह उन दिनो की बात है जब जाकिर साहब जर्मनी में पढते थे। इस देश में किसी अजनबी, अन्जान से जान-पहचान या पहली मुलाकात का ढग यह है कि अपना नाम बताकर हाथ बढ़ा दिया जाता है। एक दिन महाविद्यालय में कोई उत्सव था। जाकिर साहब जल्दी-जल्दी उसी ओर जा रहे थे। सामने से एक प्राध्यापक चले आ रहे थे। वे बहुत घमण्डी थे। यकायक दोनो टकरा गये। प्रोफेसर साहब के मुँह से क्रोध में सहसा निकला—"गधा!" "जाकिर हुसैन!" यह कहते हुए जाकिर साहब ने हाथ मिलाने के लिए हाथ आगे बढा दिया। प्रध्यापक महोदय एक भारतीय विद्यार्थी को होशियारी और तीव्र बुद्धि पर मुस्करा दिये और उस दिन से जाकिर साहब की गिनती अति प्रिय विद्यार्थियो मे होने लगी।

विचारक एवं शिक्षाविद् जाकिर हुसैन

के० जी० सैयदेन

[भारत सरकार के भूतपूर्व शिक्षा सचिव श्री सैयदेन ने डा० जाकिर हुसैन को बहुत निकट से देखा है। वे स्वय उल्लेखनीय शिक्षा-शास्त्री माने जाते है एव सम्प्रति एशियाई इन्स्टीट्यूट, शिक्षा आयोग व प्रशासन के अध्यक्ष है। उन्होने यहा डा० हुसैन की शैक्षणिक, सामाजिक व सार्वजनिक उपलब्धियों का आकलन प्रस्तुत किया है।]

शैक्षणिक चिन्तन एव अनुशीलन के क्षेत्र मे उच्च नेता व प्रवर्त्तक डा० जाकिर हुसैन अपनी सेवाओ के लिए सुपरिचित उस अफगान परिवार से सबद्ध है जो उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद जिले के एक छोटे से कस्बे कायमगज मे बस गया था। पर स्वयं उनका जन्म आध्र मे हैदराबाद मे ७० वर्ष पूर्व हुआ जहा उनके पिता एक प्रख्यात वकील थे।

यहा यह भी उल्लेखनीय है कि उनका परिवार सात पीढियो से सेना में एक प्रमुख स्थान प्राप्त करता आ रहा था। पर उनके पिता ने यह परम्परा भग कर दी और स्वय जाकिर हुसैन व उनके भाइयों ने पिता से भी पृथक शिक्षा के क्षेत्र को अगीकार किया।

उनकी प्रारभिक शिक्षा इटावा में हुई जहा के अत्यन्त योग्य हैडमास्टर सैयद अल्ताफ हुसैन ने उन पर गहरा प्रभाव डाला। बाद मे कालेज शिक्षा के लिये वे अलीगढ के एम० ए० ओ० कालेज चले आये जो कि बाद मे अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय मे परिवर्तित हुआ। उन्ही दिनो देश मे गाधी जी के नेतृत्व मे असहयोग आन्दोलन छिड गया जिसने राजनीतिक कार्यकर्त्ताओ व जनता के साथ ही छात्रो व शिक्षण सस्थाओ को भी आकर्षित

कर लिया। युवा हुसैन व उनके साथी भी गाधी जी से प्रभावित हुए और उन्होंने शिक्षा के माध्यम से राष्ट्रीय सेवा मे अपने को समर्पित कर दिया।

डा० हुसैन का विचार था कि केवल राजनीति के सकुचित द्वार से एक सच्चा व पूर्ण राष्ट्रीय नवजागरण प्राप्त नही किया जा सकता, इसकी जड़ें नवजाग्रत शिक्षा व सस्कृति मे होनी चाहिये। अग्रेजी शिक्षा का प्रस्थापित पैटर्न आत्माहीन था, इसके आदर्श सीमित थे, इसकी प्रणालिया ढली-ढलाई थी। राष्ट्रीय जीवन की धाराओ से इसका सपर्क परे था। इन्ही सब दृष्टियो से उन्होने अलीगढ में एक राष्ट्रीय शिक्षण सस्था स्थापित करने मे मदद की और बाद में जिसे दिल्ली ले आया गया। "जामिया मिलिया" नाम से प्रख्यात यह शिक्षण सस्था शिक्षा के क्षेत्र मे एक नया प्रयोग था। इसका उद्देश्य शिक्षण का ऐसा पैटर्न विकसित करना था जो राष्ट्रीय संस्कृति से अविच्छिन्न हो।

जामिया मे कुछ वर्ष कार्य करने के बाद वे अर्थशास्त्र मे डाक्टरेट करने बर्लिन चले गये। पूर्वानुसार इसे विशिष्ट योग्यता के साथ प्राप्त करके उन्होने पुन. इस शिक्षण संस्था के विकास का कार्य हाथ मे लिया। वे ३० वर्ष तक इस कार्य मे लगे रहे। उन्होने इस सस्था के उपकुलपति के रूप मे तो कार्य किया ही, प्रारम्भ मे वे स्वय अपने क्लर्क, सचिव, अकाउन्टेन्ट व कोषाध्यक्ष भी रहे। कठोर परिश्रम, प्रतिभा, योजना सभी कुछ उन्होने इस शिक्षण सस्थान के गठन मे दाव पर लगा दिये।

इस दीर्घ समय उन्होने और उनके साथियो ने अत्यल्प अर्थ पर जीवन निर्वाह किया जब कि उनमे से कुछ अपनी योग्यता की दृष्टि से अपनी इच्छानुसार कोई भी पद प्राप्त करने मे समर्थ थे। अन्त मे निष्ठा व उत्साह और व्यक्तित्व की विजय हुई और एक दिन जामिया मिलिया देश मे ही नही विदेशो में भी उच्च सराहना की दृष्टि से देखा जाने लगा।

इस दौरान डा० हुसैन ने अपना अध्ययन व चिन्तन भी जारी रखा। वे जर्मनी, ब्रिटेन, अमरीका मे कोर्चेन्स्टेनियर, स्पेन्गर, नन, डेवी आदि नवीन शिक्षा के प्रवर्त्तको के निकट सपर्क मे भी रहे और नव राष्ट्रीय शिक्षा की स्पष्ट धारणा का निर्माण करते रहे। इस तरह जब वे राष्ट्रीय शिक्षा की बात करते तो उसमे एक स्वस्थ तात्पर्य व दृष्टि निहित होती। १९३७ मे गाधीजी ने देश के सम्मुख बुनियादी शिक्षा की अपनी योजना रखी जिसका उद्देश्य शिक्षा को किताबी शिक्षा के स्थान पर काम दिलाने वाली शिक्षा बनाना था। उन्होने इसे नयी योजना के बारे मे एक प्रारूप तैयार करने के लिए राष्ट्रीय समिति बनाई जिसके अध्यक्ष डा० हुसैन बनाये गये। उसके बाद से बुनियादी शिक्षा आन्दोलन का नेतृत्व अनेक वर्षो तक उनके ही हाथ मे रहा और अपनी बुद्धिमत्तापूर्ण व सतुलित व्याख्या से उन्होने परम्परावादियो व कट्टर समर्थको दोनो से इसे बचाया। १९४० मे शिक्षा के सम्बन्ध में व्यक्त उनके कुछ उद्गारो को यहा प्रस्तुत करने का लोभ मैं सवरण नही कर पा रहा हूँ। उनके शब्द थे —

सभी कार्य शिक्षात्मक नही होते। जो वस्तु मानसिक प्रयत्नो से प्रस्तुत की जाती है वही शिक्षात्मक हो सकती है। पहले आपको अपने मस्तिष्क मे उस कार्य की योजना बनानी होगी, फिर उसके करने की प्रणाली व मार्गो पर विचार करना होगा, इसके बाद उसे वास्तव मे पूरा करने का कार्य आता है और अन्त मे इसके परिणामो के आकलन व मार्गदर्शन योजना के साथ उसकी तुलना का कार्य आता है। लेकिन इन चारो कदमो के पूरा होने के बावजूद यह नही कहा जा सकता कि वह कार्य

शिक्षात्मक सिद्ध होगा । निस्सन्देह इसमे मानसिक या शारीरिक कौशल होगा पर कौशल मात्र शिक्षा नही है शिक्षात्मक वही चीज हो सकती है जिसने अपने स्वार्थ से उच्चतर कुछ मूल्यो की सेवा की हो । मूल्यो की सेवा मे मनुष्य अपनी बात नही सोचता अपितु अपने कार्य मे पूर्णता प्राप्ति का यत्न करता है, अपना चरित्र उन्नत करने का और सच्चा मानव प्राणी बनने का प्रयत्न करता है यह शिक्षात्मक गुण हाथ के या मानसिक दोनो कार्यो मे पाया जा सकता है और दोनो ही इससे वचित भी हो सकते है ।

१९४८ मे डा० हुसैन अलीगढ विश्वविद्यालय के उपकुलपति पद के लिये आमत्रित किये गये । उन्होने जिस समय यह दायित्व ग्रहण किया, देश विभाजन के गभीर परिणामो से गुजर रहा था । पर उनके मस्तिष्क व व्यक्तित्व का प्रभाव विश्वविद्यालय के हर अ ग ने महसूस किया । छात्रो के अनुशासन, विभागो के विकास व विस्तार, शिक्षण व शोध, सामाजिक, सास्कृतिक व अन्य स्वस्थ गतिविधियो के प्रोत्साहन सभी मे उन्होने नया जीवन प्रवाहित किया ।

वे यूनेस्को के कार्यक्रम से भी सवद्ध रहे और १९५५ मे इसके कार्यकारी मडल के सदस्य चुने गये । उनकी गतिविधिया भारत तक ही सीमित नही रही अपितु विश्व के सभी भागो से भी उन्होने शैक्षणिक विचारो व कार्यो के माध्यम से अपना संपर्क रखा ।

डा० हुसैन एक सुवक्ता और प्रख्यात लेखक भी है । उनके लेखन की एक विशिष्ट शैली है जो विद्वता से पूर्ण व सुपाच्य है । यद्यपि उनके कठिन जीवन ने उन्हे लिखने के लिए अधिक समय प्रदान नही किया है, फिर भी उन्होने स्फुट लेखन व दीक्षान्त भाषणो के सग्रहो के अलावा प्लेटो के "रिपब्लिक" का अनुवाद भी किया है । इसके अतिरिक्त बच्चो के लिये उपनाम से अत्यन्त सुन्दर पुस्तके भी लिखी है ।

उनकी शैक्षणिक, सास्कृतिक व सार्वजनिक उपलब्धियो को एक बारगी आकना कठिन कार्य है । वे मौलिक चिन्तन से युक्त एक शैक्षणिक विचारक है जिन्होने भारतीय शिक्षा का नवीकरण किया है । उन्होने प्राथमिक, माध्यमिक व विश्वविद्यालयी सभी स्तरो पर शिक्षण पद्धतियो के विकास मे योगदान किया । उन्होने लोकप्रिय व प्रभावपूर्ण शिक्षक के रूप मे शिक्षण व्यवसाय की प्रतिष्ठा बढाई है । सादगी, सच्चाई, गौरव व मूल मानवीय गुणो से युक्त होने के नाते वे महानो की श्रेणी मे रखे जा सकते है । ●

निराले शौक

यह शौक का मामला भी वड़ा अजीव है, वहुत दिलचस्प है। लोगो के अजीव अजीव और अनोखे शौक हुआ करते है। कुछ लोग डाक के टिकट जमा करते है, तरह तरह के सिक्के इकट्ठे करते है किसी को घूमने-फिरने, शिकार करने में दिलचस्पी है। कोई पहाड पर चढ़ने का शौकीन है। किसी को तसवीर वनाने का शौक है, किसी को फोटो खीचने का, किसी को कविता का शौक है तो किसी को लेख को लिखने का। कोई गुव्वारे मे दिलचस्पी लेता है तो कोई तैराकी में। गरज हर आदमी का कोई न कोई अपना शौक अवश्य होता है। इस शौक को आज की जवान में हॉवी कहते है। हमारे राष्ट्रपति भी शौक से न वच सके। जाकिर साहव के शौक भी अनोखे हैं।

पढ़ाने का :—आप सव जानते हैं कि जाकिर साहव ने अपनी सारी उमर वच्चो को पढ़ाने मे गुजार दी। मैंने इन्हे साधारण मदरसे के वच्चो को पढाते देखा है और कालेज के विद्यार्थियो को पढ़ाते हुए भी। उन्होने अध्यापक का पेशा इस लिए नही अपनाया कि वे दुनिया में और कोई काम करने के योग्य नही थे। इन्होने अध्यापक के पेशे को इस लिए चुना कि उन्होने अनुभव किया कि इस पेशे से उनको शौक है। जिन विद्यार्थियो ने इनसे विद्या पढ़ी है उनका कहना है कि जाकिर साहव वहुत अच्छे अध्यापक है। वच्चो को इस तरह पढ़ाते हैं कि वच्चे वड़े शौक से दूसरे दर्जे से दौड़ कर आते हैं और सारे घण्टे वड़ी दिलचस्पी से पढते है। उनका जी नही चाहता कि उनका घण्टा कभी खत्म हो। पढाते समय वे हर वच्चे का ध्यान रखते है। इनके दर्जे मे कोई वच्चा ऐसा दर्जे मे

निकल कर नही जाता जिसकी समझ मे कोई वात न आई हो । हर विद्यार्थी को अपने स्थान पर सन्तोष होता है ।

एक वार जामिया मे एक सभा मे जाकिर साहव लडके और लडकियो से कह रहे थे, "मै चाहता हूँ कि जामिया से जो शिक्षा प्राप्त करके जाये वह अध्यापक वने । सव से पहले उसकी कोशिश यह हो कि वह अध्यापक वने और कामयाव अध्यापक वने और इस प्रकार देश की सच्ची सेवा करे । यदि वह वेकार हो और अध्यापक न वन सके तो फिर उसका जो दिल चाहे वने । चाहे किसी सूवे का गवर्नर वन जाये या उपराष्ट्रपति वन जाये" । जाकिर साहव जव यह भाषण दे रहे थे उन दिनो वे हमारे देश के उपराष्ट्रपति थे । इससे पहले वे विहार मे गवर्नर भी रह चुके थे । इन वाक्यो का उनका असली अर्थ यही था कि मै जाकिर हुसेन अव जव कि वेकार हो गया हूँ तो गवर्नर और उपराष्ट्रपति के कार्य को कर रहा हूँ, वरना अगर वातावरण अपने शौक के अनुसार काम करने की आज्ञा देता तो मै अध्यापक के पेशे को अधिक अच्छा समझता । अव तो आपको मालूम हो गया होगा कि हमारे राष्ट्रपति को पढाई से कितनी दिलचस्पी है ।

वागवानी का —वागवानी के शौक से लोगो को अकसर दिलचस्पी होती है । वाग लगाते है फूलो और फलो के पौधे लगाते है । हैज लगाते है । पेड भी लगाते है । अगर सिर्फ यही वात माननीय जाकिर साहव भी करते तो शायद कोई वात नही थी । लोग अकसर ऐसा किया करते है । मै जिस वात की ओर ध्यान दिलाना चाहता हूँ वह दूसरी है । वह है वागवानी से शौक रखना । विद्या की खोज मे वे वागवानी से सम्वन्धित जो भी काम करते है इस तरीके से करते है जैसे कोई अनुसधान करता हो । उन्हे हिन्दुस्तान के पुराने पौधो, पेडो, फूलो के वारे मे अच्छा ज्ञान है । जव कभी वे किसी जानकार चतुर माली से वाते करते है तो वात-चीत के समय वे यह समझते है कि जाकिर साहव को इन सव वातो का ज्ञान न होगा उल्टी सीधी वाते करने लगते है । लेकिन जव वातो मे यह पता चलता है कि वे ऐसे आदमी से वाते कर रहे हैं जो इस मामले मे माहिर है तो वहुत लज्जा उठानी पडती है ।

वात यह है कि जाकिर साहव किसी पौधे, फूल और झाडी को देखते है तो इसके वारे मे पूरी जानकारी प्राप्त करने की कोशिश करते है । वे यह जानकारी इस विषय के विशेषज्ञ से प्राप्त करते है, किताबो और अखवारो से प्राप्त करते हे, वॉटेनिकल गार्डन्स मे जाकर वहा इन चीजो को देख कर ज्ञान प्राप्त करते हैं ।

सम्भव है आपको जानकारी न हो, पिछले कई वर्षो से जाकिर साहव इस कोशिश मे लगे है कि हिन्दुस्तान मे अच्छे से अच्छे सुन्दर रग वाले अधिक से अधिक खिले रहने वाले गुलाव लगाये जा सकें । इनके शौक से प्रभावित होकर हिन्दुस्तान के चतुर मालियो ने एक नये गुलाव के फूल का नाम जो वहुत सुन्दर है "जाकिर हुसैन" रखा है ।

जब जाकिर साहब राष्ट्रपति बने तो एक साहब मालूम करने लगे "भाई अब जब जाकिर साहब राष्ट्रपति बने है तो बताइये इनके समय मे क्या क्या परिवर्तन होने वाले होगे ?" प्रश्न बड़ा अर्थ रखता था। पेचीदा था। मैने कहा, "आप पहले यह बताइये डॉ० राधाकृष्णन् के समय में क्या-क्या परिवर्तन हुए ?" चुप रह गये जवाब न दे सके। खुद ही बाद मे कहने लगे "राष्ट्रपति तो केवल प्रधान (हैड) होता है। परिवर्तन तो राजनीतिक दल जो शक्ति मे होता है किया करता है।" मैने कहा "बिलकुल सच है, लेकिन एक बात है, जाकिर साहब अपने समय में एक परिवर्तन जरूर करेगे।" वे चौक पडे, पूछा "कैसे" ? मैने अर्ज किया कि "राष्ट्रपति भवन का मुगल गार्डन सही अर्थ में मुगल गार्डन अब बनेगा।" बोले "जो हाँ, यह दुरुस्त है।"

नागफनी —जाकिर साहब को नागफनी की विभिन्न किस्मो को जमा करने और पहाड़ियाँ बना कर उनमें नागफनी के पौधे लगाने का बहुत शौक है। उन्होने जामिया नगर में अपने मकान के बगीचे के एक कोने में एक नागफनी की बहुत सुन्दर पहाडी बनाई है। इस पहाड़ी में कई तरह की नागफनिया लगाई गई है।

नागफनी लगाने का शौक अब बहुत साधारण होता जा रहा है लेकिन जिस खूब सूरती और ढग से जाकिर साहब ने अपनी पहाडी को बनाया है वैसी पहाडी देखने को बहुत कम मिलेगी। कारण यह है कि आपको सजावट के काम में कमाल हासिल है। नागफनी के पौधो को इनकी शक्ल व रगत, इनके कद, इनकी लम्बाई–चौडाई और फासले को ध्यान में रखते हुए लगाया गया है। इस बात का भी ख्याल रखा गया है कि हर नागफनी के पौधे की जमीन ऐसे सुन्दर और अनोखे पत्थरो से बनाई जाय कि पौधा अपनी जगह निखर जाये।

सुन्दर सुन्दर कृतियाँ —सन् १९४१ मे जब पहली बार मै जामिया नगर आया तो मेरे अचम्भे को सीमा न रही जब मैने यह देखा कि जामिया की प्राथमिक और माध्यमिक पाठशालाओ की दीवारो पर ससार के प्रसिद्ध चित्रकारो की कृतिया सजाई गयी है। सोचने लगा, कला की रूचि का जामिया में यह स्तर है तो अपना गुजर तो होने से रहा इसलिए कि जिन चित्रकारो के चित्र दीवार पर लटक रहे है उन चित्रकारो के नाम तो मैने सुने थे मगर उनके चित्र देखने को नही मिले थे। जानकारी करने पर मालूम हुआ कि जाकिर साहब को उत्कृष्टतम कलाकृतिया जमा करने का बहुत शौक है और वे यूरोप से कृतियो के प्रिन्ट लाये है जो मदरसे की दीवारो पर लगाये गये है। जिन-जिन चित्रकारों के ये शाहकार थे उनके नाम उर्दू भाषा मे तसवीरो के कोनो पर लिख दिये गये थे, ताकि बच्चे उनके नाम से व कृतियो से परिचित हो सके। धीरे-धीरे जब जाकिर साहब से मुलाकात के अवसर प्राप्त हुए तो मालूम हुआ कि इनके पास अनगिनित कला कृतियो के प्रिण्ट मौजूद है, जाकिर साहब की वजह से ही विद्यार्थियो और जामिया के अन्य लोगो को कला के प्रति वास्तविक लगाव होने लगा।

पत्थर —जाकिर साहब को पत्थर जमा करने का भी बहुत शौक है। उन्होने पिछले कई वर्षो मे अजीब अजीब किस्म के पत्थर जमा किए है। आप देखे तो देख कर दग रह जायेगे। इनके रग रूप, इनका कटाव इनकी लम्बाई चौडाई सब आश्चर्य मे डाल देती है। किसी पत्थर में कोई धातु नजर आती है तो किसी पत्थर के देखने से ऐसा मालूम देता है कि यह पत्थर नही किसी दरख्त के तने की

सकती है। कोई खुरदरा है तो कोई चिकना, कोई भारी है तो कोई हल्का। जाकिर साहब ने इनके बारे मे खूब पढ़ा भी है और वे इन पत्थरो के बारे मे दफ्तर के दफ्तर खोल कर रख सकते है। जब वे उपराष्ट्रपति थे तो उन्होने यह पत्थर अपने ड्राइ ग रूम मे सजा रखे थे। राष्ट्रपति होने के बाद भी उनके इस अमूल्य खजाने को कोई अच्छा स्थान मिला होगा।

सुना है किसी मन चले दोस्त ने एक बार इनसे हँसी-हँसी मे कही यह कह दिया कि "भई खूब! ड्राइ ग रूम मे रखने के लिए क्या आपको कोई और चीज नही मिली कि आपने इन पत्थरो को यहा जमा कर दिया है ?" कहने को तो वह साहब वगैर समझे बूझे कह गये, लेकिन जाकिर साहब ने उनकी वो खबर ली कि भौचक्के हो गये। जाकिर साहब ने क्या जवाब दिया ? यह सुनिये। उन्होने कहा "जी हां! इन पत्थरो से बेहतर दुनिया मे और क्या चीज मिल सकती है, ये न किसी को धोका देते है, न किसी की चुगली करते है, न किसी से दुश्मनी करते है, न किसी का हक मारते है, न अपनी असलियत को छिपाते है, न किसी का परदा फाश करते है और न किसी से नफरत। फरमाइये अब भी आपको मेरे इन पत्थरो से नफरत है ?"

इल्म —इल्म हासिल करने का शौक बहुत साधारण है। ससार के रहने वाले सभी लोग किसी न किसी तरह इल्म हासिल करने की कोशिश करते है। कुछ लोग पाठशाला जाकर शिक्षा ग्रहण करते है और कुछ लोग घर पर रह कर। ये सब लोग शिक्षा प्राप्त करते हैं। परन्तु किसी उद्देश्य से। कोई नौकरी हासिल करने, कोई रुपया कमाने के लिए, कोई नाम कमाने व दौलत जमा करने के उद्देश्य से। दुनिया मे कितने लोग ऐसे है जो शिक्षा के लिए शिक्षा प्राप्त करते है। भाई हमे तो ऐसे लोग बहुत कम देखने को मिले है ? जो लोग शिक्षा के लिए शिक्षा प्राप्त करते है उनमे से एक है जाकिर हुसैन साहब।

एक बार जामिया नगर मे जाकिर साहब के मकान के बाग मे जहाँ उन्होने नागफनी की पहाडी बना रखी है एक नाग आ गया और पहाडी के बिल में रहने लगा। नाग की वजह से घर वाले सब परेशान व भयभीत रहने लगे।

एक दिन मेरी मुलाकात जाकिर साहब से हो गई। उन्होने नाग का जिक्र किया और मालूम किया कि नाग पहाडी मे क्यो रहता है ? मैंने बगैर सोचे-समझे एक बात सामने रखदी—नाग पहाडी मे इसलिए बिल बनाते है कि पहाडी साधारण जमीन की सतह से ऊँची होती है। बारिश का पानी पहाड तक नही पहुँच सकता। इसलिए साप वहा बारिश के जमाने मे आराम से रह सकता है। मेरी बात उन्होने गौर से सुनी और फरमाया "खैर मौके से किसी दिन इसे अपनी बन्दूक से मार दीजिये ताकि कोई गम्भीर घटना न हो और लोगो का भय निकल जाये।" मैने हा करली। बात आई गई हुई।

छ मास बाद जब दूसरी बार मुलाकात हुई तो उन्होने मुझे अपने पास बुलाया और फरमाने लगे "हजरत आपने जब पिछली बार मैंने मालूम किया था कि साप पहाडी मे क्यो रहता है तो आपने क्या जवाब दिया था ? मैंने बगैर सोचे-समझे अपनी वही पुरानी बात दोहरा दी। फिर क्या था, उन्होने मेरी खूब खबर ली। फरमाने लगे, "आपके जवाब के बाद इन छ महीनो मे सापो पर कई किताबे पढी है और इस दौरान मे मुझे कलकत्ता और लखनऊ के चिड़िया खाने देखने और वहाँ के लोगो से विचार

विमर्ष करने का अवसर भी मिला है। मुझे मालूम हुआ कि साप कोई बिल नही वनाता वह तो चूहो के बनाये हुए बिलो मे रहता है, इसलिए रहता है कि वह चूहो का शिकार कर सके। आप चूहो को भगा दीजिये, साप खुद ब खुद वहा से रफू चक्कर हो जायेगा। और सुनिये, सापो के कान नही होते। वह तो हवा की लहरो को अपने शरीर की सहायता से अनुभव करता है। लोग समझते है कि सपेरे की बीन सुन कर साप खुश होता है। यह बात सही नही है। सपेरे के बीन बजाने से हवा मे लहरे पैदा होती है। ये साप के शरीर से टकराती है। लहरो के शरीर से टकराने से वह खुश होकर झूमने लगता है। समझे आप ? अध्यापको को सुनी सुनाई बातो पर यकीन नही करना चाहिये। अध्यापक को चाहिये वह जो भी बात करे उसकी ठोस बुनियाद हो।"

बातों का —जाकिर साहब को बाते करने व बाते सुनने का बहुत शौक है। उनका मानना है कि महफिल मे छोटे-बडे को समान समझा जाये, महफिल मे जो बाते की जाये ऊँचे दर्जे की हो, सस्कृति और सभ्यता मे सीमित हो। एक दफा जाकिर साहब के एक किसी साथी ने उन्हे खाने पर बुलाया। जो लोग इस दावत मे शामिल हुए उनमें से अधिकतर जामिया मिलिया के लोग थे। कुछ ऐसे भी थे जो शहर देहली से तशरीफ लाये थे। मजाक हो रहा था, कह-कहे लग रहे थे। लतीफे कहे जा रहे थे। जाकिर साहब भी जिन्दादिली से हिस्सा ले रहे थे। और खुश हो रहे थे। होते-होते एक साहब बोले—"जाकिर साहब जाकिर साहब, अब मुझसे भी एक बात सुन लीजिये। शायद आप इससे भी खुश हो।" फरमाया "अवश्य", तो वह साहब फरमाने लगे "हजरत कुछ वर्षो पहले जब मै इस्लामी देशो के दौरो पर हिन्दुस्तान से बाहर गया तो मैने दिल में निश्चय किया था कि इस बार मुझे इन इस्लामी देशो के बढिया से बढिया खाने अवश्य खाने है ताकि दिल मे यह अरमान न रह जाये कि कोई चीज बाकी रह गई। मैने हर मुल्क मे यह कोशिश की कि कीमती से कीमती खाने खाये जाये और पेट भर के खाये जाये। खाने खाने का यह सिल सिला जारी रहा और मै अपने इरादे में कामयाब होता रहा। होते- होते मै एक ऐसे मुल्क मे पहुँच गया जहाँ 'मीनू' ऐसी भाषा मे लिखा हुआ था जिसे मै पढ नही सकता था। लेकिन खानो की कीमते रोमन अङ्को मे थी। वे मैने पढ ली। मीनू की कीमते पढता चला गया एक जगह एक बहुत बड़ी रकम लिखी हुई नजर आई। बस मैने समझा इस मीनू मै यही सबसे कीमती खाना है। क्यो न इसे खाया जाय। फिर क्या था, मैने फौरन बैरे को वह चीज उँगली से दिखा दी जो मीनू में लिखी थी और हुक्म दिया कि पेश करे। बैरे के चले जाने के बाद मै बडे इत्मिनान से खाने का इन्तजार करने लगा क्योकि पेट में चूहे दौड रहे थे। थोडी देर मे क्या देखता हूँ कि वह बैरा एक बडे थाल मे एक ऊँची सी चीज ढके चला आ रहा है। मै समझा कोई बडा रोस्ट किया हुआ मुर्ग होगा। मैने इत्मिनान का साँस लिया। बैरे ने वह थाल मेरी मेज पर रखा और ढक्कन उठाया तो मेरे होश उड गये। वह मुर्ग तो निकला नही, वह तो एक हुक्का था !" इस बात पर इस जोर से कहकहा लगा कि सारा कमरा गूँज गया। ●

सूरज की किरणें

मनाम बिन रज्जाक

बडा व्यक्तित्व सूरज की तरह प्रकाशमय और तेजस्वी होता है। जिस तरह सूरज की किरणे दुनिया मे कोने-खण्डहरो तक को रौशन कर देती है उसी तरह बडे लोगो की छोटी से छोटी बात भी हमारी जिन्दगी मे उजाला बिखेर देती है। इनका हर काम एक सबक और इनकी हर बात एक सीख होती है। यहा हिन्दुस्तान के सबसे बड़े व्यक्तित्व के जीवन की कुछ झलकिया प्रस्तुत है।

डा० जाकिर हुसैन उस जमाने मे जामिया मिलिया के वाइस चान्सलर थे। एक आदमी प्राथमिक शाला के एक पुराने अध्यापक की शिकायत लेकर पहुँचा। इस व्यक्ति ने बढ चढ कर शिकायते शुरू की। जाकिर साहब ने बीच मे ही इसे टोक दिया। बोले "चुप हो जाइये। क्या आप जानते है, किस व्यक्ति की आप शिकायत कर रहे है? आपको मालूम होना चाहिये कि आपने सभ्यता की विशाल इमारत को ठेस पहुँचाई है। अगर मैं इस अध्यापक की जूतिया अपने सर पर रखू तो निश्चय मेरा सम्मान बढेगा। अगर आप इनकी जूतिया अपने सर पर रख ले तो आपका सम्मान बढेगा।" शिकायत करने वाले सज्जन अत्यधिक लज्जित होकर लौट गये।

डाक्टर साहब के एक नौकर को देर से जागने की आदत थी। सारा घर उसकी इस आदत से परेशान था। नौकर पुराना था। उसे कोई कुछ कहकर उसका दिल भी दुखाना नही चाहता था। अन्त मे जाकिर साहब ने उसे सुधारने का बीडा उठाया। दूसरे दिन जब नौकर की आख खुली तब उसने देखा, उसके सिरहाने जाकिर साहब मुह धोने के लिये पानी साबुन, तौलिया लिये खडे है। और कह रहे है, "लीजिये हुजूर—मुह धो

लीजिये। अभी नाश्ता हाजिर करता हूँ" इतना कहकर आप दौड़ कर उसके लिए चाय ले आये। "लीजिये, अब चाय पीजिये।" नौकर शर्म से पानी–पानी हो गया। उसकी आखो से आंसू वहने लगे। उस दिन से न सिर्फ वह तड़के उठने लगा, बल्कि दूसरो को भी सुबह-सवेरे उठाने की जिम्मेदारी उसने अपने ऊपर ले ली।

उन दिनो जाकिर साहब अलीगढ विश्वविद्यालय के उपकुलपति थे। एक दिन माली ने आ कर कहा "हुजूर–बाग के लॉन मे बेर का एक सूखा पेड है, जो बहुत भद्दा लगता है। हुकूम हो तो इसे कटवा दूं ?" उन्होने माली से पूछा, "भाई–क्या पेड़ को खूबसूरत नही बनाया जा सकता ?" फिर उन्होने उसे बताया कि पेड़ के चारो तरफ फूलो की बेल लगाओ जिससे पेड़ की बदसूरती छिप जाये। बहुत सी अच्छाइया हो तो थोड़ा सा ऐब भी छिप जाता है।

एक दफा इनके एक पुराने शिष्य एक विद्यार्थी को साथ ले आये जो दो साल से फेल हो रहा था और अब तीसरे साल भी फेल हो चुका था। इनका शिष्य चाहता था कि जाकिर साहब अपने विशेष अधिकारो से उसे पास कर दे। जब जाकिर साहब से इस सम्बन्ध मे प्रार्थना की गई तो उन्होने थोडी देर तक सोचने के बाद कहा "अच्छा तो आप चाहते है कि मै अपने विशेष अधिकारो का प्रयोग करू। कोई बात नही। आप दफ्तर से बी ए. का फार्म ले आइये। मै इन्हे बी. ए. मे दाखिल कर लेता हूँ, क्योंकि मेरे अधिकार मे यह भी तो है। अनुचित काम कराना है तो कोई बडा सा अनुचित कराइये।" उनका शिष्य भी बहुत शर्मिन्दा हुआ और उनसे माफी मांग कर चला आया।

जाकिर साहब के परिवार में एक सूफी सन्त आया करते थे, जिन्हे पुरानी किताबे पढने और उनको जमा करने का बड़ा शौक था। अगर किसी किताब का खरीदना सम्भव न होता तो वे उसकी नकल कर लेते या किसी से नकल करवा लेते। एक बार उन्होने जाकिर साहब के सामने किसी किताब की नकल करवाने के लिए कहा। जाकिर साहब ने खुद इस किताब की नकल करने का वादा कर लिया, हालाकि इस जमाने मे जामिया मे बिजली भी नही थी। और वादे के मुताबिक जाकिर साहब ने लालटेन की रोशनी मे पूरी किताब की नकल कर के दे दी। ●

इम्तहान

मोहम्मद हफीज उद्दीन

वडे आदमी की एक पहचान है—किसी वडी से वडी और अचानक विपदा के समय वह अपने होशोहवास कायम रखता है। दिल पर चाहे जो कुछ वीत जाये, चेहरे पर इसको जाहिर नही होने देता। कुदरत की तरफ से यह वडी परोक्षा है। बहुत वडा इम्तहान है। लेकिन भगवान् के अच्छे और सच्चे वन्दे इस परीक्षा मे पूरे उतरते है।

आइये, आज आपको एक अच्छे इन्सान, एक अच्छे अध्यापक की आँखो देखी दास्तन सुनाएँ। यह वात उन दिनो की है जब जामिया इस्लामिया करौल वाग दिल्ली मे थी। ससार का दूसरा महायुद्ध अभी प्रारम्भ नहो हुआ था। भारत मे स्वतन्त्रता का युद्ध छिडा हुआ था। इस समय मे कुछ सिरफिरे जामिया वनाने के काम मे लगे हुए थे। ये लोग मुल्क की लडाई से भी पूरी दिलचस्पी रखते थे, मगर जामिया के काम को और भी आवश्यक राष्ट्रीय सेवा समझते थे। इस वक्त इनके कामो की कदर करने वाले कम थे शावासी कम मिलती थी। साहस वढाने के स्थान पर वुरा भला अधिक सुनने को मिलता था। यह काम मर-मर के जीये जाने और किये जाने का था। जामिया पर वडा आडा वक्त था। चार-चार पाँच-पाँच महीनो का वेतन नही मिल पाता था। लेकिन जामिया के अनुचरो की पेशा-नियो पर वल न पडते। कठिन-से-कठिन अवसरो पर भी सव हँसी-खुशी अपने कामो मे मग्न रहते। हर एक को यह धुन लगी रहती कि उसका काम अच्छा से अच्छा हो।

इस जमाने मे भी जामिया मे प्रारम्भ से लेकर कॉलिज तक शिक्षा का प्रवन्ध था। मगर जोर ज्यादा प्राथमिक शिक्षा पर था। वच्चा सव का केन्द्र था। उसे माँ-वाप और

अध्यापक के हाथ में ईश्वर की पवित्र अमानत समझा जाता था। बच्चों को शारीरिक दण्ड देना जामिया मे बड़ा भारी गुनाह समझा जाता था। इनको खुश रखना, इनकी छिपी हुई प्रवृतियों को उभारना, इनमें जोश, उमग और काम करने की लगन पैदा करना, इनकी शिक्षा और स्वास्थ्य का ख्याल रखना, यह सब जामिया वालो की दृष्टि में रहता था। यह वह समय था जबकि देश के ग्राम विद्यालयों में उस्ताद के डण्डो को शिक्षा और दीक्षा का सबसे बड़ा माध्यम समझा जाता था। इसलिए जामिया की शिक्षा और दीक्षा का यह ढग अनोखा था।

प्राथमिक कक्षाओ में इम्तहान होते थे। इस प्रकार अगली कक्षा में छात्र को भेजा जाता था। परीक्षाफल भी सुनाये जाते थे। परन्तु ढग सबसे अलग था। यह विचार रहता था कि बच्चो के कोमल हृदयो को सफलता और असफलता के अनुभव से ठेस न लगे। जामियाँ की प्राथमिक शिक्षा के बाबा आदम अब्दुल गफ्फार मधौली साहब ने इसके लिए निराला ढग निकाला था। परीक्षाफल सुनाने के लिए वार्षिक उत्सव होता। अध्यापक और विद्यार्थी एकत्रित होते। उपकुलपति स्वय अध्यक्षता करते। एक छोटा और मीठा भाषण बहुत सरल भाषा में करते, जिसे हर छोटा बच्चा समझता। बच्चे इनकी बाते बडे ध्यान से सुनते। अपनी और अपने मदरसे की तारीफ उपकुलपति की जुबानी सुन कर कभी-कभी ताली भी बजाने लगते। आसपास बैठे हुये उस्ताद टोकते कि भई अपने को तालो बजाकर शाबासी देना अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना है। कुछ समझदार बच्चे झेप कर चुप हो जाते। कुछ अनजानपन के कारण समझ भी नही पाते और ताली बजाने का क्रम जारी रखते।

परीक्षाफल सुनाने में एक नयापन और बरता जाता। जो बच्चा जितने विषयो में पास होता उसे उतने ही रग-बिरगे चाँदी की तश्तरी के बराबर बताशे दिये जाते। जिसे यह बताशे निर्धारित सख्या से कम मिलते वह मानलो पास न होता। परन्तु ऐसा बहुत कम होता। यह परम्परा कई वर्षो तक जारी रही।

जिस वर्ष यह घटना घटित हुई उस वर्ष उत्सव सदा की भाँति पूरी शान शौकत के साथ शिक्षा केन्द्र के हॉल मे हो रहा था। बताशे बॅट रहे थे। नन्हे-नन्हे बच्चो का बारी-बारी उठना, साफ-सुथरे कपडो में सभ्यता से अपना-अपना भाग लेकर लौटना, बीच-बीच में तालियो का गूँजना एक अद्भुत समा था। सब लोग इस भोले-भाले और दिलचस्प दृश्य मे खोये हुये थे।

इतने मे किसी ने आकर चुपके से अध्यक्ष के कान में कोई बात कही। अध्यक्ष ने मुड़कर मिस फिलिप्स वारेन की तरफ देखा। वे तुरन्त उठ खड़ी हुई और खबर लाने वाले के साथ कुछ बेचेनी के साथ चली गई। अध्यक्ष के चेहरे पर अब भी मुस्कराहट खेल रही थी। लेकिन अनुभवी लोगो ने ताड लिया कि खबर कुछ अच्छी नही। जलसा जारी रहा। कुछ ही देर बाद मिस फिलिप्स वारेन का आदमी फिर आया। अबके कोई और अप्रिय सन्देश ले कर आया था। बस एक बार अध्यक्ष के चेहरे पर जरा सी उदासी छाई पर जल्द सम्भल गये। यह कमाल उन्हे सदा से रहा है। अच्छे-अच्छे इनके दिल की चोट को अनुभव नही कर सकते।

जलसा जारी रहा। भोले बच्चे अपनी परीक्षा का पारितोषिक बताशो के रूप में लेते रहे। जब सब बच्चे अपना पारितोषिक पा चुके तो उपकुलपति के भाषण की बारी आयी। इस बार उन्होने कुछ

मुख्तसर कहकर सभा विसर्जन किया। बच्चे परम्परा के विरुद्ध इस संक्षिप्तता को समझ भी न सके। हम सब हैरानी मे थे। उपकुलपति हॉल से उठ कर सीधे द्वार की तरफ चले। घर पास ही था, मिनटो मे पहुँच गये। वहा डा० अन्सारी और बहुत से लोग इकट्ठे थे। कुछ लोग प्रबन्ध में लगे थे। मालूम हुआ कि उपकुलपति की बच्ची (रिहाना) लोटा लेकर चौक मे जा रही थी। ठोकर लगी, गिर पड़ी. बेहोश हो गई। यह प्रथम सूचना थी जो सभा में उपकुलपति के कानो तक पहुँची। फिर फिलिप्स वारेन ने आकर इत्तिला भेजी कि यह सामयिक बेहोशी नही है। बच्ची हमेशा के लिए बेहोश हो चुकी है। अब बाप की मीठी और प्यारी आवाज भी इस नीद से उसे उठा न सकेगी। रिहाना बडी खूबसूरत, बड़ी प्यारी बच्ची थी बुलबुल हजार दास्ताँ थी। बात करती थी तो मुँह से फूल झडते थे। यह बुलबुल हजार दास्ताँ अब हमेशा के लिए खामोश हो चुकी थी।

उपकुलपति घर से वह दुःख भरा दृश्य देखकर निकले जो ईश्वर किसी पिता को न दिखाये। इनके नूरानी चेहरे और पलको पर चन्द मोती ढुलकते तो नजर आये, मगर मुँह से उफ तक न की। यह दुःख किसी साधारण बाप का गम न था। यह उस बाप का गम था जो राह चलते गन्दे और खाक धूल मे सने बच्चो को रोते न देख सकता था और अपने दूध जैसे उजले कपडो मे भी गोद मे उठा लेता और उसे हँसा कर ही छोडता।

दूसरो के आराम और खुशी के लिए अपना दुःख आप उठाना और उसकी आँच की तपन भी दूसरो तक न पहुँचने देना यह इनके चरित्र का एक विशेष गुण है। इस समय वे उम्र की सात दहाइयाँ पूरी कर चुके है। अब वे आठवी दहाई में चल रहे हैं। इन सात दहाइयो मे न जाने ऐसी कितनी घटनाएँ सोई पडी है। दुनिया को इनकी खबर तक नही।

अक्सर पढने वाले समझ गये होंगे कि यह उपकुलपति कौन है ? जी हाँ, जामिया मिलिया के उपकुलपति और फिर अलीगढ विश्वविद्यालय के उपकुलपति फिर बिहार के गवर्नर, आजाद भारत के राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन साहब हैं ! ●

डा० जाकिर हुसैन

प्रो० रशीद अहमद

किसी व्यक्ति को कठिनाई से ही इस बात का विश्वास होगा कि जब जाकिर साहब बीमार होते है, तो उस समय वे अधिक लिखते–पढते और खाने–पीने का ध्यान रखते है। मिलने जाइए तो आपका वास्ता दोनों से होगा, यानी उन्होने क्या पढा है और आपको क्या खाना है। यहा तक तो गनीमत है । कठिनाई उस समय होती है, जब वे खाने के दौरान यह भी पूछ लेते है कि आपने क्या पढा है। जाकिर साहब को धोका दिया जाय ऐसा करने में मुश्किल यह है कि वे धोके में आते नही, परन्तु आप इस धोके में रहते है कि वह आ गये। आप इनसे जो काम लेना चाहे, वह धोका दिये बिना अधिक आसानी से ले सकते है। अतएव वह व्यक्ति कोई पागल ही होगा, जो जाकिर साहब को धोका देने की कोशिश करेगा।

खाने और बातचीत से निवृत्त होकर आप चलते है तो कभी कभी कुछ इस तरह का अहसास साथ ले जाते है कि खाना–पीना तो ठीक रहा, बात-चीत ठीक न रही। अत: ऐसे लोग जो अपने काम में कम ध्यान देते है या दिल नही लगाते, जाकिर साहब से मिलने का इरादा भी कम ही करते है।

जाकिर साहब को किन बातो से दिलचस्पी है, इसका पता लगाना आसान है, क्योकि उन्हे हर चीज से दिलचस्पी है। चीजो और घटनाओ में बच्चो का सा शौक और छानबीन का दिमाग रखते है। यह बात या इस तरह की बाते किसी मामूली आदमी के हिस्से मे आ जाएं तो वह कही का न रहे। लेकिन, जाकिर साहब की तो बात ही और है। उन्हे जीवन भर मुश्किलो से ही काम लेना पड़ा। अच्छे और वड़े काम की कठिनाइया उठाने और उठाते रहने से इन्सान की

अनेक अज्ञात योग्यताए सामने आ जाती है। मै समझता हूँ कि जाकिर साहब को जाकिर साहब बनाने मे उन कठिनाइयो का बडा हाथ है, जिनमे उन्होने अब तक काम किया है। जाकिर साहब मे प्रकृति की ओर से आशा और साहस की शक्ति असाधारण लोगो से भी कुछ अधिक रही है। दूसरो को आशा और उत्साह दिलाना होता है तो उनमे यह योग्यता और भी बढ जाती है।

जाकिर साहब जिस युग मे मुस्लिम यूनिवर्सिटी मे वाइस चासलर हो कर आये, उन दिनो देश के बटवारे के कारण अजीब सी हालत थी। जाकिर साहब के आते ही एक प्रात ऐसा मालूम हुआ जैसे सारा वातावरण साफ, प्रकाशमय तथा मनोहर हो गया हो।

जाकिर साहब हिन्दुस्तानी पक्के गाने और पेटिग के बडे कद्रदान है। जाकिर साहब की एक विशेषता जो इनकी श्रेणी के अन्य लोगो से इनको ऊचा करती है यह है कि हर अवसर के लिए अपना भाषण वह खुद लिखेगे। लेकिन खुद लिखने का यह उसूल या आदत जाकिर साहब के लिए मुसीबत से कम नही, क्योकि इस तरह के अवसर जब कभी उपस्थित होते है, और प्राय आते रहते है, तो वे इतने परेशान होते है कि आसपास के लोग आसानी से समझ जाते है कि उन्हे तकलीफ क्या है। अलीगढ वालो के बारे मे यह बात कही जाती है कि जिस काम को वह सर्व श्रेष्ठ ढग से करना चाहते है उसको आम-तौर पर ग्यारहवे घटे मे शुरू करते है और बारहवे पर खत्म कर देते है। जहा तक भाषण लिखने का सम्बन्ध है, जाकिर साहब ने इस रिकार्ड को बेहतर बनाने की और कोशिश इस तरह की है कि काम बारहवे घटे मे शुरू किया जाय और इससे कुछ पहले पूर्ण कर दिया जाया।

दूसरी विशेषता यह है कि वे ऐसे विषय पर भी ऐसी जची-तुली और खूबसूरत बात कहते है जिसको उन्होने कभी पढा भी न हो। इसका कारण यह है कि जाकिर साहब को हर बात से दिलचस्पी है।

जब जाकिर साहब यहा आये, तो यूनिवर्सिटी का बजट १३ लाख के लगभग था, और जब वे विदा हुए तो शायद ५४ लाख तक पहुँच चुका था। इसमे वे व्यक्तिगत चन्दे शामिल नही है जो जाकिर साहब के दिनो मे उनके असर के कारण मिले। ख्याल है कि यह रकम २० लाख तक पहुँचती है। उनका यह काम खास तौर पर इसलिए उल्लेखनीय है क्योकि यह ऐसा समय था, जब लोगबाग चन्दे देते ही नही थे।

जाकिर साहब आमतौर पर हर योजना पर बडे पैमाने पर सोचते है और उसको पूर्ण करने के लिए किसी विशेषज्ञ से परामर्श करते है। उनका कहना है कि बडे पैमाने पर सोचने और विशेषज्ञो से परामर्श लेने मे कजूसी नही करनी चाहिए परन्तु योजना को पूर्ण करने मे इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि हमारे साधन किस सीमा तक हमारा साथ दे सकेगे।

जाकिर साहब का अध्ययन बडा व्यापक है। जब कभी जाकिर साहब से मुलाकात होती है तो यही मालूम हुआ कि वह पुस्तक या पत्रिका जो केवल एक रात पहले हम दोनो को मिली थी, जाकिर साहब की नजर से पूरी तरह गुजर चुकी थी और मैं उसे हाथ तक नही लगा पाया था। जाकिर साहब

एक मुद्दत से अपनी पसन्द के फारसी शेर एक कापी मे दर्ज करते आ रहे है, जिनकी संख्या कई हजार तक पहुँच चुकी है। यह कापी हर लम्बे सफर मे उनके साथ रहती है।

जाकिर साहब से मिलने और उनके साथ अधिक से अधिक समय व्यतीत करने का हर उस व्यक्ति का दिल चाहेगा जो उनसे आत्मीयता के साथ कभी मिल चुका हो। इसका कारण यह है कि वे मिलने वाले से इतने स्नेह से मिलते है और उसका इतना सम्मान करते हैं कि उसे यह अहसास हो जाता है कि उसका भी महत्व है। इसका कारण वही है जिसका जिक्र कर चुका हूँ, यानी जाकिर साहब का हर शख्स और चीज से दिलचस्पी लेने का शौक और उसको बेहतर बनाने का हौसला।

वे काफी समय यहा के वाइस चासलर रहे लेकिन मेरे लिए वे वही जाकिर साहब रहे जो कभी कच्ची बैरक में थे या करौल बाग और जामेनगर मे। उनके और भी ऐसे साथी होगे जिन्होने जाकिर साहब को शुरू से आखिर तक जाकिर साहब ही पाया। अपनी हैसियत बनाने या मनवाने में जाकिर साहब कभी किसी ओहदे या प्रचार के मोहताज नही थे और मुझे यकीन है कि वाइस चासलर रहने पर भी भरोसा वे अपने जाकिर हुसैन होने पर ही करते रहे।

जाकिर साहब हर मौका और हर हाल में बडे अच्छे साथी है। तबीयत और प्रशिक्षण की दृष्टि से अध्यापक है और रहना भी यही चाहते है। अध्यापक का सबसे ऊचा दर्जा पैगम्बर है, लेकिन पैगम्बरों में प्रशासक कम ही रहे। खुदा ने इनसान को अच्छाई की तरफ लाने और बुलाने का काम पैगम्बरो के सुपुर्द किया है और बदी से बचाने के काम पर दूसरी तरह के लोगो को लगाया है।

जाकिर साहब नस्ल की दृष्टि से खरे पठान है, परन्तु पेशा अख्तियार किया अध्यापक का। नियति के इस व्यग्य का परिणाम क्या होगा, स्पष्ट है। इनकी कौम के एक शख्स के बारे मे कहा जाता है कि गरीबी से तग आकर वह घर की चारदीवारी मे कैद हो गये और वहा से बीवी के ताने और रोज-रोज के फाको से तग आ कर भीख मागने निकले। थोडी दूर गये थे, कुछ याद आया, वापस लौटे। बीवी ने पूछा "क्या हुआ ?" खूटो पर तलवार लटकी है उसे ला दो।" नेकबख्त ने कहा, "निकले तो ही भीख मागने। तलवार का क्या करोगे ?" फर्माया, "अगर कही झगडा हो गया, तो क्या तलवार लेने घर आऊगा ?" ●

कुछ स्मृतियां

प्रो० हवीव-उल रहमान

जाकिर साहव को मै १६१३ से जानता हूँ जब कि वे और मै दोनो इस्लामिया हाई स्कूल इटावा मे पढते थे। जाकिर साहव को उनके पुराने कालेज के साथी उनको अपना गुरु भी कहते है और समझते भी है पर जाकिर साहव स्कूल के जमाने मे भी अपने स्कूल के साथियो के गुरु थे। हर छात्र उनकी इज्जत करता था और उनके अनुसरण मे गर्व महसूस करता था। जिस जमाने मे जाकिर साहव और इस्लामिया स्कूल इटावा मे पढते थे, तुर्की और इटली मे युद्ध चल रहा था। जाकिर साहव के कहने पर हम लोगो ने गोश्त खाना बन्द कर दिया ताकि जो रुपया बचे वह तुर्की की मदद को भेजा जा सके। उन्हे इस जमाने मे भी अंग्रेजी अखवार पढने का शौक था। पायनियर स्टैन्डर्ड पत्र समझा जाता था। इन्हे जल्द से जल्द समाचार जानने का इतना शौक रहता था कि पायनियर रोजाना खरीदने के लिए इटावा स्टेशन जाते। आगे वे होते, पीछे मै, स्टेशन पर अखवार उतरते ही जाकिर साहव इसे हासिल करते और फिर वे और मै भागे-भागे स्कूल के वोर्डिङ्ग हाउस मे वापस आते। वहा छात्र हमारे इन्तजार मे होते। हमारे वापस आते ही वे हमारे चारो तरफ घेरा वना लेते। जाकिर साहव इन्हे न केवल खवरो का अनुवाद करके सुनाते वल्कि उनकी टीका करते जाते।

हमारे हैडमास्टर अल्ताफ हुसैन प्रतिभाशाली छात्रो पर विशेष ध्यान रखते थे। इनमे जाकिर साहव सवसे ऊपर थे और ये छात्र अपना काफी समय हैडमास्टर साहव के मकान पर खर्च करते। मास्टर इस दिलचस्प अन्दाज से वातचीत करते कि इन समस्याओ के वारे में वे छात्र अच्छी तरह परिचित हो

जाते । इसका नतीजा यह भी हुआ कि इनमें अन्तर्राष्ट्रीय व राष्ट्रीय मुद्दो पर सही व उचित भावनाएं बन गई । हिन्दुस्तान के वाहर दूसरे मुस्लिम देशो के प्रति गहरी हमदर्दी भी इससे प्राप्त हुई ।

इस हमदर्दी का प्रदर्शन विभिन्न रूपो में होता था । गोश्त छोडना और छात्रो को भी इसके लिए तैयार करना इसकी एक मामूली मिसाल है । शुक्र की नमाज के वाद जाकिर साहव नमाजियो से पीडित तुर्को के लिए चन्दा वसूल करते । एक वार इटावा में एक मस्जिद मे जाकिर साहव ने एक भाषण किया । इसके वाद उन्होने अपनी विना फुन्देन की तुर्की टोपी में चन्दा जमा करना शुरू किया । चन्दा वसूल करते वक्त उन्होने कहा, लाइये हजरत, जो तावे के पैसे इस तुर्की टोपी में डालेगे, वे शीशे की गोली में बदल कर दुश्मन के सीने के पार होगे । सफेद दाढ़ी वाले एक वुजुर्ग पर इस कथन का यह प्रभाव हुआ कि वे चीख-चीख कर रोने लगे और अपना पूरा वटुआ जाकिर साहव की टोपी मे उलट दिया । हर वार अच्छी खासी रकम जमा होती । फिर जाकिर साहव डाकखाने जा कर उस रकम को मनीआर्डर से तुर्की को भेज देते ।

जाकिर साहव के व्यक्तित्व का मुझ पर इतना प्रभाव हुआ था कि शाम की नमाज के वाद दुआ करता कि मैं भी उन जैसा हो जाऊ । चन्द साल हुए मैने इनसे एक दिन कहा कि जाकिर साहव, मै इटावा इस्लामिया हाईस्कूल के शिक्षाकाल मे यह प्रार्थना किया करता था कि मेरा दिमाग आप जैसा हो जाये । लेकिन प्रर्थना मजूर नही हुई । वे फौरन हँस कर वोले, वाह, प्रर्थना तो मजूर हो गई । खुदा ने आपको मुझ से भी अच्छा दिमाग दे दिया ।

जाकिर साहव स्कूल में मुझ से एक दर्जा ऊपर थे । मै नवी मे, वे दसवी मे । इन्टर मे उन्होने भी साइन्स ली, मैने भी । लेकिन वीमारी के कारण उन्होने इन्टर पास करने के वाद एक साल के लिए पढाई छोड दी । फिर वी० ए० मे मै और वे दोनो एक ही कक्षा में आ गये । हमारे विषय भी एक ही थे यानी अंग्रेजी साहित्य, दर्शन व अर्थशास्त्र । मै इन तीन के अलावा अन्य कोई विषय न पढता । परीक्षा में सफलता ही मेरा लक्ष्य था पर जाकिर साहव कोर्स की इन कितावो को कोई प्रमुखता न देते । लेकिन इनके अलावा विभिन्न विषयो पर खूव पढते । परीक्षा से कुछ दिन पहले मुझसे कहते कि मैंने पाठ्यक्रम की कितावो से जो कुछ नोट्स तैयार किये है, वे उनको दे दूं । किसी और छात्र को मै ये नोट्स हरगिज न देता था । जाकिर साहव को खुशी–खुशी दे देता । वे हफ्ते, दो हफ्ते मे महत्वपूर्ण मुद्दे याद कर लेते और उनके दिमाग मे पाठ्यक्रम का एक स्पष्ट स्वरूप रहता । तीसरे साल मे उन्हे मेरे नोट्स पढने का एक हफ्ता मिला । इस लिए इस साल की सालाना परीक्षा तो मैं उनसे ८ नम्वर ज्यादा पाकर प्रथम रहा जव कि वे दूसरी श्रेणी मे रहे । पर चौथे साल मे अर्थात् फाइनल में १५ दिन नोट्स पढ़ कर ही वे उन प्रमुख पाच छात्रो मे आ गये जिन्हे इलाहावाद यूनिवर्सिटी की स्कालरशिप मिली । मुझे भी यह गौरव मिला पर वे मुझ से ऊपर थे । उन्हे यूनिवर्सिटी का इकवाल मैडल भी मिला । मै यह देखता रह गया ।

शिक्षा काल के वीसियो प्रसग ऐसे है जिनसे उनके व्यक्तित्व की महानता व गहराई पर प्रकाश पडता है । असहयोग आन्दोलन के दौरान उन्होने एम० ए० ओ० कालेज छोड दिया व जामिया मिल्लिया इस्लामिया में आ गये । फिर कुछ अर्से वाद वे जर्मनी चले गये ।

मुस्लिम यूनिवर्सिटी के वाइस चान्सलर होने पर जव मै उन्हे मुवारकवाद देने गया तो वोले—आप लोगो ने वाइस चान्सलरी की वडी वडी जिम्मेदारिया मुझ पर छोड दी है, पर मेरी कामयावी आप लोगो के सहयोग पर ही निर्भर है।

जाकिर साहव वाइस चान्सलरी के जमाने मे चन्द सिद्धान्तो पर कठोरता से डटे रहे। प्रथम, जहा तक हो छात्र व शिक्षको का सहयोग हासिल किया जाय। दूसरे, अन्य लोगो के दृष्टि विन्दु को समझने का यत्न किया जाये। तीसरे, जिनमे कोई दोप है उनके वारे मे निराश न हुआ जाये वल्कि दोस्ती और मुहव्वत से उन्हे ठीक किया जाये। चौथे अपने साथियो व मातहतो का विश्वास किया जाये। पाचवे, जहा तक हो किसी को मानसिक रूप से पीडित न किया जाये।

इन सिद्धान्तो पर अमल की मुझे वहुत सी मिसाले मिली। एक दिन उनके साथ मै उनके वाग मे टहल रहा था कि मेरी नजर गुलाव के चन्द पौधो पर पडी जो अच्छे न थे। मैने कहा, जाकिर साहव, इन गुलावो को खुदवा कर फेंक दीजिये और वढिया किस्म के गुलाव लगवाइये। हँस कर वोले, भाई, मुझसे यहा के स्टाफ के वारे मे भी लोग यही कहते है। मै उनसे कहता हूँ कि जो लोग मौजूद है वे तो रहेगे, इनसे अच्छे जो मिलेगे उन्हे भी यूनिवर्सिटी मे जगह मिलेगी।

कई मौको पर मैने कुछ लोगो के वारे मे उनसे निराशा व अफसोस प्रकट किया। पर शुरू मे मुझे उस समय वहुत धक्का लगता जव देखता कि जाकिर साहव पर मेरी शिकायत का कोई प्रभाव नही पडा है। पर कुछ समय वाद मैने महसूस किया कि वे मानव प्रकृति मे सुधार मे मुझसे ज्यादा विश्वास रखते है। एक वार मुझ से कहने लगे, यदि आपको मेरे वारे मे रिपोर्ट लिखने का मौका पडे तो आप वहुत सख्त रिपोर्ट लिखेगे।

उनके इस वाक्य पर कई दिन तक गौर करता रहा। जाकिर साहव और मेरे मध्य कुछ अवसरो पर मतवैभिन्य भी रहा जो क्षणिक दुख का भी कारण वना। पर उनके दिल की गहराइयो मे उनके पुराने साथियो के लिए हमेशा मुहव्वत व हमदर्दी का जज्वा रहा है। न सिर्फ उनके पुराने साथियो को वल्कि उन तमाम लोगो को जिन्हे उनके साथ काम करने का मौका मिला, हमेशा यह भरोसा रहा है कि अगर हमसे गलती होगी तो जाकिर साहव हमसे इतनी सख्ती से हिसाव नही मागेगे कि हमारी जिन्दगी दूभर हो जाये। ●

जब मैंने पुस्तक भेंट की

रामाशंकर मिश्र

महान् शिक्षा-शास्त्री तथा हमारे राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन का स्नेह पात्र बनने का सुअवसर मुझे २४ सितम्बर १९६४ को उस समय मिला जब मैंने उन्हे दिल्ली के प्रमुख साहित्यकारो, कवियो, लेखको तथा प्रकाशकों की उपस्थिति में अपनी पुस्तक "नागरिक सुरक्षा" भेंट की।

चीनी आक्रमण के समय सम्पूर्ण राष्ट्र आतकित था। ऐसी विपम स्थिति में मैंने नागरिकों की सुरक्षा से सबधित कुछ साहित्य लिखने की योजना बनायी। मेरे मित्र श्री जयप्रकाश भारती तथा अन्य मित्रों की प्रेरणा से पुस्तक कुछ ही महीनो में तैयार हो गयी। पुस्तक चूंकि भावी आशकाओ को ध्यान मे रख कर लिखी गयी थी अतएव कई प्रकाशकों ने प्रकाशित करनी चाही। एक दिन यों ही मेरे मन मे विचार उठा कि क्यो न इस पुस्तक की भूमिका के लिए शिक्षा जगत के मर्मज्ञ डा० जाकिर हुसैन से अनुरोध करूं।

अत: मैंने भूमिका हेतु एक पत्र प्रेपित कर दिया। मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब आदरणीय डा० साहब ने भूमिका लिखना स्वीकार कर लिया, पर साथ ही पुस्तक की पाण्डुलिपि भी देखनी चाही। पाण्डुलिपि भेजी गयी। कई बार मैंने पुस्तक के कुछ अ श पढ कर सुनाये। पाण्डुलिपि का अध्ययन उन्होंने अपनी रेल यात्रा तक मे किया। लगभग दो महीने पश्चात् पुस्तक की भूमिका मुझे प्राप्त हो गयी। भूमिका पढ़ कर मेरा मन उल्लास से भर उठा। उल्लास का कारण मात्र पुस्तक की भूमिका ही नही थी, बल्कि यह भूमिका मेरे लिए प्रमाण-पत्र जैसी लगती है। भूमिका में डा० साहब ने लिखा है: "नागरिक सुरक्षा" नामक पुस्तक का मैंने अध्ययन किया। श्री मिश्र जी ने इस प्रकार की

पुस्तक लिख कर देश की सुरक्षा मे हाथ वटाया है, जिसके लिए वह धन्यवाद के पात्र है।' ऐसी भूमिका पाकर मेरी पुस्तक मे तो चार-चाद लग ही गये, मै भी धन्य हो गया।

कुछ मित्रो ने सुझाव दिया कि पुस्तक महामहिम डा० जाकिर हुसैन को भेट की जाये। मै समझता था कि उन जैसे महान् व्यक्ति को मुझ अकिचन के लिए समय देना कठिन होगा। वे अत्यधिक व्यस्त रहते है। फिर भी मैने अपनी योजना पत्र मे लिख भेजी। असम्भव सम्भव लगने लगा जव मुझे कुछ ही दिनो मे उनके सचिव का पत्र मिला कि मुझे २४ सितम्वर ६४ को साय ५ वजे से ५–१५ वजे तक का समय मिला है।

२४ सितम्वर भी आ गया। अपने कुछ मित्रो के साथ मै मौलाना आजाद रोड, नयी दिल्ली स्थित उपराष्ट्रपति भवन मे पहुँच गया। सचिव को अपने आने की सूचना दी। अभी मै कार्यालय मे वैठा ही था कि श्री क्षेमचन्द सुमन श्री भारती के साथ आते दिखायी दिये। भारती जी से ही ज्ञात हुआ कि समारोह की अध्यक्षता श्री सुमन ही करेगे। धीरे-धीरे कई लेखक और कवि भी आ गए।

ठीक पाच वजे हम सवको एक विशाल कक्ष मे ले जाया गया। निश्चित समय पर डा० साहव का आगमन हुआ। हम सव लोगो ने उठकर उनका स्वागत किया। सुमन जी ने सव का परिचय कराया। समारोह प्रारम्भ हुआ। सक्षेप मे श्री क्षेमचन्द्र सुमन ने पुस्तक की उपयोगिता तथा लेखक की योजना वतायी। इसके उपरान्त मुझ से पुस्तक भेट करने के लिए कहा गया। मेरे जीवन मे ऐसा स्वर्णिम अवसर पहली वार ही आया था, सो कुछ क्षणो के लिए मै किकर्त्तव्यविमूढ होकर अपने प्रिय नेता को ही देखता रहा। पर तुरत ही होश आया कि अरे, मुझे तो पुस्तक भेट करनी है। और इस तरह "नागरिक सुरक्षा" की प्रति उठाकर उनके कर कमलो मे समर्पित कर दी। उन्होने पुस्तक पलट कर देखी और अचानक मुस्कराकर मेरी पीठ थपथपाने लगे। मै पुन. भावविह्वल हो उठा। कारण, मेरे जीवन का यह स्मरणीय क्षण था जिसे मै जीवन भर नही भुला सकू गा। जव मेरी चेतना कुछ क्षणो पश्चात् लौटी तो मैने सुना, डा० साहव मुझसे कह रहे थे, यह काम अच्छा किया। मुल्क जव मुसीवत के दौर से गुजर रहा है, ऐसी किताव की जरूरत थी। इसी तरह और कितावे लिखना।

हम सव पुन कुर्सियो पर वैठ गये। श्री सुमन ने इस अवसर पर डा० साहव से दो शब्द वोलने का अनुरोध किया। डा० साहव मुस्कराते हुए उठे और अपना भापण प्रारभ किया और लगभग १६ मिनट तक महत्वपूर्ण विपयो पर वोलते रहे। उनका सक्षिप्त भापण इस प्रकार है

आज सव से अधिक आवश्यकता इस वात की है कि देश का प्रत्येक नागरिक अपने को राष्ट्र का सच्चा प्रतिनिधि समझे। हर नागरिक को देश से एकात्मकता स्थापित कर लेनी चाहिए जिससे वह देश के दुख-सुख को ही अपना दुख-सुख समझने लगे। ऐसा करने से ही हमारी समस्याए हल हो सकती है।

द्वारा ही सम्भव है। उनकी शिक्षा योजना मे व्यक्ति को केन्द्रीय स्थान प्राप्त है। इसी कारण जब १९३७ मे गांधी जी ने बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया तो उन्होने उसकी बागडोर डा० जाकिर हुसैन को सौंपी। डाक्टर साहब ने कर्म-केन्द्रित शिक्षा के विचार को फैलाने के कार्य मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

बुनियादी शिक्षा और विज्ञान की शिक्षा का तरीका मूलभूत रूप से एक ही आधार पर खडे है। जहाँ बुनियादी शिक्षा कर्म केन्द्रित है, वहाँ विज्ञान की शिक्षा प्रयोगो और व्यावहारिक प्रदर्शन द्वारा दी जाती है। डा० जाकिर हुसैन ने जामिया की शिक्षा प्रणाली तय करते समय इसी वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाया कि विद्यार्थी पुस्तको के माध्यम से जितना ज्ञान हासिल करे, उससे अधिक वे प्रयोगो द्वारा सीखे। विज्ञान इतर विषयो को प्रयोगो और व्यावहारिक प्रदर्शनो द्वारा पढाए जाने की परिपाटी डाल कर उन्होने विज्ञान के व्यावहारिक पक्ष का शिक्षा के क्षेत्र मे समावेश कर दिखाया। उनका यह प्रयोग इतना सफल रहा कि जब भी शिक्षा का स्तर सुधारने तथा विद्यार्थियो मे स्वावलम्बन की भावना भरने की बात उठती है, तो शिक्षा शास्त्रियो का ध्यान डा० जाकिर हुसैन के तरीके पर अवश्य जाता है।

विज्ञान और धर्म के बीच की खाई

प्राय धर्म को विज्ञान विरोधी माना जाता है और कहा जाता है कि इन दोनो मे तालमेल नही बैठ सकता। डाक्टर साहब इस मान्यता के विरुद्ध है। उनका कहना है कि धर्म और विज्ञान के उद्देश्यों के अन्तर को समन्वय का सूत्र निकालने पर समाप्त किया जा सकता है। उन्होने गाधी शताब्दी समारोह के सिलसिले मे हुई एक अन्तरराष्ट्रीय गोष्ठी मे कहा 'अखण्ड विश्व-समाज के लक्ष्य तक पहुँचने के लिए रूढि, धार्मिक विधानो और रस्मी पूजा के दायरे से आगे देखना चाहिए।' उन्होने इस बात पर जोर दिया कि विज्ञान मे धर्म का और धर्म मे विज्ञान का पुट दिया जाना जरूरी है। उन्होने कहा—'यदि विज्ञान और धर्म के बीच की खाई को नही पाटा गया तो विज्ञान थोथा साबित होगा और धर्म मे विज्ञान की भावना का समावेश हुए बिना धर्म अधविश्वास बन कर रह जायगा।'

विज्ञान को धर्म की भावना से अनुप्राणित करना इसलिए भी जरूरी है कि विज्ञान के द्वारा प्राप्त शक्ति को मानव सहार और लोक द्वेष के साधन के रूप मे प्रयोग किया जाने लगा है। आज जब कि ससार मे करोडो लोगो को भूख के भयानक पजे से छुडाने, रोगो से लडने की शक्ति देने और अज्ञान को भगाने का काम पूरा नही हो सका है, अनेक देशो मे चोटी के वैज्ञानिक राजनीतिज्ञो के इशारो पर नर सहारक अस्त्रो के निर्माण मे लगे हुए है। डा० जाकिर हुसैन का विचार है कि यदि विज्ञान पर नैतिक भावना और धर्म का कुछ अकुश हो, तो शस्त्रो की होड और हविस रुक सकती है।

लेकिन कोरी नैतिकता से भी समस्याए नही सुलझाई जा सकती। रायल सोसाइटी के अध्यक्ष डा० पी० एस० एम० ब्लैकेट ने पिछली बार नेहरू स्मृति भाषणमाला के दौरान कहा था—'वर्तमान गरीबी इतनी अधिक है और तेजी से बढती हुई जनसख्या की समस्याए सुलझाने का काम इतना जटिल है कि आर्थिक प्रगति ही अपने आप मे सब कुछ नही है, लेकिन भारत की वर्तमान स्थिति मे तो यही सबसे महत्वपूर्ण है।'

जब तक जान सस्ती है

ऐसी स्थिति मे सबसे बडा प्रश्न यह उठता है कि आर्थिक प्रगति कैसे की जाए? डा० जाकिर हुसैन का दृढ विश्वास है कि हम विज्ञान को अपना कर ही देश की प्रगति कर सकते है। गुजरात

विद्यापीठ, अहमदाबाद मे दीक्षान्त भाषण करते हुए उन्होने कहा—'जब तक हमारे देश मे करोडो लोगो को पेट भर खाना नही मिलता, दुख-दर्द मे दवा नसीब नही होती, जब तक लोगो की जान मक्खियो और भुनगो जैसी सस्ती है और करोडो लोग अनपढ है और करोडो बच्चो को शिक्षा नही मिल पाती है, तब तक अ ग्रेजी साम्राज्य से मुक्ति पा जाना काफी नही है। हमे इस देश के पहाड काटने है, समुद्र पाटने है और खाने खोदनी है, नदिया मोडनी है, रेगिस्तानो को गुलजार बनाना है, जहालत को भगाना है, गाधी जी की आकाक्षाओ का देश बनाना है, और यह सब विज्ञान के द्वारा ही होगा।'

इंजीनियरों और वैज्ञानिकों के लिए चुनौती

यह तो ठीक है कि आर्थिक विकास के लिए विज्ञान का सहारा लिया जाए, लेकिन उसका स्वरूप क्या हो ? यह एक बडा प्रश्न है। केवल मूलभूत अनुसधानो के बल पर आर्थिक प्रगति नही की जा सकती। आर्थिक उन्नति के लिए प्राविधिक ज्ञान और शिल्प के विकास कीजरूरत है। ऐसा विज्ञान जो हमारे उद्योगो को ठोस आधार पर खडा कर सके, कृषि जन्य पदार्थों का उत्पादन बढा सके और देश मे कम मूल्य पर तथा यथासम्भव देशी साधनो से बढिया माल बनाना सभव हो, वही देश को आगे बढाने मे सहायक होगा। इसी कारण अब इ जीनियरी, शिल्प और उद्योगो पर बहुत बल दिया जा रहा है।

डा० जाकिर हुसैन मानते है कि तकनीकी जानकारो के सहयोग से देश का ढाचा नही बदला जा सकता। यह तभी सम्भव है जब देश के वैज्ञानिक और इन्जीनियर अपने को समाज से अलग विशिष्ठ वर्ग का न मानकर सेवा भाव अपनाए। उन्होने अपने ये विचार इ जीनियरो की सस्था के कलकत्ता स्थिति मुख्यालय में भाषण के दौरान प्रकट किए। उन्होने कहा—'अपनी गरीबी और पिछडेपन के बावजूद हमारी जनता अपनी स्थिति से असतष्ट है। इस असतोष का रचनात्मक ढग से उपयोग होना चाहिए। भारतीय इंजीनियरो और वैज्ञानिको के लिए यह एक चुनौती है और साथ ही एक अवसर भी। इ जीनियर लोग आर्थिक स्वतत्रता तथा सामाजिक न्याय के अग्रदूत है। उन्हे न केवल अपने व्यवसाय मे दक्ष होना चाहिए बल्कि उनमे जनगण की सेवा का दृढ़ सकल्प होना चाहिए।

डा० जाकिर हुसैन का यह मत है कि विज्ञान युग की समस्याओ का हल ढू ढने के लिए होना चाहिए। पिछले कुछ वर्षो से देश मे अन्न की कमी अनुभव की जा रही है। इस कमी को पूरा करने के लिए कृषि के क्षेत्र मे बहुत सी खोजे की गई और खाद्योत्पादन बढाने के प्रयत्न किए गए है। लेकिन फिर भी अनेक क्षेत्रो मे कृषि सम्बन्धी समस्याओ के प्रति उदासीनता बरती गई। अपने उपराष्ट्रपति पद के काल मे एक बार उन्हे दिल्ली मे इ जीनियरो की एक सभा मे आमत्रित किया गया। उन्होने इ जीनियरो का ध्यान इस तथ्य की ओर आकृष्ट किया कि उन के सस्थान मे कृषि इ जीनियरी विभाग नही है। उनके सुझाव पर जल्द ही कृषि इ जीनियर अनुभाग की रचना की गई और बहुत से इ जीनियरी कालेजो मे कृषि इ जीनियरी पढाने की व्यवस्था भी की गई। इस घटना से प्रकट है कि वे युग की गति के प्रति कितने सचेष्ट है और एक वैज्ञानिक न होते हुए भी वैज्ञानिक समस्याओ के लिए उनकी पकड़ कितनी गहरी है।

इस समय देश के विकास के लिए रूढिवादिता के स्थान पर विज्ञान और शिल्प के लिए अनुकूल वातावरण स्थापित करने की बहुत आवश्यकता है। डा० जाकिर हुसैन जैसे विज्ञान प्रेमी के राष्ट्रपति होते हुए देश मे विज्ञान की जडे मजबूत होगी और देश प्रगति के पथ पर आगे बढेगा। देश मे सभी वैज्ञानिक और शिल्पिज्ञ उनका अभिनन्दन करते है। ●

जाकिर साहब

आसिफा मजीव

वडे लोगो मे प्रारम्भ मे ही ऐसी बाते होती है जो साधारण मनुष्यो मे नही होती है। यह प्रसिद्ध कहावत मशहूर है "बच्चे के पाँव पालने मे ही पहचाने जाते है या होनहार बिरवा के चिकने-चिकने पात" लेनिक हम आप इनसे वहुत कुछ सीख कर इनके पद चिन्हो पर चलकर अपनी आदते और अपने व्यवहार को सुन्दर बना सकते है। डा० जाकिर हुसैन को ईश्वर ने तमाम अच्छी बातो से मालामाल किया है। विद्यार्थी काल मे ही इनकी योग्यता प्रकट होने लगी थी। वे बडे तीव्र बुद्धि थे। भाषण अच्छा देते थे। मजे की और मन लुभावनी बाते करते थे। परिश्रम से काम करने का चाव और लगन भी थी।

उन्हे मित्र भी वडे अच्छे मिले थे। इन सबके दिलो मे जाकिर साहब का मान था। जाकिर साहव ने सबके दिल मोह लिए थे। तमाम स्थितियो और घटनाओ के साथ एक कली से फूल बनने तक इनकी अच्छाइयो और चरित्र का रग रूप निखरता रहा, जिसकी खुशवू और महक अब पूरे देश मे फैली हुई है।

उन्होने शिक्षा के क्षेत्र मे बडा हिस्सा लिया है। इसमे जान डाली, इसमे प्राण फूके। हर क्षेत्र मे जहाँ कदम रखा बडे-बडे काम अच्छाई से पूरे किये। राष्ट्रीय सेवा मे तन मन से लगे रहे और अब राष्ट्र ने उन्हे राष्ट्रपति चुना तो यह अच्छाई और उच्च गुणो की परख का ज्वलन्त प्रमाण है।

वहुत से लोगो ने जिन्हे इनके साथ रहने, काम करने और मिलने का सम्मान प्राप्त हुआ है, उनसे चरित्र की और काम की अच्छी अच्छी बाते सीखी और वरती।

जामिया मिलिया इनके चरित्र और व्यक्तित्व का एक उदाहरण कही जा सकती है

जहाँ उन्होंने जीवन का एक बहुत बडा भाग व्यतीत किया है । यहाँ उनके पद चिन्ह स्थान-स्थान पर मिलते है । उनके बहुत से साथियों और साथ मिलकर काम करने वालो के रग-ढग और कामों में भी इसकी झलक मिलती है ।

शौक और परिश्रम से मन लगा कर काम करने को वे बहुत पसन्द करते थे । साहस और उत्साह बढाते । पाषाण को भी मोम बना देते । वे कहते, काम सभी अच्छे होते है । जो काम अच्छी तरह से किया जाय और जो काम अच्छे हाथों द्वारा किया जाय वह फलता-फूलता है और खराब हाथों में जाकर विगड़ जाता है तथा बुरा कहलाता है ।

जामिया में उन्होने बहुत कठिन जीवन व्यतीत किया । वह कठिन दौर था । पैसा दिखता नही था । साधारणतया सोचा जाता है कि पैसे के बिना कुछ नही हो सकता है । लेकिन बिना पैसे के जीवन में सुन्दरता और आनन्द पैदा करने का उदाहरण ऐसा कही नही मिलेगा जैसा उन्होने उपस्थित किया ।

अनगिनत कार्यो और व्यस्तता के कारण वे अपने घर की ओर वहुत कम ध्यान दे पाते । मगर उनके घर की हर चीज में उनकी आदत और उनकी सभ्यता का रग झलकता था । पुस्तको चित्रों और साधारण बरतने की चीजो में कोई न कोई अच्छाई होती । हर चीज साफ सुथरी और चन्दन-सी, रसोई घर शीशमहल लगता कि देखकर जी प्रसन्न हो जाये ।

वे घर वालो का इस ओर विशेष ध्यान दिलाते । उनकी बेगम साहिबा को जानवर पालने का बडा शौक था । उन्होने एक बकरी पाली जिसका नाम मटरिया था । एक दिन वह चरने गई तो वापस नही आई । बेगम साहिबा ने इसके दु ख में भोजन नही किया । रात हो गई । आदमी लालटेन लेकर तलाश करने निकले । मटरिया एक गड्ढे में मिली । जाकिर साहब कहते—मेरी स्त्री और बकरी में सुवह बहुत वाते होती है । वह उधर से बोलती है । यह इधर से जवाब देती है । इनका चाव देखकर जाकिर साहब ने एक बहुत सुन्दर-सी बकरी मगवा दी । सफेद रंग और लाल ठप्पे । बड़ा सुन्दर चित्रण था । उस समय में आप इनके घर जाते तो वह अच्छा खासा चिडिया घर का एक नमूना मालूम होता । एक ओर पिजड़े में पहाड़ी तोता टाय—टाय करता और सबकी बोलियो की नकले उतारता । कही सुन्दर बिल्लियाँ इठलाती होती । मुर्गिया सब एक रग, एक वश को, सफ़ेद सफ़ेद, परदे पर मुर्गे को तस्वीर बनी हुई ।

भैंस के भाग्य भी यहा आकर जाग गये । उसका दालान ऐसा साफ, प्रकाशमय कि आदमी देखकर दग रह जाये और फिर हर जगह सफाई, हर चीज उजली । दीवार पर अच्छे रगदार फूलो की बेले चढ़ी हुई । गमलों में फूल—पौधे बहार दे रहे है ।

एक दिन बकरी तसले में दाना खा रही थी । कुछ घास और पत्तिया सामने पडी थीं । जाकिर साहव ने बेगम साहिबा से फरमाया, 'आप बकरी को किस प्रकार से खाना देती है ? घास जमीन पर पड़ी है । यह ढग ठीक नही है । एक अच्छी सी चटाई बिछा कर इसे बिठाइये । फिर लोटे में पानी ले कर इसका हाथ-मुंह धोइये, तौलिये से पौछिये और फिर खाना सजा कर इसके सामने रखिये । एक बर्तन मे दाना हो, एक में घास और बड़े प्याले में साफ पानी । इस प्रकार भोजन कराना चाहिये । सब

हँसने लगे। यह बात लतीफे के तौर पर हसी मे उडा दी गई। मगर आप सोचे तो इसमे गहराई है। उसकी तह मे आप को एक पाठ मिलता है हर काम छोटा हो या वडा, अच्छी तरह, ढग से करने का।

जहा तक उनके स्वय का सम्बन्ध है, वे सदा वेपरवाह रहे। हर नियम का पालन करने से आजाद, न भोजन का समय ठीक, न सोने का। समय का कोई हिसाव नही। काम मे लगे रहे तो घण्टो लगे रहे। दिन को दिन न समझा और न रात को रात। खाना–पीना, आराम सव त्याग दिया। यदि एक ओर व्यस्तता मे सारे दिन खाने का ध्यान न आता तो दूसरी ओर लिहाज मे एक समय मे दो जगह दावत स्वीकार कर लेते और दूसरो की खुशी पूरी हो जाती। आवश्यकता होती तो जून मे चिलचिलाती धूप मे तागे पर चले जाते। अक्सर वडे आदमी समझते है कि अपने से नीची श्रेणी के लोगो और गरीवो से मिलने और वात करने से शान घट जायेगी, अत वे ऐसे लोगो से वहुत दूर रहते है। मगर जाकिर साहव का ढग दूसरा है। वे गरीवो से भी झुक कर मिलते है। उनके दु ख–सुख मे शामिल होते है। छोटे–वड़े, अमीर-गरीव सव से इस तरह पेश आते है कि दिलो मे घर कर लेते है।

जामिया मे इनके एक नवयुवक अनुचर को इकवाल और गालिव के शेरो को पढने का चाव हुआ। जव जाकिर साहव रात को थक कर सोने के लिए लेटते तो वह शेरो का अर्थ पूछता। लेकिन जाकिर साहव उसे निराश नही करते।

वे जव अलीगढ महाविद्यालय के वाइस चान्सलर थे तो वहा से कभी दिल्ली अपने घर आने पर मेरे यहा की एक वृद्धा स्त्री उनके आने की खवर सुनते ही तडप उठती। "जाकिर भइया आये है, देख आऊ।" वह लठिया टेकती हुई उनके यहा पहुँच जाती। मैंने एक वार, जव उसकी साँस फूल रही थी, कहा, "तुम्हारे ऊपर कितना प्रेम का भूत सवार है। चाहे चला न जाये, जाओगी जरूर।" मौहव्वत की गहराई से आवाज आई, "वहुत दिनन (दिनो से) देख्यो (देखा), तनक (जरा) देख लू। ना जाने मरूँ कि जीऊ।"

एक वार वह वीमार पडी थी। जाकिर साहव खुद उसे देखने पधारे और उसकी कोठरी में उसके पास वैठे वाते करते रहे। सारा हाल पूछा।

ऐसी ही कितनी वाते है जो अनगिनत तारो की तरह एक झुरमुट मे झिलमिलाती है। इनका जीवन एक वडी चौडी नदी की भाति नजर आता है। लहरे मारती हुआ नदी। इन लहरो मे नरमी है, वहाव है, तडफ है। कभी सन्तोष, जब्त और आडिगता का ठहराव, कभी तूफान के थपेडे, कभी गुदगुदाहटे। ●

हमारे राष्ट्रपति

सलमा सिद्दीकी

डा० जाकिर हुसैन के व्यक्तित्व पर लेखनी उठाते हुए कुछ विचित्र सा लग रहा है। वे हर प्रकार से इतने बडे है कि उनके विषय में कुछ लिखने में बड़ी झिझक-सी अनुभव हो रही है। लेकिन यह बात भी तो हमें हमारे राष्ट्रपति ने ही बताई है कि "सच्ची और खरी बात कहने में डरना नही चाहिए।" इन शब्दो से साहस बढा तो मैने भी उनके महान् और आकर्षक व्यक्तित्व पर कलम उठाने का विचार कर ही लिया है।

जाकिर साहब के शैक्षणिक और सामाजिक जीवन के विषय में तो मै नाम मात्र को कुछ लिख सकूँगी। एक नेता और एक शिक्षा विशेषज्ञ के रूप में इनको जानने वाले तो पग-पग पर मिलेगे। मै तो इनके विषय में इतना ही बताऊँगी जितना मै जानती हूँ।

मैने शायद अच्छी तरह से होश भी नही सम्भाला था जव से मै जाकिर साहव को देखती आई हूँ। हमारे कुटुम्ब में इनका जिक्र सदा कुटुम्ब के प्रिय और सम्मानित व्यक्ति की तरह होता रहा है और मै सत्यता पूर्वक कह सकती हूँ कि जाकिर साहब के स्नेह और मान की भावनाएं मेरी घुट्टी में शामिल है। जिस प्रेम और सम्मान का वीज मेरे जन्म से पूर्व ही मेरे घर के आँगन मे वोया जा चुका हो, उस शक्तिशाली घने और छायादार पेड की छाया तो मेरी यादो के घरौदो में अवश्य झिलमिलायेगी। इस वक्त यादो की ही चन्द झलकियाँ उपस्थित करूंगी। ये झलकियाँ और यादे निजी और घरेलू होने के अतिरिक्त अपना अलग महत्व रखती है। लेकिन इन्ही रोजमर्रा की छोटी-छोटी वातों से मानवता के वडे-वडे दीपक प्रकाश देते है।

जाकिर साहव तवीयत से वहुत सफाई पसन्द है। चाहे घर की या शरीर की सफाई

हो, चाहे दिल की, वे तन और मन दोनो की सफाई को मानते है । मुझे वह समय याद है जब जामिया करौल बाग मे थी और जाकिर साहब करौल बाग के एक छोटे से मकान मे निवास करते थे । उस घर और वातावरण मे जो अतिथि सत्कार और सहृदयता की छटा छा रही थी वह आज इतना समय व्यतीत हो जाने के पश्चात् भी अच्छी तरह याद है । जाकिर साहब तीव्र बुद्धि और हृदय की सफाई के साथ दृष्टि की सुन्दरता भी चाहते है । कहते है, मुगल सम्राटो को बगीचे से बडी दिलचस्पी थी और वे जहाँ भी जाते थे बाग लगवाते थे । इसी सम्बन्ध मे अलीगढ महाविद्यालय मे जाकिर साहब का वायसचासलरी का समय जहाँगीर का काल कहलाता है । उन्होने महाविद्यालय के क्षेत्र की ऊँची-नीची ऊबड-खाबड सडको को बराबर करवाया, ट्यूब वैल लगवाये, हरे भरे मैदान बनवाये । बोगन वेलिया की हरी-भरी और रगीन बेलो से, गुलाब के सुन्दर फूलो से और विभिन्न प्रकार के अन्य रग-बिरगे फूल-पौधो से इस छोटी-सी शैक्षणिक बस्ती को एक बगीचा बना दिया ।

जाकिर साहब को बच्चो से अत्यधिक प्रेम है । छोटे बच्चो से इनका प्रेम असीमित है । बच्चे, चाहे वे इनकी प्रिय पुत्रियो सईदा और सफिया के होशियार और खूबसूरत बच्चे पचियाँ, टीपू, राबिया और नीलोफर हो, चाहे वे बच्चे हो जिनके माँ-बाप मर गये हो, इनका प्रेम और दया तो सब पर समान और अत्यधिक होगी । सद्दीक और बशोरी के जितने और जैसे लाड चची (बेगम साहिबा) और जाकिर साहब ने किये है प्राय लोग उतना अपनी सतान का भी नही करते ।

स्कूल के जमाने मे मै और मेरी छोटी बहन अजरा अक्सर ग्रीष्म अवकाश मे दिल्ली आते रहते थे और छुट्टी का बडा हिस्सा जाकिर साहब के घर पर इनकी बेटियो, सईदा और सफिया, के साथ गुजारते थे । सईदा से मेरी मित्रता इतनी पुरानी है कि याद भी नही आता है कि इसका प्रारम्भ कब और कैसे हुआ था । सईदा अक्सर जाकिर साहब के साथ अलीगढ आती थी । और वह जमाना हम लोगो के लिए मानो ईद और शब्बेरात की तरह होता । अक्सर देहली से सईदा के साथ या किसी दूसरे काम से आका जान (स्व० फिलिप्स बोरन) भी अलीगढ आती थी । बचपन की यादो मे इन नेक दिल महिला का चेहरा भी अक्सर याद आता है । वे एक नेक जर्मन महिला थी और जाकिर साहब ने इनको जामिया मे बच्चो की देख भाल और शिक्षा के लिए नियुक्त किया था । वे महिला अपने कार्य मे कुछ इस प्रकार रुचि लेती थी कि जामिया के बच्चो के अतिरिक्त भी जहा कही भी उनको बच्चे नजर आ जाते, वे तुरन्त उनकी देखभाल मे लग जाती थी । जिन दिनो वे अलीगढ आ जाती वह हम लोगो के लिए बडी पाबन्दी का होता था । हमे तो उस समय मे वे खेल रुचिकर थे जिनका बच्चो की नई शिक्षा-दीक्षा मे कही प्रवेश नही था । हमे तो मिट्टी मे खेलना पसन्द था, आम और जामुन के पेडो के नीचे पडे हुए कच्चे-कच्चे फल खाना अच्छा लगता था, और रग-बिरगे वस्त्रो को पहनने का चाव था । आका जान हमारी इस प्रकार की रुचि का खुल्लम-खुल्ला विरोध तो नही करती थी, लेकिन वे हमारी रुचि को मोड देना चाहती थी । वे हमारे लिए जामिया मिलिया की चुनी हुई पुस्तके लाती और पढने का अनुरोध करती । इसी समय मे मैने पहली बार छोटी-छोटी पुस्तके पढी, जिनमे से अबो खाँ की बकरी, मुर्गी अजमेर चली और पूरी जो कडाई मे निकल भागी मुझे अब तक याद है ।

आका जान ने नयामे तालीम के नियमानुसार पढने पर जोर दिया और अलीगढ मे बच्चो के लिए गुलिस्तान की । उन्हे सईदा और सफिया से बडा प्रेम था लेकिन उनकी इच्छा थी कि

सईदा और सफिया रेशमी कपडे पहनना बिल्कुल छोड द । अक्सर वे उन्हे देहली में खादी पहनने को उत्साहित किया करती । खुद जाकिर साहब भी अपने घर वालो को खादी पहने हुए देखना चाहते थे । मुझे वर्षो पुरानी वह ईद याद है जब जाकिर साहब ने सईदा के रेशमी वस्त्रो को जला दिया था ताकि वह ईद के दिन खादी के कपडे पहन सके ।

मैने इस जमाने में भी जाकिर साहब को चैन और शान्ति के साथ घर पर रहते नही देखा । कही से थके हारे आते और कही न कही जाने को तैयार रहते । साफ-सुथरे खादी के कपडे पहने जब वे घर में दाखिल होते तो मालूम होता कि साफ-सुथरी हवा के झोके का घर मे प्रवेश हुआ है । इनके आते ही दोनों बच्चिया खिल उठती और उनके आस-पास मॅडराने लगती जैसे फूल के गिर्द तितलियाँ मॅडराती है ।

जाकिर साहब को अच्छे और स्वादिष्ट भोजन का बडा शौक है । चिल्ले के जाडो मे इनके घर पर प्रात के नाश्ते में खिचडी और उम्दा घी खाने का एक जमाने में दस्तूर था । वह खिचडी चची अपनी खास निगरानी मे पकवाती थी और वह बडे प्रबन्ध से खाई जाती थी । उस खिचडी का आनन्द अब तक याद है । उस समय से जाकिर साहब को डाक्टरो की राय के अनुसार भोजन करना पडता, इसलिए वे अपनी रुचि के तरह-तरह के भोजन नही कर पाते । लेकिन डाक्टरो और घर वालों की जरा सी भी पलक झपकती, तो वे बदपरहेजी पर तुरन्त उतारू हो जाते । एक जमाने में इनको खाने पीने की चीजे डाक्टरो की सलाह के अनुसार नाप-तोल कर दी जाती थी । वह जमाना डा० साहब ने बडे कष्ट के साथ व्यतीत किया । वे परहेज से बडे लाचार रहते थे । एक बार जब इसी तरह की बीमारी और परहेज के दौरान में सईदा इनकी मिजाज पुर्सी के लिए गई और उन्होने पूछा कि आपकी तबीयत कैसी है ? तो जाकिर साहब कुछ दु खी और मुरझाये से बोले "अरे भई, तबीयत तो ठीक है । मुझ दुखिया को पेट की मार है ।"

इसी शाम का जिक्र है, कुछ लोग इनकी तबीयत पूछने आये । चची ने मेहमानो के लिए दूसरे सामान के साथ कुछ मिर्च-मसाले वाले पकौडे का भी इन्तजाम कर दि । मेहमानो को चाय मे और चची को आव–भगत मे व्यस्त देखकर जाकिर साहब ने चची के हाथ से एक पकौडा झपट कर अपने मु ह मे रख लिया । मेहमान और घर वाले बहुत हैरान और परेशान थे, कि अब क्या होगा । अ ग्रे ज नर्स ने यह दृश्य देखकर एक सुरीली चीख मारी और झपट कर डा० साहब के मु ह में अपनी अँगुलियाँ डाल कर घायल पकौडे को बाहर निकाल दिया ।

इस बीमारी से स्वस्थ होने के पश्चात् वे एक आवश्यक मीटिंग में शामिल होने के लिए दिल्ली गये । वहाँ जामिय नगर में सईदा ने उनके लिए डाक्टर की अनुमति के अनुसार खाना तैयार किया था । खा–पीकर और काम खत्म करके जाकिर साहब अलीगढ़ के लिये रवाना हुए । मोटर इनका ड्राइवर बाबू खाँ चला रहा था । आगे की कहानी इसी की जबानी सुनने को मिली है ।

गाडी ओखले से चली और नई दिल्ली से गुजरती जब दरियागज पहुँची तो जाकिर साहब ने पहलू बदला और ड्राइवर से बोले, "भई बाबू खा, अब तो घर चल रहे है न हम लोग ?" "जी साहब ।" 'बच्चो का घर है—हमे खाली हाथ नही जाना चाहिये, बाब खां ।" "साहब रात हो गई, अब तो दूकाने

भी बन्द हो गई है।" "मगर खाने पीने की तो दूकाने खुली होगी ?" "जी हाँ साहब, खाने पीने की दूकाने तो देर तक खुली रहती है।" "सुनते है—यहा दरियागज मे कोई रेस्टोरेन्ट है, वहा तली हुई मुर्गी और मछली मिलती है।" "वह तो बिल्कुल सामने ही है, साहब।" "जरा वहा गाडी रोक दो, बाबू खाँ"

गाडी रोक दी गई। जाकिर साहब ने बाबू खाँ से कहा—"वहा जा कर जरा एक तला हुआ मुर्ग और एक तली मछली पैक करा लो। बच्चो के लिए ये चीजे साथ जायेगी।" बाबू खाँ ने सम्भाल कर पैकट तैयार करवाया, आगे की सीट पर रखा और गाडी स्टार्ट की। दो तीन मिनट के बाद जाकिर साहब बोले "भई बाबू खाँ, आगे जगह न हो तो ये सब चीजे पीछे रख दो।" 'अरे नही साहब, यहा तो जगह ही जगह है।" "फिर भी यहाँ देखरेख अच्छी हो जायेगी न। पीछे रख दोगे तो तो मै देखता रहूँगा।" बाबू खा ने गाडी रोक कर खाने की चीजे पीछे रख दी। जाकिर साहब ने बगैर किसी हिच-किचाहट के खाने की तरफ देखा और फिर ड्राइवर से बोले "मेरी तरफ क्या देख रहे हो ? क्या कुछ सन्देह है तुम्हे ?" "नही साहब, तोबा !" गाड़ी चली तो पीछे से बाबू खा को कागज की खड़खड़ाहट सुनाई दी। उसने कहा "साहब ?"—जाकिर साहब बोले, "भई, जरा चख रहा हूँ कैसी चीज है। बच्चो के लिए ऐसी-वैसी चीज नही ले जाना चाहिये।" "मगर साहब" "अरे भई कुछ नही, जरा सा मसाला लगा है। अच्छा बनाते है ये लोग।" आधा रास्ता समाप्त होते-होते जाकिर साहब ने मुर्ग और मछली का मसाला और स्वाद चख कर सब कुछ खत्म कर दिया। अलीगढ उतरते समय बाबू खा से कहा, "अच्छा था—इसका भी अपना एक स्वाद होता है।"

उस वक्त तो बाबू खाँ चुप रहा, लेकिन अगली दफा महाविद्यालय के मेडिकल ऑफिसर अफजुल रहमान ने जाकिर साहब का निरीक्षण किया तो वह समझ गये बदपरहेजी की जडे खासी गहरी है और जब वे कारण पूछ ही बैठे तो मजबूरन बाबू खाँ को आगे बढकर पिछली सारी बाते सुनानी पडी। जाकिर साहब ने बाबू खाँ के बयान के समय मे किसी प्रकार से नही टोका और बैठे मुस्कराते रहे।

जाकिर साहब के बेशुमार मित्र और विश्वासपात्र है। जाकिर साहब के चरित्र की एक विशेषता यह भी है कि वे अपने मित्रो और सच्चे भला चाहने वालो के मुकाबले मे सदा अपने विरोधियो और बुरा चाहने वालो का भला चाहते है और बुरा चाहने वालो को बडे विशाल हृदय से न केवल क्षमा कर देते है, बल्कि उनको फलने-फूलने का अवसर भी देते है।

जाकिर साहब के किसी खराब से खराब विरोधी को इनसे कभी काम पड जाय तो ये सहायता करते है और उसकी तरफ से कोई शिकायत अपने दिल मे नही रखते। उन लोगो का जाकिर साहब काम तो कर देते है लेकिन ऐसे लोग इनकी दृष्टि मे गिर अवश्य जाते है। बस, ऐसे है हमारे राष्ट्रपति। ●

शिक्षक राष्ट्रपति

श्रीमती नन्दिनी शतपथी

(सूचना उप-मत्री, भारत)

डा० जाकिर हुसैन जब उप-राष्ट्रपति चुने गये तो उस अवसर पर आयोजित एक पार्टी में उनसे समीप से मिलने का मुझे पहली बार मौका मिला। उस समय उन्होने मुझ से जो पहला प्रश्न किया था वह था उडीसा मे शिक्षा के वारे मे। स्कूलो और कालिजों के विद्यार्थियो मे हडताल और तोड-फोड की प्रवृत्ति के वारे मे उन्होने विशेष चिन्ता प्रकट की और कहा कि जव तक शिक्षा ठीक ढग से नही चलेगी तव तक हम देश की वडी-वडी समस्याओ का उचित हल नही कर पायेगे। राष्ट्र के हित के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि इन समस्याओ पर शान्ति और गम्भीरता से चितन किया जाये, परन्तु यह तभी सम्भव हो सकता है जबकि नवयुवको का मानसिक विकास पूर्ण रूप से किया जाये और उनमें सामाजिक दायित्व की भावना पैदा की जाये। उन्होने मुझे शिक्षा के विकास और प्रसार में अधिक से अधिक रुचि लेने की सलाह दी।

डा० जाकिर हुसैन आधुनिक भारत के प्रमुख निर्माताओ मे से है। वे एक शिक्षक, महान् शैक्षणिक विचारक और भारतीय समाज के सास्कृतिक आदर्शो के प्रतीक है। यह भारत का सौभाग्य है कि उसे तीनो महान् साहित्यक और शैक्षणिक प्रतिभा वाले राष्ट्रपति मिले है। डा० राजेन्द्रप्रसाद और डा० राधाकृष्णन् ने अपने विशिष्ट गुणो से राष्ट्रपति के महान् पद पर अमिट छाप छोडी। डा० जाकिर हुसैन ने भी राष्ट्रपति के पद को विशिष्टता प्रदान की है।

डा० जाकिर हुसैन शिक्षा के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक क्षेत्र मे प्रवर्त्तक रहे है। जव उन्होने राष्ट्रीय शिक्षा के व्यापक क्षेत्र मे कदम रखा, तव तक वे अपने ठोस कार्य

के आधार पर बहुत ख्याति अर्जित कर चुके थे। १९३७ मे गाधीजी ने देश के समक्ष बुनियादी शिक्षा की योजना रखी। यह एक क्रान्तिकारी योजना थी, जिसमे पढाई के साथ-साथ काम भी सिखाया जाता था। इस योजना मे ज्ञान और जीवन का समन्वय था। महात्मा गाधी ने डा० जाकिर हुसैन को बुनियादी शिक्षा की राष्ट्रीय समिति की अध्यक्षता के लिए चुना। डा० हुसैन ने गाधीजी के बुनियादी शिक्षा के विचारो को मूर्त रूप दिया। डा० जाकिर हुसैन ने शिक्षा सम्बन्धी अपने विचार एक बार इस प्रकार प्रकट किये थे "सभी काम शिक्षाप्रद नही है। केवल वही काम वास्तव मे शिक्षाप्रद है जो उन मान्यताओ की पुष्टि करता है जो हमारे तुच्छ स्वार्थो से ऊपर हो और जिनके प्रति हम निष्ठावान हो। जो व्यक्ति केवल अपने हित के लिए काम करता है, वह दक्ष हो सकता है, किन्तु शिक्षक नही। आदर्शो की पूर्ति मे मनुष्य सुख-प्राप्ति के लिए नही, बल्कि अपने काम मे पूर्णता लाने, अपने चरित्र का विकास करने और वास्तविक मानव बनने के लिए काम करता है। यह शिक्षाप्रद गुण शारीरिक और मानसिक दोनो प्रकार के काम मे पाया जा सकता है और इन दोनो का ही उपयोग शिक्षण के लिए किया जा सकता है।"

डा० जाकिर हुसैन एक महान् शिक्षा-प्रशासक भी है। उन्होने अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय के उप-कुलपति पद पर जो कार्य किया, उसका विश्वविद्यालय के सभी विभागो पर स्थायी प्रभाव पडा। उन्होने अपनी दूरदर्शिता, कल्पना शक्ति और ज्ञान से अलीगढ विश्वविद्यालय को शिक्षा का नमूना बना दिया। विश्वविद्यालय-स्तर की शिक्षा के बारे मे उनके विचार रूढिवादी नही है। वे यूरोप, अमरीका और अन्य देशो का व्यापक भ्रमण कर चुके है, इसलिए शिक्षा-सम्बन्धी उनके विचारो मे आधुनिकता और सार्वभौमिकता का पुट देखने को मिलता है।

विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा के बारे मे वे अभी भी बहुत सोचते-समझते है। मूलत वे एक शिक्षाविद् है। मदुरई विश्वविद्यालय का शिलान्यास करते समय अपने भाषण मे उन्होने भारतीय विश्वविद्यालयो के समक्ष इस समय उपस्थित चुनौतियो की चर्चा की।

उन्होने कहा, "इनमे से कुछ बडी चुनौतिया अतीत की विरासत है। विश्वविद्यालयो के समक्ष एक कठिन काम यह है कि उन्हे शुरू से चली आ रही उन परम्पराओ को समाप्त करना होगा जिनसे बाहरी और भीतरी परीक्षाओ को अनुचित महत्व मिलता है। सामान्य छात्रो मे महज परीक्षा उत्तीर्ण करने की इच्छा के स्थान पर उनमे सत्य और पूर्णता की खोज के प्रति वास्तविक जिज्ञासा और आस्था जाग्रत करने के लिए प्रयास करना होगा। विश्वविद्यालयो को सक्रिय रूप से राष्ट्रीय विकास के काम मे भाग लेना चाहिए। इसके लिए उन्हे अपने छात्रो के लिए राष्ट्रीय सेवा सगठित करनी चाहिए, ताकि उनमे सामाजिक दायित्व की भावना पैदा हो और वे राष्ट्र-निर्माण के काम मे भागीदार बने। लोगो की भाषाओ के विकास की भी उनकी मुख्य जिम्मेदारी है।

अगर विश्वविद्यालय यह काम नही उठाए गे, तो इसे कौन करेगा? उन्हे केवल यही कह कर सन्तोष नही कर लेना चाहिए कि स्कूलो से हमारे पास जो छात्र आते है, उन्ही का स्तर गिरा होता है। उन्हे स्कूलो की शिक्षा के सुधार के लिए स्वय कोई ठोस कार्यक्रम चलाना चाहिए।"

देश इस समय जिन विषम परिस्थितियो मे से गुजर रहा है, उनके कारण एक और तरह की भी चुनौतिया हमारे सामने आई है।

प्राचीन मूल्य और सस्थाएं, जिन्होने समाज के बाध रखा था, नष्ट हो गयी है और उनकी जगह आधुनिक आश्यकताओ के अनूकूल नए सामाजिक दायित्व की भावना को पैदा करने के लिए अभी तक कोई प्रभावशाली कार्यक्रम नही बनाया गया है। इसके कारण सर्वत्र सामाजिक विघटन के अनेकानेक लक्षण दिखाई दे रहे है। इनमें शामिल है : हड़ताल, हिंसा, कानून का उल्लंघन, सार्वजनिक सम्पत्ति की क्षति, साम्प्रदायिक तनाव और स्थानीय, क्षेत्रीय, भाषायी और राज्य सम्बन्धी वफादारी का उदय, जिसके कारण लोगो में पूरे "भारत" को आखों से ओझल करने की प्रवृत्ति पैदा हो गयी है।

डा० जाकिर हुसैन के व्यक्तित्व में एक फूल की सी दमक और महक है। फूलो से उन्हे जो अनुराग है और बागवानी में उनकी रुचि है, इसका प्रभाव भी उनके व्यक्तित्व पर पड़ा है। बच्चो के प्रति उनका विशेष अनुराग है। बच्चो से मिलते समय उनसे इस प्रकार घुल–मिल कर बाते करने लगते है मानो स्वय भी बच्चे ही है। उनका जीवन इस्लामी संस्कृति और प्राचीन भारतीय सस्कृति के सर्वोत्तम तत्वो का मिश्रण है। जीवन के प्रति उनमे एक प्रकार का आध्यात्मिक विराग है, परन्तु साथ ही मानव की भौतिक उन्नति में उनकी अगाध निष्ठा है। उनमें एक विद्वान् की विनम्रता, जिज्ञासा और तर्कशक्ति है और अपने विचार स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करने का उनका अपना ढग है। उनके बारे मे यह ठीक कहा गया है कि उनका जीवन सर्वोत्कृष्टता की खोज का प्रयास है। ●

अच्छा अध्यापक

अच्छा अध्यापक किसे माना जाय ? डॉ० जाकिर हुसैन के शब्दो मे उसकी यह पहचान होनी चाहिए : अच्छे अध्यापक के लिए आवश्यक है कि वह दूसरो से प्रेम रखता हो; उसके मन में मनुष्य के रूप में मनुष्यो से प्रेम हो। आप सच्चे पण्डितो और अच्छे-अच्छे अध्यापको पर नजर डालिये तो इनमे से बहुत से कट्टर धार्मिक व्यक्ति नजर आयेंगे। सुन्दरता और आकर्षण के प्रेमी भी इनकी कतार मे मिलेंगे। परन्तु यह गुण उनकी मानसिक बनावट में बेल-बूटे के समान है; ताना-बाना तो वही सेवा की रुचि और मानव जाति के प्रति प्रेम है।

गांधीजी के अनुयायी

अक्षयकुमार जैन

वात छोटी-सी है, किन्तु उसका मतलब वहुत वडा और गभीर निकलता है। एक वार की वात है कि डा० जाकिर हुसैन ने गाधीजी के सम्बन्ध मे एक सस्मरण सुनाते हुए कहा कि "मेरे परिवार की किसी वच्ची ने बापू से आटोग्राफ मागा तो उन्होने उर्दू मे दस्तखत किये। तभी से मैने भी निश्चय कर लिया कि हिन्दी भाषियो को अपने हस्ताक्षर हिन्दी मे ही दिया करूगा।"

एक दूसरे की भाषा का इतना ख्याल रखना निश्चय ही देश की भाषा समस्या को हल करना है। इसका यह अर्थ नही कि डाक्टर साहव मात्र हस्ताक्षर के लिए ही हिन्दी का ज्ञान रखते है। राष्ट्रपति पद की शपथ लेते समय उन्होने जो प्रथम भाषण किया था उसे सुनने वालो को यह भ्रान्ति नही हो सकती कि वे सुसस्कृत हिन्दी नही जानते।

डाक्टर साहव का जन्म चाहे हैदरावाद मे हुआ हो और चाहे उनका घर फर्रुखावाद मे हो, किन्तु उन्ही के शव्दो मे "भारत मेरा घर है। सभी भारतवासी मेरे भाई है।" घर के मुखिया (राष्ट्रपति) पद पर आसीन होने के समय उन्होने उपर्युक्त शव्द कहे थे और सचमुच वे ऐसा मानते है और उस पर अमल भी करते है।

१९४६ के दिनो मे जव साम्प्रदायिक उन्माद हमारे देश मे छाया था, कुछ ऐसे ही व्यक्तियो ने उन्हे भी घेर लिया था। यदि ऐन वक्त पर उनके एक परिचित व्यक्ति न आ जाते तो डाक्टर जाकिर हुसैन की गर्दन कट गयी होती। उस अग्निकुण्ड मे से निकल कर डाक्टर साहव शुद्ध सोना वन गये है और आज सारे भारतवासी उन्हे अपना वडा मान सकते है।

चौथे आम चुनाव हो चुके थे और राष्ट्रपति पद के लिए नामों की चर्चाएं चल रही थी। डा० साहब उस समय उप राष्ट्रपति थे। एक काम के सिलसिले में उनके दर्शन करने गया तो देखा कि घर का सामान बांधा जा रहा है और जामिया मिलिया में जाकर रहने की तैयारी हो रही है।

उस समय स्थिति कुछ विचित्र सी थी। कई राज्यो में कांग्रेस दल बहुमत खो चुका था और कांग्रेसी नेता भौचक्के रह गये थे। कोशिश यह की जा रही थी कि राष्ट्रपति और उप राष्ट्रपति का चुनाव सर्वसम्मति से हो जाय। जब मैने डाक्टर साहब से इन पदो के लिए कुछ विकल्पो की चर्चा की, तो उन्होने उस समय जो कुछ कहा उसे मै कभी भूल नही सकता।

वे बोले, "शिक्षा मेरा विषय रहा है। उसे छोड़कर राजनीति में क़दम रखना कुछ बहुत अक्लमदी की बात नही हुई। जिन्दगी के आखिरी साल मुझे शांति के साथ गुजारने चाहिये थे। आप मेरे तयी स्नेह रखते है, इसलिए इस प्रकार की चर्चा कर रहा हूँ। अगर मेरे लिए आपके मन से इज्जत है तो आपको यही दुआ करनी चाहिये कि मै अब सिर्फ अपनी भलाई के लिए ज्यादा काम करू ? ऊंचे पदो पर पहुँच कर आदमी को आध्यात्म की तरफ सोचने का मौका भी कहा मिलता है।"

उस समय तो मैने केवल इतना ही कहा था कि आपकी योग्यता और हुस्ने-अख्लाक का फायदा अगर देश को मिलता है तो इससे अच्छी और क्या बात हो सकती है ? देश मे तो आप भी आते है। यदि देश का उत्कर्ष होता है तो निश्चय ही उसमें आपका भी उत्कर्ष होगा। आपने ही एक वार कहा था कि व्यक्ति से समाज और समाज से भी देश बड़ा होता है। अब आप अपनी ही वार्त से कैसे इनकारी हो जायेगे।"

डाक्टर साहब तब सिर्फ मुस्करा दिये; बोले कुछ भी नही। ११ अप्रैल, ६७ को राष्ट्रपति भवन मे डाक्टर साहब ने मुस्कराते हुए मुझे पद्म भूषण प्राप्त होने पर मुबारकबाद दी। कांग्रेस की ओर से उस समय तक राष्ट्रपति पद के लिए उनके नाम की घोषणा हो चुकी थी। मै याद दिलाऊ कि उन्होने खुद फरमाया—"आपकी बात सच निकली ?"

डाक्टर साहब ७२वे वर्ष में प्रवेश कर रहे है, किन्तु देश के सिर-मौर होने के कारण वे सौ वर्ष की आयु वालो के भी बुजुर्ग है, इसलिए यदि इन्हे किसी सूबे के साथ नही बाधा जा सकता तो आयु के साथ बाधना भी मुनासिब नही होगा।

गाधीजी को बेसिक तालीम की प्रेरणा डा० जाकिर हुसैन से ही प्राप्त हुई थी। शिक्षा के सम्बन्ध में आज तक भारतीय दृष्टिकोण में सुधार नही हो पाया है। सौभाग्य से राष्ट्रपति पद पर एक उच्चशिक्षाविद् है। आशा की जाती है कि उनका इस सम्बन्ध में मार्गदर्शन देश को प्राप्त होगा।

डाक्टर साहब जोश की बात नही करते, होश की बात समझाते है। इस समय देश को ऐसे ही राष्ट्रपति की आवश्यकता है जो विवेक के साथ देश को आगे बढा सके और बिखराव की जो प्रवृत्ति बल पकड़ रही है उसे दिशा देकर देश को एकता की ओर ले जा सके। डाक्टर साहब का गाधीजी में अनन्य विश्वास है। उनका मत है कि देश गाधीजी के बताये हुए रास्ते पर चल कर ही तरक्की कर सकता है।

हमारे राष्ट्रपति

डा० सैय्यद आबिद हुसैन

व्यक्तित्व क्या है, इस पर पूरी बहस करने का अवसर नही है। बस यो समझ लीजिए कि व्यक्तित्व उन शारीरिक तथा नैतिक मूल्यो का एक समन्वित रूप है, जिसकी बदौलत कोई व्यक्ति आम लोगो से ऊपर उठ जाता और उन पर छा जाता है। कभी-कभी हम व्यक्तित्व के स्वामी यानी उस इनसान को भी व्यक्तित्व कह देते है, जो असाधारण शारीरिक तथा नैतिक खूबिया रखता हो।

यह बात तो व्यक्तित्व की प्रशसा मे ही दाखिल है कि वह अपने वातावरण मे छा जाता है, लेकिन इस मे बहुत कुछ मतभेद है कि इसके असर की क्या सीमा है ? अकबर ने कहा है—मर्द वो जो जमाने को बदल देते है।

और इकबाल ने तो व्यक्तित्व को खुदाई की सीमा के करीब पहुँचा दिया है, मगर ऐसे लोग भी है जो व्यक्तित्व को बिलकुल अपने काल या वातावरण की पैदावार समझते है।

मैने अपने काल यानी बीसवी सदी के पूर्वार्द्ध मे जिन मुसलमानो को इतिहास के पन्नो में उभरते देखा है, उनमे खरे लोग भी थे, और वे भी जिन पर मुलम्मा चढा था। जाकिर साहब उन खरे व्यक्तियो मे से है, जो प्रारम्भ मे इतने लोकप्रिय नही हुए, परन्तु आगे चलकर मुलम्मे की अस्थायी चमक मन्द पडने लगी और खरे सोने की असलियत मौजूद रही।

किसी के दिल को साथ मे लेना, इसे वह सबसे बडा हज समझते है और किसी के दिल को तोडना सबसे बडा गुनाह। वह परले दर्जे के खुदापरस्त है। उनकी दीनदारी दुनियादारी के पर्दे मे से यो भी थोडी बहुत झलकती रहती

लेकिन अच्छी तरह चमकती उस वक्त है, जव आसपास के वातावरण में मायूसी का अधेरा छा जाता है। इनके ईमान का कट्टरपन उस समय प्रकट होता है, जव अच्छे अच्छों के ईमान डावाडोल हो जाते है।

सगीत और चित्रकला मे जाकिर साहब काफी दिलचस्पी रखते है। उर्दू, फारसी, अंग्रेजी और जर्मन काव्य से उन्हे प्रेम है, परन्तु सबसे अधिक रस उन्हे इकबाल के फारसी काव्य मे आता है।

किताबे पढने का उन्हे वडा शौक है, यहा तक कि वीमारी की हालत में भी वह पढते रहते है। जाकिर साहव उर्दू अग्रेजी वक्ता और लेखन पर पूर्ण अधिकार रखते है।

लोगो को मुश्किल से यकीन आएगा कि वीसवी सदी की दूसरी चौथाई मे हिन्दुस्तान में जीवन व्यतीत करने और जामे मिल्लिया और मुस्लिम यूनिवर्सिटी जैसी शिक्षण सस्थाओं के वाइस चासलर रहने के बाद जाकिर साहव का राजनीति से कोई सम्बन्ध नही रहा, यद्यपि राजनीतिक नेता वनने के लिए जिन खूवियो की आवश्यकता है, उनमें से बहुत सी जाकिर साहब मे वडे-वडे नेताओ से अधिक मौजूद है।

सवसे ज्यादा हैरानी की वात यह है कि अर्थशास्त्र के विद्वान होने के वावजूद अर्थशास्त्र ही जाकिर साहव कमजोर पहलू है। जाकिर साहब की मैत्री की मिसाल ढूढे नही मिलती। वह इनसान को व्यक्ति की दृष्टि से देखते है, उसकी आत्मा से मोहव्वत करते है और उसे शिक्षा के द्वारा सवारना चाहते है। वह कहा करते है, अच्छे हिन्दुस्तानी वनाओ, अच्छा हिन्दुस्तान बन जायगा।●

एक जरूरी वात

डा० जाकिर हुसैन शिक्षा मे सास्कृतिक उपकरणो को आवश्यक मानते है। उनका कहना है, कला, सगीत, नृत्य का विद्यालय मे अवश्य स्थान होना चाहिए। क्योकि ये सस्कृति के कुछ प्रमुख उपकरण है, जो व्यक्ति के मस्तिष्क को परिष्कृत करते है। सस्कृति के इन तत्वो को वच्चो पर प्रकट करने की आवश्यकता है। अनुकूल सास्कृतिक उपकरणो द्वारा ही मस्तिष्क की वास्तविक शिक्षा हो सकती है।

गांधी युग का एक ग्रौर मोती

शक्ति त्रिवेदी

१४ मई को देश भर मे एक ग्रावाज गूंजी। सारा हिन्दुस्तान मेरा घर है, इसमे रहने वाले मेरे परिवार के लोग है। यह एक ऐसे ग्रादमी की ग्रावाज थी जो सदैव पद-लिप्सा ग्रौर राजनीति से दूर रहा। ग्राश्चर्य है कि कोई ग्रादमी राजनीति से जितनी दूर रहा, उसे समय ग्रोर परिस्थिति उतनी ही सख्ती के साथ राजनीति की ग्रोर खीच लाई। हमारे राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन भी ऐसे ही व्यक्तियो मे है, जो शुरू से राष्ट्रीय ग्रौर समाज सेवी होते हुए भी हमेशा राज-नीति के उलझाव से दूर रहे, किन्तु देश की स्थिति ने ग्रौर देश के तत्कालीन राजनेताग्रो ने उन्हे जवरन राजनीति की सूली पर लाकर चढा दिया। शिक्षा ग्रौर दर्शन की साधना मे लीन होकर जीने वाले व्यक्तियो के लिए राजनीति सचमुच काटो का ताज ग्रौर सूली ही है। ग्रगर राजनीति के दायरे से हटकर चलने वाला व्यक्ति देश का राष्ट्रपति वन जाए तो वह उस दायित्व को सम्भालने मे ग्रसफल रहेगा या झिझकेगा। यह वात व्यक्ति व्यक्ति पर निर्भर करती है।

एक सच्चा इन्सान राजेन्द्र वावू जैसा संतमना व्यक्ति दो ग्रवधियो तक राष्ट्रपति रहा। राष्ट्रपतियों की कडी मे एक साधु ग्रौर दूसरे दार्शनिक के वाद एक सीधा-सादा खुश-मिजाज शिक्षाविद् ग्रौर ग्रा जुडा। सफेद रशि-यन कट दाड़ी, श्वेत केश, काली टोपी, सफेद चूड़ीदार पायजामा, काली शेरवानी मे सजा-वजा गुलावी रग का व्यक्ति ग्राज हमारे देश का सव से वडा शासक है। ग्रफगान घर मे पैदा हुग्रा, हिन्दू ग्रौर हिन्दी के माहौल मे पला, यूरोप मे पढा हुग्रा ग्रादमी जव भारत का राष्ट्रपति वना तो सारे देश मे तरह-तरह

के विचार जन्मे। एक महान् देश जिसमे हर तबके, हर विचार और हर तरह के आदमी बसते है, जहां मुसलमान जाति अल्प सख्यको मे है, वहा एक ऐसे व्यक्ति का राष्ट्रपति होना जो जाति से मुसलमान है, वास्तव मे विदेशो में एक आश्चर्य समझा गया। यूरोप के कुछ पत्रकारो ने इस बात पर अचभा प्रकट किया कि भारत का राष्ट्रपति एक मुसलमान कैसे बन गया। क्या पाकिस्तान मे कभी कोई राष्ट्रपति हिन्दू बन सकता है ? यह वास्तव मे वडा हास्यास्पद और दुखद 'रिमार्क' था, क्योकि विदेशों में भारत की तस्वीर अलग-अलग रगो मे पोत कर रखी गई है।

यह एक सत्य है कि महान् आत्माओ पर धर्म, जाति, देश और सकीर्णताओं का पहरा नहीं होता। उनके प्राण, उनका मन और तन तडफती हुई मानवता की सेवा के लिए आकुल रहते है। वे हिन्दू, मुसलमान और बौद्ध सभी को मानवता का चश्मा पहिन कर देखते है। ऐसे ही महान् व्यक्ति है हमारे राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन जो गाधी युग के ऐसे विरले मोती है जिन्होने आज से ४७ वर्ष पहले गाँधी जी की आवाज पर स्वतन्त्रता सग्राम मे कूद कर अपनी राष्ट्रीयता की भावना और देश प्रेम के दृढ सकल्प का परिचय दिया था।

गांधी जी के अनुयायी

१६२३ की वात है, जब जाकिर हुसैन अलीगढ के मुहम्मदिया एंग्लो ओरियटल कालेज में पढा करते थे। इसी साल महात्मा गाधी इस कालेज मे भाषण देने पधारे। सारा देश ब्रिटेन के हुक्काम और उनके दलालो के हाथो में जकडा हुआ था। यह कालेज भी उनके स्वार्थी तत्वो के हाथो में था। वे लोग अंग्रेजो के गुलाम थे और देश मे अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार करते थे। १२ अक्टूबर १६२३ को जब गांधी जी की आवाज इस कालेज के छात्रों में गूंजी तो इन छात्रो में कुछ ऐसे साहसी भी निकले जिनकी राष्ट्रीय भावना गाधी की वाणी को सुनकर भडक उठी और वे कालेज छोडकर गाधी के अनुयायी हो गए।

गाधी जी ने बुलन्द आवाज मे बताया कि 'हम भारतीयो को ब्रिटिश सरकार के अधीन चलाने वाले विद्यालयो का बहिष्कार करना चाहिये। हमे अपनी स्वय की राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति का विकास करना चाहिये जो हमारे देश के चरित्र को बुनियादी रूप से उंचा उठाए।

इस समय डा० हुसैन २३ साल के नवयुवक थे। जवानी का जोश कुछ और ही था। डा० हुसैन ने कुछ और साथी तैयार किए और १६ अक्टूबर १६२३ को एक ऐसी टोली बना ली जो कालेज का वहिष्कार करके बाहर आ गई।

एक महान् शिक्षा विद्

इन छात्रो ने अलीगढ मे इस कॉलेज के समानान्तर राष्ट्रीय विचारो की एक शिक्षण सस्था स्थापित की जो बाद मे अलीगढ से हट कर दिल्ली आ गई। वाद में इस संस्था के उपकुलपति पद पर डा० जाकिर हुसैन २० वर्षो तक रहे और अपना खून पसीना लगा कर इस राष्ट्रीय विचारो की शिक्षा–सस्था को जीवित रखा। एक बार जब वे जर्मनी में पढते थे तो खबर मिली कि आर्थिक अभाव में घुट कर यह सस्था खत्म होना चाहती है। उन्होने वापस केबिलग्राम देकर खबर दी कि मै और मेरे कुछ साथी इस

संस्था को जीवित रखने के लिए जीवन दान कर देंगे है, लेकिन इसे तब तक हम भारत न पहुँचे किसी तरह खत्म होने से बचा लिया जाए।

जब जर्मनी से पीएच० डी० करके जाकिर हुसैन भारत लौटे तो उन्होने स्वयं सचिव और अध्यापक से लेकर उपकुलपति तक का काम सभाल लिया। अन्य जीवन-दानियो ने भी भरण पोषण मात्र के लिये १०० रुपया वेतन स्वीकार करके इस संस्था की सेवाये की। यह था गाधी जी के त्याग और तपश्चर्या का प्रभाव जो डा० हुसैन पर पड़े बिना न रह सका। १९२३ मे भारत आने के बाद डा० हुसैन रात दिन कड़ी मेहनत करके गाधी जी द्वारा चलाई गई सर्वोदयी बुनियादी तालीम को बढाने मे जुट गए। यह सस्था आज भी ओखला के पास जामिया मिलिया इस्लामिया के नाम से राष्ट्रीय बुनियादी शिक्षा की एक उच्च स्तर की संस्था मानी जाती है। आज उसी सस्था का नीव का पत्थर और पुजारी देश का राष्ट्रपति है। इस सस्था के अध्यापक और छात्रो के लिए इससे बढ कर और क्या गर्व की बात हो सकती है।

अनेक साम्प्रदायिक तत्वो ने ऐसा जहरीला प्रचार किया कि यह सस्था केवल मुसलमानो के लिए है। डा० हुसैन ने उसी समय गाधी जी के छोटे पुत्र स्वर्गीय देवदास गाधी को जामिया मिलिया मे छात्र अध्यापक के रुप मे प्रवेश देकर इस भ्रम को दूर कर दिया। आज भी हजारो छात्र विभिन्न जाति और धर्मो के होते हुए भी इस सस्थान में पढ रहे है।

शिक्षक से राष्ट्रपति

डा० हुसैन के जीवन के बारे मे लोग बहुत कम जानते है। कारण स्पष्ट है कि वे सदैव प्रचार-प्रसार और ढोंगबाजियो से पर रहे। लगभग दो सौ साल पहले एक अफगान परिवार यू० पी० के फर्रुखाबाद कस्बे मे रहा करता था। इसी परिवार की आठवी पीढी मे डा० हुसैन पैदा हुए। इनके पिता वकालत करने के लिए उत्तरप्रदेश छोडकर हैदराबाद मे बस गए और वही डा० हुसैन ने सन् १८९७ मे जन्म लिया।

मौलवियो से लेकर इस्लामिया हाईस्कूल, इटावा और बर्लिन विश्वविद्यालय मे पढने के बाद डा० हुसैन का दृष्टिकोण जीवन और ससार के प्रति बहुत व्यापक हो गया। वर्षो बाद अलीगढ का पुराना मुस्लिम एग्लो ओरियटल कालेज अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय बना और डा० हुसैन इस विश्वविद्यालय के उपकुलपति भी बने। शिक्षा के क्षेत्र से उनका इतना मोह था कि वे मुस्लिम विद्यालय को राजनीति का अखाडा होते हुए भी न छोड सके। जहा तक सभव हुआ उन्होने अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय को ऊंचा उठाने और साम्प्रदायिक सकीर्णताओ से निकालने की कोशिशें की। उनका राष्ट्रीय शिक्षा को उन्नत करने का सकल्प और गाधीजी का आदेश पूरा हुआ।

आज भी राष्ट्रपति पद पर पहुँचने के बाद उन्होंने गाधी के आदर्शो को दोहराया और गाधी युग के एक अनमोल मोती होने का परिचय दिया "मैंने जनसेवा का जीवन गाधी के कदमो मे रह कर शुरू किया था। गाधी जी आज तक मेरे जीवन की प्रेरणा के स्रोत हैं। साधन और साध्य की पवित्रता मे विश्वास रखने वाले—गाधी जी के बनाए हुए मार्ग पर चल कर मैं जनता की सेवा कर सकू और

जनता को उनका मार्ग सुझा सकूं इसी में मेरा जीवन धन्य होगा और यही मेरी कामना है । दलित और पिछड़े हुए लोगो के प्रति गाधी जी की सहानुभूति थी और वे विभिन्न जाति, धर्म और सम्प्रदायों के भारतवासियो के बीच एकता लाना चाहते थे । आज मेरा भी वही रास्ता है, वही मजिल है ।

शौक और दिलचस्पियाँ

जाकिर साहब की पसन्द और शौक भी बडे लाजबाब है । उन्हे सुन्दर लिखावट से बड़ी मुहब्बत है । हाथ के लिखे हुए खूबसूरत खत को वे टाइप और छपे हुए मजमून से बेहतर समझते है । गालिब की गजलो और नज्मो को उन्होने स्वय खुशखत मे लिखकर पेश करदा सस्करण में प्रकाशित किया । उनकी लिखावट बहुत ही सुन्दर है । साथ ही उन्हे उर्दू की लिपि और काव्य से भी उतना ही लगाव है । दोस्तो को चिट्ठिया भी वे हाथ से लिखकर भेजना पसद करते है । उर्दू के अलावा हिन्दो से भी उनका उतना ही प्रेम है । स्वय एक अच्छे हिन्दी दा है । वे हिन्दी और उर्दू को भारतीय जनमानस की गगा जमुना मानते है । उनका नक्काशियो के नमूनो को सग्रह करने का शौक भी जबरदस्त है । पत्थर और लकड़ी पर नक्काशी का काम उन्हे लुभाए बिना नही रहता । सगीत मे भी उनकी उतनी रुचि है जितनी कि काव्य और साहित्य मे । हम यह कह सकते है कि वे साहित्य, सगीत और कला के सच्चे प्रेमी, पारखी और कद्रदा है । किसी देश का राष्ट्रपति इतना कलाप्रेमी हो, फिर उस देश मे कला, साहित्य और जीवन की अनेक सुन्दर विद्याओ का विकास हुए बिना कैसे रह सकता है ।

उनके जीवन के कुछ रचनात्मक पहलू भी है । बागबानी का शौक भी ऐसा ही दिलचस्प शौक है । अब भी जाकिर साहब का मन करता है कि वे स्वय फावडा उठाकर बगीचे में बागबानी का काम करे । बाग में जब फूल खिलते है और कलिया मुस्कराती है तो उन्हे लगता है कि इन फूलो मे खुदा की कुदरत और बागवा की मेहनत मुस्करा रही है । उनका एक ऐसा हो रचनात्मक शौक साहित्य सृजन का भी है । शिक्षाविद् होने के नाते वे आरम्भ से ही पुस्तकों के हमजोली रहे है । उन्होंने स्वयं अनेक विषयो पर किताबे लिखी और उच्च कोटि के साहित्य की रचना की । उन्होने अनेक कृतियो का उर्दू में तर्जुमा भी किया जिसके कारण श्रमजीवी लेखक जगत मे उनका नामक रौशन हुआ । राजेन्द्र बाबू, डा० राधा-कृष्णन, नेहरू जी और गाधी की परम्परा मे हमारा मौजूदा राष्ट्रपति भी एक योग्य विचारक और लेखक है, इसे हम नही भूल सकते ।

प्लेटो के 'रिपब्लिक' का तजुर्मा 'शाहकार' नाम से तथा राजनीति और दर्शन की कई किताबो को उन्होने अग्रेजी से उर्दू मे अनुवाद किया है । कई किताबे अग्रेजी में भी लिखी है । उनका गृहस्थ जीवन बेगम शाहजहा और दो पुत्रियो के साथ बड़े सुख मे बीता है । मै उनकी सफाई पसदगी की भी दाद दिये बिना नही रह सकता । एक बार उन्होने किसी लड़के को गन्दी टोपी लगाये देखा तो वे उसे घर ले आये । घर आते ही उन्होने खुद साबुन से उसकी टोपी धोई और उस पर प्रेस कर दी । फिर उससे कहा, यह लो अब यह साफ हो गई, इसे पहन लो । यह देख कर लड़का शर्म से गड गया । वह उनके घर से सफाई का एक ऐसा सबक लेकर गया जिसे वह जिन्दगी भर कभी नही भुला सका ।

नेहरू जी की नजर

सभी मानते है कि नेहरू जी की नजर वडी पैनी थी। गाधीयुग का यह अनमोल मोती उनकी नजरो से कव तक छिपा रह सकता था। तत्कालीन शिक्षा मन्त्री मौलाना आजाद के जमाने मे जव डा० हुसैन अलीगढ मुस्लिम यूनिवर्सिटी के उपकुलपति वने तो उन्हे राज्य सभा का सदस्य वना लिया गया। ५५ वर्ष की उम्र मे वे राजनीति मे फिर आ गये। यह तो सिर्फ आगाज था। नेहरू जी के जहन के मुताविक तो उन्हे अभी वहुत कुछ वनना था। कुछ समय विहार के राज्यपाल रहने के वाद एक स्पष्ट विचारक और अल्पसख्को के प्रतिनिधि के नाते उन्ह डाक्टर राधाकृष्णन् की जगह भारत का उप-राष्ट्रपति वना दिया गया।

डा० हुसैन को नेहरू जी एक सच्चा गाधीवादी, राष्ट्रभक्त और विचारक मानते रहे। पहली वार जव डा० हुसैन गाधी जी की अध्यक्षता मे भाषण दे रहे थे तभी जवाहर लाल नेहरू और जिन्ना ने उनकी आवाज मे एक हमदर्दी और दर्द महसूस किया। उन्होने अपने भाषण मे देश द्रोही और साम्प्रदायिक तत्वो को करारी फटकार लगायी। "आपसी द्वेष और वैमनस्य हमे घेरे हुए है। इसने हमारी संस्कृति की प्रगति की धारा को रोक रखा है। ऐसी हालत मे शाति और अहिसा की वात पागलो के अट्टहास जैसी लगती है। मुझे लगता है कि फूट और घृणा की आग यदि इसी तरह जलती रही तो एक दिन मानवता को खाक मे मिलाकर रहेगी।" नेहरू जिन्ना दोनो उनकी अपील को सुन कर एक वार सिहर उठे।

आज भी उनके स्वर मे ऐसा दर्द है, सत्य और अहिसा की गहराई है। लेकिन अव गाधी युग के अनमोल मोती नही मिलते। काल का विकराल सागर गाधी युग के सच्चे मोतियो को निगल गया। कुछ भूले-भटके मोतियो मे हमे डाक्टर हुसैन दीख पडते है। राष्ट्रपति के पद पर उन्हे देखकर उनके पिछले जीवन की सादगी भरी तस्वीर दिमाग मे घूम जाती है जव वे एक शिक्षक की हैसियत से देश की हर नयी पीढी को सवारा करते थे। आज सारा देश उनका घर और परिवार है जिसे संवारने का दायित्व उन पर आ पडा है। डा० हुसैन हमारी लोक तान्त्रिक पद्धति और धर्म निरपेक्षता के सच्चे आदर्श है। ईश्वर इन्हे चिरायु करे। ●

कार्यकी की महत्ता

कार्यमूलक शिक्षा के विषय मे डा० जाकिर हुसैन का यह कथन विचारणीय है कार्य शिक्षा का एक मात्र यत्र न सही, एक अत्यन्त आवश्यक यत्र जरूर है। हमारे देश के अधिक से अधिक लोगो के भाग्य मे कठिन और दुरुहशारिक परिश्रम का काम वदा है फिर भी दुर्भाग्यवश कोई भी नही कह सकता कि उनको अच्छी शिक्षा दी गई है, यह और वात है कि उनमे से कई लोग विना साक्षरता की छायावापूर्ण कुशलता प्राप्त किये ही अनेक शिक्षित कहलाने वालो मे कही अच्छे है।

अच्छे साथी

सयैद अहमद अली

यह एक वास्तविकता है कि जाकिर साहब ने मेरे जैसे कितने ही आदमियो को काम का आदमी बना दिया। वरना आदमी मे कितना भी जोश हो, उत्साह हो, काम करने की उमग हो, अच्छा पथ प्रदर्शन न मिले तो यह सारा उत्साह ठन्डा पड़ जाता है और काम करके भी साधारणतया निराशा से ही पाला पड़ता है।

जामिया मीलिया इस्लामिया के प्राथमिक काल में इसके काम को बढाने मे, लोगो में इसे प्रिय बनाने के लिए सच्चे दिल से काम करने वालो की जरूरत थी। जाकिर साहब ने ऐसे सच्चे और लगन से काम करने वालो का दल इकट्ठा कर लिया था। इन काम करने वालो मे मुमकिन है कुछ खामियाँ हों, कुछ ऊच-नीच हो। वे सब काम को जामिया का काम समझ कर करते थे और लगन से करते थे। उनका विरोध और उनकी आपस मे लडाई काम को अच्छे ढग से करने के लिए होती थी। यह विरोध और लड़ाई जाकिर साहब के परामर्श से खत्म हो जाती थी। जाकिर साहब अपने परामर्श से सबको सन्तुष्ट कर देते थे और काम को बिगडने नही देते थे।

जाकिर साहब आदमियों की प्रकृति को समझते थे, काम लेना जानते थे और अपने पथ प्रदर्शन से साधारण योग्यता के मनुष्य से उसकी योग्यता से अधिक काम ले लेते थे। काम सुपुर्द करके बेखबर नही हो जाते थे। काम करने वाले का काम देखते रहते थे, और साहस बढ़ाते रहते थे। अगर काम उचित ढग से नही होता तो टोकते थे। सही परामर्श देते थे, काम करने वाले को सही रास्ते पर डालने की कोशिश करते थे। उनके

इसी पथ प्रदर्शन से कितने ही आदमी काम के बन गये। और जामिया का काम बढ़ गया।

वे बच्चों को दण्ड देने के घोर विरोधी थे। पर आप जाने, इन्सान तो फिर इन्सान है। एक बार पाठशाला के किसी बच्चे को उन्होंने बेत की सजा दी। लेकिन बाद में उनको पछतावा आया। लज्जा आई। और इतनी लज्जा कि अपने हाथ से क्षमायाचन पत्र लिख कर स्थान-पट्ट पर लटकवाया।

जाकिर साहब का कहना था कि काम को भगवान् की प्रार्थना समझ कर करो। अर्थात् जो काम आरम्भ करो उसमें पूरी तरह लग जाओ तभी काम का हक अदा होगा। लोग इस पर अमल करते थे और दिन रात काम में लगे रहते थे। मैंने देखा है कि पहली और दूसरी कक्षाओं के बालक अपने काम में ऐसे लगे रहते थे और ऐसा अच्छा काम करते थे कि अक्सर देखने वालों को शक होता था। वे हैरान होकर पूछते थे कि भला पहली और दूसरी कक्षा के बालक भी ऐसा काम कर सकते हैं? हम सब उस्तादों को विश्वास होने लगा था कि पहली और दूसरी कक्षाओं में भी अच्छे स्तर का काम कराया जा सकता है।

जाकिर साहब सिर्फ कहते ही नहीं थे, जो कहते थे उस पर अमल भी करते थे। कई वर्ष तक वे प्रारम्भिक अंग्रेजी की क्लास लेते रहे और व्यस्तता के होते हुए भी इसकी सारी जिम्मेदारियों को निभाते रहे। वे अंग्रेजी की कक्षा उस प्राथमिक पाठशाला पढ़ाते थे में जहां अब्दुल गफ्फार साहब प्रधानाध्यापक थे। गफ्फार साहब एक-एक सेकिण्ड का हिसाब करते थे। जाकिर साहब की वक्त की पाबन्दी से वे भी सन्तुष्ट थे।

जाकिर साहब ने प्रारम्भिक पाठशाला मे काम करके प्राथमिक कक्षाओं के अध्यापकों के दिल से यह बात निकाल दी कि 'मैं क्या मेरी औकात क्या मैं तो प्रारम्भिक कक्षा का एक अध्यापक हूँ।" हममें से किसी के मन में छोटे पने का विचार नहीं रहा। बल्कि हम प्राथमिक पाठशाला में काम करना गौरव की बात समझने लगे।●

स्कूल कैसे हों

केवल किताबी शिक्षा वाले स्कूल हमारे बहुसंख्यक छात्र-छात्राओं के जीवन में सहायक होने वाले स्कूल नहीं है। उनके लिए तो वह स्कूल होना चाहिए जहाँ शैक्षिक क्रिया का मुख्य साधन हस्तशिल्प है।

—डा० जाकिर हुसैन

साहित्यकार डा० हुसैन

प्रो० मोहम्मद सरूर

डा० जाकिर हुसैन को एक जमाने से देश के लोग जामिया मिलिया इस्लामिया देहली के शेख-उलजामे यानी प्रिंसिपल की हैसियत से जानते आए है। इधर दो-तीन वर्ष से वर्धा शिक्षा योजना या सही मानो मे बुनियादी शिक्षा योजना के बनाने वालो के अध्यक्ष रूप मे भी डा० जाकिर की बहुत चर्चा हुई है। योजना के समर्थको ने उन्हे भारतवर्ष का सबसे बडा शिक्षाविद् माना और इसके विरोधियो ने इन्हे जो उनके जी में आया, कहा। विरोधी सबके सब मुसलमान थे और शायद डा० जाकिर के व्यक्तित्व से उनको बड़ा प्यार भी था और वे इनकी खूबियों और बलिदानों को भी मानते थे, लेकिन प्रश्न था इनके नजदीक तमाम मुसलमान कौम का और विरोधियो का कहना यह था कि बुनियादी शिक्षा योजना से मुसलमानों की कौमी जिन्दगी को सख्त नुकसान पहुंचने का खतरा है। बहरहाल यह समस्या एक हद तक शिक्षा सम्बन्धी है और बहुत हद तक राजनीतिक। दोनो पक्ष बडी ईमानदारी से अपने आपको सही मार्ग पर समझते है। हम यहा डा० जाकिर की सिर्फ उस हैसियत पर बहस करना चाहते है जिस पर किसी को कोई मतभेद नही हो सकता और वह है डा० जाकिर साहब एक साहित्यकार के रूप में।

उन्हे शेख-उलजामे और बुनियादी शिक्षा योजना के अध्यक्ष के नाम से तो शायद ही कोई पढा-लिखा हो जो न जानता हो, परन्तु यह कि डा० जाकिर हुसैन एक अनुपम वक्ता और अद्वितीय साहित्यकार भी है, बहुत ही कम लोगो को मालूम होगा। स्वभाव की दृष्टि से वे अकेले रहना पसन्द करते है। वे खिलाफत आन्दोलन के दौर की उपज है और

इसी बात ने इनके मन मे हगामो से घृणा तथा इश्तहार बाजी से नफरत पैदा कर दी है। वे जलसों मे नही बोलते और न प्रसिद्धि के लिए लिखते हैं। इससे यह न समझा जाय कि वे गुमनाम रहना चाहते है या उन्हे अपने बडप्पन का अहसास नही। बात यह है कि आजकल शोहरत की दुनिया मे खोटी-खरी चीजे बाह्य सज-धज से दृष्टि को चकाचौध कर रही है। उन्हे इस राह से लोगो के सामने आना पसन्द नही। वे बदलते हुए मूल्यो के कायल नही। वे स्थायी मूल्यो को मानते है और उन्ही पर अपनी कीर्ति की बुनियाद रख रहे हे। डा० जाकिर के व्यक्तित्व के ये जौहर आपको इनकी वक्तृताओ तथा लेखो मे मिलेंगे और इसलिए जरूरत है कि हम इन को एक साहित्यकार के रूप मे जाने और समझे।

यहा हम डा० जाकिर के साहित्यिक व्यक्तित्व का विश्लेषण नही करेगे। यह बहस हम किसी अन्य समय के लिए उठा रखते है। वे क्या है, यह हम इस वक्त नही बता सकते। हा, वे क्या कहते है, यह हम यहा बताना चाहते है। डा० जाकिर उर्दू मे लिखते है और उर्दू हो बोलते है। और अंग्रेजी बोलते या लिखते है, तो जरूरत के वक्त। उनका खास विषय, जिसमे उन्होने बर्लिन यूनिवर्सिटी से पी-एच०डी० की डिग्री ली, अर्थशास्त्र है। परन्तु उनका अध्ययन बहुत व्यापक है। यही कारण है उनकी वक्तृता मे सिर्फ किताबी बाते ही नही होती, परन्तु जीवन के उतार-चढाव भी होते है। डा० जाकिर अत्यन्त सवेदनशील हैं और उनकी विचार-शक्ति बडी प्रौढ है। इसकी उडान आसमान से भी बहुत दूर परे तक जाती हे। इस तबियत का आदमो अक्सर तथ्यो के मुकाबले मे अपनो कल्पनाओ की दुनिया बना लेता हे। उलझनो और गुत्थियो को वह नही समझता। डा० जाकिर इस बात से वाकिफ थे। उन्होने जबरदस्ती तथ्यो की दुनिया मे अपनी जगह बनायी और कई साल तक, साहित्यजगत मे विचरण किया या दूसरे ठोस जीवन को अपनी सक्रियता का केन्द्र बनाया। बरसो वे जामिया मिलिया इस्लामिया के प्रिंसिपल रहे। प्रिंसिपल के मानी ये नही कि वे सिर्फ शिक्षा की देखभाल करते थे, बल्कि उनकी हैसियत एक ऐसे माली की थी, जो खुद ही जमीन तैयार करता है, पानी का भी इन्तजाम करता है, बीज का चुनाव भी उसी के जिम्मे हे और बाग की हिफाजत और निगरानी भी उसी का काम है। जाहिर है, जो माली यह करेगा उसकी नजर कितनी यथार्थवादी और व्यवहारिक होगी।

डा० जाकिर का अधिकाश समय जामिया के इन्तजाम और जामिया के बाहर के शिक्षा सबधी मामलो को सुलझाने मे व्यय होता था, जिसके कारण पढने के लिए बहुत कम समय मिलता है और लिखने के लिए इससे भी कम।

उनकी वक्तृताए अधिकतर जामिया की मजलिसो या जलसो मे होती। कोई इनको लिखता नही। हा, इनकी रचनाए पत्रिकाओ मे या पुस्तको मे प्रकाशित हो जाती थी। एक मुद्दत तक वे रिसाला जामे मे "रफ्तारे जमाना" के शीर्षक से कुछ न कुछ लिखते थे। यूरोप और अन्य देशो की राजनीति पर इससे बेहतर उर्दू मे शायद ही लिखा गया हो। ये विषय यद्यपि सामयिक होते, लेकिन जिस ढग से इन पर वे लिखते थे, उनके कारण ये सामयिक विषय स्थायी बन जाते थे। बच्चो के लिए आपने छोटी-छोटी कहानिया भी लिखी है। भाषा बिल्कुल बच्चो की है और विषय भी बच्चो की पसन्द का। लेकिन बात इतनी गहरी रह जाती है कि बडे भी पढकर सोचने लग जाते है। एक कहानी "माँ" है। माँ की ममता की तस्वीर शायद ही दुनिया के किसी साहित्य मे इतनी प्रभावशाली खीची गई हो। मुर्गी अजमेर चली,

उकाब, छिद्दू, इत्यादि कहानिया मकतबा द्वारा प्रकाशित हो चुकी है। अर्थशास्त्र पर भी उनकी एक पुस्तक है। उन्होने यह निबन्ध वास्तव मे हिन्दुस्तानी अकादमी इलाहाबाद के किसी जलसे मे पढा था। पुस्तक के नाम से यह न समझ लिया जाय कि यह अर्थशास्त्र की कोई पाठ्य पुस्तक है। काले मार्क्स के भौतिकवादी दर्शन से यह विश्वास आम हो चला है कि तर्क ही एक ऐसी कसौटी है जो इन्सान की जिन्दगी के सारे स्तरो की मालिक है। विश्वास और सवेग जिनकी बुनियाद खालिस तर्क पर न हो, वे ध्यान देने योग्य नही। लेखक ने इस पुस्तक मे विस्तृत विचार किया है। लेकिन डा० जाकिर का असली कारनामा जो उनके साहित्यिक जीवन को अमर बनाएगा, वह उनका अनुवाद है प्लेटो की प्रसिद्ध पुस्तक "स्टेट" का। प्लेटो और अरस्तू हजारो वर्ष से दुनिया के विभिन्न राष्ट्रो के दिलो और दिमागो पर हकूमत करते चले आ रहे है। मुसलमान दार्शनिक तथा सूफी दोनो इनसे प्रभा वत हुए। डा० जाकिर स्वभाव की दृष्टि से अफलातूनी है। "स्टेट" की भूमिका पढिए तो मालूम होता है कि प्लेटो खुद बोल रहा है। और पुस्तक पढे तो अनुवाद नही प्रतीत होता। लेखक और अनुवादक मे अन्तर करना मुश्किल है और अफलातून की "स्टेट" डा० जाकिर हुसैन की "स्टेट" बन गयी है। अनुवाद की खूबी यह है कि वे विचार डा० जाकिर के खुद अपने मालूम होते है यानी इनकी अपनी बात है, जो वे अपने मित्रो और शिष्यो से कह रहे है, वही बात है, कहने का वही ढग है। अगर हम आवागमन को मानते तो जरूर कहते कि अफलातून की आत्मा ने दुबारा "स्टेट" के उर्दू अनुवादक के रूप मे जन्म लिया है।●

स्कूलों के तीन लक्ष्य

डा० जाकिर हुसैन ने कल्याणकारी राज्य की उद्देश्य पूर्ति के लिए अनिवार्य सार्वजनिक स्कूलो के ३ लक्ष्य बताये है।

१. नागरिक को किसी उपयोगी काम की शिक्षा देना ताकि सामर्थ्य और सम्मान के अनुकूल वह समाज मे अपना निश्चित कर्त्तव्य निभा सके, २ व्यायसायिक शिक्षा को एक नैतिक अनुभव का रूप देना और विद्यार्थी का यह समझाना कि कोई व्यवसाय केवल जीविकोपार्जन का साधन नही, बल्कि सगठित, सहयोगी समुदाय मे जन सेवा का कर्त्तव्य है तथा ३ समाज के विकसित होते हुए सदस्य (विद्यार्थी) मे यह इच्छा जगाना और इसके लिए उसमे शक्ति बढाना कि वह अपने निजी नैतिक व्यक्तित्व को तैयार करने वाली लम्बी तथा सुन्दर यात्रा शुरू करे और इस व्यक्तित्व को अपने समाज को नैतिक सपूर्णताओ के लिए लागू करे।

जामिया और जाकिर साहब

सईद अन्सारी

सन् १६२१ या २२ का जमाना था। मै जामिया मे दाखिल होने अलीगढ आया। मेरा प्रवेश विशेष कक्षा मे हुआ। यह विशेष कक्षा उन लोगो के लिए थी जो किसी दूसरे मदरसे से हाई स्कूल पास करके आते थे। उन्हे अरवी और इस्लाम की शिक्षा के लिए विशेष कक्षा मे प्रवेश लेना पडता था। जाकिर साहव इस वक्त एम० ए० के विद्यार्थी थे, मगर जामिया के स्टाफ मे शामिल थे। इतना होते हुए भी उनका मिजाज सादा और रहन सहन वनावटी नही था। अध्यापक और विद्यार्थी मे कोई अन्तर या भेद नजर नही आता था। हम सव एक ही वोर्डिग मे रहते थे जो इस समय वगाली कोठी के नाम से प्रसिद्ध था। जामिया के इस प्रारम्भिक समय मे मुस्लिम विश्वविद्यालय से एक खीचतान सी चला करती थी। जामिया वालो को हर समय चौकन्ना रहना पडता था।

जाकिर साहव दिन रात इस कोशिश मे लगे रहते थे कि इस नये शिक्षा केन्द्र को किसी प्रकार की हानि या नुकसान न पहुँचे। वे दोनो शिक्षा केन्द्रो मे समान प्रिय और विश्व-सनीय थे इसलिए इधर से उधर आने जाने पर पावन्दी या रोक टोक न थी।

रहन-सहन और खान-पान मे भी वे वोर्डिग की पावन्दियो से विल्कुल स्वतत्र थे। कभी-कभी तो रात के १ या २ वजे तक आते थे और आते ही सो जाते थे। खाना यूंही रखा रह जाता था। कभी सवेरे तडके विना नाश्ता किये निकल जाते और चाय इनके इन्तजार मे पडे-पडे ठण्डी हो जाती थी ये सव कुछ कोशिशें केन्द्र को मजवूत वनाने के लिए की जा रही थी और कोई उद्देश्य न था।

जाकिर साहब जहाँ बाहर के मामलो में हरवक्त भाग-दौड़ करते रहते थे वहाँ जामिया के भीतरी जीवन में भी वे उसके प्राणो से कम न थे। शिक्षा सभाओ, उत्सवो या विद्यार्थियो के कार्य में वे एक सी रुची लेते थे।

इस समय विद्यार्थियों का एक 'पर्चा' निकलता था। इसका नाम शायद रशीद अहमद सिद्दीकी की वजह से 'उल रशीद' था जो बाद में मौलाना मौहम्मद अली 'जौहर' के नाम पर "जौहर" हो गया था। जाकिर साहब के छोटे भाई मौहम्मद हुसैन खा (इस समय स्कूल में पढते थे) इस पर्चे के सम्पादक थे लेकिन असल काम विद्यार्थी करते थे। मै उस वक्त सुन्दर लेखक माना जाता था। इसलिए मेरा सम्बन्ध इस पर्चे से दुहेरा था। अर्थात् लेख भी लिखता था और पर्चे के लिए सग्रह भी करता था।

यह पर्चा विषय और ढंग के लिहाज से कैसा भी रहा हो, इसे अगर जाकिर साहब का आशीर्वाद प्राप्त न होता तो उसका प्रिय होना तो बड़ी बात थी, जिन्दा रहना भी मुश्किल था और जामिया के इतिहास मे वह जगह हासिल न होती जो आज है।

इस पर्चे ने डा० साहब की दिलचस्पी के अनुसार भिन्न-भिन्न शक्ले ली। सालाना इम्तहान के नतीजे जब शिक्षा सभा से स्वीकार हो जाते तो रजिस्ट्रार का दफ्तर इसके पूर्व कि पट्ट पर लगाये इसकी एक कॉपी जाकिर साहब चुपके से लाकर पर्चे के सम्पादक को देते और रजिस्ट्रार साहब के परीक्षाफल घोषित करने से पूर्व लड़के अपने नतीजे इस पर्चे मे देख लेते। विद्यार्थी अपने नतीजे का इन्तजार जिस बेचैनी से करते है इसका अन्दाज वही कर सकता है जिसने अखबारो के दफ्तरो के सामने लडको की भीड़ देखी है।

जाकिर साहब "जौहर" निकलते ही बड़े शौक और दिलचस्पी से पढते। प्रारम्भ से अन्त तक पढते। पर्चे में विद्यार्थियो की कुछ शिकायतें लिखी होती और जामिया के प्रबन्ध की भलाई के लिए प्रस्ताव होते, वे उन्हे बहुत होशियारी के साथ जामिया के प्रबन्धको के सामने लाते, उन्हे मनवाने की पूरी कोशिशे करते। इस प्रकार इस पर्चे को विद्यार्थियो का प्रतिनिधि बनाने मे इनका बडा हाथ था।

जाकिर साहब जामिया को अपने ढग का असाधारण, अनोखा शिक्षा केन्द्र बनाने के लिए ऐसे शिक्षा सम्बन्धी और शैक्षनिक कार्यो को बढावा देना चाहते थे जो दूसरे शिक्षा केन्द्रो में नही होते। इसकी एक छोटी सी मिसाल 'जौहर' है। जिसकी जाकिर साहब इतनी मदद और हिमायत करते थे यह पत्र कलमी था। पत्र के पाठक पढकर इसे पुस्तकालय मे रख देते थे। जाकिर साहब की इच्छा थी कि पत्र छपने भी लगे।

सन् १९२३ ई० में इण्डियन नेशनल काग्रेस का जलसा गया मे हुआ था। इस समय मे जामिया के विद्यार्थी इन कौमी जलसो मे बडी से बडी तादाद मे सम्मिलित होते थे। जाकिर साहब ने फरमाया कि अगर आप लोग पर्चे के खरीददारो की एक अच्छी सख्या इक्ट्ठी कर दे तो मैं शिक्षा सभा से एक छपे पत्र की स्वीकृत प्राप्त कर लूंगा।

जाकिर साहब का इतना इशारा काफी था, 'जौहर' के कार्य कर्ताओं की सभा इस काम मे जुट गई। उसने 'जौहर' के पुराने अ कों के अच्छे-अच्छे विषयो को चुना और इनका नाम 'मजामी ने

जौहर' और 'नकीवे जामिया' रखा। इसे अपनी कोशिशो से छपवाया और गया काग्रेस के जल्से मे ले गये। वहा इसे वेचा और एक अच्छी सख्या मे खरीददार मय पेशगी चन्दे के वना लाये।

जाकिर साहव जामिया मे एक अच्छा प्रेस कायम करने और उसे तरक्की देने मे भी वडी दिलचस्पी रखते थे। जामिया मे एक वुरा-भला छापाखाना था लेकिन जाकिर साहव ने अपनी कोशिशो से इसमे चार चाद लगा दिये। इसमे सवसे पहले तो मुल्क के एक अच्छे लेखक स्व० अली मौहम्मद खा को लगाया। वे केवल वडे अच्छे लेखक ही न थे वल्कि लीथो की छपाई के माहिर भी थे।

जाकिर साहव की एक तजवीज यह भी थी कि विद्यार्थी कोर्स की तालीम के अलावा कोई दस्तकारी भी सीखे। प्रेस और छापाखाने का काम भी इस सिलसिले मे आता था और विद्यार्थियो का एक दल इसे सीखता था। सयोग से इन दिनो पत्र 'जौहर' के ज्यादातर प्रबन्धक इस दल मे सम्मिलित थे। उन्होने जौहर के लिए विषय मजवून लिखने, पत्र का सम्पादन करने या क्रमानुसार करने का काम ही नही किया वे उसे खुद ही छापते भी और सम्वन्धित काम भी खुद ही करते थे।

अगर आपको 'मजाविन जौहर' या 'नकीवे जामिया' की कोई पुरानी-धुरानी प्रति कही किसी पुस्तकालय मे मिल जाय तो आप विद्यार्थियो के इस दल के शौक और हुनर मन्दी की प्रशसा करेगे। जिन्होने इसका टाइटिल दो रगो मे लीथो प्रेस में खुद अपने हाथ से छापा। छपाई के काम मे सूज वूझ रखने वाले तो इन विद्यार्थियो की बुद्धि और कारीगरी की प्रशसा किये वगैर नही रह सकते।

वात मे से वात निकलती है। जाकिर साहव की अच्छी सुन्दर रुचि का सावूत इस जमाने मे भी मिलता है। स्वर्गीय मुन्शी अली मौहम्मद खा साहव से उन्होने वहुत से पते और नज्में लिखवाई। इन पतो और नज्मो को अपने प्रेस मे खुश नुमा छपवाकर लोगो मे वटवा दिया करते थे।

इस समय मे डा० इकवाल की एक मशहूर नज्म की वहुत चर्चा थी। हर आदमी इससे प्रभावित नजर आता था। और झूम-झूमकर पढता था। जाकिर साहव ने इसका एक वन्द इन्ही स्वर्गीय अली मौहम्मद खा से लिखवाया। जामिया के प्रेस मे छपवाया। और विद्यार्थियो मे मुफ्त वटवा दिया। वटवाने का ढग भी वहुत अजीव और गरीव था। इस साल की ईद आई और सदा की भाति हर विद्यार्थी और अध्यापक इसकी तैयारियो मे व्यस्त हो गया। सुवह हुई और हर एक कपडे वदलने, नहाने धोने मे लग गया। नहा धोकर और कपडे वदल कर अपने कमरे मे आता है तो क्या देखता है कि उसके विस्तर पर 'तयामे अमल' के नाम से एक निहायत खुश नुमा ईद का तोहफा रखा है। यह डा० इकवाल की नज्म ही थी।

अच्छा अव अन्त मे जामिया के प्रारम्भिक दौर की एक और घटना सुनिये। सन् १९१६ की वात है। जाकिर साहव जर्मनी मे अपनी तालीम से निवृत होकर जामिया में काम करने और इसे नये सिरे से वनाने आये थे। यो पढाई-लिखाई के तरीको मे जो भी दुरुस्ती की हो। जामिया की शैक्षनिक जीवन को आगे वढाने और उन्नति देने के लिए उन्होने एक वडा काम किया। उर्दू एकेडेमी की वुनियाद डाली। इस एकेडमी को कायम करने का उदेश्य यह था कि दूसरी जवानो की विभिन्न पुस्तको का

अनुवाद उर्दू में छापा जाये। आवश्यकता हो तो हाशिये पर और नीचे नोट भी अपनी तरफ से दिये जाये।

इस केन्द्र में दो दोस्त मुकर्रर हुए। सईद अन्सारी दूसरे डा० अब्दुल अलीम अहरारी। लेखक को जान स्टूअर्ट मिल की मशहूर पुस्तक 'लिबर्टी' के अनुवाद का काम सौंपा गया। अली अहरारी साहब को 'मौहम्मद' और 'मौहम्मद आजम' के अनुवाद का काम दिया गया। यह मजबून 'एन साइकलो पीडिया' की नयी जिल्द में छपा हुआ था। और इसमें बहुत त्रुटियाँ थी। अलीम अहरारी साहब का काम इस मजबून का केवल अनुवाद करना न था। बल्कि उन त्रुटियो का उचित सशोधन भी था। इसके अतिरिक्त इस पर एक भूमिका भी लिखी थी। करीब दो साल तक हम दोनो इस काम मे लगे रहे। इस समय में जाकिर साहब जिस प्रकार से हमारे काम की देखभाल तथा पथ प्रदर्शन करते रहे वह बेमिसाल था। वह वक्त बेवक्त प्रायः हमारे कार्यालय में आ जाया करते थे। कभी नाश्ते में शरीक हो जाते तो कभी खाने मे। उस वक्त वे काम की गति और कठिनाइयो पर बातचीत करते और हम लोग कार्य के लिए नया उत्साह और उमग का कोष प्राप्त करते।●

निरंतर निर्माण

राष्ट्रीय जीवन की इमारत कभी पूरी नही होती। वह हमेशा बनती ही चलती है। उसका विकास और विस्तार होता रहता है। उसके बनावट के नक्शे की तफसील में हमेशा विस्तार की मांग होती है। उसके अगणित तत्वो का पारस्परिक सन्तुलन आवश्यक होता है, क्योकि उनमें से प्रत्येक एक दूसरे को प्रभावित करता है। प्रशासनिक इकाइयो के एकीकरण के साथ ही एकीकरण की पद्धति समाप्त नही हो जाती। .... यही निरन्तर पद्धति हमारे राष्ट्रीय अस्तित्व का मूलाधार है।

डाक्टर जाकिर हुसैन

हमारे जाकिर साहब

कर्तारसिंह दुग्गल

हमारे जाकिर साहब—जब भी उनका जिक्र होता है, मेरी पत्नी और मैं, कुछ इस तरह उन्हे याद करते है। इस अकथनीय अपनत्व की कहानी—यू लगता है मानो युग युग पुरानी है, पर यह इतनी पुरानी नही।

उन दिनो हम राची मे थे। जाकिर साहब बिहार के राज्यपाल थे। हमे राची आए हुए अभी बहुत दिन नही हुए थे कि पता चला बिहार के राज्यपाल राची मे गर्मिया बिताए गे। गवर्नमेन्ट हाउस राची रेडियो स्टेशन से चार कदमो की दूरी पर है।

रेडियो स्टेशन का निदेशक होने के नाते मुझे वैसे भी राज्यपाल को सलाम करने के लिए हाजिर होना था। मै खुश था कि गर्मियो मे मुझे पटना नही जाना होगा। अभी हमे कोई ढग का घर नही मिला था। नये स्थान, नये कार्यालय की और भी कई समस्याए थी।

राज्यपाल से मेरी भेट पहले से ही निश्चित कर दी गई। उनके राँची पहुँचने के दो एक दिन बाद ही मुझे बुलवाया गया। बिहार के राज्यपाल का सचिव उन दिनो एक फौजी अफसर था। बडे तपाक से मिला। जितनी देर तक पहला मुलाकाती अन्दर था, वह मुझसे इधर–उधर की बाते करता रहा "कोठी के लिए आपकी चिट्ठी आई हुई थी। अन्दर डाक्टर साहब से जिक्र कीजिएगा, मैं हाउसिंह मिनिस्टर को भिजवा दू गा।" मकान की हमे सचमुच बहुत तकलीफ थी। रेडियो स्टेशन के पास दो कमरो का एक फ्लैट मिला था। जिसमे गुजारा करना सम्भव प्रतीत नही होता था। "पिछले साल जब हम राची आए थे तो मुझे भी रेडियो

र बोलने" के लिए बुलाया गया था। एक रेडियो पर बोलने का मजा दूसरे पैसे। "मैने कहा–अब भी ाप जब चाहे तशरीफ लाएं, रेडियो स्टेशन आपका अपना है।" "अच्छा यह बताइये, रेडियो के डायरे-टर को तनख्वाह कितनी मिलती है? नौकरी तो बड़े मजे की है।" तनख्वाह की सुन कर मेरे हाथ ाव फूल गए। "रेडियो का काम बडा मनोरंजक है मगर तनख्वाह इस महकमे में कोई ज्यादा नही ।" बस इतनी ही! स्टेशन डायरेक्टर की तनख्वाह बस इतनी ही।" जैसे उसका मुह खुला रह गया। भी टेलीफोन की घटी बज उठी। वह टेलीफोन सुनने लगा। टेलीफोन की बात लम्बी होती गई। लीफोन का चोगा रख कर वह सामने पडी डाक देखने लगा। फिर कोई और मुलाकाती आ गया। ादमी ने एक विजिटिंग कार्ड उसके सामने ला रखा। कार्ड देखते ही उसने अरदली से कहा, "उनको न्दर भेज दो और सरदार साहब को वेटिंग रूम में बिठा दो। जब लाट-साहब फारिग हो तो मुलाकात रवा देना।"

जाकिर साहब से मेरी बात-चीत देर तक चलती रही। हम रेडियो की बाते करते रहे फिर ारणार्थियो की बाते शुरू हो गईं। फिर बंटवारे के दिनो मे फसादो की बाते। ......जाकिर साहब बताया कि कैसे वे कश्मीर से लौटते हुए फसादियो के हत्थे लगने लगे थे और जालधर के स्टेशन पर न्हे उतार लिया गया। कैसे वे सस्कृत के पडित डाक्टर सूर्यकान्त के यहा टिके रहे और फिर जब ालात बेहतर हुए, वे जालधर से निकल पाए। डाक–तार की व्यवस्था उन दिनो माकूल नही थी, उनके र वालों की जान इतने दिन अजाब में रही।

हम बाते कर रहे थे कि जाकिर साहब का सचिव एक फाइल उठाए अन्दर आया। उसे देख र जाकिर साहब ने सामने घडी की ओर निगाह डाली और फिर उठ कर मेरे से हाथ मिलाया और ुझे विदा किया।

कुछ दिनो बाद आकाशवाणी राची की ओर से एक सगीत सभा का आयोजन किया जा रहा ा। यह कार्यक्रम शहर के वैलफेयर हॉल में आमन्त्रित सगीत प्रेमियो के सामने प्रस्तुत होने जा रहा था। ाहर के सब कला प्रेमियो के साथ मैने गवर्नमेन्ट हाऊस में भी निमन्त्रण पत्र भेजे। क्योकि जाकिर साहब ाज्यपाल थे, मैने विशेष रूप से उनके सचिव को टेलीफोन किया। "लाट साहब के पास उन बातो के लेए कहा फुरसत है।" कुछ इस तरह का जबाब मुझे मिला। मैने कहा, "फिर भी आप उनसे जिक्र र दे कि उस्ताद अली अकबर खा तशरीफ ला रहे है।"

उसी शाम मेरे घर टेलीफोन आया–"लाट साहब आपकी सगीत सभा मे शामिल होगे। उनके ाथ उनके परिवार के कुछ लोग भी आएगे। जाकिर साहब सगीत सभा में पधारे। उनके साथ उनकी टी थी। कार्यक्रम के बाद अली अकबर से मिले। फोटोग्राफर उनकी तसवीरे खीचते रहे। अगले महीने ी सगीत सभा में बेगम अख्तर शामिल हो रही थी। डाक्टर साहब फिर आये। उससे अगले महीने ुशायरा हो रहा था। "भई, हर महीने यह कैसे मुमकिन होगा? जब मैने गवर्नमेन्ट हाउस टेलीफोन किया तो राज्यपाल के सचिव का बोलने का अन्दाज कुछ इस तरह था। मैने कहा, "फिर भी आप जाकिर साहब से इसका जिक्र कर दे।" टेलीफोन किए हुए अभी कोई आध घन्टा वीता होगा कि गवर्न-मेन्ट हाउस से सन्देश आया कि राज्यपाल मुशायरे मे शामिल होने वाले शायरो को खाने पर बुलाना

चाहते है और उन्हे खुशी होगी यदि मैं भी उनके साथ आ सकू । औपचारिक निमत्रण डाक द्वारा भेजे जा रहे है ।

वह साल, उससे अगला साल, गर्मियो में जाकिर साहब राची तशरीफ लाते और हमारे हर मास के विशेष आयोजन मे जहा तक सम्भव होता, जरूर भाग लेते ।

हम राची ही थे कि हमारी मित्र बेगम कुदसिया जैदी तशरीफ लाई । वे ठहरी तो राज्य भवन मे लेकिन दिन भर हमारे साथ ही रहती । बेगम जैदी का राची मे कई बार आना हुआ । जब वे राची मे होती, आउशा को राज भवन बेगम जाकिर हुसैन से मिलाने ले जाती । बच्चो को राज भवन बुलवा भेजती । हम सबको राज भवन की बनी ताजा जलेबिया बहुत पसन्द थी । राज्यपाल के सचिव की यह मुसीबत थी, कि एक सरकारी अफसर और उसके परिवार की राज्य भवन मे इस आवा-जावी का बार-बार राज्य भवन सर्कूलर मे जिक्र कैसे करे । अजीब मुसीबत थी बेचारे की ।

फिर जाकिर साहब उप राष्ट्रपति बन कर दिल्ली आ गए । मै एक बार दिल्ली दौरे पर आया । मैने टेलीफोन किया । उन्होने उसी शाम मुलाकात के लिए बुला लिया । फिर हमारा भी दिल्ली का तबादला हो गया । हम दोनो जाकिर साहब को सलाम करने के लिए उनके यहा हाजिर हुए । हर बार चाय-कॉफी का तकल्लुफ वे जरूर करते । कितनी देर तक बैठे हम राची के फूलो का, जगलो का, आदि-वासियो का, लोक गीतो का जिक्र करते रहे ।

फिर पिछले आम चुनाव मे देश को नया राष्ट्रपति चुनना था । जब मै कहता कि जाकिर साहब को राष्ट्रपति बनना चाहिए और कि वही राष्ट्रपति बनेगे, मेरे कई तरक्की पसन्द मुसलमान दोस्त भी मेरी बात सुन हँस देते । "बेशक लोकराज है लेकिन हिन्दू बहुमत वाले देश में राष्ट्रपति मुसलमान कभी नही बन सकता, प्रधान मत्री चाहे बन जाए ।"

मै झुझलाकर पूछता—"आखिर क्यो ?" इस 'क्यो' का कोई जवाब नही । "और फिर वह दिन आया जब मेरे वे सब दोस्त गलत साबित हुए ।" मैने कहा—हमारे देश का दिल अभी स्वस्थ है । अभी कुछ नही बिगडा । और उस शाम मैंने जाकिर साहब को लिखा—'हिन्दुस्तान के इतिहास मे कुछ एक ऐसे अवसर आए है, जिन पर कोई भी नाज कर सकता है । आज का दिन उन अवसरो मे से एक है ।'

दूसरे राष्ट्रीय पुस्तक मेले के उद्घाटन के लिए मेरा जी चाहता था कि जाकिर साहब आए । उनसे प्रार्थना की गई । उन्होने खुशी-खुशी स्वीकार कर ली । शर्त केवल एक थी कि उद्घाटन जैसी कोई चीज नही करेंगे । मैने कहा कि वे बस सबसे पहले दर्शक होगे । हमे हर बात मजूर थी । और फिर वे पुस्तक मेले को आरम्भ करने के लिए पधारे । किताबो के लिए किया गया इतना तकल्लुफ देख कर वे बहुत खुश हुए । भारतीय भाषाओ मे पिछले कुछ वर्षो मे प्रकाशित दस हजार पुस्तको की नुमाइश उन्होने देखी । बार-बार रुक जाते । किताबो को उलट पलट कर देखते । हिन्दी, अग्रेजी, असमिया, बगला और भारत की अन्य कई भाषाओ की पुस्तके ।

नुमायश देख चुकने के बाद, किताबों के स्टालो की ओर निकल गए । दो सौ स्टाल थे । हमारा इरादा था कि उन्हे दो चार स्टाल दिखा कर विदा कर दे । लेकिन वे तो एक के बाद एक स्टाल देख कर गद्-गद् हो रहे थे । बाई ओर के स्टाल देख कर दाई ओर चल दिए । जाकिर साहब का ए०डी०सी० बार-बार मेरे कानो मे कहता—"डाक्टर साहब की तबीयत ठीक नही । अब उन्हे चलना चाहिए ।" लेकिन वे तो रग बिरगे स्टाल, रग बिरगी पुस्तके देखते हुए आगे ही आगे बढते चले जा रहे थे । ए०डी० सी० परेशान था । फिर अचानक मेरे मु ह से निकला—"डाक्टर साहब ! मेले मे मकतबा जामिया का भी स्टाल है ।" "वह कहा ?" डाक्टर साहब इधर–उधर देखने लगे । मकतबा जामिया का स्टाल जरा आगे को था । ए० डी० सी० बार-बार मुझसे कहता कि वे थक गए है, लेकिन जाकिर साहब मकतबा जामिया का स्टाल देखे बिना कैसे रह सकते थे । और वे चलते–चलते वहा पहुँच गए । स्टाल के सामने खडे होकर, स्टाल के स्टाफ से मिल कर जैसे वे खिल गए हो । उनके अपने हाथो लगाई बेल मे जैसे फूल आ रहे हो । जितनी देर तक वे स्टाल के कर्मचारियो से बाते करते रहे, जितनी देर फोटोग्राफर उनकी तसवीरे खीचते रहे, उतनी देर उनका ए० डी० सी० मेरी ओर कनखियो से देखता रहा । बेचारा ए० डी० सी० ! ●

शिक्षा का काम

डा. जाकिर हुसैन का कहना है कि भारत मे शिक्षा के पुनर्निमाण के लिए सबसे पहले हमें इस आम धारणा को दूर करना चाहिए कि शिक्षा का काम इन्सान के खाली दिमाग मे सूचनाएं भरना है । न ही शिक्षा का अर्थ प्रसाधन करना तथा न ही इसका अर्थ किसी साफ–सुथरे स्लेट पर लकीरे खीचना है । इसका अर्थ यह भी नही कि किसी ऐसी प्रशिक्षण या प्रसाधन व्यवस्था को थोपा जाय, जो किसी औद्योगिक अथवा आर्थिक सर्वेक्षण या किसी विशेष राजनीतिक विचारधारा को सामने रख कर स्वेच्छाचारी ढग से निश्चित की गई हो । लोकतत्र में शिक्षा का मूल सिद्धान्त बच्चे के व्यक्तित्व के प्रति सम्मान की भावना रखना है । लोकतत्र का भविष्य ही बच्चे के पूर्ण विकास पर निर्भर करता है ।

इल्म की तलाश

मौलाना मेहर मोहम्मद हुसैन

आप जामिया मिलिया और काशी विद्यापीठ स्वतन्त्रता-सग्राम की यादगार है। अलीगढ महाविद्यालय के विद्यार्थी महाविद्यालय से निकल आये तो उन्होने इस समय के नेताओ से कहा हमने आपकी आवाज पर काम किया ? पर हमारी शिक्षा तो अधूरी रही जाती है। हमारे पढने लिखने का प्रवन्ध कीजिये। और यो जामिया मिलिया की नीव पडी।

अलीगढ महाविद्यालय छोडने वालो मे हमारे जाकिर साहव भी थे। और एक रूप से अपने साथियो में अगुआ जाकिर साहव ही थे। इस समय जामिया मे जाकिर साहव अध्यापक थे, मगर खुद की शिक्षा सम्वन्धी प्यास नही वुझी थी। वे और पढना चाहते थे। इसी सोच विचार मे थे कि वाहर से वाहर जाकर अपनी शिक्षा पूरी करले उनको एक अवसर मिल गया।

आप जानते है किसी वदनाम से वदनाम जाति मे भी सभी आदमी वुरे नही होते। अच्छे वुरे सभी प्रकार के लोग होते है। इस तूफानी काल मे भी जव अग्रेजो और हिन्दुस्तानियो मे इतनी तना वनी थी, एक अग्रेज अफसर था जिसका सम्वन्ध माल के विभाग से था। वह हिन्दुस्तानी विद्यार्थियो को अपनी जेव से छात्र वृत्ति देता था। एक वार इसी प्रकार के एक विद्यार्थी से उसकी वात चीत हो रही थी। वातो-वातो मे उसने कहा-'हिन्दुस्तानी विद्यार्थी पढनेसे घवराते है। जरासा वहाना मिलने पर पाठशाला से भाग निकलते है।' विद्यार्थी ने तुरन्त उत्तर दिया। ऐसा नही है। नियम को भग करने वालो और महाविद्यालय छोडने वाले विद्यार्थियो मे ऐसे छात्र मिल जायेगे जो शिक्षा की अच्छी खोज मे है।"

डा० जाकिर हुसैन व्यक्तित्व और विचार

अंग्रेज ने कहा—"ऐसे किसी एक विद्यार्थी से मुझे मिलाओ जिसे सचमुच पढ़ने का चाव हो ।" दूसरे दिन वह विद्यार्थी जाकिर साहब को अपने साथ ले गया । अंग्रेज अफसर ने जाकिर साहब को सर से पैर तक देखा और दो एक बाते की । कुछ बातो ही मे उसने जाकिर साहब की तीव्र बुद्धि और शिक्षा के प्रति रुचि का अनुमान लगा लिया । उसने जाकिर साहब से पूछा "आगे पढना चाहते हो ?"

जाकिर साहब ने उत्तर दिया, "अवश्य परन्तु कहा ।"

अंग्रेज अफसर ने कहा,—"यूरोप मे"

जाकिर साहब ने कहा, "मगर वहा कौन जाने देगा ?" सबसे पहले तो रुकावट पासपोर्ट की होगी ।"

अंग्रेज अफसर बोला, "तुम पहले यूरोप जाने की हामी भरो, पास पोर्ट का प्रश्न मुझ पर छोड़ो ।"

जाकिर साहब ने तुरन्त हामी भर ली ।

अंग्रेज अफसर ने अलीगढ के कलैक्टर को लिखा-अमुक विद्यार्थी के लिए यूरोप का पासपोर्ट बना दो । कलैक्टर ने पासपोर्ट तो बना दिया मगर केवल इंगलिस्तान का, पूरे यूरोप का नही ।

जाकिर साहब ने इसी को बहुत समझा और यात्रा पर रवाना हो गये । ज्यो ही इटली का बन्दरगाह आया, जहाज से उत्तर पड़े और जर्मनी की ओर रुख किया ।

परन्तु पासपोर्ट तो केवल इंगलिस्तान का था, जर्मनी में कैसे प्रवेश पा सकते थे ? अब क्या हो ?

इस पासपोर्ट के साथ जर्मनी में १५ दिन रहने की आज्ञा मिल सकती थी, वह उन्होने ले ली । जर्मनी मे पहुँचते ही जर्मन भाषा सिखाने वाली एक पाठशाला मे प्रवेश पा लिया और पन्द्रह–पन्द्रह दिन करके तीन माह मे इतनी जर्मन भाषा सीख ली कि महाविद्यालय मे प्रवेश ले सके । वह भी किसी प्रकार मिल गया ।

शायद आपके दिल मे यह प्रश्न उठे कि आखिर जाकिर साहब ने इंगलिस्तान को छोड़ कर जर्मनी क्यो अच्छा समझा ? साधारणतया इसके दो कारण मालूम होते है । एक तो यह कि जर्मनी मे शिक्षा का स्तर बहुत ऊँचा था, दूसरे जाकिर साहब के पास रुपया बस ठीक-ठाक ही था । इंगलिस्तान में तो अशर्फियो वाली बात चलती थी । जर्मनी मे यह बात नही थी । लडाई में हारने की वजह से इसके सिक्के का मूल्य गिर गया था । यहा यह थोडा सा रुपया इनके लिए बहुत काफी था । इसलिए उन्होने यहा बडे विश्वास से अपनी शिक्षा जारी रखी ।

होते-होते तीन वर्ष इसी प्रकार गुजर गए । इन तीन वर्षो मे जाकिर साहब पी एच० डी० की डिगरी प्राप्त करने के लिए प्रबन्ध लिखते रहे । इस पुस्तक को पूरा करने के लिए कुछ और जानकारी की जरूरत थी । यह जानकारी ब्रिटिश म्यूजियम लदन में प्राप्त हो सकती थी । लाचारी थी, जाना पड़ा ।

वही तीन साल पहले का पास पोर्ट लेकर लदन पहुँचे । वहा सवाल हुआ, तीन साल कहा रहे ? जाकिर साहब ने सीधा उत्तर दिया-जर्मनी मे सवाल हुआ, क्यो ? उन्होने-कहा शिक्षा की खोज मे । इससे अधिक पूछ-ताछ की नौबत नही आई । सी० आई० डी० की गुप्त रिपोर्ट मे लिखा था कि इस तीन वर्ष की अवधि मे विद्यार्थी केवल लिखता-पढता रहा है । राजनीतिक बातो से सम्बन्ध नही रखता है । सारा मामला समाप्त हो गया । लदन मे ठहरने की आज्ञा मिल गई ।

जाकिर साहब ने ब्रिटिश म्यूजियम से आवश्यक जानकारी प्राप्त की । जर्मनी जाकर अपनी पुस्तक समाप्त की और विश्व विद्यालय मे पेश की । विश्व विद्यालय ने बडे सम्मान के साथ पी एच० डी० की डिग्री दी और वे घर लौटे ।

और घर ? घर वही जामिया मिलिया, जिसे छोड कर शिक्षा की खोज मे वे जर्मनी गये थे । और फिर उन्होने हिम्मत, साहस, सचाई और लगन के साथ अपने इस प्यारे घर को सजाया ।●

पत्थर बेहतर !

शायर ने 'गुलो से खार अच्छे है, जो दामन थाम लेते है' कह कर फूलो से काटो को अच्छा बताया है, डाक्टर जाकिर हुसैन पत्थरो को बेहतर मानते हैं । उनका कहना है फूल मुझे पसन्द है, लेकिन पत्थर और भी ज्यादा अच्छे लगते हे । ये न किसी की बुराई करते है, न बदलते है, न धोखा देते हैं और वक्त पर मारने के काम भी आ जाते हैं ।

राष्ट्रपति जी

डा० महेश नारायण

१८ जनवरी १९६० को राज भवन, पटना का एक सरकारी लिफाफा मुझे मिला। उसमे राज्यपाल के सैन्य सचिव लेफ्टिनेट कर्नल शातिस्वरूप भटनागर ने यह सूचित किया था कि राज्यपाल जी ने २० जनवरी को साढे दस बजे दिन में आपसे मिलने की स्वीकृति प्रदान की है। कृपया कार्यक्रम की पुष्टि की सूचना शीघ्र दे। पढ कर आनन्द से पुलकित हो उठा। हस्ताक्षर (ओटोग्राफ) लेने के सिलसिले मे देश विदेश के अनेक महान् व्यक्तियो के निकट जाने का सुअवसर तो प्राप्त हुआ था, पर यह पहला अवसर था जब मैं एक राज्यपाल से उनके राजभवन में मिलूंगा। अनेक प्रश्न मन में उठे। किस वेषभूषा मे वहाँ जाना उपयुक्त होगा? कौन-कौन से प्रश्न उनसे पूछना उचित होगा? पहले वे पूछेंगे उसका ही उत्तर दूंगा या मुझे ही बातचीत आरभ करनी पड़ेगी? कितने समय मे अपना काम वहाँ खत्म करना चाहिये? इन अनेक प्रश्नों का समाधान मुझे ही करना था। निश्चित तिथि पर राजभवन पहुँचा। सतरी को अपना पत्र दिखा भीतर जाने की अनुमति पाई। सूचना मिलते ही उनके सचिव आये। मुझे एक आराम देह कमरे में बैठाकर राज्यपाल को मेरे आने की सूचना दे आये। तुरत बुलावा आया। एक बंद कमरे का दरवाजा खोल कर जब उन्होने मुझे भीतर आने का अनुरोध किया तो मैंने देखा वहाँ राज्यपाल के अतिरिक्त और कोई नही है। मुझे भीतर कर दरवाजा बंद हो गया। राज्यपाल एक बड़े टेबल के सामने बैठकर लिख रहे थे। नजर मिलते ही मैंने दोनो हाथ जोड़कर प्रणाम किया। हाथ जोडकर ही उन्होंने अभिवादन का उत्तर दिया एव सकेत किया अपनी दाहिनी ओर कुर्सी पर बैठ जाने

था । मेरी उनकी दूरी कोई एक हाथ से भी कम ही की रही होगी । प्रश्नो की एक सूची मै अपने साथ लेता गया था । पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित अपने लेखो की कटिग भी, जिनमे अधिकाश सस्मरण ही थे । अनुमति पाकर एक-एक प्रश्न अपनी तालिका से पूछता गया और वे विनम्र, शात भाव से सबो का सतोष जनक सक्षेप मे उत्तर देते गये । एक प्रश्न मेरा यह था कि सरकारी नौकरो के खिलाफ झूठ-मूठ भी बहुत से आरोप लगते रहते है जिससे उन्हे बहुत परेशानी और कभी-कभी मानहानि का भी सामना करना पडता है । अफसर अगर गलती पर है तो उसको बदली, बरखास्तगी और मुअत्तिल या अन्य कोई दंड दिया जा सकता है । पर अगर अभियोग गलत हुए तो कोई दड क्यो ? वे कुछ सेकिण्ड मौन रहे, जैसे इस पर कुछ विचार कर रहे हो फिर बोले, पहले से अब यह बहुत कम हो गया है और कम होता जायगा । मेरा दूसरा प्रश्न था, जनता कहती है कि राज्यपालजी खलीफा हारूरशीद के समान भेष बदलकर उनकी तकलीफो को खुद देखे और उनका निवारण करे । इस पर वे तुरन्त बोले, जैसे इस पर उत्तर उनके पास पहले ही से तैयार हो,—खलीफा हारूरशीद की बादशाहत चलती थी । पर यहा विधान के अनुसार मुख्य मत्री और मत्रि मडल ही सारी चीजो के लिये जिम्मेवार होते है । राज्यपाल की आवश्यकता तो वही पडती है जहा मत्रिमडल मे कुछ हिच हो या गडबडी पैदा हो जाये । मेरे पास जो भी आवेदन आते है मैं सबधित मंत्री के पास ही भेज देता हूँ । ऐसा कह वे चुप हो गये । भारतीय शासन विधान मे राज्यपाल की कैसी दयनीय स्थिति है । सब कुछ देखते और जानते हुए भी वह कुछ कर नही सकता । स्थिति देख मैने कुछ और प्रश्न करना उचित नही समझा । अ तिम काम था अपनी हस्ताक्षर पुस्तिका मे उनके हस्ताक्षर करा लेना या कुछ आदर्श वचन लिखा लेना । उसमे महात्मा जी, जवाहरलाल जी, राजेन्द्र बाबू, सुभाष बाबू, डा० राधाकृष्णन्, मालवीय जी, जयप्रकाश नारायण, विजय लक्ष्मी पडित, कमला नेहरु, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, राजा जी, एम० एन० राय, आचार्य कृपलानी, भूलाभाई देसाई, सरोजनी नायडू, राहुल साकृत्यायन, मैथिलीशरण गुप्त, दिनकर जी, बच्चन जी, पत जी प्रभृति नेताओ और साहित्यकारो के हस्ताक्षर सग्रहित हो चुके थे । इसी उद्देश्य से अपनी वह कॉपी उनकी ओर बढा दी । पर ऐसा करना उन्होने स्वीकार नही किया । बोले, मै तो ऐसा नही करता । बडी निराशा हुई । मैने प्रधान मत्री जवाहरलाल जी के हस्ताक्षर की ओर सकेत किया । वे मुस्कराये और बोले, वे प्रधान मत्री है । उनकी बात कुछ और है । सारे प्रयत्न मेरे विफल हुए । सहसा मुझे एक घटना याद आ गयी । कुछ दिन पूर्व पटना मेडिकल एसोसियेशन हाल मे स्वास्थ्य सप्ताह के अवसर पर एक स्वागत गान गाने वाली लडकी को उन्होने अपना हस्ताक्षर दिया था । मै उसकी बगल मे ही खडा था । अत अ तिम बाण के रूप मे मैने उन्हे उस घटना की याद दिलायी क्योकि मैंने सोचा अब शायद हस्ताक्षर मिल जाये । ऐसे सकोची जीव बोले—वह लडकी थी, इसलिए उसकी बात रख दी थी । मैंने कहा खाली लडकियो का ही ख्याल किया जायगा, हम लडको का नही ? ऐसा कह विनम्र भाव से उनके चेहरे की ओर देखा । उन्होने मुस्कराते हुए सिर हिलाया । उनके भाव बता रहे थे कि इसके लिए मुझे माफ किया जाये । मैने और जिद्द नही की । साढे दस बजे मैं आया था । सामने घडी ग्यारह बजा रही थी । बातचीत मे आधा घटा हो गया और कुछ पता नही चला । बीच मे बराबर मैं सशकित था कि कही सचिव आकर मुझे यह नही कहे कि आपका समय हो गया । खैर, तो मै उठा । राज्यपाल जी के निकट जा झुककर दोनो हाथ जोड प्रणाम किया । कहा, आपका समय बहुत ही मूल्यवान है और बाते इतनी है कि एक दिन मे खत्म होने की नही अत आज इतनी ही । हाथ जोड कर उन्होने भी उत्तर दिया । [illegible] । मैने समझा, अब खाने पीने का समय हो गया है । शायद भीतर जाये । किन्तु वे साथ दरवाजे

तक आये । दरवाजे को अपने हाथो खोला । मैने कृतज्ञता स्वरूप उनकी ओर देखा । फिर प्रणाम किया और बाहर आया । ये महान व्यक्ति डा० जाकिरहुसैन थे जो उन दिनो बिहार के राज्यपाल थे । हितोपदेश मे एक श्लोक है: फलोद्गमै. वृक्षेः—फल से लदे हुए वृक्ष नीचे की ओर झुक जाते है । वैसे ही, महान व्यक्ति, बडप्पन को प्राप्त कर नम्र हो जाते है । डा० जाकिर हुसैन इसके सजीव उदाहरण है । यह महानता मैने उनमे पाई । राज्यपाल के मुकाबले मेरे जैसे एक अदने सरकारी डाक्टर की क्या बिसात है । और वे उठकर दरवाजे तक आये ही नही, उसे अपने हाथों खोला और अतिथि को विदा किया ! मुझे याद आ गया पंडित इन्द्र विद्यावाचस्पति का एक लेख । उसमें उन्होने लिखा है कि जब कभी मै मौलाना आजाद से मिलने जाता, प्रवेश करते ही वे उठ खडे होते । खाने के समय भी यही बात । बातो के प्रसग मै मैने यह अनुभव ही नही किया कि मै एक राज्यपाल से उनके राजभवन में बाते कर रहा हूँ । मुझे ऐसा लगा कि मै अपने घर में दादा से ही बतिया रहा हूँ ।

जबसे आप राजभवन पटना में आये, उसकी रौनक बदल गई । गेट के विशाल दोनों फाटको का रग काले से लाल कर दिया गया । गुलाबो के तो इतने रग इस करीने से सजाये गये कि देख कर मन लहलहा उठे । छज्जो पर काठ के बक्सो को रंगकर फूलपत्तियाँ सज गईं । बातों के प्रसग में मैने कहा कि कुछ दिन पूर्व आपने कहा था कि पैरिस के लोग मकान के प्रत्येक छज्जे और खिडकी के बाहर खूबसूरत काठ के बक्सो मे मिट्टी डालकर उसमें रंग-बिरगे फूल खिलाये रहते है कि उसे देखने पर पता चले कि वह मकान नही, कोई फूल का उद्यान ही सर उठाये खडा है । वैसा ही आपने इस राजभवन को कर दिया । आप मुस्काये और बोले, आप कहाँ से मेरी सब चीजो को पढ़ और नोट कर लिया करते है । फूल पत्ती ही नही, चित्रकला और सगीत के भी आप प्रेमी है । रहन-सहन में कलात्मक प्रवृत्ति । यो तो राज्यपाल जैसे प्रतिष्ठित पद पर रहकर सुव्यवस्थित ढग से रहना अनिवार्य--सा हो जाता है । पर आप मे यह प्रवृत्ति तभी से है जब आप जर्मनी से डाक्टरेट की डिग्री लेकर आये और जामिया दिल्ली को पुनः अपना कार्यक्षेत्र चुना । इस शिक्षण सस्था के कुलपति रहते हुए आप अकसर लापरवाही से गिरे कागजो को स्वय उठाते, खिड़कियो के धब्बो को कपड़ो से साफ करते तथा अपने पास आये विद्यार्थियों के बटनो को लगा देते ।

गाधी जी आगा खॉ महल की नजरबदी से १९४४ में ही छूटे तथा कॉग्रेसी कार्यसमिति के अन्य सभी सदस्य १९४५ के मध्य तक अहमदनगर किले मे नजरबद रहे । इस ,एक वर्ष की अवधि का उपयोग बापू ने भारत को एक नई शिक्षा पद्धति देने मे किया । यह वर्धा स्कीम या बुनियादी तालीम के नाम से प्रसिद्ध हुई । इसमें डाक्टर जाकिर हुसैन का पूर्ण सहयोग गाधी जी को प्राप्त हुआ । जर्मनी से लौट कर आप दिल्ली के जामिया मिलिया को शिक्षा की दिशा में नया मोड देने लगे थे । अत. यदि यह कहा जाय कि वर्धा शिक्षा योजना गॉधी जी के मन की उपज है और इसका व्यावहारिक रूप डा० जाकिर हुसैन साहब का दिया हुआ है तो कोई अतिशयोक्ति नही होगी । कुछ दिनो तक आपका सारा श्रम और समय इस योजना को लागू करने मे व्यतीत हुआ । इस हेतु आपको प्रातो के दौरे भी करने पडते थे । फिर भारत स्वाधीन हुआ । आप अलीगढ़ विश्वविद्यालय के उप-कुलपति नियुक्त हुए । वहा की कार्य प्रणाली को नया मोड़ देने लगे । लेकिन यह विश्वविद्यालय बहुत से कट्टरपथियो का अखाड़ा रहा है । वहा आपकी अधिक न चली, पद्यपि आप यहा के भूतपूर्व विद्यार्थी रहे थे । विद्यार्थियो

के एक दल ने बहुत उपद्रव किया। स्थिति भयानक हो चली जिसका रोकना आपके वस की वात नही थी। आपने वायस चासलरी के पद से इस्तीफा दे दिया। इस्तीफा देते समय जो वक्तव्य आपने दिया था वह बहुत ही मर्मस्पर्शी था। स्मरणीय था। आपने कहा, विश्वविद्यालय एक शैक्षणिक सस्था है। यहा ऐसे कार्य नही होने चाहिये जिसने ८० प्रतिशत हिन्दुओ की भावनाओ पर चोट पहुँचे। कुछ दिनो तक आपने प्रेस कमीशन के सदस्य और माध्यमिक शिक्षा आयोग के अध्यक्ष के रूप मे भी काम किया। फिर प्रतिनिधि मडल मे विदेश गये, विहार के राज्यपाल हुए। उपराष्ट्रपति पद पर प्रतिष्ठित हुए और अब राष्ट्रपति पद पर सुशोभित है।

आपका अधिकाश समय शिक्षण कार्य मे ही व्यतीत हुआ है। वडे ही विद्वान व्यक्ति है। इसका अदाज किसी सभा–सोसायटी मे दिये गये आपके व्याख्यान को सुन कर किया जा सकता है। शब्द नपे तुले, गूढतम भावो से ओतप्रोत। भाषा पर अद्भुत अधिकार। २६ जनवरी को राज्यपाल के रूप मे पटने के गाधी मैदान मे परेड एव झडोत्तोलन के पश्चात् आपका जो भाषण हुआ करता था उसके सुनने का अवसर मुझे प्राप्त हुआ है। हिन्दी मे वैसा सुललित भाषण कम सुनने मे आया। छोटे-छोटे वाक्य और शब्द। पूर्णविराम और अर्ध–विरामो का भी उचित ख्याल। हिन्दू सस्कृतमय, सरल। मेडिकल एसोसियेशन मे आपका अग्रेजी भाषण भी सुना। उसमे लड्डू-पेडे जैसे शव्दो के प्रयोग से आपने भारतीय रग चढा दिया था। एक वार ससद में जव डाक्टर लोहिया ने जोर दिया कि राष्ट्रपति का अग्रेजी मे भाषण देना अवैधानिक है तो ससद का उद्घाटन राष्ट्रपति की जगह आपने ही हिन्दी मे भाषण देकर किया था। राज भवन मे भेट करते समय मैने जव पूछा कि हिन्दी मे पूर्णत सरकारी काम कव से होने लगेगा तो आपने विना किसी हिचकिचाहट के कहा था—धीरे-धीरे सव हो जायेगा।

राज्यपाल रहते हुए आप एक वार प्रसिद्ध तीर्थ वैद्यनाथधाम गये। वही रामकृष्ण आश्रम मे स्वामी विवेकानन्द और उनके जीवन दर्शन का इतना सुन्दर विवेचन किया कि श्रोता दग रह गये। उसमे वेद, उपनिषद्, अवतार और अध्यात्म कोई विषय भी छुटा नही था। अध्यात्म पर एक ऐसा ही सुन्दर विवेचन स्व० आसफ अली ने जगन्नाथपुरी के पडो के समक्ष किया था जव वे उडीसा के राज्यपाल थे। दोनो वातो की जव मैंने याद दिलाई तो आप मुस्कुरा उठे।

पाकिस्तान प्रारभ से ही हिन्दुस्तान के खिलाफ वरावर विष-वमन और प्रचार मे लगा रहा है। उसके प्रचार का मुँह तोड जवाव देने हेतु कई वार आप सद्भावना यात्रा पर मध्यपूर्व के इस्लामी देशो मे गये, जहा आपका यथोचित स्वागत-सत्कार हुआ।

छ फीट लवा कद्दावर शरीर, अलीगढी पैजामा, शेरवानी, गाधी टोपी, खूवसूरती से कटी दाढी, हरा चश्मा, गोरा भभूका मुखमडल, मुगलकालीन शासको की सी आकृति। विनय और शालीनता तो जैसे आपके जीवन का अग सा वन गया है। अकसर अपनी जयन्तियो के अवसर पर कोठी से खिसक अन्यत्र चले जाते है। सभा–सोसायटी और उद्घाटन–भाषणो से आप अपने को सदा दूर रखने की चेष्टा करते है।

डा० राधाकृष्णन् की वीमारियो की अवधि मे एकाध वार स्थानापन्न राष्ट्रपति भी रहे है स्पष्ट वक्ता ऐसे कि अपनी सरकार के ढीले कामो की आलोचना मे नही हिचकते। पटने की खुदावख्श लाइब्रेरी

मुगलकालीन हस्तलिपियो के अपूर्व संग्रह के कारण एशिया मे प्रसिद्ध है। एक बार प्रधान मत्री प० जवाहरलाल जी ने इसके आधुनिकी करण की ओर प्रान्तीय सरकार का ध्यान आकृष्ट किया। तब डा० जाकिर हुसैन बिहार के राज्यपाल थे। पाच वर्ष व्यतीत हो गये। पर यह काम न हो सका। १९६२ मे उप-राष्ट्रपति पद के लिए प्रस्थान करते समय आपने विदाई भाषण मे इसकी चर्चा की। कहा, प्रधान मत्री और राज्यपाल के सकेत पर भी यह काम नही हो सका, सरकारी कामो की कैसी मथर गति है !

प्रथम राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद बिहार विद्यापीठ के कुलपति रहे। डा० राधाकृष्णन ने हिन्दू विश्वविद्यालय की शोभा बढाई। आप अलीगढ विश्वविद्यालय और जामिया से सबन्धित रहे। पिछले साल राष्ट्रपति पद पर प्रतिष्ठित होने के पश्चात कृतज्ञता ज्ञापन करते हुए आपने हिन्दी में ही भाषण किया था। संसद और आकाशवाणी में आपका भाषण प्रथम हिन्दी और बाद में अ ग्रेजी मे होता है। हाथ जोडे अभिवादनो का उत्तर देते समय आप भारतीय सस्कृति की मनोज्ञ मूर्ति बन जाते है।

सन् १८९९, फरवरी में हैदराबाद में आपका जन्म हुआ। यद्यपि आपके पूर्वज फर्रुखाबाद के कायमगज कस्बे के रहने वाले थे। इस उम्र में भी आपका शरीर सबल और स्वस्थ है। सादगी और सुरुचि का ख्याल रखने वाला, प्रकाड पडित और शिक्षाशास्त्री हमारा यह राष्ट्रपति अनेक वर्षो तक मात-भूमि की सेवा मे रत रह सके भगवान से मेरी यही प्रार्थना है।●

शिक्षा का उद्देश्य

शिक्षाविद् डा० जाकिर हुसैन ने देश शैक्षणिक कार्यक्रमो को नए आधारो पर नियोजित करने के लिए शिक्षा शास्त्रियो का प्रबुद्ध मार्ग दर्शन किया है। उन्होने इस बात पर विशेष बल दिया है कि शिक्षा का उद्देश्य मानवीय बुद्धि के सामाजिक और उद्देश्यात्मक पक्षो का सप्रयास विकास करना तथा व्यक्ति के चरित्र और उसके व्यक्तित्व को उस पूर्णता की प्राप्ति के लिए आकार देना होता है जो कि उसमे पहले से ही विद्यमान होती है।

सरलता के प्रतीक

डा० सत्यकाम वर्मा

भारत का प्रथम राष्ट्रपति १६५० में चुना गया था। तब से आज तक कुल चार वार राष्ट्रपति का चुनाव हुआ है। पर इस बीच केवल इस बार ऐसा हुआ है, जबकि इतने ऊँचे पद के लिए जमकर दो व्यक्तियो के बीच टक्कर हुई। डा० जाकिर हुसैन बहुमत से चुन लिए गए। परिणामत आज वे ही राष्ट्रपति है। कुछ लोगो का विचार है कि यह टक्कर राजनीति के दो पक्षो के बीच थी, अत डा० हुसैन की जीत-हार काग्रेस की जीत-हार है। यदि श्री सुब्बाराव को काग्रेस ने उम्मीदवार चुन लिया होता, तब वे ही राष्ट्रपति निर्वाचित हो जाते।

पर, यह वात दिन की तरह स्पष्ट है कि इस विजय के पीछे डा० जाकिर हुसैन के व्यक्तित्व का, उनके जीवन और विचारो का, वडा भारी हाथ है। उनकी जगह यदि कोई भी अन्य व्यक्ति काग्रेस का उम्मीदवार होता, तव उसकी विजय इतने सहज रूप मे न हुई होती।

सरलता महान् गुण

भारतीय राजनीति को पिछली शताव्दी मे दो प्रकार के नेता मिले है। **एक ओर** गाधीजी, डा० राजेन्द्र प्रसाद, राजाजी और डा० जाकिर हुसैन आदि के नाम गिने जा सकते है, जिनकी नस-नस मे भारतीयता और सरलता की भावना कूट-कूट कर भरी हुई मिलती है और जो कठिन से कठिन उत्तरदायित्व तथा यह महानतम गौरव प्राप्ति पर भी सरल और सीधे-सादे वने रहने मे ही अपने जीवन की सफलता मानते रहे है। दूसरी ओर मोतीलाल नेहरू, डा० अम्वेडकर, जवाहरलाल नेहरु, और डाक्टर राधाकृष्णन् आदि के नाम लिये जा सकते हैं, जो सर्वप्रिय होकर भी सामान्य जनजीवन से सदा अछूते रहे है,

और जिनके चिन्तन और रहन-सहन में जनजीवन से पर्याप्त अन्तर रहा है । यह आश्चर्य की ही बात है कि जवाहरलाल नेहरू सर्वप्रिय और सर्वाधिक लोकानुयायी थे और डा० राधाकृष्णन् भारतीय दर्शन के सबसे बड़े आधुनिक व्याख्याता माने गये है, इस पर भी उनका जीवन और उनके रहन-सहन का स्तर जनता के सामान्य स्तर से बहुत अधिक अन्तर पर कहा जा सकता है । दूसरी ओर गाधीजी का आरम्भिक सम्पर्क अधिकतर विदेशो और विदेशियो से रहा एव डा० जाकिर हुसैन ने उच्च शिक्षा विदेशो में पाई और जन्म से वे मुस्लिम है, तब भी इन लोगो के जीवन की सादगी, सामान्य जन-जीवन के अनुरूप ही जीवन बिताने की भावना, त्यागमय वृत्ति, आदि तत्व इस बात को स्पष्ट घोषित करते है कि ये लोग जैसे भारतीय सस्कृति के ही साक्षात् प्रतीक है ।

इसलिए जब जाकिर साहब का नाम सामने आता है, तब उनकी सबसे बड़ी विशेषता केवल 'सरलता' के रूप मे सहसा याद आती है । नेहरूजी से मिलकर कोई भी उनके 'नेतृत्व' की छाप लिए बिना न लौटता था । डा० राधाकृष्णन् की विद्वत्ता के दबदबे के नीचे उनकी अन्य सब बाते ढक-सी जाती है । उनसे मिलने वाला कोई भी व्यक्ति उसी गरिमा से प्रभावित-सा लौटता है । किन्तु, गाधीजी से मिलने वाला कोई भी व्यक्ति उनकी सरलता और सोधेपन से कुछ इस तरह आविष्ट होकर लौटता था कि उसे उनके 'नेतृत्व की महत्ता' आदि बाते भूल जाती थी । और कदाचित् जाकिर साहब से मिलने वाला व्यक्ति भी इसी प्रभाव को लेकर लौटता है कि वह अपने ही किसी सम्बन्धी से मिलकर लौटा है, जिसमे बुजुर्गी भी है, प्यार भी और साथ-साथ सरलता भी !

मुझे वह दिन नही भूलता, जब मै जाकिर साहब के उपराष्ट्रपति रहते उन्हे अपनी पुस्तके भेट करने पहुँचा था, इस भावना के साथ कि मै एक महान् अध्यापक और विद्वान से मिलने जा रहा हूँ, किन्तु जब लौटा, तो इस भावना के साथ कि जैसे अपने ही बुजुर्ग किसी के पास से बहुत आश्वस्त होकर आ रहा हूँ । न जाने कितना विश्वास वे साथ वाले के दिल मे कर देते है, कि एक बार तो ऐसा लगता है कि जैसे मिलने वाले की बात को इतनी तसल्ली और इतमीनान से सुनने वाला जाकिर साहब से बढ कर कोई हो ही नही सकता । उसे लगता है कि इतनी बात पूरी तरह से जैसे वह किसी और के सामने आज तक कह ही न पाया हो !

और, तब मुलाकात सचमुच ही 'मुलाकात' हो जाती है, 'दर्शन' या 'भेट' जैसी कोई बात नही । आनन्द और विश्वास की जो भावना जाकिर साहब जताते है, वह बनावटी हो ही नही सकती ।

सच्चे ब्राह्मण

धर्म की दृष्टि से वे इस्लाम के अनुयायी है, और उन्हे उन उसूलो पर पूरी और गहरी श्रद्धा है । इस पर भी यदि धर्म-निरपेक्ष वैदिक सस्कृति के 'ब्राह्मण' का सही रूप खोजना हो, तो वह हमे जाकिर साहब मे पूरा-पूरा घटता मिलेगा । विदेश में शिक्षोपार्जन के लिए गए थे । तब से उनका जीवन शिक्षा के लिए ही अर्पित होकर रह गया है । राजनीति में उनका दखल एक नेता के रूप में नही है, बल्कि एक 'दोस्त' के रूप में है । सत्य तो यह है कि आज की राजनीति उनके स्वभाव के अनुकूल नही है । गाधीजी से व्यक्तिगत रूप में प्रभावित होने के कारण वे शिक्षा के क्षेत्र में पूरी तरह उनके आदर्शो

के प्रति अर्पित हो गये थे। धर्म निरपेक्षता मे उनका विश्वास लगता है, राजनीतिक आवश्यकता की उपज नही है, बल्कि सच्चे अध्यापक और 'ब्राह्मण' की उदार दृष्टि के कारण जागा है। धन का मोह उन्हे कभी अपने विश्वासो से डिगा नही पाया। उनका राजनीति और प्रशासन मे प्रवेश विधान सभाओ के माध्यम से या प्रत्यक्ष चुनाव द्वारा नही हुआ। शिक्षा के क्षेत्र से सीधे ही उन्हे बिहार का राज्यपाल बना कर भेजा गया। वही से उपराष्ट्रपति बनकर दिल्ली आये थे। उनकी ये नियुक्तिया उन्हे अपरिचित रूप मे प्राप्त हुई है। डा० राधाकृष्णन् और जाकिर साहब इस विषय मे भारत के उन प्राचीन ब्राह्मण महामान्यो और आचार्यो के समकक्ष ठहरते है, जिन्हे अपनी योग्यता के कारण ससम्मान पद देकर राजा अपना ही गौरव अनुभव करता था। आज राजा का स्थान बहुमत दल ने ले लिया है। डा० राजेन्द्र प्रसाद और श्री वी० वी गिरि इन उच्च पदो पर कांग्रेस और राजनीति मे क्रमश. बढते हुए पहुँचे, किन्तु डा० राधाकृष्णन् और जाकिर हुसैन का कांग्रेस से न वैसा सम्बन्ध था, न वहा उन्हे उतना ऊँचा पद मिला था। यह उनकी व्यक्तिगत योग्यता और आकर्षण ही था, जिसके कारण उन्हे यह सम्मान मिला।

और, इन पदो पर रहकर भी ये दोनो अध्ययन रत रहे है। जाकिर साहब अब भी स्वाध्याय करते रहते है।

कट्टर धार्मिक धर्म निरपेक्ष

जाकिर साहब के विरोध मे यदा-कदा धार्मिक पक्षपात की बाते सुनने को मिल जाती है। राष्ट्रपति के चुनाव से पूर्व भी भारत के एक प्रमुख राजनीतिक दल ने सन् १९४७–४८ के हिन्दू-मुस्लिम दगो मे सम्बद्ध एक घटना को लेकर उन पर दोषारोपण किया। उस विषय मे भौतिक तथ्य क्या है—हम नही जानते। किन्तु, उनमे मिलने वाला कोई भी व्यक्ति पहली ही बार मे इस बात से प्रभावित हुए बिना नही रह सकता कि जाकिर साहब के मानसिक विचार और बाह्य आचार मे कोई अन्तर नही दिखाई देता। उनका प्रत्येक व्यवहार और आचरण इतना सीधा और सरल होता है कि उसे बनावटी किसी भी दशा मे नही कहा जा सकता।

बल्कि 'ईश्वर-विश्वास' उस भावना को इंगित करता है, जिसके कारण मनुष्य स्वयं को सब कुछ न समझ कर अपने से बड़ी किसी 'सत्ता' के अस्तित्व को स्वीकार करता है, और इस प्रकार स्वय को स्वेच्छाचारी होने से बचा लेता है। यही बात 'प्रेम' और 'समानता' के बारे में है। जब हम इन तत्वों का अर्थ केवल मजहब की सीमा मे न लेकर व्यापक रूप मे लेते है, तब 'समानता' के सिद्धान्तो से इनका कही व्यापक अर्थ है।

डा० जाकिर हुसैन के साथ आप कुछ देर के लिए रहिए या उनके जीवन को दूर या पास से सालो समझने की कोशिश कीजिए, यह बात कतई स्पष्ट हो जाती है कि उनमें अपने से ऊपर किसी बड़ी सत्ता मे विश्वास एव तज्जन्य नम्रता, मानव मात्र के प्रति प्रेम और समानता की भावनाएं कूट-कूट कर और क्रियात्मक व्यवहार में समरूप हो कर भरी हुई है। ऐसा विश्वास उनके प्रथम दर्शन में ही हो जाता है कि वे 'खुदा हाफिज' का उच्चारण केवल सभ्यतावश ही नही करते, बल्कि ये शब्द जैसे उनके अन्तर्मन से निकलते है। लगता है कि वे सच ही ईश्वर को सदा सामने उपस्थित मान कर इन शब्दों का उच्चारण करते है। जैसे ये शब्द उनकी अगाध नम्रता के मूल रहस्य को उद्घारित कर देते है।

जहाँ तक 'प्रेम' का सम्बन्ध है, पहले दोनो राष्ट्रपतियों से उनका एक अन्तर प्रथम दर्शन में ही स्पष्ट हो जाता है। वह यह कि उनसे मिलने वाला ऐसा अनुभव करता है, मानो वह किसी ऐसे हितैषी वयोवृद्ध या बुजुर्ग से बात कर रहा है, जिसमें मैत्री भावना इतनी कूट–कूट कर भरी है कि उस पर अविश्वास किया ही नही जा सकता। आत्मीयता और प्रेम की यह एकात्मता ही उन्हे सहज लोकप्रिय बना देती है।

'समानता' का सबसे बडा प्रमाण यही है कि यदि समय और अवकाश हो, तो उनके दरबार में सब की पहुँच है। सरकारी बाधा न हो, तो वे एक ही सोफे पर साथ-साथ बैठना पसन्द करते है। यदि आप मे उन्होने कुछ भी पा लिया है, तो अपनी समरुचि और समवृत्ति को आप से जताने का यत्न करते है।

सक्षेप मे ये ही है वे प्रभाव जो प्रथम दर्शन में मेरे मानस–पटल पर पड़े। मुलाकात का विषय दो मिनट से ऊपर का नही था, पर कदाचित् निकलते हुए आधा घण्टा हो गया था। उस दिन लगा था, "काश, सभी प्रशासक इसी धातु के होते!"

शिक्षा, संस्कृति और कला के उपासक

यशपाल जैन

सभवत सन् १९४६ की बात है। दिल्ली मे उन दिनो साम्प्रदायिक विद्वेष की आग बडे जोरो से धधक रही थी। चारों ओर ऐसा पागलपन छाया था, जिस की स्वप्न मे भी कल्पना नही की जा सकती थी। किसी की जान-माल का भरोसा नही था। मेरे कई मित्र जामिया मिलिया मे पढाते थे। एक दिन उनकी कुशल क्षेम पूछने के लिए मै दरियागज से ओखला के लिए रवाना हुआ। बस मे भीड अधिक नही थी। पीछे की एक सीट पर बैठ गया। अचानक सामने निगाह गई तो देखता क्या हूँ, आगे की एक सीट पर खिडकी के सहारे एक जाने—पहचाने महानुभाव बैठे है। उनके बराबर की जगह खाली थी। मै उठकर वहा चला गया और उनके पास बैठकर पूछा, "आप कहाँ से तशरीफ ला रहे है ?"

मेरे इस प्रश्न पर उन्होने एक बार मेरी ओर देखा और फिर मुह फेर कर खिडकी से बाहर देखने लगे। उनके चेहरे पर परेशानी झलक रही थी। मैने कहा, "क्यो, आपकी तबीयत कैसी है ?"

बडे धीरे से वे बोले, "इस वक्त आप मुझसे बात मत कीजिये। मै बडी मुसीबत से निकल कर आ रहा हूँ। मेरा मन बहुत बेचैन है।"

इतना कहकर वे खामोश हो गये। मैने भी कुछ नही कहा। कुछ देर हम लोग चुप-चाप बैठे रहे। आगे जामिया मिलिया का पडाव आया तो दोनो उतर गये।

मित्रो से मिलकर लौटा तो मेरे मन मे तरह-तरह के विचार उठ रहे थे। उन सज्जन ने मेरे साथ ऐसा सलूक और तो कभी नही किया था। जब-जब उनसे मिला था, वे बडी आत्मीयता से पेश आये थे। आज आखिर

ऐसी क्या बात हो गई, जो उन्होने ऐसा व्यवहार किया । बहुत सोचने पर भी कुछ समझ में नही आया ।

अगले दिन अखबार में उन सज्जन के बारे मे पढा तो मेरे पैर के नीचे से धरती खिसक गई । समाचार था कि कुछ उन्माद-ग्रस्त लोगों ने उन्हे घेर लिया । वे उनकी गर्दन काटने वाले थे कि सयोग से ऐन मौके पर कोई परिचित व्यक्ति आ गये और उन्होने उनके प्राण बचा लिये ।

इस खबर से जहा मुझे भारी वेदना हुई, वहा उन सज्जन के प्रति मेरी श्रद्धा कई गुनी अधिक हो गई । इतनी भयकर बात हो जाने पर भी उनमे आक्रोश नही था, न अपने साथ ऐसा जघन्य व्यवहार करने वालो के प्रति किसी प्रकार की कटुता ही थी ।

ये सज्जन थे डा० जाकिर हुसैन, हमारे वर्तमान राष्ट्रपति । मै मानता हूँ कि अपने जिन गुणो के कारण वे आज इतने बडे पद पर प्रतिष्ठित है, उनमें सबसे बडा गुण उनकी सहिष्णुता और सयम है । उन्होने कबीर की इस उक्ति को मानो अपने जीवन में चरितार्थ करके दिखाया है—"जो तोको काँटा बुवे ताहि बोई तू फूल ।"

पद छोटा इन्सान बड़ा

जाकिर साहब को मैने कई पदो पर देखा है । जामिया मिलिया और अलीगढ विश्वविद्यालय के उपकुलपति, हिन्दुस्तानी तालीमी सघ के अध्यक्ष, बिहार के राज्यपाल, भारत के उपराष्ट्रपति और अब राष्ट्रपति । इन सभी पदो का अपना विशेष महत्व है, लेकिन जाकिर साहव के लिए पद छोटा और इन्सान हमेशा बडा रहा है । यह भी कि पद के लिए वे कभी लालायित नही रहे ।

इसमे कोई सदेह नही कि वे उच्च कोटि के शिक्षा–शास्त्री है । उनके जीवन का अधिकाश भाग शिक्षा के क्षेत्र मे ही व्यतीत हुआ है । उनका अध्ययन बडा गहन है । बर्लिन विश्व विद्यालय में उन्होने अनेक विषयो मे दक्षता प्राप्त की है, लेकिन अपनी विद्वत्ता का उन्हे कभी अभिमान नही हुआ । उनके जीवन मे ऐसी सरलता और सहजता है, जो ज्ञान को उनके लिए कभी बोझिल नही होने देती । वे जिससे मिलते है, उसे एक क्षण को भी यह आभास नही होने देते कि वह उन से छोटा है । यही कारण है कि जो भी उनके सम्पर्क मे आता है, उन का हो जाता है ।

रचनात्मक कार्यो मे जाकिर साहब की गहरी दिलचस्पी रही है । जामिया मिलिया के विकास का श्रेय उन्ही को है । गाधी जी की बुनियादी तालीम की कल्पना को साकार बनाने के लिए सब से अधिक परिश्रम जाकिर साहब ने ही किया था और आज उस शिक्षा पद्धति पर भले ही शासन का विश्वास न हो, उसकी राष्ट्रोपयोगिता को आज भी जाकिर साहब सब से अधिक स्वीकर करते है ।

शिक्षा कैसी हो

उनकी मान्यता है कि शिक्षा ऐसी होनी चाहिये, जिससे आदमी की कथनी और करनी मे फासला न रहे । वे बार–बार कहा करते है कि सच्चा इन्सान वही है, जो जैसा कहता है, वैसा ही करता है । वे यह भी कहते है कि मनुष्य को वोलना कम और करना अधिक चाहिए । यही कारण है

कि सभा सोसाइटियो मे जाना और बडे–बडे भाषण देना उन्हे पसन्द नही । इच्छा न होते हुए भी उन्हे सभाओ मे जाना तो पडता ही है और बोलने के लिए भी अक्सर वे लाचार होते है, लेकिन सच यह है कि भाषण देने से यथा सभव बचते है । अगर बोलना ही होता है तो अपनी बात नपे-तुले शब्दो मे कहते है और जो शब्द उनके मु ह से निकलते है वे उन के दिल से उठकर आते है ।

उन के बोलने की शैली निराली है । वे जोशीली बाते नही कहते और न लोगों की भावना को उभारने के लिए नाटकीयता का सहारा लेते है । उन्हे जो कहना होता है, सरल शब्दो मे, बिना किसी आडम्बर के, कह देते है । उनके शब्दो का चयन बडा प्रभावशाली होता है ।

उनका जीवन मुख्यत रचनात्मक कार्यो मे बीता है अत यह स्वाभाविक है कि उन्होने कम लिखा है । लेकिन जो कुछ लिखा है, चाहे वह उनकी मौलिक रचना हो अथवा अनुवाद, उसमे प्रमाणिकता है । लोकोपयोगी तो वह है ही ।

उनकी रुचि वैसे बहुत व्यापक है, परन्तु उन को तीन विषय बडे प्रिय है । शिक्षा, कला और सस्कृति । जब-जब अवसर आता है, वे इस त्रिवेणी में बडे आनन्द से अवगाहन करते है । वे शिक्षा विशेषज्ञ है, विशेषकर बुनियादी तालीम के । उन्होने हिन्दी मे 'शिक्षा' नामक पुस्तक लिखी है । उर्दू मे उनके इस विषय के बहुत से लेख भी है, जिन का सग्रह प्रकाशित हुआ है ।

कला और संस्कृति

शिक्षा के साथ-साथ आर्थिक विषयो मे भी उनकी विशेष गति है । पूंजीवाद, अर्थ-शास्त्र के मूल सिद्धान्त, अर्थ-शास्त्रीय पद्धति की संभावनाए , आदि पर उन्होने काफी लिखा है । बच्चो के लिए अनेक शिक्षाप्रद पुस्तको की रचना की है ।

कला भी उनके लिए शिक्षा के समान ही रुचिकर है । उन्होने भारतीय कला का गहराई से अध्ययन किया है । अन्य देशो की कला को भी परखा है । उनके लिए आदमी की जिन्दगी को सुन्दर और दृष्टि को व्यापक बनाने के लिए कला अत्यन्त आवश्यक है । इसी से कला को पोषण देने वाली सस्थाओ और प्रवृतियो मे वे हमेशा रस लेते है । राजधानी की कला-सवर्द्धिनी सस्था चित्र कला सगम के तो वे वर्षो से प्रमुख स्तभ रहे है ।

सस्कृति के प्रेम मे उनका जीवन ओतप्रोत है । वे स्वय बडे ही सुसंस्कृत है । जब-जब सास्कृतिक विषयो पर बोलते है, ऐसा लगता है मानो सस्कृति की धारा प्रवाहित हो रही है । प्रकृति के वे परम उपासक है । फूलो के लिए उनका प्रेम सर्व-विदित है । वे जहा कही रहे है, वहा फूलो की बहार देखते ही बनती है । राष्ट्रपति भवन इस की साक्षी देता है ।

है । मैने देखा है कि वे भक्ति के गीत, भले ही वे किसी भी धर्म के हो, सुनते है तो उनका मन विव्हल हो उठता है । उनके लिए धर्म का अर्थ है वे उसूल और उन पर अमल करना, जो आदमी के मन को बुलन्द बनाते है ।

वसुधैव कुटुम्बकम

उनकी तमन्ना है कि हिन्दुस्तान एक ऐसा बागीचा बने, जिसकी खुशबू अपने मुल्क मे ही नही, सारी दुनिया मे फैले । लेकिन उनकी दृष्टि मे ऐसा तभी हो सकता है, जबकि यहा के सब लोग प्रेम से रहे, एक–दूसरे के सुख-दुख मे काम आवे, अपने निजी स्वार्थ को छोड कर दूसरो का हित साधे और अपने कर्त्तव्य को पूरी लगन एव मेहनत से अंजाम दे । वह मानते है कि हिन्दुस्तान की प्राचीन सस्कृति ने दुनिया को इसीलिए प्रभावित किया था कि उसकी वुनियाद 'वसुधैव 'कुटुम्बकम्' के सिद्धान्त पर थी ।

हैदराबाद मे जन्मे, इटावा मे प्रारभिक शिक्षा पाई, फिर अलीगढ आये और अब तक के कुल मिलाकर उनके तीस–बत्तीस वर्ष दिल्ली में बीते है । उनमे आज भी बडा हौसला है और उनकी काम करने लगन तो किसी नौजवान को भी लजा देने वाली है ।

जाकिर साहब से जब-जब मिलना हुआ है, बडी सुखद स्मृति लेकर लौटा हूँ । शब्दो मे वे प्यार अभिव्यक्त नही करते, पर अपनो शिष्टता से जैसे निहाल कर देते है । दिल तो उनका बहुत ही कोमल है । गाधी जी, राजेन्द्र बाबू, नेहरू जी, लालबहादुर जी, आदि नेताओ के मानवीय पक्ष पर बोलते हुए मैने अनेक वार उनका कण्ठ अवरुद्ध होते हुए पाया है । चित्र कला सगम' की ओर से राजेन्द्र बाबू की कास्य प्रतिमा राष्ट्रपति भवन मे राष्ट्रपति को भेट करते हुए वे विचलित हो उठे थे और उनका बोल रुक गया था ।

उनका सबसे बडा गुण उनकी विनम्रता है । यह विनम्रता उन्होने अपने पर आरोपित नही की, उन के रक्त में घुली-मिली है । वे अपने को राष्ट्र का नेता नही मानते, बल्कि सेवक कहने में गर्व अनुभव करते है । उनकी यह विनम्रता ही है, जिसने आज उन्हे सर्वोच्च पद पर बिठा दिया है ।

८ फरवरी को वे अपने जीवन के इकहत्तर वर्ष पूरे कर के बहत्तरवे वर्ष मे प्रवेश कर चुके है । इस मगल अवसर पर हम कामना करते है कि वे दीर्घायु हो, स्वस्थ रहे और सेवा के मार्ग को सदा प्रशस्त करते रहे ।●

जाकिर साहब निकट से

मुहम्मद अब्दुल लतीफ आजमी

डा० जाकिर हुसैन के व्यक्तित्व की अनेक विशेषताएँ है। जरूरत मन्दो की भरसक मदद भी इन विशेषताओ मे से एक है। बचपन मे तालीम प्राप्त करते समय डा० जाकिर हुसैन पर सूफी हसनशाह का जो गहरा प्रभाव पडा, यह उसी का परिणाम है।

उस समय जाकिर साहब इटावा मे पढते थे जहा अल्ताफ हुसैन साहब एक बहुत बडे उस्ताद थे। घर पर जाकिर साहब को सूफी हसनशाह तालीम देते। हसन शाह इनके दूर के अजीज भी होते थे। माता-पिता के न रहने पर वे परिवार के बच्चो के पास आया-जाया करते थे। बच्चो ने इनसे बहुत कुछ सीखा।

हसनशाह को किताबे रखने का बडा शोक था। फकीर आदमी थे, हर किताब खरीद नही सकते थे, खुद नकल करते थे और जाकिर साहब से भी काम लेते थे। जाकिर साहब कहते है इन्होने बीसो किताबे उन्हे नकल करके दी थी। इस तरह इनकी लिखाई दिन ब दिन बेहतर होती गयी। दूसरे जानकारी होती गई और इनका शौक भी बढता गया।

हसन शाह अक्सर जाकिर साहब को रुपये दिया करते थे और कहते थे इन्हे बाटो। इस तरह इनकी भी आदत मदद करने की हो गई। आज यह नेक आदत हमारी नजर के सामने है। वे किसी जरूरतमन्द को कभी मदद किये बगैर नही रह सकते। जाकिर साहब को बच्चो से बडी दिलचस्पी है, इस लिए बच्चे और भी भाग्यशाली है क्योकि ये बच्चो की मामूली से मामूली ख्वाइश को भी पूरा करने की कोशिश करते है।

घरवालो के साथ इतमोनान से मिलकर घर में बैठने का मौका इन्हे ज्यादातर खाने के वक्त ही मिलता था। यह ऐसा वक्त होता जब ये हम से हर किस्म की बातचीत इतमीनान से कर सकते थे। ये खाना खाते जाते और लतीफे सुनाते जाते। इनके लिए कोई खास चीज पकी हो या परहेजी खाना हो, ये अपने हाथ से सबको बाट देते और खुद वही खाना जो सबके लिए पका हो खाते। आमो के दिनो मे आम भी सबको खिलाते। आम इनको बहुत अच्छा लगता है। ये आमो के बारे मे जब बातचीत करते है तो ऐसा मालूम होता है कि इन्होने उम्र भर आमो का ही काम किया है।

खाने पर बाते करने में इन्हे बडा मजा आता है। अक्सर बाते करते-करते आराम करना भी भूल जाते है। अक्सर बच्चे छोटे-छोटे सवाल इनसे करते है और पूरा जवाब पाकर लौटते है। ये इन्हे सवाल भी बतलाते है और अ ग्रेजी भी समझाते है और सालगिरह पर तोहफे देकर उन्हे अचम्भे में डाल देते है। इन्हे बडा लुत्फ आता है, बच्चे बहुत खुश होते है। खासतोर पर मेरी बडी लडकी को तो ये बहुत ही प्यार करते है। एक बार जब वह आठ-नौ साल की थी, कहने लगी कि अम्मी जब मै सोचती हूँ कि अल्ला कैसे होगे तो मुझे लगता है वे बिलकुल मिया जैसे होगे।

जाकिर साहब के बातचीत करने का तरीका बिलकुल सादा होता है। ये बडी आसानी से अपनी बात को समझा देते है और दूसरो को अपना बना लेते है। ये न ज्यादा जोर से हसते है और न ज्यादा जोर से बोलते है। नौकरो से बडी नरमी से बात करते है और खासतौर पर नाम के साथ मिया और साहब जरूर लगाते है। अपने व्यवहार की बडी सख्त निगरानी रखते है लेकिन दूसरो की बडी से बडी गलती को भी माफ कर देते है। कई दफा तो ऐसा हुआ कि दूसरो की गलती माफ कर दी है और उस गलती को अपने ऊपर ले लिया है। यहा तक कि इनसे लोग नाराज हो गये है, लेकिन इन्होने अपनी इस खूबी को नही छोडा।

हमने कभी इन्हे किसी मजहब या पार्टी को बुरा कहते नही सुना। अपने अजीज हसन शाह का एक किस्सा सुनाते है। हसनशाह पठान थे, एक रोज गुस्से मे किसी हिन्दू की शान मे कुछ कडवे शब्द कह गये। उनके गुरु को मालूम हुआ तो उन्होने कहा कि हसनशाह, सूफियो को ये अच्छा नही मालूम होता कि वे किसी हिन्दू की शान में कडवे शब्द कहे। तुम्हारे दिल को भी साफ करने की जरूरत है। इसमे अभी मैल है और वो दूर इस तरह होगा कि सजा के तौर पर कश्मीर से लेकर नीचे तक पैदल सफर करो। इस हालत मे कि सिर पर टोपी हो और माथे पर टीका, ताकि तुम्हे ज्यादा से ज्यादा लोग देख ले। हसनशाह ने वाकई अपने दिल को पाक करने के लिए ऐसा ही किया।

जाकिर साहब कला प्रेमी है। खूबसूरत चीजे जमा करते है। कीमती पत्थरो का एक बहुत बडा सग्रह इनके पास है। पत्थरो के सिलसिले मे एक बार कहने लगे कि मुझे फूल वहुत अच्छे लगते है लेकिन पत्थर इनसे भी ज्यादा, क्योकि अगर जरूरत पड़ जाय तो पत्थर मारने के काम भी आ जाते है!

लिबास के मामले मे जाकिर साहब निहायत नफासत पसन्द है। तगी के जमाने मे भी हमेशा इन्होने इसका ख्याल रखा। इनका लिबास हमेशा खद्दर का रहा, लेकिन साफ सुथरा। कभी ये न देखा गया कि अचकन में कही झोल हो या टोपी छोटी-बडी हो। खाने-पीने मे भी सफाई का यही हाल है।

एक तरफ तो ये बुरे से बुरा खाना खा सकते है और दूसरी तरफ ये भी चाहते है कि खाना अच्छे से अच्छा पकाया जाय, सिर्फ अपने जायके के लिए नही। खुद अच्छा खाना खा कर इतने खुश नही होते जितना कि दूसरो को खिला कर खुश होते हैं।

बुरा खाना खाने के कई किस्से है। एक इटावे मे पढने के जमाने का है, जब स्कूल के मैनेजर साहब जनाब वशीरुद्दीन साहब ने मिया और उनके कुछ साथियो के खाने मे एक-एक गिलास पानी मिला कर खाने को दिया। सब साथी एक-एक लुकमा लेकर उठ गये, लेकिन इन्होने इतमीनान से पूरा किया और इस तरह उठे मानो बहुत स्वादिष्ट खाना खाया। वशीरुद्दीन साहब तमाशा देख रहे थे। बुला कर शाबाशी दी और कहा-मैंने सिर्फ तुम लोगो को आजमाने के लिए जानबूझ कर खाने मे पानी मिलाया था और मैंने जो सोचा था वो सही निकला। मुझे इस बात की बडी खुशी है।

बिहार की गर्वनरी के जमाने मे एक अजीब किस्सा हुआ। जाकिर साहब को बडी दावत मे बुलाया गया। बहुत बडी दावत थी। सेक्रेटरी ने हिदायत कर दी थी कि परेहजियो के परहेज का ख्याल रखा जाय क्योकि गर्वनर साहब भी मीठा नही खा सकते। चीनी की जगह सैकरीन काम मे ली गई और मीठा बनवाया गया। खाना बनाने वाले ने मात्रा मे सैकरीन भी शक्कर की तरह डाल दी जिससे चीजे कडवी हो गयी। खाने के बाद मीठा आया। मुंह मे डाला तो निहायत कडवा। बडी मुश्किल से किसी तरह खत्म किया। परोसने वालो ने कहा और लीजियेगा। उनको नाराज कैसे करते, और ले लिया। बडे इतमीनान से खाया। बाद मे घर पर यह किस्सा सुनाया।●

कौमी तालीम

अगर दुनिया के समाज मे हिन्दुस्तानी समाज को अपनी अलहदा हैसियत कायम रखनी है और वह इस काबिल है कि बाकी रहे और दुनिया की जिन्दगी मालामाल हो, तो हमारे समाज का फर्ज है कि अपनी तालीम मे उन खास चीजो का ख्याल रखे जिन्हे वह खास अपना समझता है या अपने गुजरे हुए जमाने को अपनी आने वाली नस्लो तक पहुँचाने का इन्तजाम करे इसलिए कि सिर्फ किताबो मे लिखे रहने से हमारा इतिहास जिन्दा नही रह सकता। यही कौमी तालीम है और बाकी सब ढकोसले है।

—डा० जाकिर हुसैन

डा० हुसैन का मानवीय दृष्टिकोण

डा० कन्हैयालाल सहल

डा० जाकिर हुसैन मूलतः एक शिक्षक तथा शिक्षा-शास्त्री है। ऐसे महापुरुष का पद्मभूषण तथा भारत-रत्न की उपाधि से सम्मानित होना तथा भारत जैसे विशाल राष्ट्र के राष्ट्रपति पद पर पहुँचना शिक्षण-जगत् को भी गौरवान्वित करता है। जामिया मिलिया मे उपकुलपति रहते हुए जो महत्त्वपूर्ण कार्य उन्होने किया उससे सब परिचित है। समस्याओ को सुलझाने का उनका दृष्टिकोण बडा स्वस्थ, सहानुभूतिपूर्ण तथा प्रभावक है। वे सतुलित मस्तिष्क के ऐसे सहृदय व्यक्ति है जिनकी आत्मीयता, सद्भाव तथा मधुर वाणी, आदि मानवोचित गुण बरबस सब को अपनी ओर आकृष्ट कर लेते है।

सन् १९३० में प्रान्तो में जब राष्ट्रीय सरकार बनी थी, उस समय गाधी जी ने नई तालीम के संबन्ध में जो समिति बनाई थी, उसके अध्यक्ष डा० जाकिर हुसैन ही थे।

सन् १९२६ से १९४७ तक जामिया मिलिया ने जो प्रगति की, उसके मूल में जाकिर साहब का त्याग तथा उनके सहयोगियों की समर्पण–भावना ही प्रमुख कही जायगी। जामिया के प्रारंभिक वर्षो में आप अपने कपडे स्वयं धोते, सीते और उन पर इस्तरी किया करते थे। अपने जूतो पर स्वय पालिश करना तथा कभी-कभी अध-भूखे पेट रह जाना उनके त्यागमय जीवन का अ ग बन गया था। २१ वर्षो तक केवल ७५) मासिक पर वे काम करते रहे।

सफाई पर भाषण देने की अपेक्षा जामिया मिलिया मे आपने सफाई का व्यावहारिक आदर्श प्रस्तुत किया। कहते हैं कि एक बार हाईस्कूल के एक छात्र को आपने मैली सफेद टोपी पहने देखा। आप उसे घर ले गए, स्वय

उनकी टोपी धोई तथा इस्तरी कर फिर लडके के सिर पर रखी । इसके बाद उक्त लडके ने कभी गन्दे कपडे नही पहने । किसी भी व्यक्ति का सुधार उपदेश देने से नही अपितु स्वकीय आचरण द्वारा होता है।

उन्होंने शिक्षा, शासन-पद्धति तथा संस्कृति आदि के सम्बन्ध मे जो कुछ लिखा है, उससे स्पष्ट है कि वे अपने ढग के मौलिक विचारक है ।

मैसूर विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह मे भाषण देते हुए आपने कहा था "राज्य के प्रति बिना शर्त वफादारी होनी चाहिए । सरकार के प्रति वफादारी इस बात पर निर्भर करती है कि सरकार न्योपाचित कार्य कर रही है तथा उसकी गति-विधि राज्य के हित मे है । किसी भी गणतन्त्रतात्मक शासन-पद्धति मे सरकार के विरुद्ध विचार प्रकट किए जा सकते है किन्तु कानून और व्यवस्था की रक्षा करना राज्य के हितो से सम्बद्ध है । ··· हमे 'राज्य' और 'सरकार' के विभेद को भली भांति समझना चाहिए और अपने व्यवहार मे परिणामदर्शी चितन (Consequent thinking) की आदत डालनी चाहिए । इसका परिणाम यह होगा कि आत्माभिव्यक्ति की स्वतत्रता के लिए अपने अधिकारो की माग करते समय हम यह भी सोचने लगेगे कि इसका अन्तिम परिणाम क्या होगा ।"

राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन के निम्नलिखित शब्द स्वर्णाक्षरो मे अ कित करने योग्य है ।—

"सारा भारत मेरा घर है और उसके लोग मेरा परिवार । मैं सच्ची लगन से इस घर को मजबूत और सुन्दर बनाने की कोशिश करूँगा, ताकि वह मेरे महान् देशवासियो का उपयुक्त घर हो । · हम मे से हर एक को इस देश के नव-जीवन के निर्माण-कार्य मे निरन्तर अपने-अपने ढग से भाग लेना होगा । स्थिति ऐसी है कि हम काम करे, अधिक काम करे, शाति से और सच्ची लगन से ।"

हमारे वर्तमान राष्ट्रपति का व्यक्तित्व बहुत ही विनम्र तथा सुसंस्कृत है और उनका मानवीय दृष्टिकोण व्यक्ति, समाज, राष्ट्र तथा समूची मानवता के लिए अत्यन्त हितकर है ।

भारत जैसे धर्म-निरपेक्ष राज्य के लिए हमारे वर्तमान राष्ट्रपति वरदान-स्वरूप है जिनके दीर्घ जीवन की हम सब हृदय से कामना करते हैं । ●

समाज के दीप स्तम्भ

एक शिक्षक होने के नाते डा० जाकिर हुसैन को शिक्षको की समस्याओ से सहानुभूति है । वे यह स्वीकारते है कि जब तक शिक्षको की आर्थिक स्थिति नही सुधरेगी तब तक शिक्षा के स्तर मे सुधार होना कठिन है । परन्तु शिक्षको को उनके महान् दायित्व का बोध कराते हुए उन्होंने कहा है—शिक्षक कुम्हार की तरह जब तक इतने चिराग नही गढ देता कि वे अपने प्रकाश से देश का कोना-कोना रौशन कर दे तब तक वह अपनी अ धेरी कुटिया मे प्रकाश की आशा नही कर सकता । इसे प्रकाश पाने के लिये दीप गढने होगे । अँधेरे मे रहकर भी प्रकाश फैलाना होगा । शिक्षक समाज का दीप स्तम्भ होता है ।

धर्म निरपेक्षता के प्रतीक

योगेशचन्द्र

सन् १९३१ में द्वितीय गोलमेज सम्मेलन के समय महात्मा गाधी ने लन्दन में कहा था कि "साम्प्रदायिक सघर्ष भारत वर्ष मे ब्रिटिश साम्राज्य के साथ आया है।" और इसी सत्य के आधार पर उन्होंने यह भी विश्वास व्यक्त किया था कि जब भारत स्वतन्त्र हो जायेगा और सभी भारतीय मिलजुल कर देश की प्रगति में हाथ बटायेगे, तब साम्प्रदायिक संघर्ष जैसी कोई बात भारत मे नही रहेगी। स्वतन्त्र भारत वर्ष ने महात्मा गाँधी के इस विश्वास को साकार रूप प्रदान किया और उसके प्रमाण है डॉक्टर जाकिर हुसैन, जो अल्प संख्यक सम्प्रदाय के सदस्य है। इस तरह अल्प सख्यक सम्प्रदाय के सदस्य को अपने देश के सर्वोच्च पद पर देखने की कल्पना आज के तथाकथित प्रगतिशील पश्चिमी देश भी सम्भवत न कर पाये, किन्तु इस क्षेत्र में भारत सर्वदा आगे रहा है। भारत की उदारवादिता, सहिष्णुता और जाति-पाति के हल्के भेदभाव से ऊपर उठे रहने की भावना विश्वविदित है और भारत को उस पर गर्व है। राष्ट्रपति के सर्वोच्च पद पर डॉक्टर जाकिर हुसैन को निर्वाचित करके भारत ने अपनी युगो पुरानी उन परम्पराओ को आगे वढाया है, जिसका पोषण हमारे ऋषि-मुनियो और महान् दर्शनवेत्ताओं ने किया। हमारे सविधान निर्माताओ की भी यही अभिलाषा थी कि भारत की राजनीति साम्प्रदायिकता की गन्दगी से दूर रहे और यहाँ पर किसी भी भारतीय का सम्मान उसके धर्म या जाति के आधार पर न होकर, उसकी योग्यता के आधार पर हो। यही कारण है कि उन्होने सविधान के लगभग प्रत्येक उपवन्ध और प्रत्येक शब्द मे धर्मनिरपेक्षता के भावों का गहराई के साथ समावेश कर दिया। स्वतन्त्र भारत ने अपनी सस्कृति का सम्मान करने के साथ ह

संविधान निर्माताओं की भावनाओं को भी राष्ट्रपति डॉक्टर जाकिर हुसैन के रूप मे साकार कर दिया। डॉक्टर हुसैन का राष्ट्रपति के पद पर निर्वाचन उन लोगो के मुंह पर करारा चपत है, जो भारत को केवल हिन्दुओं का देश कहते है और उसी खोखले आधार पर हमारे देश के कुछ भागो पर अपना आधिपत्य जमाने का दिवा स्वप्न देखते है।

जिस समय मई १९६७ मे भारत मे राष्ट्रपति का चुनाव हुआ, तब डॉक्टर जाकिर हुसैन तथा श्री सुब्बाराव के अतिरिक्त १५ अन्य उम्मीदवार भी थे, किन्तु इनमे से अधिकाश को तो एक भी मत प्राप्त नही हुआ तथा कुछ को बहुत ही साधारण मत मिले। इस प्रकार इस चुनाव मे सीधी टक्कर डॉक्टर हुसैन तथा सर्वोच्च न्यायालय के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश श्री सुब्बाराव के बीच थी। उस समय कतिपय क्षेत्रो मे, विशेषत भारत के बाहरी क्षेत्रो मे आशा व्यक्त की जा रही थी कि जिस देश मे ८५ प्रतिशत हिन्दू रहते हो तथा केवल ५ प्रतिशत मुसलमान हो, वहाँ पर निश्चित ही हिन्दू उम्मीदवार की विजय होगी और मुस्लिम उम्मीदवार की पराजय। किन्तु ९ मई को जब निर्वाचन हुआ और परिणाम घोषित किया गया तो उन क्षेत्रो मे यह जान कर घोर आश्चर्य हुआ कि डॉ० हुसैन १०,६६३ मतो से विजेता रहे।

डॉक्टर हुसैन को कुल ४,७१ २४४ मत प्राप्त हुए तथा उनके निकटतम प्रतिद्वन्द्वी श्री सुब्बाराव को ३,६३, ९७१ मत मिले। मतदाताओ की सख्या की दृष्टि से भी डॉक्टर हुसैन, श्री राव की तुलना मे कही अधिक आगे थे। ससद सदस्यो मे से ४४७ ने डॉक्टर हुसैन का समर्थन किया तथा २७८ ने श्री सुब्बाराव का। राज्य विधायको मे से २१६६ ने डॉक्टर हुसैन के पक्ष मे मतदान किया तथा १८२९ ने श्री सुब्बाराव के पक्ष मे। साधारणत मतदान दल के आदेश पर ही होता है और इसलिए सम्भवत यह शका व्यक्त की जाये कि डॉक्टर हुसैन के समर्थन मे बहुमत इसलिए आया कि काग्रेसी मतदाताओ की सख्या तुलना मे अधिक थी। किन्तु उल्लेखनीय है कि केवल काग्रेसी राज्यो से ही नही अपितु अधिकतर गैर काग्रेसी सरकार वाले राज्यो से भी डॉक्टर हुसैन को श्री राव की तुलना मे अधिक मत मिले। उदाहरणार्थ हम पश्चिमी बगाल, पजाब तथा उत्तर प्रदेश को ले सकते है, जहाँ पर गैर काग्रेसी सरकारे होते हुए भी डॉक्टर हुसैन ने श्री राव की तुलना मे अधिक मत प्राप्त किये। इसके विपरीत आन्ध्र प्रदेश तथा राजस्थान मे काग्रेसी सरकारे होते हुए भी श्री राव को डॉक्टर हुसैन की तुलना मे अधिक मत प्राप्त हुए। ये आकडे इस बात को सिद्ध करते है कि गत निर्वाचनो मे राष्ट्रपति पद के लिए मतदाताओ ने साम्प्रदायिकता के आधार पर मतदान नही किया और अपने दल विशेष के अकुश ने भी उन्हे बहुत अधिक प्रभावित नही किया। एकमात्र विचार जो उनके सामने रहा, वह था जनतन्त्रीय भारत का धर्मनिरपेक्ष स्वरूप। भारत का जनतन्त्र और उसका धर्मनिरपेक्ष स्वरूप एक ही तस्वीर के दो पहलू है। हमारा जनतन्त्र हमारी धर्मनिरपेक्षता पर निर्भर है और धर्मनिरपेक्षता का अस्तित्व जनतन्त्र के साथ जुडा हुआ है। सम्भवत इसी तथ्य को दृष्टि मे रखते हुए डॉक्टर जाकिर हुसैन को उनकी विजय पर बधाई देते हुए श्री सुब्बाराव ने कहा था कि "इस चुनाव ने भारतीय जनतन्त्र की जडो को और अधिक मजबूत बना दिया है।"

जिस तरह भारतीय जनतन्त्र और धर्मनिरपेक्षता एक ही तस्वीर के दो पहलू है, उसी तरह से डॉक्टर हुसैन और धर्मनिरपेक्षता भी एक ही चीज के दो नाम है। यो तो डॉक्टर हुसैन को अपने बुजुर्गों से विरासत के रूप मे धर्म मे अटूट निष्ठा ही प्राप्त हुई थी और उसके बाद मे भी आपने इस्ला-

मिया हाई स्कूल इटावा तथा अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय जैसी मुस्लिम सस्थाओ में शिक्षा प्राप्त की, किन्तु तब भी आपकी धर्मनिष्ठा कभी भी सकुचित दायरे मे न बध सकी। डॉक्टर हुसैन आज भी सभी धर्मो के गीतो को बडी रुचि के साथ सुनते है और उनमे तन्मय हो जाते है। उनका धर्म इन्सानियत का धर्म है, जिसके सिद्धान्त न कभी बदलते है और न कभी इन्सान को धोखा देते है। उनके लिए धर्म का अर्थ है—'वे उसूल और उनपर अमल करना, जो इन्सान के दिल को बुलन्दियो पर पहुँचाते हो।' इस सन्दर्भ मे हमें महात्मा गाधी के वे शब्द अनायास ही याद आजाते है, जो वे अक्सर कहा करते थे—मै अच्छा हिन्दू हूँ और इसीलिए मै एक अच्छा मुसलमान और एक अच्छा ईसाई भी हूँ।' सचमुच ही अच्छा इन्सान हर कही अच्छा ही रहता है, चाहे वह किसी भी धर्म का अनुयायी क्यो न हो।

डॉक्टर जाकिर हुसैन प्रारम्भ से ही राष्ट्रवादी रहे है। वे महात्मा गाँधी के सर्वाधिक प्रिय और विश्वसनीय शिष्यो में से थे। जब मुस्लिम लीग अग्रेजो के सरक्षण में रहकर काग्रेस के विरुद्ध भयकर रूप से साम्प्रदायिक विष का वमन कर रही थी और उसने अनेक कॉग्रेसी मुसलमानो को सकुचित साम्प्रदायिकता में घसीटने मे सफलता प्राप्त भी करली थी, उस समय भी डॉक्टर हुसैन अपने सिद्धान्तो पर अडिग थे और राष्ट्र के प्रति उनका प्रेम अटूट था। डॉक्टर हुसैन का अमर राष्ट्र प्रेम, उनके उस वक्तव्य से स्पष्ट झलकता है, जो उन्होने १३ मई १९६८ को राष्ट्रपति पद का कार्यभार सभालने के बाद दिया था। उन्होने देश के प्रति निष्ठावान रहने की शपथ लेते हुए कहा था—'मै धर्म व भाषा के भेदभाव के बिना अपने देश के प्रति निष्ठा की शपथ लेता हूँ। मै अपने देश को मजबूत और प्रगतिशील बनाने के लिए तथा जाति, रग व जन्म के भेदभाव के बिना, जनकल्याण की शपथ लेता हूँ।" डॉक्टर हुसैन के इन शब्दो में उनके निश्छल प्रेम, तथा अटूट धर्मनिरपेक्षता की स्पष्ट प्रतिध्वनि है।

डॉक्टर हुसैन जीवन के हर क्षेत्र मे स्पष्ट और निर्भीक वक्ता रहे है। धर्म के क्षेत्र में भी यदि कभी उन्हे कोई खलने वाली बात नजर आई तो वहाँ भी वे चूके नही। अपनी वही बेलाग और दो टूक बात का अन्दाज। राष्ट्रीय एकीकरण सम्मेलन के समय जब देश में एकता के प्रश्न पर गम्भीर विचार विनिमय हो रहा था तो उस समय उन्होने निर्भीकता और स्पष्टता से, व्यवहारिक स्थिति पर सदस्यो का ध्यान आकर्षित करते हुए कहा कि "यह आश्चर्यजनक है कि स्वतन्त्र तथा धर्मनिरपेक्ष भारत में मौलाना आजाद जैसे स्तर के व्यक्तियो के लिए भी मुस्लिम बहुसख्यक निर्वाचन क्षेत्र ढूढने पडते है।" और डॉक्टर हुसैन की इस स्पष्टोक्ति ने सम्मेलन के सदस्यो को इस पर विचार करने के लिए वाध्य किया।

स्वर्गीय प्रधान मन्त्री पडित जवाहरलाल नेहरू की अभिलाषा थी कि भारतीय राजनीति मे मुख्यत दो परम्पराये अवश्य स्थापित की जाये। प्रथम—उपराष्ट्रपति, आगामी निर्वाचन मे राष्ट्रपति बनाया जाये तथा द्वितीय—देश के तीन मुख्य पदाधिकारियो —राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति तथा प्रधान मन्त्री मे कोई भी एक, किसी अल्प सख्यक समुदाय का हो तथा दूसरा दक्षिणी भारत का निवासी हो। भूतपूर्व उपराष्ट्रपति डॉक्टर जाकिर हुसैन का राष्ट्रपति के पद पर निर्वाचन, स्वर्गीय नेहरू जी के द्वारा स्थापित इन परम्पराओ की दिशा मे ही अगला कदम है और आशा है, निकट भविष्य में ये दो परम्पराएँ हमारे संविधान का मुख्य अलिखित भाग हो जायेगी। राष्ट्रीय एकता तथा देश मे धर्मनिरपेक्षता को सुरक्षित रखने के लिए इस प्रकार की परम्पराओ को बनाये रखना अत्यन्त आवश्यक है।

डॉक्टर जाकिर हुसैन सदैव की भाँति आज भी धर्मनिरपेक्षता के अवतार, राष्ट्र प्रेम के प्रतीक, राष्ट्रीय एकता के मुख्य सूत्र तथा देश का गर्व है। अपनी विद्वता और सरल व्यक्तित्व का प्रभाव उन्होने देश विदेश, सर्वत्र डाला है। डॉक्टर हुसैन केवल ध्वजमात्र राष्ट्रपति नही, वल्कि एक कुशल प्रशासक तथा कर्मठ नेता है। जहाँ भी देश या विदेश मे कोई महत्वपूर्ण घटना होती है, हमे राष्ट्रपति की निष्पक्ष और प्रेममयी वाणी सुनाई देती है। उनके लिए धर्म और जाति की कोई सीमा नही। भारत मे निवास करने वाली सभी जातियाँ और सभी धर्म उनके अपने है। इसीलिए वे हमे कभी हिन्दुओ के गुरु श्री शकराचार्य के सम्मान मे सिर झुकाते नजर आते है तो कभी सिखो के पवित्र हथियारो का स्वागत करते हुए। नमाज और रामलीला मे वे एक ही श्रद्धा से सम्मिलित होते है। वे जितने मुसलमानो के अपने है, उतने ही हिन्दुओ के भी। वे पूरे राष्ट्र के है। राष्ट्र ने उन्हे इतना ऊँचा पद देकर उनकी योग्यता का सम्मान किया है और अब वे विश्व मे राष्ट्र का नाम ऊँचा करके देश को उच्च सम्मान दिलाने मे प्रयत्नशील है। ●

What we should do-

"For the sake of the future of our land, for the sake of our children , we should create in the life that surrounds the schools and each one of us do something to build up that climate of opinion, those habits of help ulness, co-operation, objectivity of service and loyalty to the highest cause in which alone the true school, like true humanity can thrive The reconstruction of our educational work and the moral regeneration of the people are inext icably interlinked"

-Dr Zakir Hussain

साहित्य सेवी

—सत्यपाल गुप्त

भारत के प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद भारतीय सस्कृति के अनन्य उपासक एव हिन्दी के प्रवल समर्थकों मे से थे। दूसरे राष्ट्रपति डा० एस० राधाकृष्णन् ससार प्रसिद्ध दार्शनिक थे, तो भारत के तीसरे राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन जहा विख्यात शिक्षा शास्त्री है वहा एक वहुत बड़े साहित्य-कार भी है।

आप डा० राजेन्द्र प्रसाद के समान जहाँ देश की अनेक भापाओ के विद्वान है, वहाँ अपने में साहित्यकार का कोमल हृदय रखते है। यह हर्ष का विपय है कि जहा देश रत्न डा० राजेन्द्र प्रसाद सस्कृत, हिन्दी और उर्दू के विद्वानो मे से थे वहा डा० जाकिर हुसैन उर्दू, फारसी तथा अरवी के चोटी के विद्वान एवम् लेखक है। एक सच्चे साहित्यकार के अनुरूप ही आप प्रचार से सदा दूर रहे तथा साहित्य साधना में आपने जीवन का वहुमूल्य समय लगाया। आपने साहित्य के क्षेत्र में स्थायी महत्व की रचनाए तो दी ही है, आपकी एक विशेपता यह भी है कि आप भारत की सभी राष्ट्रीय भाषाओ के विकास के लिए शुभ कामनाए रखते है।

डा० जाकिर हुसैन ने शिक्षा के क्षेत्र में एक नया मोड़ दिया है। शिक्षा के क्षेत्र में आने वाली कठिनाइयो एवम् समस्याओ का आपने न केवल गम्भीर अध्ययन किया है बल्कि उनका समाधान भी प्रस्तुत किया है। आप जहाँ शिक्षा सबधी विषयो एवम् देश की आर्थिक समस्याओ सम्बन्धी सुलझे हुए विचार रखते है वहा देश में वुनियादी शिक्षा के प्रवर्तको में अपना महत्वपूर्ण स्थान भी रखते है। आपने शिक्षा के क्षेत्र में राष्ट्रपिता महात्मा गाधी के विचारो को सही ढग से न केवल

प्रस्तुत ही किया है वल्कि उन का अनुसरण करने के लिए मार्ग प्रशस्त किया है ।

इस लेख मे आपके द्वारा रचे गए साहित्य का सक्षिप्त परिचय देने का छोटा–सा प्रयास किया गया है । वैसे यदि आपकी सभी कृतियो की विशेषताओ का उल्लेख किया जाय तो यह एक वृहद् ग्रन्थ का विपय वन सकता है । आपके साहित्य को मुख्य रूप से हम पाच भागो मे विभाजित कर सकते है । ससार की प्रसिद्ध पुस्तको के अनुवाद, (२)विभिन्न विषयो पर मूल पुस्तके, (३) अन्तर्राष्ट्रीय विपयो पर समालोचनाए, (४) विभिन्न विश्वविद्यालयो मे समय-समय पर दिए गए दीक्षान्त भाषण तथा (५) शिक्षा सम्मेलनो मे दिये गए भाषण । आपकी इस साहित्य साधना का प्रारम्भ १९२२ से कहा जा सकता है ।

अनुवाद के क्षेत्र मे आपने एडविन कैन्नन की पुस्तक 'ऐलीमैन्ट्री पोलिटिकल एकोनामी' एव प्लेटो को प्रसिद्ध पुस्तक 'रिपब्लिक' तथा फ्रेडरिक की जर्मन पुस्तक 'नेशनल एकोनामी' आदि का सफल अनुवाद योग्यतापूर्ण ढग से किया है ।

शिक्षा विपयो पर आपके भाषणो की पुस्तक 'तालीमी खुदवात' मार्च १९४३ मे दूसरी पुस्तक 'एज्यूकेशनल रिकन्स्ट्रक्शन इन इण्डिया' १९५९ मे तथा तीसरी पुस्तक 'दी डायनमिक यूनिवर्सिटी' १९६५ मे प्रकाशित हुई, जो आपके शिक्षा सबधी स्पष्ट विचारो एव गहन अध्ययन का प्रमाण है ।

राजनीति पर आपकी पुस्तक ईथिक्स एण्ड दे स्टेट है । इन महत्वपूर्ण पुस्तको के अतिरिक्त आपने बच्चो के लिए भी साहित्य लिखा है । आपकी पुस्तक 'अबोखाँ की वकरी, 'चौदह और कहानियाँ' इस दिशा मे एक सफल एव महत्वपूर्ण देन है ।

इन महत्वपूर्ण रचनाओ के अतिरिक्त आपने ससार के प्रसिद्ध विद्वानो एव विचारको के अनेक लेखो एव भाषण का अनुवाद किया है जो आपके अ ग्रे जी आदि विदेशी भाषाओ के गम्भीर अध्ययन एव उन पर पूर्ण अधिकार का परिचायक है । आपके ये लेख विभिन्न पत्रिकाओ मे समय-समय पर प्रकाशित होते रहे है । इन सफल अनुवादो के साथ-साथ आपने विभिन्न समस्याओ एव देश विदेश मे घटित महत्वपूर्ण घटनाओ पर भी अपने अनुपम लेखो मे विचार दिये है, जो साहित्य की स्थायी निधि है ।

देश को अपने इस महान् शिक्षा शास्त्री, भाषाविद्, सुलझे हुए राजनीतिज्ञ एव सफल तथा महान् विचारक साहित्यकार राष्ट्रपति पर अभिमान है । राष्ट्र ने आपको इस पद पर निर्वाचित करके जहा इस पद की शोभा बढाई है वहा एक साहित्यकार को वास्तविक आदर भी प्रदान किया है । आपका इस पद को अलकृत कराना राष्ट्र एव राष्ट्र के साहित्यकारो के लिए गौरव की बात है । ●

कहानी लेखक

अब्दुल वली बख्श कादरी

जाकिर साहब १९३६ में जब प्रिन्सिपल बने तो जामिया मिलिया ने अपनी शैक्षिणिक गतिविधियाँ नई दृढता के साथ शुरू की। बच्चो की शिक्षा व इसकी समस्या की ओर ध्यान देने वाले उस समय बहुत कम थे। उर्दू साहित्य बच्चो के साहित्यकार नाम से अपरिचित ही था। बच्चों के लिये कवितायें तो लिखी जा रही थी पर गद्य लगभग शून्य ही था। केवल मौलवी मुहम्मद इस्माइल मेरठी की स्कूली किताबे ही बच्चो की पुस्तको की एकमात्र निधि थी। जाकिर साहब ने एक शिक्षक व विचार के रूप में बच्चो की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया और उर्दू मे बच्चो के साहित्य को एक महत्त्वपूर्ण शैक्षणिक आवश्यकता बताया। तदनुसार एक पत्रिका 'पयामे तालीम' प्रारभ हुई। कुछ ही समय बाद यह पत्रिका बच्चो का पयामे तालीम हो गयी।

जामिया शायद पहला स्कूल है, जिसने बच्चो के साहित्य की तरफ ध्यान दिया और शिक्षा व मनोविज्ञान के प्रकाश में ऐसी पुस्तके तैयार करना शुरू किया जो हर दृष्टि से बच्चो के लिए ही हो। बच्चो के लिए किस्से-कहानियाँ लिखना आम तौर पर छोटा काम समझा जाता है। बड़े और प्रसिद्ध साहित्यकार इस पर कुछ लिखना अपनी शान के खिलाफ़ समझते है। और उस वक्त तो इसका रिवाज ही नही था। जामिया ने इस परम्परा के प्रति विद्रोह किया व बच्चो के साहित्य पर विशेष ध्यान दिया। पयामे तालीम ने अपने नाम व काम को एक कर दिखाया।

जाकिर साहब की बहुत सी कहानियाँ विभिन्न समयो में इसी पत्रिका के माध्यम

से सामने आई । ये कहानिया उनकी एक लडकी रकिया रिहाना के नाम से जो कि अब मर चुकी है, छपती थी । इन कहानियो की सख्या यद्यपि कम है फिर भी बच्चो के साहित्य की एक बडी जरूरत उन्होंने पूरी की है ।

जाकिर साहब ने आज से लगभग ४० वर्ष पहले जब बच्चो के लिये कहानी लिखना शुरू किया था, उस समय स्वाधीनता का आन्दोलन जोरो पर था । इसलिए उनके सामने अपने प्रिय देश के लिए जान पर खेल जाने वालो व सच्चे पुजारियो को पैदा करने का मुख्य काम था । जामिया का अस्तित्व ही स्वतत्रता सग्राम की तडप का नतीजा था । बच्चो की कहानियाँ लिखते वक्त वे कैसे इस उद्देश्य से लापरवाह रह सकते थे । उनकी कहानी "अब्बूखा की बकरी" आजादी की सच्ची लगन पैदा करती हे और इससे बलिदान का सबक मिलता है । इसमे वे कहते है —

'अलमोडे मे एक बडे मिया रहते थे । उनका नाम अब्बूखा था । उन्हे बकरिया पालने का बहुत शौक था । अकेले आदमी थे, बस एक दो-बकरिया रखते ··अब्बू खा बडे गरीब थे और बदनसीब । उनकी सारी बकरिया भी कभी न कभी रस्सी तुडाकर भाग जाती थी । वे भागकर पहाड पर चली जाती थी । वहा एक भेडिया रहता जो उन्हे खा जाता । एक दिन वे एक बकरी मोल लाये थे । यह अभी बच्ची ही थी । अब्बू खा ने सोचा कि कम उम्र बकरी लू गा तो शायद मेरे से हिल जाये । उन्होने इसका नाम चादनी रखा । लेकिन एक दिन चादनी भी निकल भागी । पहाड पर पहुँची तो भेडिये का सामना हो गया । चादनी ने भेडिये के आगे सिर नही झुकाया । वह खूब जानती थी कि बकरिया भेडियो से पार नही पा सकती । वह तो केवल यह चाहती थी कि अपनी क्षमता के मुताबिक मुकाबिला करे । जीत-हार पर अपना काबू नही । वह तो अल्लाह के हाथ है । मुकावला जरूरी है । चादनो रात भर भेडिया का मुकाबला करती रही पर सुबह होते होते चादनी बेदम हो जमीन पर गिर पडी । उसका सफेद वालो का लिबास खून से सुर्ख था । भेडिया उसे दबोच कर खा गया ।

पर कहानी अभी खत्म नही होती । उसका असली मकसद बाकी है । कहानी यू खत्म होती है । ऊपर पेड पर चिडिया बैठी देख रही थी । उनमे यह बहस चल रही थी कि जीत किसकी हुई । सब कहती है कि भेडिया जीता । पर एक बूढी चिडिया बोली नही, चादनी जीती ।

जाकिर साहब की एक और कहानी 'उकाब' भी स्वाधीनता की भावना को लेकर है । इसमे शुरू मे पहाड पर घास के जमने का जिक्र इस तौर पर है कि वह दृढता की भावना को सर्वोपरि सिद्ध करती है । आगे चलकर दिखाया गया है कि एक उकाब किसी भी लालच से कैद रहने पर राजी नही होता । वह लडता रहता है और अन्त मे आजाद हो जाता है । तब वह कहता है–खुदा का शुक्र हे फिर आ पहुँचा अपने वतन मे । फिर पा लिया अपना देश ।

आजकल राष्ट्रीय एकता के सिलसिले मे खास प्रयत्न किये जा रहे है । लेकिन जाकिर साहब शिक्षा के इस पहलू को पहले से ही पहचानते थे । उनकी कहानी 'अन्धा घोडा' के ये चन्द उद्धरण देखिये सब सुनो, उसी शहर आदिलाबाद मे एक बडी मस्जिद थी और एक बडा मन्दिर । उसमे नेक मुसलमान और हिन्दू आकर अपने-अपने तरीके मे अल्लाह का नाम लेते व उसको याद करते थे । घटे के बजते ही शहर के अच्छे अच्छे मुसलमान व हिन्दू वहा आ जाते ।

इसी तरह उनकी कहानी 'आओ घर-घर खेले' मे कई बच्चे मिलकर खेलते है। उनमे हिन्दू भी है, मुसलमान भी है। वे एक ही घर में खेलते है। एक ही खेल खेलते है क्योकि उन सबकी घरेलू जिन्दगी एक जैसी है। ऐसे दृष्टान्त से उन्होने बच्चो को पारस्परिक सद्भाव की शिक्षा दो है।

आजकल जबकि राष्ट्रीय एकता के लिये विभिन्न उपाय काम मे लिये जा रहे है, बच्चो के साहित्य की ओर विशेष ध्यान देने की जरूरत है। बच्चो के अन्दर अलगाव का बीज ऐसी ही बातो से पडता है जो कि उन्हे घृणा करना सिखाती है।

बच्चो की जिन्दगी मे स्वास्थ्य की ओर भी ध्यान देने की आवश्यकता है।'सईदा की अम्मा' में खुली हवा का महत्व बडी खूबी से समझाया गया है। एक कहानी 'मुन्नी को बीमारी' मे भी स्वास्थ्य की शिक्षा दी गई है। उसमे एक बच्चा डाक्टर बनता है और कहता है देखो मुन्नी के तौलिये से कोई मुंह न पोछे अन्यथा उसकी आखे भी दुखनी आ जायेगी।

जरा बच्चा डाक्टर को देखिये-चुन्नू ने मुन्नी के कपडे उतारे। डाक्टर साहब ने उगली से इधर ठोका, उधर ठोका, मिट्टी का प्याला छाती पर रखा और—मुन्नी, कहो एक, दो तीन, हॉ एक दो तीन। इस तरह बच्चो की अपनी जिन्दगी को उन्होने इस रग मे पेश किया कि उससे वे सही जीवन की शिक्षा ले सके।

जाकिर साहब की हर कहानी का हर विषय बच्चो के लिए विशेष महत्व रखता है। उदाहरणार्थ 'इसी से ठडा इसी से गरम' मे विज्ञान के बारे मे बताया गया है। एक कहानी 'मुरगी का निराला बच्चा।' में हवा के रुख का ज्ञान कराया गया है। 'सच्ची मुहब्बत' मे लालच की बुराइया दर्शाई गयी है। 'जुलाहा और बनिया' मे नेकी का फायदा व लालच का नुकसान दिखाया गया है। 'आखिरी कदम' मे यह अनुभव कराया गया है कि नाम और प्रदर्शन से दूर रहकर काम करना चाहिये। 'मुर्गी अजमेर चली' मे स्वार्थ की बुराइया बताई गई है। 'छिद्दू' और 'पूरी' जो कढाइ से निकल भागी कहानिया मे उन्होने बच्चो मे बहादुरी की भावनाएं भरने की कोशिश की है।

बच्चो के लिए नैतिक कहानिया लिखना बहुत कठिन है। प्राय. बाल साहित्य के नाम पर सलाह ही दी जाती है। अच्छा साहित्यकार उपदेश नही देता, वह अपने दृष्टान्त से ही यह लक्ष्य पूरा करता है। जाकिर साहब की कहानियो की भी यही प्रमुख खूबी है। वे एक अच्छे शिक्षक के रूप मे बच्चे को उस स्थान पर पहुँचा देते है जहा से वह स्वय सब कुछ समझ सकता है। उदाहरणार्थ सफाई के बारे मे बताने के लिए वे इसकी महत्ता बताने के बजाय कहते है—हम गलीज आदमी को अन्दर नही आने देते या उनका घर बहुत साफ था।

अच्छी बाते सिखाने के लिए नसीहत की जरूरत नही होती बल्कि वे ये कहकर गुजर जाते है "ये हम लोगो से जर अच्छे होते है।" ●

सारा भारत जिनका घर है

—श्रीमती कुन्तल गोयल

भारत की आजादी के इतिहास मे जिन राष्ट्रप्रेमियो व देशरत्नो की गरिमा है उनमे एक नाम है ऐसे व्यक्तित्व का जो मुसलमान होते हुए भी पहले भारतीय है वाद मे और कुछ। राष्ट्रपति के पद पर सुशोभित भारतीय सस्कृति का अनन्य प्रेमी यह व्यक्तित्व है डा० जाकिर हुसैन का जो जन्मसे धर्मनिष्ठ मुसलमान होते हुए भी राष्ट्रीयता के पोषक है। चारित्रिक सौष्ठव के द्वारा व्यक्तित्व के विकास एव मानवीय उच्च आदर्शो के प्रतिष्ठापन मे अपने को पूर्णतया समर्पित करने की उत्कट लालसा से पूर्ण निरन्तर उस ओर अग्रसर होने की तीव्रतम आकाक्षा के प्रतीक वे आज हम भारतीयो के लिए एक उदाहरण वन गए है। खादी की शुभ्र पोशाक मे आवेष्ठित उन का सरल, उदार हृदय और ज्ञान गरिमा तथा भावपूर्ण आस्था की गहनता लिए उनकी आखे जिन पर काला चश्मा उनके व्यक्तित्व को और भी आकर्षण प्रदान करता है जीवन की आस्था के प्रतीक है। अपने सिद्धातो मे अचल सेनानी की तरह वे सुदृढ भारत की तस्वीर को सुन्दर और भी सुन्दर वनाने के लिए कृत संकल्प है।

कट्टर मुस्लिम परिवार मे जन्म लेकर भी वे कही भी रूढि ग्रस्त नही है वरन् उनके विचारो की उदारता और सदाशयता पर गाधीवादी युग का प्रभाव देखा जा सकता है। गाधीजी के प्रभाव मे उनके विचारो मे ओतप्रोत होकर उन्होने स्वय ही अपना पथ निर्धारित किया। वे साम्प्रदायिकता से सदैव दूर रहे और मुस्लिम लीग से प्रभावित न होकर उन्होने गाधी मार्ग का अनुसरण किया।

१९१० मे गाधीजी की विचार धारा का स्वागत करते हुए उन्होने राज्य द्वारा चलाये जाने वाले विश्वविद्यालयो का वहिष्कार कर

राष्ट्रीय कालेज जामिया मिलिया की स्थापना की। उनकी दृष्टि मे राष्ट्र का उत्थान शिक्षा और सस्कृति में नया दृष्टिकोण अपनाने तथा राष्ट्रीय चेतना को नया स्वरूप देने से ही सम्भव हो सकता है। अंग्रेजी शिक्षा से व्यक्ति का विकास कदापि सम्भव नही है। जामिया मिलिया एक ऐसी शैक्षणिक सस्था है जो जीवनयापन तथा ज्ञानार्जन की दृष्टि से छात्रो को सुयोग्य नागरिक वनाने तथा उनमे कलात्मक अभिरुचि उत्पन्न करने के लिए विशेष प्रेरणा देती है। लगभग ३० वर्ष तक अत्यन्त अल्प वेतन पर इसके उपकुलपति के रूप मे उन्होने उत्साह एव लगन के साथ अपने कार्य को आगे वढाया। हिन्दुस्तानी तालीमी संघ, सेवाग्राम के अध्यक्ष के रूप मे उन्होने महत्वपूर्ण कार्य किया। पुस्तकीय ज्ञान और व्यवहारिक शिक्षा को सम्मिलित कर उन्होने महात्मा गाधी की बुनियादी शिक्षा का प्रसार किया। संस्कृति और शिक्षा के क्षेत्र मे उनकी सेवाओ के मूल्याकन स्वरूप १९५४ मे उन्हे पद्म विभूषण से भी अलकृत किया गया।

देश के राष्ट्रपति निर्वाचित होने के उपरान्त भारतीय सस्कृति के प्रति उनकी आस्था एव देश प्रेम उनके इन शब्दो से प्रकट होता है जो उन्होने राष्ट्र के प्रति सकल्पित होते हुए कहे थे 'यह एक प्राचीन देश के लोगो का युवा राष्ट्र है, जिन्होने हजारो सालो मे और अनेक जातियो के सहयोग से देश काल से परे परम तत्वो को अपने जीवन मे अपने ढग से उतारने का प्रयास किया है। मै उन तत्वो का अनुसरण करने की प्रतिज्ञा करता हूँ।... शिक्षा राष्ट्र के लक्ष्यो को प्राप्त करने का मुख्य साधन है। जैसी उसकी शिक्षा होती है, वैसा ही उसका स्वरूप भी हो जाता है। इसलिए मै अपने अतीत की समग्र सस्कृति के प्रति चाहे वह जिस स्रोत से प्राप्त हुई हो, चाहे उसके निर्माण मे जिस किसी ने भी योगदान किया हो, अपनी निष्ठा व्यक्त करता हूँ।. मारा भारत मेरा घर है और उसके लोग मेरा परिवार है। मै सच्ची लगन से इस घर को मजवूत और सुन्दर वनाने की कोशिश करूगा ताकि वह मेरे महान् देशवासियो का उपयुक्त घर हो जो कि एक सुन्दर जीवन के निर्माण के प्रेरणापूर्ण कार्य मे लगे हुए है।

गाधीजी ने उनके गुणो की परख करते हुए एक वार कहा था 'जाकिर हुसैन मेरे प्यारे दोस्त है।' राजनीति से दूर रह कर ही उन्होने गाधीजी के आदर्शो के लिए ठोस काम किया है।

वे पूर्ण मानव है जिनके कोमल दिल मे गरीवो के लिए आँसुओ का लवालव समुन्दर लहरा रहा है। दया, औदार्य और सद्भावना लिए हुए वे हर इन्सान के निकट है, चाहे वह उनका चपरासी हो या ड्राइवर या दूसरा कोई वेचारा छोटा व्यक्ति। जीवन की दैन्यता के शिकार पीडित मानव के प्रति उनके हृदय में अथाह करुणा है लेकिन ऐसी करुणा नही कि वह करुणा मन ही मन विसूरती रहे वाल्कि उनके लिए कुछ करने के लिए तत्पर। साहस, शक्ति और सूझबूझ के ऐसे धनी विरले ही मिलेगे। जामिया के आर्थिक अभाव को अनुभव कर उन्होने कार्यकारिणी के समक्ष जो प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत किया था वह उनके व्यक्तित्व को स्पप्ट करता है। उन्होने कहा था आप वकरी का खाना देकर मुझ से शेर का काम लीजिये। इस वक्त यही जरूरी है।' और उन्होने अपना वेतन घटाने की प्रार्थना की।

वे छात्रो मे भारत का भविष्य देखते है। विद्यालय उनके लिए शिक्षा के पवित्र मन्दिर है। इसी लिए उन्होने राजनीतिज्ञो से अनुरोध किया कि वे विश्वविद्यालयो को अपने सकीर्ण और अल्पकालिक उद्देश्यो की पूर्ति का साधन न वनाये। एक शिक्षक होने के नाते उन्हे शिक्षको की स्थिति के प्रति गहरी

शिक्षा जगत में उन्होने शिक्षा का एक नया स्वरूप लोगों के समक्ष रखा । उनकी दृष्टि मे "राजनीति के संकीर्ण माध्यम से राष्ट्र का पुनरुत्थान सभव नही है। राष्ट्र का उत्थान शिक्षा और संस्कृति मे नया दृष्टिकोण अपनाने तथा राष्ट्रीय चेतना को नया स्वरूप देने से ही संभव हो सकता है। अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली सकीर्ण और पुरानी है । उससे व्यक्ति का विकास कदापि सभव नही है।" जामिया मिलिया एक ऐसी शैक्षणिक सस्था है जो जीवनयापन तथा ज्ञानार्जन की दृष्टि से छात्रो को सुयोग्य नागरिक बनाने तथा उनमें कलात्मक अभिरुचि उत्पन्न करने की दिशा मे महत्वपूर्ण योगदान देती है।

स्वतत्रता के पूर्व और पश्चात् वे एक ऐसी शिक्षा प्रणाली तैयार करने के लिए कार्यशील रहे जो राष्ट्रीय विकास मे सहायक हो । वे "इण्डिया कमेटी", "अन्तर्राष्ट्रीय छात्र सेवा" और "अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय सेवा" जिनेवा के अध्यक्ष भी रहे है ।

शिक्षा का महत्व उनके लिये जीवन मे उच्च आदर्शो की प्रतिष्ठापन करना है—"शिक्षा का उद्देश्य राष्ट्रीय सस्कृति और राष्ट्रीय चरित्र का विकास करना है । मेरे विचार से शिक्षा का लक्ष्य बराबर नवीन जीवन देने मे योग देना ही है ।" राष्ट्रपति पद से देश के लिए सकल्पित होते हुए शिक्षा के सबध में उन्होने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा था—"मेरी यह धारणा है कि शिक्षा राष्ट्र के लक्ष्यो को प्राप्त करने का मुख्य साधन है और जैसी उसकी शिक्षा होती है वैसा ही उसका स्वरूप भी हो जाता है । इसलिए मै अपने अतीत की समग्र सस्कृति के प्रति चाहे वह जिस स्रोत से प्राप्त हुई हो, चाहे उसके निर्माण में जिस किसी ने भी योगदान किया हो—अपनी निष्ठा व्यक्त करता हूँ।"

मनुष्य के सम्मुख अपनी कोई राय होती है, अपने कुछ आदर्श होते है—उन्हे पाने के लिये प्रयत्न भी स्वय का ही होना चाहिये । दूसरो पर निर्भर रहकर फल प्राप्ति की आशा करना व्यर्थ है । उन्हे कर्म पर अगाध निष्ठा है । उन्हे हर छात्र युवक मे आजादी की खुशहाली की चमक दिखाई देती है। उनमे से हरेक मे एक गाधी, एक टैगोर, एक अरविन्द, एक नेहरू और एक विनोबा नजर आता है। महान् विभूतियो से सम्पन्न एक सुन्दर, सर्वांगीण विकासमान देश की तस्वीर राष्ट्रपति की आँखो मे है जिसे पूरा करने के लिए हर एक को आगे बढाना है और बिना शिक्षा के यह कार्य कदापि सभव नही है।

डा० हुसैन की बौद्धिक और मानसिक प्रतिभा अभूतपूर्व है। उन्हे नई-नई भाषाये सीखने का बेहद शौक है। उन्हे अध्ययन का तथा सुन्दर कलात्मक वस्तुओ के सग्रह करने का भी चाव है । जब भी वे कभी अन्य देशो की यात्रा करते है वहा के सग्रहालयो तथा पुस्तकालयो को देखना कभी नही भूलते । ज्ञान-विज्ञान तथा इतिहास की पुस्तको मे वे कुछ इस तरह खो जाते है जैसे किसी को कोई मनचाही चीज मिल गई हो । इतिहास और विविध भाषाओ के प्रति उनका ज्ञान और उनकी लगन देखकर आश्चर्यचकित रह जाना पडता है । वे एक अच्छे लेखक भी है।

उन्होने घर और परिवार को सम्पूर्ण जीवन की शिक्षा का आधार माना है। इसी शिक्षा पर व्यक्ति का व्यक्तित्व और देश का विकास निर्भर है । घर मे रहकर ही सुरुचि पैदा और परिष्कृत होती है, चरित्र का गठन होता है और सच्चरित्रता प्राप्त की जाती है। घर ही एक ऐसी जगह है जहा सद् जीवन की शिक्षा दी जाती है और उसे अभ्यास मे लाया जाता है । शिक्षा का इतना व्यापक और गहन अर्थ एक शिक्षा शास्त्री के लिए उपयुक्त ही है। और वह इसलिए भी कि उनका स्वय का ज्ञान गहन गम्भीर है । एक वाक्य में यदि उनके अनुसार शिक्षा की परिभाषा दी जाये तो कहा जा सकता है— "तालीम आदमी के जहन की पूरी-पूरी परवरिश का नाम है । ●

ऋषि जाकिर हुसैन

योगराम थानी

भारत देवो की भूमि है : "जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" यहा जन्म लेने वाले देवो की यही कामना होती है कि वे बार-बार यही जन्म ले । अनेक मनीषी ऐसे भी हुए है जिन के लिए भारतवासियो की यह कामना रही है । इनमे हमारे तीनो विश्वविख्यात राष्ट्रपति गिनाये जा सकते है ।

भारत का यह सौभाग्य है कि उसे स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सभी राष्ट्रपति ऐसे मिले है जिन पर कोई भी देश गर्व कर सकता है । डा० जाकिर हुसैन इस गौरवमय शृ खला की वर्तमान कडी है और उन्हे इस दृष्टि से विशिष्ट कडी कहा जा सकता है कि यो तो सभी राष्ट्रपति राष्ट्र और राष्ट्रीयता की कसौटी पर खरे रहे है, लेकिन डा० जाकिर हुसैन के साथ यह महत्वपूर्ण विशेषता और जुडी हुई है कि वे अल्प सख्यक सम्प्रदाय के हो कर भी आज बहुसख्यको के पूज्य है । वे सही मानो मे भारतीय है, भारत की उच्चतम परम्पराओ के प्रतीक है ।

अपने इस कथन को सिद्ध करने के लिए पहले हमे राष्ट्र और राष्ट्रीयता के उद्भव तथा विकास पर एक विहगर्म दृष्टि डालनी होगी ताकि यह स्पष्ट हो सके कि इन दोनो के सदर्भ मे राष्ट्रपति से क्या अपेक्षित है ।

राष्ट्र शब्द बहुत प्राचीन है परन्तु समय और परिस्थितियो के अनुसार हर युग मे उसका रूप-स्वरूप और उसके अर्थ बदलते रहे हे । हमारे यहाँ 'राष्ट्र' शब्द 'देश' 'राजा' 'राज्य' 'भूमि' पृथ्वी' 'प्रजा' 'जनपद' आदि अनेक शब्दो का पर्याय माना जाता रहा । परन्तु जिस अर्थ मे आज हम इसका प्रयोग करते है वैसा अर्थ प्राचीन युग मे कभी नहीं रहा । आज हम 'राष्ट्र' शब्द को अ ग्रेजी

शब्द 'नेशन' का पर्याय मानते है ।

राष्ट्र शब्द की प्राचीनता सिद्ध करने के लिए यजुर्वेद और अथर्ववेद के कई उद्धरण प्रस्तुत किये जा सकते है । यजुर्वेद में राष्ट्र शब्द की पुनरुक्ति हुई है । जैसे 'राष्ट्र मे देहि', राष्ट्र दा राष्ट्रम्मे दत्त और तेनास्मान् ब्रह्मणस्पतेऽमि राष्ट्रीय वर्धय और राष्ट्रीय महयम् बध्यताम् ।

हमारे यहाँ राष्ट्र शब्द की व्याख्या कुछ इस प्रकार की जाती रही :–

'रासन्ते चारु शब्द कुर्वते जना. यास्मिन् प्रदेशविशेष तद् राष्ट्रम्' अर्थात् किसी एक प्रदेश के लोग जो एक विशिष्ट भाषा द्वारा अपने विचार–विनिमय करते है, वही स्थान विशेष राष्ट्र कहलाता है ।

अथवा

'पशुधान्य हिरण्य सपद राजते शोभते इति राष्ट्र' 'अर्थात् पशु, धन-धान्य, आदि सम्पदाओं से जो सुशोभित भू–भाग है वही राष्ट्र है ।' 'शतपथ ब्राह्मण मे श्री वैराष्ट्रम-समृद्धियुक्त ओजस्वी जनसमूह ही राष्ट्र है ।

अथर्ववेद के भूमि सूक्त मे भूमि या पृथ्वी की खूब चर्चा की गयी है और कहा गया है—'यह भूमि समुद्र से घिरी हुई है और कल-कल निनादिनी जलधाराएँ इसे उर्वर बना रही है : हरे-भरे पर्वत, हिम–मण्डित गिरिश्रृग और जगल उस देशवासियो के चिन्ताहीन, क्लेशहीन और अक्षत जीवन की रक्षा करते है ··· इस देश मे नाना भाषाओ वाले लोग है ओर नाना रूढिया है पर वे सब सुशील दुधारू गाय की तरह धन–सम्पत्ति की हजारो धाराएं प्रवाहित कर रहे है । आदि आदि ।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सस्कृत साहित्य मे राष्ट्र की चर्चा तो खूब की गयी है मगर राष्ट्रको कभी 'नेशन' का और राष्ट्रीयता को कभी 'नेशनैलिज्म' का पर्याय नही माना गया ।

डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने भी यही बात कही 'सही हो चाहे गलत, पर हमारा ही देश' घोषित करने वाला सिद्धान्त पहले–पहल भारत में नही निकला । अपने ही देश को सदा ठीक समझने वाली मनोवृत्ति भी हमारे यहा नही उपजी । राष्ट्रवाद की प्रबल भावना पाश्चात्य प्रभाव का ही सीधा परिणाम है । जिन लोगो ने पश्चिमी जातियो के इतिहास को पढकर बरसों यही सीखा कि आजादी से बेहतर कुछ नही आजादी सिर्फ जरूरी ही नही, सबसे ज्यादा जरूरी है, मालूम पडता है । उन्होने स्वतन्त्रता का यह पाठ भली–भाति पढ लिया है ।

राष्ट्रीयता (नेशनैलिजम) का प्रादुर्भाव पश्चिमी यूरोप मे अठारहवी शताब्दी मे हुआ । इसका प्रथम मूल रूप हम फ्रास की राज्य क्रान्ति में देखते है जिसने राष्ट्रीयता के आन्दोलन को एक नवीन गतिशीलता प्रदान की । अठारहवी शताब्दी के अन्त तक कई यूरोपीय देशों में एक साथ राष्ट्रीय भावना का उदय हुआ । फ्रास की क्रान्ति का राजनीति के क्षेत्र में सर्वोत्तम महत्व है । वह आधुनिक समाजवाद की जननी है । आधुनिक समाज की नीव उसी ने रखी है ।

राष्ट्र या राष्ट्रीयता की इस नवीन विचारधारा का प्रचलन भारत में नही था और बाकी सब देशो में था, ऐसा नही है । प्रायः हर देश में धर्म, जाति और संस्कृति को ही सबसे अधिक महत्व

दिया जाता था और माना जाता था कि यही तत्व देश के लोगो को एकता के सूत्र मे बाधते है । भारत मे ही नही बल्कि दूसरे देशो मे भी धर्म के नाम पर काफी द्वन्द्व हुए। खैर धीरे-धीरे यूरोप के लोगो के मन मे धर्म की कट्टरता कुछ कम हुई और वे इस बात का अनुभव करने लगे कि अब चर्च मे लोगो को एकता के सूत्र मे बाधने की शक्ति नही रही इस प्रकार धर्म गौण हो गया और राष्ट्र प्रमुख हो गया ।

भारतीय सन्दर्भ मे इस की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है। कुछ समय पहले तक भारत मे यही माना जाता था कि देश मे धर्म का विकास हो रहा है तो देश उन्नति कर रहा है और यदि धर्म का ह्रास हो रहा है तो देश का भी ह्रास हो रहा है। यहा काफी समय तक यही माना जाता रहा कि राष्ट्र धर्म के लिए है न कि धर्म राष्ट्र के लिए। इसी बात को यो भी कहा जा सकता है कि यहा कुछ समय पहले देश के लिए धर्म का त्याग और बलिदान नही किया जा सकता था पर धर्म के लिए देश का बलिदान किया जा सकता था, यानी कभी धर्म प्रधान था और राष्ट्र गौण । तभी तो कभी धर्म राष्ट्र का रास्ता रोक कर 'बस खडे रहो' की आज्ञा देता था और राष्ट्र उसी समय गर्दन झुका कर खडा हो जाता था। तभी तो कहा है-'अनीक्यो सहतयोर्यदोयाद् ब्राह्मणोन्तरा शान्ति मिच्छन्नुभयतो न योद्धव्य तदाभवेत्, अर्थात् जब दो सेनाये लड रही होती थी और एक वेदविद् ब्राह्मण बीच मे आकर खडा हो जाता था और अपनी ब्रह्मतेजोमयी वाणी से हाथ उठाकर कहता था कि बस लडना बन्द कर दो और उसकी आज्ञा पाते ही दोनो सेनाए पीछे हट जाती थी और खून की प्यासी तलवारे चुपचाप म्यानो मे घुस जाती थी मानो उनमे गर्दन काटने की शक्ति ही न रही हो।

महाराजा दशरथ से महर्षि विश्वामित्र कहते है कि मुझे तपोवन की रक्षा के लिए अपने सुपुत्र दे दो। दशरथ इनकार करते है। ऋषि क्रुद्ध हो जाते है। महाराज डर जाते है और तपस्वी ब्राह्मण से भयभीत होकर कापने लगते है। यह एक सम्राट का ऋषि से कापना नही है अपितु राष्ट्र का धर्म से कापना है। परन्तु आज ससार इस बात का समर्थक है कि राष्ट्र रूपी तेजस्वी सम्राट के सम्मुख धर्म रूपी भिक्षुक रास्ता रोक कर खडा नही हो सकता। आज राष्ट्र धर्म से कहता है-'हे धर्म, तुम्हे पूर्ण स्वतन्त्रता है। मै तुम्हारी बातो मे कोई हस्तक्षेप नही करू गा, परन्तु इतनी शर्त है कि तुम भी मेरे कामो मे किसी प्रकार का हस्तक्षेप नही करना, यदि तुम्हारा सिद्धान्त है कि भोग विलास मे बह जाना हानिकारक है, तो जाओ, जो सामाजिक व्यक्ति भोग-विलास में बह रहे है उनको जा कर बचाओ। यदि तुम अपने स्वार्थ के लिए दूसरो को सताना, दूसरो का खून बहाना पाप समझते हो तो जो स्वार्थी दूसरो का गला घोट रहे है और खून बहा रहे है उनके हाथो को इस पाप से रोको, यदि असत्य व्यवहार

सगठन को सदस्यता अनिवार्य रूप से स्वीकार करनी पडती है और जिस सगठन का वह सदस्य होता है अर्थात् जिस राष्ट्र का वह नागरिक होता है उसी के प्रति उसकी निष्ठा या वफादारी होती है।

भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानो ने राष्ट्र शब्द की व्याख्या करते हुए कहा है —

'राष्ट्र उस जन-समूह को कहते है जिसमे राजनैतिक सगठन हो।'

(जे० होलैंड—नेशनैलिटी इन हिस्ट्री)

डा० गुलाबराय ने राष्ट्र शब्द की व्याख्या करते हुए कहा है—'राष्ट्र के लिए यह आवश्यक नही है कि उसके रहने वाले एक जाति व सम्प्रदाय के ही हो। राष्ट्र एक राजनीतिक इकाई है। उसके निवासियो के राजनीतिक हितो की एक ध्येयता और शासन की एक सूत्रता उसमें सगठन स्थित रखने के लिए आवश्यक है। सभी सम्प्रदाय और सभी प्रान्त राष्ट्र के अ ग है। राष्ट्र का हित सब का सम्मिलित हित है। ऐसी चेतना ही राष्ट्रीयता का मूल है।

बर्गेस के मतानुसार—'ऐसा जनसमूह जिसकी एक भाषा और एक साहित्य हो, जिसके रीति-रिवाज और धार्मिक विश्वास एक हो, भौगोलिक एकता के क्षेत्र मे रह कर सत्य-असत्य की समान चेतना हो, वही राष्ट्र कहलाता है।'

एक सुप्रसिद्ध विद्वान ए० ई० जिमर्न ने राष्ट्रीयता की व्याख्या करते हुए कहा है—'धर्म की भाति राष्ट्रीयता भी आत्मापरक है, मनोवैज्ञानिक है, मन की एक स्थिति है, एक आत्मिक सम्पत्ति है, एक भावना पद्धति है, विचार और जीवन है। राष्ट्रीयता एक ऐसी शक्ति है जो राज्य के भीतर निरकुश सत्ता के विरुद्ध मानवाधिकारो को स्थिर रखने के लिए तथा बाहरी शत्रु से उसकी स्वतन्त्रता की रक्षा के हेतु समाज को सगठित करती है।'

सुश्री महादेवी वर्मा ने कहा है—

'राष्ट्र भावना का देश-विशेष मे वही स्थान रहता है जो भिन्न अवयव वाले शरीर में चेतना-केन्द्र का होता है। पाव के नीचे आ जाने वाले अ गारे की जलन या फूल का स्पर्श-पुलक दोनो की अनुभूतिया जैसे मस्तिष्क का चेतना केन्द्र सारे शरीर मे पहुँचा देता है, एक अ ग की पीडा या पुलक को सम्पूर्ण शरीर की बना देता है, उसी प्रकार राष्ट्रीयता प्रत्येक सुख—दु खात्मक स्थिति को विशेष भूमिखण्ड की मानवसमष्टि मे व्यापकता दे देती है।'

श्री वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दो मे—'सब के सम्मिलित प्रयत्न से ही स्वराज्य की रक्षा और स्थिति सम्भव है। यह एक व्यक्ति का बोझा नही। यह तो सम्पूर्ण राष्ट्र का दायित्व है। यदि राष्ट्र जागता है तभी स्वराज्य की स्थिति दृढ होती है। 'राष्ट्राय जागयाम् वयम्, यह वैदिक उक्ति हृदय मे टाक लेने योग्य है।'

फिलिमोर ने राष्ट्र की परिभाषा इस प्रकार की है . 'राष्ट्र वह जनसमूह है जो निश्चित क्षेत्र मे स्थायी रूप से रहता हो, सामान्य नियमो, आदतो और रीति-रिवाजो का एक राजनैतिक सस्था के रूप मे पालन करता हो, एक सगठित सरकार द्वारा स्वतन्त्र रूप से उस क्षेत्र मे बसने वाले मनुष्यो, व

उन क्षेत्र मे विद्यमान सभी पदार्थो पर पूरा-पूरा नियन्त्रण व अधिकार रखता हो और उसे संसार के किसी भी समुदाय से युद्ध या शान्ति स्थापित करने या अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध स्थापित करने का अधिकार हो।'

'हमारे राष्ट्र जीवन की परम्परा नामक' पुस्तक मे उमाकान्त केशव आपटे ने लिखा है—'उस देश को अपना कहने वाले, उस पर परायो की ओर से आक्रमण होने पर, परम्परागत आदर्शो का अखण्ड परिपालन करने के हेतु अपनी सम्पूर्ण शक्ति को जुटा कर प्रयत्न करने वाले, अपनी सस्कृति एव परम्परा का अभिमान रखने वाले, तथा इस प्रकार एकात्मता की प्रेम-रज्जु से आवद्ध होने के कारण एक-दूसरे के उत्कर्ष एव सुख के हेतु सहकार्य की भावना से कार्य प्रवृत्त होने वाले लोगो का समुदाय ही तो राष्ट्र है।' विभिन्न विद्वानो की राष्ट्र सम्बन्धी व्याख्याओ के वाद मे अन्त मे इतना निवेदन अवश्य करना चाहूँगा कि हमारे पास 'राष्ट्र' शब्द पहले से ही था, अव तो केवल इसका रूप और स्वरूप वदला है। यानी हमारे पास राष्ट्र की नीव तो तैयार है परन्तु हमे उस पर एक शानदार भवन तैयार करना है। परन्तु इस भवन को तैयार करते समय हमे वहुत ही सावधानी, सजगता, और जागरूकता की जरूरत है। राष्ट्रीय भवन की दीवारे चुनते समय हमे हर ईट देख-भाल कर रखनी होगी। भूल से भी यदि कही हमने धार्मिक या साम्प्रदायिकता की एक आध ईट भी रख दी तो विश्वास कीजिए कि उस भवन से राष्ट्रीय सगठन की भावना उत्पन्न करने वाला प्रकाश धुधला रह जायेगा और समाज को एक सूत्र मे वाधने वाली ज्योति की शक्ति कम हो जायेगी।

इसी वात को मैं दूसरे शब्दो मे इस प्रकार कहना चाहूँगा कि हमारे पास राष्ट्र-प्रेम की नौका तो है परन्तु वह अब तक भारत-भूमि रूपी नदी के एक तट के साथ ही वधी पडी थी। आज हम उस नौका को वही पडी रहने नही दे सकते। वल्कि उसमे आधुनिक राष्ट्रीय-भावना की ध्वजा फहरा कर हम उस नौका को एक छोर से दूसरे छोर तक ले जाना चाहते है ताकि राष्ट्र-प्रेम का अमर सन्देश भारत के हर नागरिक तक पहुँच सके और वह इस वात का दृढ सकल्प कर ले कि वह पहले भारतीय है और वाद मे कुछ और। यही आज की राष्ट्रीयता का मूल मन्त्र है।

भारत के राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन (मै उन्हे ऋषि जाकिर हुसैन ही कहना ज्यादा पसन्द करूगा) सही अर्थो मे राष्ट्रभक्त है। वे पहले भारतीय है और वाद मे कुछ और यानी वे पहले ऋषि है और वाद मे जाकिर हुसैन। ●

एक आदर्श भारतीय

डा० केवल धीर

ससार के सबसे बडे जनतंत्र के सर्वप्रथम व्यक्ति राष्ट्रपति डाक्टर जाकिर हुसैन से देश और देश से बहार के लोग भलीभाति परिचित होगे, किंतु ऐसे लोग शायद बहुत ही कम हो जो उनके व्यक्तिगत जीवन के उन सभी पहलुओ के बारे मे भी जानते हो जिनके कारण डाक्टर साहब के महान् व्यक्तित्व का निर्माण सम्भव हो सका है और सही अर्थो मे वे एक आदर्श भारतीय बन सके है। यदि पीछे मुड कर उनके ७० वर्ष के जीवन पर नजर डाली जाय तो एक आम आदमी अवश्य ही यह पता चलने पर हैरान रह जाता है कि कभी एक बार भी वे जेल नही गये, देश की आजादी की लडाई के दिनो में कभी उन्होने किसी राजनीतिक मञ्च पर से भाषण नही किया, कभी किसी जलूस का नेतृत्व नही किया तथा कभी भी राजनीति में सक्रिय रूप से उन्होने भाग नही लिया। इन सब के बाव-जूद आज वे ससार के सबसे बडे लोकतत्र के सब से बडे व्यक्ति और भारत की पचास करोड जनता के प्रतिनिधि है। तो वे सब कौन सी ऐसी बाते है, जिनके कारण उन्हे राष्ट्रीय जीवन के शिखिर तक पहुँच पाने का अवसर मिला है ? यहा इसी विषय पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

डा० जाकिर हुसैन के जीवन की गहराई मे उतरने से पहले उन परिस्थितियो पर एक नजर डाले, जिनमे उनके जीवन का आरम्भ हुआ था। मै समझता हूँ कि येही वे परिस्थि-तिया थी, जिनके कारण उनके जीवन में भावुकता एव गम्भीर चितन का विकास हुआ है। आरम्भिक कठिनाइयो ने ही उन्हे निखार कर तपा हुआ सोना बना दिया।

डा० हुसैन उत्तर प्रदेश के ज़िला फर्रुखा-

वाद मे तहसील कायमगज से एक-डेढ मील के फासले पर स्थित गाव 'पतौरा' के रहने वाले है किंतु उन का जन्म हैदराबाद मे हुआ था जहाँ उनके पिता वकालत करते थे। अभी वे केवल नौ वर्ष के थे कि पिता का देहात हो गया। उस समय वे कुल सात भाई थे तथा इन सातो मे स्वय उनका तीसरा नम्बर था। पिता के स्वर्गवास के वाद उनकी माता सपरिवार 'कायमगज' के निकट के अपने गॉव मे चली आई।

डा० जाकिर हुसैन ने प्रारम्भिक शिक्षा घर मे ही प्राप्त की किंतु हैदरावाद से चले आने के वाद उन्हे उत्तर प्रदेश के इटावा नगर मे पाचवी कक्षा मे दाखिल करवा दिया गया। वे सन् १९०७ मे यहा के इसलामिया हाई स्कूल मे दाखिल हुए थे तथा वही से दसवी की परीक्षा पास की थी। इसी काल मे एक और दुख का सामना उन्हे करना पडा— अर्थात उस समय वे केवल बारह वर्ष के ही थे जबकि उनकी माता जो भी उनका साथ छोड कर चली गई उन दिनो गाव मे उनकी माता, नानी, दो छोटे भाई और कुछ नौकर थे, और सभी भाई इटावा के स्कूल मे पढते थे। अचानक प्लेग की बीमारी विकरालरूप से फैल गई थी और गाव के गाव ही इसकी लपेट मे आ गये थे। एक छोटे भाई के अतिरिक्त उनके परिवार के अन्य सभी लोग भी बीमारी का शिकार हो गये। अत मे जब उनकी मा पर बीमारी का भीषण आक्रमण हुआ तो लोगो ने कहा कि बच्चो को बुला लिया जाये किंतु मा ने इस कारण रोक दिया कि इस भयकर बीमारी की आग मे उन्हे झोकना ठीक नही और फिर वे परेशान होगे— परीक्षा निकट है।

अवकाश के दिनो मे जब जाकिर साहब अपने भाइयो सहित गाव लौटे तो दरवाजे पर ताला लटक रहा था। सभी तो खुदा को प्यारे हो चुके थे और इसकी उन्हे कोई खबर तक न थी। जो सबसे छोटा भाई जीवित था, उसे उनकी चाची अपने साथ ले गई थी। इस नन्हीसी उम्र मे इतना बडा हादसा किस कदर अचानक पेश आया था! लेकिन इन वेसहारा बच्चो ने साहस नही छोडा और जी-जान से अपने भविष्य को सवारने मे जुट गये।

जाकिर साहब ने अब जिदगी का एक नया सफर आरम्भ किया— जिदगी, जो उस समय बे सहारा-सी होकर रह गई थी, लेकिन खुदा ने उन्हे स्वय ही अपनी जिंदगी का सहारा बनने की शक्ति प्रदान की। इटावा के जिस स्कूल मे वे शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, वहा के हैड मास्टर जनाब अल्ताफ हुसैन ने उन्हे मार्गदर्शन कराया तथा उनके भावी जीवन के निर्माण एव विकास मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। दूर के एक सम्बधी सूफी हसन शाह ने भी उनके जीवन को दिशा दी थी।

इटावा से दसवी की परीक्षा पास करने के बाद उन्होने शिक्षा प्राप्त करने का सिलसिला जारी रखा और अलीगढ विश्वविद्यालय मे दाखिला ले लिया। जहा से एफ० ए० पास करने के बाद वे लखनऊ चले आये ताकि मैडिकल कालेज मे प्रवेश ले सके। उनकी इच्छा डाक्टर बनने की थी किंतु ऐसा सम्भव नही हो सका क्योंकि वे बीमार पड गये। उन दिनो की अपनी शारीरिक एव मानसिक अवस्था के बारे मे स्वय डाक्टर साहब ने कहा है— मैं केवल शारीरिक रूप मे ही बीमार नही हुआ था, मानसिक रूप से भी मैं सदैव गम के बोझ तले दबा रहता था। इसी काल मे मेरे दो भाई टी० बी० का शिकार होकर मर चुके थे। चूंकि मेरा बुखार 'टाईफायड' मे तबदील हो चुका था, इसलिए मैं भी लगभग अपने जीवन मे

मायूस ही हो चुका था। मुझे जैसे पूरा विश्वास हो गया था कि मैं मर जरूर जाऊंगा, लेकिन कुछ दिनों के वाद मेरा बुखार उतर गया।"

जाकिर साहव लखनऊ से अपने गाव चले आये किंतु यहा आकर वे फिर से बीमार पड़ गये। उन पर फिर 'टाईफायड' का आक्रमण हुआ था और साथ ही 'सरसाम' जैसा भयानक रोग भी हो गया था। लेकिन परमात्मा को अभी उन्हे जीवित रखना था—और वे मौत के मुह से निकल आये, पर उनकी शिक्षा का क्रम बीच में ही टूट गया और वे लगातार छ वर्षो तक अपने गाव मे ही पड़े रहे। इतने लम्वे समय तक बीमार और बेकार पडे रहने के वाद भी उन्होने साहस नही छोडा और फिर से अलीगढ विश्वविद्यालय मे दाखिला लेकर बी० ए० की डिग्री प्राप्त की। इसके वाद उन्होने एक साथ एम० ए० और 'ला' (कानून) में प्रवेश ले लिया, लेकिन उन्ही दिनो महात्मा गाधी और मौलाना आजाद जैसे राष्ट्रीय नेताओ की प्रेरणा से १९२० मे 'जामिया मिलिया' की स्थापना हुई तथा अनेक दूसरे छात्रो एव अध्यापको के साथ वे भी यहा चले आये। शिक्षा का क्रम एक बार फिर टूट गया। स्वय उन्ही के शब्दो मे "यहा से मेरे जीवन को एक नई राह मिली।"

इस सस्था से सम्वद्ध होने के वाद जाकिर साहव ने अपना तन, मन, धन इसे ही अर्पित कर दिया। यहा वे न केवल पढाते ही थे, बल्कि स्वय. पढते भी थे। जिस मन्जिल तक वे पहुँचना चाहते थे, वहा तक पहुँच पाने के लिए अपने प्रयत्नो में कभी उन्होने ढील नही आने दी और न ही सघर्ष एव साहस को त्यागा। थोडे ही समय के वाद उन्हे अध्ययन के लिये विदेश जाने का अवसर उपलब्ध हो गया और पी–एच० डो० करने के लिये वे जर्मनी चले गये। सन् १९२६ में विदेश से लौटने के वाद वे फिर से उसी सस्था मे चले आये तथा सन् १९४८ मे अलीगढ़ विश्वविद्यालय के 'वाइस-चान्सलर' बनने से पहले तक 'जामिया मिलिया' से सम्वद्ध रहे। इस सस्था की बुनियाद महान् आदर्शो को सामने रख कर डाली गई थी तथा उद्देश्य था शिक्षा! देश के आजाद होने से पहले किसी ऐसी सस्था की स्थापना अग्रेज हकूमत की 'छाती पर साप लोटने' जैसी बात थी। इसलिए इसे हकूमत की ओर से किसी प्रकार की आर्थिक सहायता उपलब्ध होने का सवाल ही पैदा नही होता था और भी कोई वडे साधन उपलब्ध न थे। इस सब के वावजूद डा० जाकिर हुसैन की देख-रेख एव व्यवस्था ने न केवल इस सस्था को जीवित रखा वल्कि उन्ही महान् आदर्शो को लेकर आगे बढ़ाया जिन पर कि इसकी स्थापना की गई थी।

सन् १९५४ में उनका स्वास्थ्य खराव हो गया तो अलीगढ़ विश्वविद्यालय के 'वाइस चान्सलर' के पद से त्यागपत्र दे कर वे चिकित्सा के उद्देश्य से 'स्विटजरलैण्ड' और फिर 'जर्मनी' गये। वहा से स्वस्थ होकर स्वदेश लौटने पर उन्हे विहार प्रात का राज्यपाल नियुक्त किया गया। सन् १९६२ में उन्होने विशाल भारत के दूसरे सबसे वड़े व्यक्ति (उपराष्ट्रपति) का स्थान ग्रहण किया और आज वे हमारे राष्ट्रपति है।

डा० जाकिर हुसैन किन परिस्थितियो में से गुजर कर कहा से कहा तक पहुँचे है, इससे हम उनके सघर्षमय एवं साहसी जीवन का सहज ही अंदाजा लगा सकते है। उनकी जिन्दगी के इस पहलू मे हिम्मत, मेहनत और लगन की जो झलक दिखलाई देती है, इस पर हम समस्त भारतवासियो को गर्व होना स्वाभाविक ही है।

हमारे राष्ट्रपति ने अपने जीवन का एक बडा भाग अध्यापक के रूप मे अथवा विद्यार्थी-वर्ग के साथ व्यतीत किया है। एक बार यह पूछे जाने पर कि "अपने समय के विद्यार्थियो और आज के विद्यार्थियो के बीच आप क्या अन्तर अनुभव करते है ?" उन्होने कहा था—सिर्फ इतना अ तर महसूस होता है कि अब उनमे नैतिकता की कमी हो गई है तथा उन्हे शरारत के अधिक अवसर उपलब्ध हो गये है।" इन थोडे से शब्दो की गहराई मे झाकने पर हम उस कटु सत्य का अनुभव कर सकते है जिसका सम्बध हमारे आज के माहौल और युवक वर्ग से है। डाक्टर साहब के शब्दो मे ही इसी विषय पर कुछ और आगे बढे- "अब अध्यापक किराये के होते है इसलिए अब विद्यार्थियो एव उनके बीच 'गुरु और शिष्य का सम्बंध समाप्त हो गया है। अब इन अध्यापको से स्नेह की आशा रखना बेकार है। नैतिकशिक्षा भी समाप्त होती जा रही है।

भाग्य और श्रम के विषय मे भाग्य से वे परिश्रम को अधिक मानते है। उनकी इस मान्यता पर यह मजेदार घटना प्रकाश डालती है। एक बार एक ज्योतिषि जी महाराज उनसे मिलने चले आये। वह दक्षिण के रहने वाले थे और एक मोटी सी फाईल लिये थे, जिसमें देश के अनेक 'बडे-व्यक्तियो' के प्रमाण पत्र थे। वह साहब डाक्टर साहब को प्रभावित करने के उद्देश्य से बहुत बाते किये जा रहे थे और डाक्टर साहब मजे से सुन रहे थे। कुछ देर बाद ज्योतिषी महोदय ने उनका हाथ देखने की इच्छा व्यक्त की तो उन्होने मना कर दिया। साथ ही कुछ प्रश्न भी पूछ डाले। ज्योतिषी जी समझे थे कि

वे काफी प्रभावित हो गये है, इसलिए वह बहस मे पड गये किन्तु यह देखकर मुझे हैरानी हुई कि डाक्टर साहब का अध्ययन इतना व्यापक था कि शीघ्र ही ज्योतिषीजी महाराज ने हथियार डाल दिये। सबसे अधिक मजेदार बात तब हुई जब जाते समय उन्होने डाक्टर साहब के साथ अपना फोटो खिचवाने की इच्छा व्यक्त की और राष्ट्रपति जी ने उन्हे निराश नही किया किन्तु धीमे से मुसकराते हुए कहने लगे— "लेकिन इस फोटो को अपने प्रमाण पत्रो वाली इस फाइल मे न रखियेगा।"

उन ज्योतिषी महोदय के जाने के बाद डाक्टर साहब कहने लगे—"मेरा विश्वास 'तकदीर' और 'तदबीर' दोनो मे है लेकिन ज्योतिष मे नही। तदबीर (श्रम) पर मुझे ज्यादा भरोसा है क्योकि यह तो मेरे अपने अधिकार की चीज है लेकिन इस सब बात के बावजूद कुछ ऐसी अनदेखी-अनजानी शक्तियाँ भी अवश्य है जिन पर भरोसा करना पडता है। मेरे यह सोचने का यही कारण है कि 'तकदीर' के चक्कर पड कर सोचना या चिंतित होना बेकार की बात है। जो चीज हमारे अधिकार मे नही उसके बारे मे सोच कर समय और शक्ति नष्ट क्यो की जाये। हमारा तकदीर पर कोई वश नही है, जबकि तदबीर हमारे बस की चीज है।"

अन्त मे मै डाक्टर साहब के जीवन की दो-एक घटनाओ का उल्लेख करूँगा। यद्यपि ये साधारण सी घटनाये, है किन्तु इन साधारण प्रतीत होने वाली घटनाओ से न केवल डा० हुसैन के व्यक्तित्व पर प्रकाश पडता है बल्कि राष्ट्र के नाम—विशेषत राष्ट्र के युवक वर्ग के नाम एक महान् सदेश भी है।

यह बहुत दिन पहले की बात है जबकि जाकिर साहब जामिया मिल्लिया के वाइस चान्सलर थे। देश आजाद हुए अभी एक-दो वर्ष व्यतीत हुए थे। छात्रावास के लिये कई सौ विद्यार्थियो के लिए भोजन आदि का प्रबन्ध करने मे अनेक कठिनाइयो का सामना था लेकिन किसी तरह काम चल रहा था। उन

दिन रात के वक्त सब लोग 'डाइनिग हाल' में खाना खा रहे थे। दाल के साथ बैंगन का भुर्ता बनाया गया था। लेकिन अधिकाश छात्रो को यह पसन्द नही था। उन्होने इसे निकट पडी अपनी खाली प्लेटो में डाल दिया था। इतना ही नही, कई ने तो इसमें रोटी के जले किनारे एवं पानी भी मिलाकर परे सरका रखा था। साथ-साथ खूब शोर मचा था। और बैंगन के भुर्ते को लेकर कभी रसोइये और कभी मैस-इन्चार्ज पर फब्तियाँ कसी जा रही थी। तभी हाल के बाहर जाकिर साहब को मौजूद पाकर सब लोग खामोश हो गये। जाकिर साहब लडको के जूतो की 'लाईन' को सलीके से सवार रहे थे। 'मानीटर' तुरन्त ही वहा पहुँचा किन्तु जाकिर साहब ने यह कह कर उसे लौटा दिया कि वह हाल मे जाकर यह देखे कि किसी लडके को किसी चीज की जरूरत तो नही है। बाद मे वे स्वयं भी हाल मे आ गये और एक चक्कर काटने के बाद लडको के साथ ही खाने पर बैठ गये। सप्ताह मे दो-एक बार वे पहले भी लडको के साथ ही खाना खाते थे लेकिन आज बात और ही थी। जहाँ वे बैठे थे वहाँ एक ऐसी प्लेट पडी थी जिसमे भुर्ते के साथ पानी और रोटी के जले-अध जले टुकडे डाल दिये गये थे। सभी लडके हैरान थे। जिन्होने यह हरकत की थी, वे भयभीत हो उठे थे कि अब खूब डाट पडेगी। जाकिर साहब कुछ बोले नही और उस प्लेट को सामने रखकर जो कुछ भी इसमें था, उसी के साथ चपाती खाने लगे। सभी स्तब्ध हो उठे क्योकि यह खाना तो क्या, देखने के योग्य भी नही रह गया था लेकिन वे बडे मजे से खाते रहे। निकट बैठे जिन लडको ने यह हरकत की थी, लज्जित होते हुए उन्होने कहा कि वे नई प्लेट मगवा ले। जाकिर साहब ने उत्तर दिया था—"तुम लोगो को मालूम नही कि तुम्हारे देश में—बल्कि तुम्हारे इसी नगर मे या तुम्हारे आस-पास की इस बस्ती ही मे कितने लोग ऐसे है जिनको अगर यह भी खाने को मिल जाये जो तुमने फेका है, तो आज रात वे भूखे नही सोयेंगे। तुम लोगो ने इस खाने को पानी और रोटी के टुकडे मिला कर इस योग्य भी नही छोड़ा कि यह किसी को दिया जा सके। मैने सोचा कि यदि मै ही इसे खा लूँ तो कम से कम मेरा अपना खाना तो किसी भूखे को दिया जा सकता है। अन्न का अनादर सबसे बड़ा पाप है।"

एक और घटना स्वय जाकिर साहब ही के शब्दों में—"उन दिनो मै जर्मनी मे अध्ययन के उद्देश्य से गया हुआ था। एक दिन वहाँ के एक गाव की सडक पर से गुजर रहा था और यह देख कर हैरान हो रहा था कि छात्रो का कोई भी दल जब मेरे निकट से गुजरता तो मुझे 'सलाम' अवश्य कहता। मै पहले तो समझा कि शायद किसी गलतफहमी मे ये मुझे सलाम कर रहे है लेकिन जब यह सिलसिला बराबर जारी रहा तो मैने एक स्थानीय अधिकारी से इसका कारण जानना चाहा। उसने उत्तर देते हुए कहा कि "हम अपने बच्चो को स्कूल मे यह सिखलाते है कि प्रत्येक विदेशी को सलाम अवश्य करो। हम इन बच्चो को ज्यादा से ज्यादा सभ्य बना देना चाहते है। हमारा देश और इस देश के नागरिक यदि सभ्य नही होगे तो विदेशी हमारे यहा आयेगे ही क्यो।" "यह उत्तर सुनकर मै बहुत प्रभावित हुआ और सोचने लगा कि किसी भी राष्ट्र को ऊँचा उठना हो तो उसे अपने बच्चो को—अपनी कौम को ऊँचा उठाना होगा।"

एक घटना और—डाक्टर साहब जब बिहार के राज्यपाल थे तो बाहर के छात्रो का एक दल उन से भेट करने गया। वे चाय पर छात्रो से तरह-तरह के सवाल पूछते रहे। उनके बगल मे जो लडका बैठा था, उन्होने उसका परिचय मागा तो लड़के ने अपने उत्तर मे कहा—"मेरा नाम असलम है,

आरम्भिक प्रणाली का छात्र हूँ और इस वर्ष अपने विद्यालय मे 'बच्चो की हकूमत' में स्वास्थ्य एव सफाई-मत्री की हैसियत से काम कर रहा हूँ।" डाक्टर साहब ने और प्रश्न किया—"आप मन्त्री की हैसियत से क्या काम करते है ?" उत्तर मिला—"मै स्कूल की सभी क्लासो एवं मार्गो की जाच करता हूँ और जहा कही गन्दगी दिखाई देती है इसकी सफाई कराता हूँ। इसके अतिरिक्त मै ऐसी सब बातो का ध्यान रखता हूँ कि कोई छात्र इधर-उधर गन्दगी नही फैलाये, दीवारो पर नही लिखे, अपने शरीर एव वस्त्रो को साफ रखे—अर्थात् मै हर उस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखता हूँ कि हमारे विद्यालय की सफाई का स्तर ऊँचा रहे।" बहुत ध्यान से उसकी बाते सुनने के बाद जाकिर साहब ने पूछा—'ये सब बहुत अच्छी बाते है, लेकिन क्या आप स्वय भी झाडू देना जानते है ?" लडके ने हिचकिचाते हुए कहा, "जी नही !" इस पर उन्होने कहा—" तब आपको कैसे अन्दाज हो सकता है कि सफाई ठीक ढग से हुई है या नही ? देखो भाई ! जब तक कोई आदमी स्वय काम नही जानता हो, वह भला कैसे उस काम की निगरानी कर सकता है ? मत्री उसे बनना चाहिये जो सम्बन्धित काम की सही जानकारी रखता हो।" ●

सपनो का भारत

"हमे स्वतत्र भारत के उस चित्र का ध्यान रखना है जिसमे सत्य का शासन होगा, जिसमें सबके साथ न्याय होगा, जहा गरीब अमीर का भेदभाव न होगा, बल्कि सबको अपनी कार्यक्षमताओ को पूर्णतया विकसित करने का अवसर मिलेगा। उसमे लोग एक दूसरे का भरोसा करेंगे और एक दूसरे की मदद करेंगे, जिसमे धर्म इस काम मे न लाया जायगा कि झूठी बाते मनवाये और स्वार्थो की आड बने, बल्कि वह जीवन को सुधारने का साधन होगा।" यह है डा० जाकिर हुसैन के सपनो का भारत, उनका जीवन दर्शन, सीधा, सरल, किन्तु उच्च आदर्शो से परिवेष्ठित।

गाँधी जी के सच्चे शिष्य

लक्ष्मीनारायण श्रीवास्तव

ससार की उत्पत्ति से आज तक इस रगा रग विश्व से प्रभावित होकर अनेक दार्शनिक अपने-अपने दृष्टि कोण से इसकी परिभाषा अपने ढग से करने का प्रयास करते चले आ रहे है। मुख्यत. किसी ने इस जगत् को असार और मिथ्या बताते हुए केवल एक स्वप्न के सदृष्य माना है, जब कि दूसरो ने इस को अति गम्भीर, महत्वपूर्ण और उपयोगी समझा है। इन दो मूल विचारधाराओ के वेग मे साधारण मानव जीवन की गति-विधियाँ अनादि काल से बहती रही है।

कैसा विचित्र और कैसा अनोखा है यह ससार! इसकी प्रत्येक वस्तु की रचना एक विकसित मानव मस्तिष्क में अद्भुत हलचल उत्पन्न किये बिना नही रहती। रचना! एक उत्तेजनात्मक प्रेरणा का स्रोत, एक तीव्र लग्न का केन्द्र, एक प्रबल साहस और अटूट उत्साह का उद्गम और एक तीखी गहरी प्यास, उस पीयूष पान करने के लिए, जिस के पाने के पश्चात् कुछ जानने के लिए अथवा कुछ प्राप्त करने के लिये शेष नही रह जाता। सहसा इस सारे रगमच को सुसज्जित करने वाले की ओर ध्यान आकर्षित होता है जिस ने प्रत्येक वस्तु की रचना इतनी सुन्दर, इतनी शुद्ध और इतनी अमूल्य की है कि इसके विभिन्न पक्षो का अध्ययन करने के लिए अनन्त काल की आवश्यकता है। ऐसी दशा मे आयु की सीमित अवधी मे उस रचयिता की खोज के प्रयत्न, जीवन का कार्यक्रम और उसकी प्राप्ति जीवन का लक्ष्य स्वत. ही सिद्ध हो जाते है।

यह बात भी निर्विवाद सिद्ध है कि "मानव" उस रचयिता की श्रेष्ठतम कृति है, इसको वे शारीरिक और मानसिक वरदान

प्राप्त है जो अन्य को नही, अत मानव जीवन ही केवल ऐसा जीवन है जिसमे सुबुद्धि युक्त सद् कर्मो द्वारा मानव इस ससार के सम्पूर्ण रहस्य जान सकता है तथा जीवन के लक्ष्य को सरलता से प्राप्त कर सकता है । सुबुद्धि युक्त सद्कर्मो के क्षेत्र मे शुद्ध और स्वतत्र वातावरण का प्रमुख स्थान है ।

प्राचीन काल मे जो जगत् गुरु भारत ससार के कोने-कोने मे आध्यात्मवाद का नारा बुलन्द करता आया था और जिसने स्वतत्रता, शान्ति, सहयोग और सुख का सन्देश व्यक्ति के द्वार तक पहुँचाया था, अभाग्य से दासता के चु गल मे फस कर धीरे-धीरे सर्वा गीण पतन की ओर फिसलने लगा । परन्तु देश में कभी पूर्व मे तो कभी पश्चिम मे, कभी उत्तर मे तो कभी दक्षिण मे स्वतत्रता की छिपी अग्नि भडक उठती थी ।

स्वर्गीय पूज्य महात्मा गाधी का युग आरम्भ हुआ । देश के एक छोर से दूसरे छोर तक फिरगियो से स्वतत्रता की माग की लहर दौड गई । राष्ट्रीय एकता ने अपना चमत्कार दिखाया । प्रेम, त्याग, सत्य और अहिसा ने देश को एक सूत्र मे बाधा । देश के दीवाने पूज्य महात्मा गाँधी के झण्डे के नीचे एकत्रित हो गये और देश के हितार्थ अपने जीवन को उनके हाथो मे सौप दिया ।

हमारे वर्तमान राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन साहब भी उन्ही देश के दीवानो मे से है जिनके हृदय मे अपने देश और देश वासियो के प्रति अपार प्रेम भरा है । ये स्व० महात्मा गाँधी के उन कप्तानो मे से है जिन पर उनको अटूट विश्वास था ।

राष्ट्रीय प्रेम मे ओतप्रोत डा० जाकिर हुसैन साहब का जन्म हैदराबाद मे सन् १८९७ मे हुआ था । आपके पूर्वज ग्राम पतोरा जिला फर्रुखाबाद के रहने वाले थे । आपके पिता स्वर्गीय फिदा हुसैन साहब हैदराबाद मे वकालत करते थे । डा० जाकिर हुसैन साहब की प्राथमिक शिक्षा समाप्त होने के पूर्व ही श्री फिदा हुसैन साहब का स्वर्गवास हो गया ।

डा० जाकिर हुसैन ने हाई स्कूल इटावा से, एम० ए० विश्वविद्यालय अलीगढ तथा पी-एच डी जर्मनी से पास किया । यह उल्लेखनीय बात है कि जब आप विश्वविद्यालय अलीगढ मे एम ए के विद्यार्थी थे तब आप जामिया मिलिया, अलीगढ मे अध्यापक भी थे और आपका सम्मान छात्रो और अध्यापको मे बराबर था । एक नई सस्था की समस्याओ के हल करने तथा इसमे नई-नई शैक्षणिक गतिविधियो को कार्यान्वित करने मे आपका अधिकाश समय व्यतीत होता था ।

जर्मनी से लौट आने के पश्चात् सन् १९२६ से १९४८ तक आप जामिया मिलिया के प्रिंसीपल रहे । शिक्षा मत्री महोदय स्वर्गीय अबुलकलाम आजाद साहब ने आपसे विश्व विद्यालय अलीगढ का भार वहन करने के लिए कहा । पहले तो आप ने सकोच किया परन्तु मित्रो के आग्रह से सन् १९४८ मे विश्वविद्यालय अलीगढ के वाइस चासलर नियुक्त हो गये और १९५८ तक इस पद पर इस प्रकार काम किया कि विश्व विद्यालय मे नये प्राण का सचार होना साफ प्रकट होता था ।

कठिन परिश्रम के कारण आपका स्वास्थ्य खराब हो गया । वाइस चासलर के पद को छोडकर और कुछ दिनो जामिया नगर रहकर चिकित्सा के लिए आप स्विटरजलैड और जर्मनी पधार

गये। इस ही बीच मे आपको बिहार का गवर्नर बना दिया गया। आपका कार्य इस पद पर भी बड़ा सराहनीय रहा। इसके पश्चात् आप उपराष्ट्रपति और वर्तमान मे राष्ट्र पति के पद को सुशोभित कर रहे है।

डा० जाकिर हुसैन महात्मा गाधी के कट्टर अनुयाइयो मे से है। आपका भी मत यही है कि जीवन का लक्ष्य ईश्वर मे अटूट विश्वास और उसकी प्राप्ति है। आप भी मानवता के पुजारी है और सदा मानव कल्याण के लिए प्रयत्न शील रहते है। आप देश मे समाजवाद की स्थापना चाहते है। आपमे प्रेम, त्याग, सत्य और अहिंसा कूट-कूट कर भरे है। निर्धन, दु खी और असहाय लोगो से आप को विशेष सहानुभूति रही है और आप उनके कष्ट दूर करने मे भरसक तन, मन और धन से प्रयत्न करते आये है। आपने देश के हजारो नवयुवको का पथ प्रदर्शन करके उनको सद् मार्ग पर लगाया है।

डा० जाकिर हुसैन साहब की श्रेष्ठतम ख्याति का कारण उनकी शिक्षा क्षेत्र की सेवाएँ है। पूज्य महात्मा गाधी के शिक्षा सम्बन्धी विचारो को एक सूत्र मे बाँध कर बुनियादी शिक्षा का रूप देना वास्तव मे आप का ही कार्य था। सन् १९३७ मे गोरो के शासन मे यह महान शिक्षा शास्त्री दो बार बुनियादी शिक्षा कमेटियो के अध्यक्ष चुने गये। इन्होने बडे धैर्य और वीरता के साथ भारत मे लार्ड मेकाले द्वारा सचालित शिक्षा नीति का घोर विरोध किया। प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष भाषणो मे, लेखो मे उस समय की सरकार की शिक्षा नीति के अवगुणो और उनके देश पर पडने वाले कुप्रभावो को भारतीय जनता के समक्ष रखा। यही नही गोरो के पिट्ठू भारतीयो से भी जम कर वह लोहा लिया कि गोरो की पूरी शिक्षा नीति का भडाफोड़ ही नही हुआ बल्कि उसके प्रति घृणा और उसका देश से उन्मूलन करने के भाव जन-जन मे भडक उठे। देश की शिक्षा नीति मे परिवर्तन की अनुभूति कराने का श्रेय वास्तव मे डा० जाकिर हुसैन साहब की विद्वता, दूरदर्शिता, अथक परिश्रम और चरित्र बल को ही है।

डा० जाकिर हुसैन साहव ने आकाशवाणी द्वारा अपने भाषणो मे, महाविद्यालयो के प्रमाण पत्र वितरण समारोहो के भाषणो मे बुनियादी शिक्षा के गुणो और उसके द्वारा सामाजिक पुनर्निर्माण के महत्व को समझाया। आपने बताया कि जीवन सम्बन्धित उद्योगो द्वारा अथवा सामाजिक अथवा सास्कृतिक अथवा स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यो द्वारा बालक के व्यक्तित्व का सर्वागीण विकास इस प्रकार किया जाये कि भविष्य मे वह नागरिक के रूप मे समाज पर बोझ न बनकर समाज मे अपना उचित स्थान प्राप्त कर सके तथा इसके विकास मे योग देता हुआ अपने जोवन के लक्ष्य को प्राप्त कर सके, जो लोकतत्र का अमूल्य प्रसाद है। आपने बालक के मन, हाथ, मस्तिष्क और स्वास्थ्य की शिक्षा को परम् आवश्यक वनाते हुए उनकी विधियो और साधनो को वताकर देश की अमूल्य सेवाएँ की है। माता, पिता अथवा सरक्षण का वालक के प्रति उत्तरदायित्व, बाल ग्रथिया, सरकार, समाज, और घर और पाठशाला के पारस्परिक सम्बन्ध, अच्छी आदतो का बालको मे निर्माण, पाठशाला का वास्तविक रूप, आदर्श अध्यापक तथा व्यक्ति और समाज जैसे गूढ गहन विपयो पर अधिकारपूर्ण रूप से प्रभावशाली भाषा मे अनेक भाषण देकर आप भारतीय समाज मे उन्नति की एक नवीन उत्सुकता और चेतना पैदा करते है। आपके भाषण एक ओर पथ प्रदर्शन करते है तो दूसरी ओर उनमे समाज और राष्ट्र के प्रति मानसिक और हार्दिक कसक स्पष्ट रूप से झलकती है।

डा० जाकिर हुसेन साहब चारित्रिक सद्गुणो के कोष है। एक ओर आपके हृदय मे राष्ट्र प्रेम और मानवता के प्रति श्रद्धा और आदर की लहरे हिलोरे दिखाई दृष्टि पडती है तो दूसरी ओर सृजनात्मक, कलात्मक और सौन्दर्यात्मक अनुभूतियो की प्रचुरता से छोटी-छोटी साधारण बातो मे चार चाँद लगा देते है। प्रत्येक बात मे आश्चर्यजनक नवीनता, सुन्दरता और आकर्षण पैदा कर देना आपकी साधारण कला है। आपकी तबीयत मे सफाई को प्रकृति ने विशेष स्थान दिया है।

आप एक असाधारण लेखक, कहानीकार और प्रवक्ता तो है ही, आपका अध्ययन बहुत गहरा है और अब भी आप को पुस्तकें पढने का बडा चाव है। बागबानी, नागफनी, ससार के विभिन्न कला तथा अन्य क्षेत्रो के महापुरुष आदि के चित्रों, विभिन्न प्रकार के पत्थरो को जमा करने का, कहानियो का भी आपको भारी चाव है। आप सदा से ललित कला के उपासक रहे है। ससार के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कवियो के पद्य आप को जबानी याद है जिनका प्रयोग प्राय आप अपने भाषणो और लेखो मे भी किया करते है। आपके विचार स्पष्ट होते है और उनको जनसाधारण की भाषा मे प्रभावपूर्ण ढग से लिखकर अथवा वाणी द्वारा प्रकट करना आपका विशेष गुण है।

कटु सत्य तो यह है कि जिस मनुष्य को बालक और उसकी उचित शिक्षा मे रुचि नही वह ससार मे कुछ भी हो सकता है परन्तु राष्ट्र मे किसी प्रकार समाज का नेता कहलाने का हकदार नही माना जा सकता। अत डा० जाकिर हुसेन साहब का देश मे राष्ट्रपति पद पर आरूढ किया जाना कोई बडा आश्चर्य नही। डा० जाकिर हुसैन साहब तो संसार के सर्वश्रेष्ठ शिक्षा शास्त्री है और आपकी रग रग मे बच्चो का प्रति मान और स्नेह का समुद्र हिलोरे लेता है।

आपका राजनीतिक दृष्टिकोण पचशील के सिद्धान्तो पर आधारित है। आप ससार के राष्ट्रो मे पारस्पारिक सद्भावना और प्रेम का व्यवहार चाहते है। प्रत्येक राष्ट्र के कष्ट और आपत्तियो मे सहयोग की भावना रखते है। ससार मे सुख, शान्ति, न्याय, प्रेम और सहयोग की जडें सुदृढ हो और मानव कल्याण के साधनो को शक्तिशाली बनाया जाये, यह आपकी हार्दिक इच्छा है।

असली शिक्षा

असली शिक्षा आदमी के अपने ही हाथो होती है। मेरी प्रार्थना आप सबसे, शिक्षको से भी, स्नातको से भी यही है कि इस काम को अपना काम बनाइये, ऐसा काम जिससे मन का विकास होता है। आप अच्छे आदमी बने, आप से यह बात भला क्यो छिपी होगी कि आदमी का मस्तिष्क अपने किये को परख कर अच्छे—बुरे पर नजर करके ही उन्नति करता है।

—डा० जाकिर हुसेन

तीन दुर्लभ विशेषताएँ : एक व्यक्ति

—प्रोफेसर अल अहमद सरूर

प्लेटो के बारे में कहा गया है कि "उसके व्यक्तित्व के सैद्धान्तिक व व्यावहारिक दोनों पक्ष सौन्दर्य-भावना मे मिल गये है । सुधारक व विचारक के मध्य विरोध कलाकार की श्रेणी में विलीन हो गया है ।"

यह बात प्लेटो की विश्व प्रसिद्ध पुस्तक "स्टेट" से ली गई है और यह बात इस पुस्तक के अनुवादक डा० जाकिर हुसैन पर भी पूरी उतरती है। प्लेटो से रसेल तक विचारक और लेखको के यहा या तो ज्ञान की गहराई है या एक पैगम्बराना शान या व्याख्या की विशेषता । ये तीनो बाते अलग-अलग भी इतनी महत्त्वपूर्ण है कि मुश्किल से एक व्यक्ति मे एकत्रित हो सकती है । प्लेटो को इन सब का भरपूर हिस्सा मिला था और फिर जाकिर साहिब को भी ।

डा० जाकिर हुसैन मे एक विचारक की कल्पना है, एक शिक्षक की विशेषता है, एक प्रेमी का दर्द है, एक राजनीतिज्ञ का गौरव है, एक सूफी की शान है और एक महात्मा की निर्दोषिता है । उनके लिए शिक्षा सिर्फ ज्ञान-विज्ञान का सग्रह मात्र नही बल्कि मानवता के श्रेष्ठ मूल्यो की सेवा का साधन भी है । उन्होने कई बार घर छोड़ा और लोगो को तालीम दी । उन्होने किताबो मे कभी अपने आप को बन्द नही किया । मगर जब भी कुछ लिखा तो अपने वाक्यो मे वह बिजली भर दी जो साहित्य में एक विशिष्ट प्रभाव और प्रकाश दे जाती है और जिससे मानव की जिन्दगी बदलती, सवरती और निखरती है । जाकिर साहिब की पहली किताब अफलातून की "स्टेट" का उर्दू अनुवाद है । इसके बारे मे मौलाना इकबाल अहमद सुहेल ने कहा है कि प्लेटो को उर्दू

ग्रानी होनी तो वह भी यही भाषा ग्रहण करता।

जर्मनी मे जाकिर साहिब अर्थशास्त्र के प्रसिद्ध प्रोफेसर जुम्बार्ड के शिष्य थे। जब वे यूरोप से वापस आये तो जामिया वाले खस्ता हालत मे थे। इसके नेता राजनीति की तग घाटियो मे भटक रहे थे। राष्ट्रीय शिक्षा का यह प्रयोग दम तोड रहा था। जाकिर साहिब ने कौमी व शिक्षायी बुनियादो पर शिक्षा का मार्ग दर्शन किया, अच्छे शिक्षको का एक सिलसिला तैयार किया, छात्रो मे शिक्षा की पिपासा, ज्ञान प्राप्ति की लगन व सेवा की भावना पैदा की और सितारो से आगे देखने वाली दृष्टि को एक शैक्षणिक बस्ती बसाने के कठिन, पर पवित्र काम मे लगा दिया।

जाकिर साहिब ने अपने भाषणो मे अध्यापन का जो लक्ष्य प्रस्तुत किया है, वह इतना महत्त्वपूर्ण है कि उसे उद्धृत करने का लोभ सवरण करना कठिन है —उस्ताद की जीवनी के पहले सफे पर इल्म नही लिखा होता। मुहब्बत की सुर्खी होती है। उसे इन्सानो से मुहब्बत होती है। समाज से मुहब्बत होती है। अच्छे उस्ताद की सवेदनापूर्ण जिन्दगी मे व्यापकता होती है और उसकी गहराई भी उतनी ही अधिक होती है। उसकी आत्मा मे सच्चाई होती है। नेकी व पवित्रता, न्याय व स्वतन्त्रता की जाच होती है, जिससे वह दूसरे दिलो को गरमाता है और उसमे तपा-तपा कर अपने शागिर्दो को निखारता है। शासक जुल्म करते है पर वह सब्र करता है। वे मजबूर करके एक ही राह पर चलाते है, पर वह उन्हे उनकी इच्छा से उचित राह पर चलाता है। एक के साधनो मे हिसा व बल है, जब कि दूसरे मे मुहब्बत व सेवा। एक का कथन डर से माना जाता है दूसरे का इच्छा से। एक हुक्म देता है, दूसरा सलाह। एक गुलाम बनाता है, दूसरा दोस्त। जब सारी दुनिया निराश हो जाती है तो बस दो आदमी होते है, जिनके सीने मे उम्मीद बाकी रहती है, एक उसकी मा, दूसरा अच्छा उस्ताद।

जाकिर साहिब बहुत कुछ है। मगर सब से पहले वे शिक्षक है। उन्हे नौजवानो और बच्चो से बहुत मुहब्बत है। उन्होने न सिर्फ बच्चो को इन्सानियत सिखाई है बल्कि उनके लिए कहानियाँ, ड्रामे व मजमून सब कुछ लिखा है। पूरी जो कढाई से निकल भागी, मुर्गी जो अजमेर चली, उकाब, अब्बूखान की बकरी, आदि कहानिया भी युवा, वृद्ध सभी शौक से पढते है। बच्चो के लिए ये सीधी-सादी दिलचस्प कहानिया है, जवानो व बूढो के लिए इनमे आजादी, देशभक्ति व मानवता के अमर सदेश छिपे पडे है। स्विफ्ट ने गुलीवर के सफर की जो कहानी लिखी है, उसे बच्चे मनोरजन की खान समझते है। उसने किस्से कहानी के परदे से मानवीय प्रकृति पर ऐसे-ऐसे पर्यवेक्षण किये है कि समझने वाला तिलमिला कर रह जाता है। जाकिर साहब ने भी पर्यवेक्षण किये है पर वे चोट नही लगाते। उनके पास तो एक शिक्षक की रहमदिली है। वे न इन्सानो से निराश होते है न बेजार। कहा जाता है कि खुदा इन्सानो से अभी तक बेजार नही हुआ है। खुदा की यह विशेषता खुदा के इस नेक बन्दे के व्यक्तित्व मे भी झलकती है। एक जगह वे लिखते है —

इसमे बडा मजा है कि आदमी आदमियो के बारे मे अच्छे से अच्छे भाव रखे। वह चाहे रोज धोखा खाये, पर हर रोज नये सिरे से आदमी की नेक दिली पर विश्वास करे और अक्लमदो को और बेवकूफो दोनो को माफ करे क्योकि दोनो गुमराह होते हैं।

बार बार ये धोखे खाने मे जो मजा है, वह बडी से बडी अक्लमन्दी मे नही।

जाकिर साहब ने जामिया में उर्दू अकादमी की बुनियाद डाली। उन्ही के नेतृत्व में जामिया ने दीवाने गालिब, रुबाइयाते उमर खय्याम और दीवाने शैदा के सुन्दर सस्करण टाइप में निकले। उन्ही के नेतृत्व में "रिसाले जामिया" ने वर्षो उर्दू साहित्य की मौन पर ठोस, सेवा की। उन्होने ही अलीगढ में शिक्षा का वातावरण उत्पन्न करके अलीगढ की प्रतिष्ठा ऊंची की और उन्होने ही अजुमन तरक्किये उर्दू (हिन्द) के अध्यक्ष की हैसियत से आधुनिक भारत में उर्दू के दर्जे को उठाया व अलीगढ़ पर उर्दू का जो हक है, उसकी याद अलीगढ़ वालों को दिलाई। उन्होने अपनी लेखनी व भाषण दोनो से साहित्य व शिक्षा के क्षेत्र मे निरन्तर महत्त्वपूर्ण योगदान किया। उन्होने साहित्य व शिक्षा के उद्देश्य पर भी नये रूप मे प्रकाश डाला व साहित्य के जरिये से देश व कौम को व्यापकता व गहराई प्रदान की और जीवन की चमक-दमक, थरथराहट व दर्द से दोस्ती करने उसमें बुलन्दी उत्पन्न की। इस शिक्षक, विचारक, महात्मा, सूफी और साहित्यकार की देन कहा तक गिनाई जाये। ●

हमें बहुत कुछ करना है—

"जब तक हमारे देश मे करोडो आदमियो को जीते जी पेट भर खाना नही मिलता है, जब तक करोडो आदमियो को दुख-दर्द में दवा नसीब नही होती, जब तक हमारे देश मे आदमियो की जान मक्खियो और भुनगो जैसी सस्ती है, जब तक इस देश मे करोडो आदमी अनपढ है और करोड़ों बच्चो को मदरसे जाना नसीब नही होता, उस वक्त तक अग्रेजी साम्राज्य से निजात पा जाना काफी नही है। हमें इस देश के पहाड़ काटने है, समुन्दर पाटने है, खाने खोदनी है, नदिया मोड़नी है, इसके रेगिस्तान को गुलजार बनाना है, जहालत को खत्म करना है। गरीबी को मिटाना है, रोगो को भगाना है। यह सब विज्ञान के रास्ते से होगा।"

—डा० जाकिर हुसैन

एक राष्ट्रीय अध्यापक

—वी० पी० जोशी

"आप बडे खुश नसीब है। राष्ट्रपति ने खुद अपने हाथो आपको इज्जत दी है। आपको उन्होने राष्ट्रीय पुरस्कार दिया है। हमे तो ऐसा कोई इनाम मिला नही है। हमारे जमाने मे ऐसे इनाम का कोई जिक्र या वास्ता ही नही था। अगर होता भी तो क्या पता हमको मिलता भी या नही।" इन शब्दो से डा० जाकिर हुसैन ने, जो उन दिनो उपराष्ट्रपति पद को सुशोभित कर रहे थे, दिनाक १९ नवम्बर ६४ की सध्या को अपने निवास स्थान पर आमत्रित राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त अध्यापको को सम्बोधित किया। बातचीत का सिलसिला चलता रहा। उन्होने आगे शालीनता पूर्वक फरमाया, "देखिये, मै तो बरसो अध्यापक रहा हूँ। घण्टो बोलने का अभ्यास तो वैसे ही है। अगर मै बोलना शुरू करू तो कम से कम पैतालीस मिनट तो बोल ही लूगा। ज्यादा अच्छा तो यह होगा कि आप ही कोई सवाल पूछे और मै उसका जवाब दू।"

उस वर्ष के चुने हुए, भारत भर से आये सभी पुरस्कृत अध्यापक कुर्सियो पर बैठ गये और प्रश्नोत्तर चलने लगे। हर एक जवाब से लगता था कि डा० जाकिर हुसैन का भारतीय शिक्षा के बारे मे कितना स्पष्ट चिन्तन है और कितनी खूबी से वे सामने वाले को आश्वस्त कर पाते है। मै भी पूछ बैठा "क्या आप भारतीय शिक्षा की किसी राष्ट्रीय नीति पर प्रकाश डालना पसन्द करेगे?" जो जवाब सुनने को मिला वह आज भी उतना ही ताजा और उतनी ही सत्यता लिए हुए है जितना उस समय। "भारतीय शिक्षा की कोई भी राष्ट्रीय नीति बने उसमे निश्चय ही भारतीय सस्कृति के मूल तत्वो का समावेश होना चाहिये और साथ ही पाश्चात्य जगत की

वज्ञानिक और तकनीकी उपलब्धियों का महत्वपूर्ण उल्लेख उसमें अपेक्षित होगा।"

उपस्थित समुदाय ने सगर्व अनुभव किया कि उन सब ने वह सध्या एक श्रेष्ठ राष्ट्रीय शिक्षक के साथ बिताई।

डा० जाकिर हुसैन को सुनने का एक और अवसर कुछ वर्षो पूर्व सुलभ हुआ था, जब वे विद्याभवन शिक्षक महाविद्यालय, उदयपुर के तत्वावधान मे आयोजित भाषण माला के सिलसिले में उदयपुर पधारे थे। लम्बरदार उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के हॉल में शिक्षको को सम्बोधित करते हुए भारतीय शिक्षा के मूल तत्वो पर उन्होंने सारगर्भित विचार व्यक्त किये।

मेरी विदेश यात्रा के समय अनेक अवसरो पर डा० जाकिर हुसैन की भारतीय शिक्षा को देन पर प्रश्न किये जाते रहे थे। इसका कारण मेरे फोटो एलबब में उनके साथके कई फोटो होना था। अनेक शिक्षाप्रेमी भारत के राष्ट्रपति पद को श्रेष्ठ अध्यापक—राजनीतिज्ञ द्वारा सुशोभित करने को, प्रगति और स्वस्थ परम्परा का प्रतीक बता कर हर्ष का अनुभव करते पाये गये थे।

वस्तुत डा० जाकिर हुसैन राष्ट्रपति होने के साथ-साथ एक राष्ट्रीय श्रेष्ठ अध्यापक है। यह तथ्य भारत के लाखो अध्यापको को राहत की सास देने के लिए पर्याप्त है। ●

अहिंसा, शान्ति और न्याय—

"जब तक देश में आदमी-आदमी पर जुल्म करता है, जब तक इस देश मे बसने वाले एक दूसरे पर भरोसा नही करते, जब तक यहा के बसने वाले सिख, ईसाई अपने को भाई–भाई नही जानते और नही मानते, जब तक अमीर गरीब को, ताकतवर कमजोर को उभरने नहीं देते, जब तक यहा किसी की मेहनत मशक्कत से कोई दूसरा बेजा लाभ उठाता है, उस वक्त तक यह देश गाधी जी के विचारो का देश नही है।" यही है उनके शब्दो मे अहिसा, शान्ति और न्याय का रास्ता।

—डा० जाकिर हुसैन

अनोखा व्यक्तित्व

रामचन्द्र देवपुरा

१७ मई १९६५ की सध्या। चार हजार की जनसख्या वाले राजस्थानी ग्राम गुलावपुरा के गाधी विद्यालय प्रागरण मे सहस्रो नर-नारी एव वालक-वालिकाएँ रग-विरगी पोशाको मे सजे अपने अतिथि का स्वागत करने को उत्सुक थे। महामहिम डा० जाकिर हुसैन पधार रहे थे। उनके स्वागतार्थ छोटे से ग्राम मे चौड़ी सी सडक वन गई। दोनो ओर फुटपाथ भी। उत्साह से लोगो ने वाजार को गुलावी पुतवा कर गुलावपुरा को गुलावी नगरी वना दिया। स्थान-स्थान पर विभिन्न प्रकार के द्वार, वन्दनवार, रंग-विरगी फरिया तथा सडक के दोनो ओर अपार जनसमूह। छतो पर महिलाएँ, एक अदम्य उत्साह, उल्लास और आनन्द का ऐसा साम्राज्य जो यहा पहले कभी नही देखा गया।

लोग उपराष्ट्रपति के दर्शन की राह देख रहे थे, तो शिक्षाप्रेमी देश के एक महान् शिक्षाशास्त्री की वाणी सुनने को आतुर थे। ग्रामीण जन उपराष्ट्रपति के आगमन की वात से आत्मविभोर थे।

भारतीय जाकिर हुसैन पधारे। धवल पोशाक सत्य, शान्ति और अहिसा की प्रतीक। साथ में राजस्थान के लोकप्रिय मुख्य मत्री श्री सुखाडिया थे। विद्यालय की छात्राओ ने राजस्थानी पद्धति के अनुसार कलश चन्दन से स्वागत किया। अतिथि ने कलश का सम्मान किया, अभिवादन से स्वागत का उत्तर दिया। रुचिपूर्वक स्काउट्स, कव्स और वालको की विभिन्न प्रवृत्तियो का अवलोकन किया। अध्यापको और विद्यालय कार्यकारिणी सभा के सभासदो के साथ वे फोटो ग्रुप मे विराजे। प्रयोगशालाओ तथा

छात्रों के बन शाला शिविर तथा अन्य कार्यो का अवलोकन किया । विद्यालय का स्मृति चिन्ह भेट स्वरूप स्वीकार कर विद्यालय के निर्माता स्वर्गीय श्री मोहनसिह जी ढाबरिया तथा १५ वर्ष से अधिक समय से विद्यालय की सेवा में रत अध्यापको एव कर्मचारियो को दीर्घकालीन सेवा पदक तथा द्रव्य द्वारा पुरस्कृत किया और जो कुछ कहा उसका भाव था कि वे यहा पर आकर ऐसा अनुभव करते है मानो उनका अपना घर, उनकी अपनी पाठशाला और उनका अपना बचपन लौट आया है ।

अच्छे बालक, अच्छे विद्यालय और अच्छे अध्यापक के गुण बताने के साथ ही उन्होने अच्छे माता-पिता और अच्छे नागरिक के गुणो का भी स्पष्टीकरण किया । छोटे-छोटे और प्रारम्भिक विद्यालयो को उन्होने इमारत की नीव बताया । उन्होने कहा "एक सामान्य कॉलेज की अपेक्षा एक अच्छा विद्यालय चलाना उचित है और एक सामान्य विद्यालय की अपेक्षा एक बहुत अच्छी प्रारम्भिक शाला चलानी चाहिये ।" सीधे-साधे शब्दो मे इस महान् शिक्षा शास्त्री ने आधुनिक शिक्षा के दोष को बडी स्पष्टता के साथ समझा दिया । वस्तुत आज हम पेड की जड में पानी न देकर उसके तने और पत्तों का शृंगार करने मे व्यस्त है, प्राथमिक शिक्षा पर ध्यान न दे कर केवल उच्च शिक्षा पर ध्यान देते रहने से देश का निर्माण नही हो सकता । निर्माण के लिए तो सर्व साधारण को सुनागरिकता की प्राथमिक शिक्षा देने पर ही ध्यान केन्द्रित करना अनिवार्य है ।

सब लोग उन्हे देख कर आनन्दित हो गये । उनकी वाणी सुन कर बच्चे, युवा, वृद्ध, स्त्री, पुरुष सब गद्गद् हो गये और घटे भर के ही कार्यक्रम मे उन्होने भी अपने आपको आनन्दित पाया ।

सचमुच में हमारे राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन का व्यक्तित्व अनोखा है । वे बालको में बालक, अध्यापकों में अध्यापक, शिक्षा शास्त्रियो में महान् शिक्षा शास्त्री और राजनीतिज्ञो मे कुशल राजनीतिज्ञ है । महात्मा गाधी की बुनियादी तालीम को बुनियादी शैक्षणिक रूप उन्होने दिया है और जामिया मिलिया के रूप में उसका प्रयोग भी देश के सामने प्रस्तुत किया है । देश को उन पर गर्व है और इसलिए आज वे देश के सर्वोच्च गौरव पूर्ण पद पर आसीन है । ●

कभी न खत्म होने वाला काम—

अच्छे आदमी बनना और अच्छा समाज बनाना, अच्छे आदमियो को अच्छे समाज की सेवा मे लगना और अच्छे समाज को ससार की सेवा मे लगाने के लिये तैयार करना—यह कोई एक या दो की जिन्दगी मे पूरा होने वाला काम नही है । सच यह है कि यह कभी खत्म न होने वाला काम है जो हम सबको बराबर करते रहना है ।

—डॉ० जाकिर हुसैन

डा० जाकिर हुसैन का राज-दर्शन

डा० सी० एम० जैन

डा० जाकिर हुसैन अपने जीवन काल मे एक राजनीतिज्ञ के रूप मे नही रहे, परन्तु उनका राज-दर्शन उच्च कोटि का रहा है। उनके दर्शन के अध्ययन के लिए प्रमुख स्रोत—उनके द्वारा अ ग्रेजी से उर्दू मे किये गये अनुवाद, अपने शैक्षणिक काल मे लिखे गये अनेक लेख तथा अन्तर्राष्ट्रीय विषयो पर प्रकाशित टिप्पणिया एव राष्ट्र के नाम दिये गये विभिन्न सन्देश आदि है। १९३२ मे उन्होने प्लेटो के 'रिपब्लिक' का उर्दू मे 'रियासत' के नाम से अनुवाद किया। यह अनुवाद इतना सफल रहा कि कही भी रचना की मौलिकता का ह्रास नही हो पाया है। यह ग्रन्थ जाकिर साहब की बौद्धिक प्रवृत्ति का भी परिचायक है। उनका आदर्श-वाद परम्परा-विरोधी विचार तथा अध्ययन पद्धति ग्रीक राजनीतिक-दर्शन से ही काफी प्रभावित हुई है। जिन व्यक्तियो ने जाकिर-साहब के राजनीतिक-दर्शन को प्रभावित किया है, उनमे गाधी, रसल एव कौटिल्य, आदि प्रमुख है।

राज्य कैसा हो

जाकिर साहिब के राज्य सबधी विचार अ ग्रेजी आदर्शवादी थॉमस हिल ग्रीन के बहुत कुछ अनुरूप ही है। आपके मत मे राज्य एक मात्र शक्ति सस्था से कही अधिक एक नैतिक सस्था है। शक्ति का उद्देश्य नैतिकता की प्राप्ति होना चाहिए, अत राज्य शक्ति का प्रयोग मानव कल्याण को सबल व कार्यान्वित करना है। उन के दृष्टिकोण से समाज का कल्याण तभी सम्भव है जब समाज का राजनैतिक जीवन शक्ति प्रयोग तथा भ्रष्टाचार से स्वतन्त्र हो। पश्चिमी आदर्शवादियो की भाति आपका मत है कि राज्य मानव के विकास मे आने वाली कठिनाइयो को दूर करता है और इस-लिए राज्य को कला, साहित्य, धर्म, ज्ञान आदि

क्षेत्र मे हस्तक्षेप नही करना चाहिए । सक्षिप्त मे आपके अनुसार, राज्य का उद्देश्य मानव के व्यक्तित्व का विकास, जो नैतिकता की प्राप्ति मे निहित है, होना चाहिए । जाकिर साहव के राज-दर्शन में आदर्शवाद के साथ-साथ उपयोगितावाद का भी गहरा पुट व्याप्त है । मानव-कल्याण के हित मे सामाजिक जागृति क्राति व विकास राज्य तभी ला सकता है जब वह 'अधिकतम व्यक्तियो के अधिकतम हित' के सिद्धान्त पर आधारित हो । राज्य के सम्बन्ध मे कही-कही पर उनके विचार कौटिल्य के अर्थ-शास्त्र से भी प्रभावित हुए है । कौटिल्य की भाति जाकिर साहब के मत में, कानून एक सर्वोपरि शक्ति है । दूसरे शब्दो मे हम यह कह सकते है कि आप यदि एक ओर स्वतन्त्रता के अति समर्थक है तो दूसरी ओर उसे कानून से सम्बन्धित कर समाज को अराजकता से बचाना चाहते है । अन्ततोगत्वा जाकिर साहव का दृष्टिकोण एक ऐसे राज्य की स्थापना करना है जो श्रेष्ठतम जीवन की प्राप्ति मे सहायक हो सके । इनके ही शब्दो मे, "The State should proceed modestly as a revolutionary state towards a good and perfect state, striving to encourage the development of free moral personality among its citizens and through their development and active co-operation aspire to grow into that good and perfact state" उचित ही है कि एक सर्वोत्तम राज्य की कल्पना व प्राप्ति सरकार व उसके नागरिको के बीच पूर्ण सक्रिय सहयोग के बिना सम्भव नही है । इस प्रकार राज्य के सम्बन्ध मे उनके विचार आदर्शवाद और उपयोगितावाद का समन्वित रूप है ।

कल्याणकारी राज्य

डा० जाकिर साहब का राजदर्शन एक कल्याणकारी राज्य की ओर अधिक उन्मुख है। १३ मई, १६६७ को राष्ट्रपति पद ग्रहण करते हुए आपने अपनी घोषणा मे कहा था कि राज्य को अपने प्रत्येक नागरिक के लिए एक सुन्दर मानवीय जीवन की न्यूनमत शर्ते पूर्ण करनी चाहिए । राज्य सामाजिक न्याय की मागो के प्रति अवहेलना करने वालो का विरोध करे । समाज मे व्याप्त सकीर्णता और स्वार्थ को राज्य समाप्त करे । उनके शब्दो में, "राज्य का उद्देश्य शक्ति में नैतिकता, गवेषणा मे मानवता, कार्य मे मनन, तथा पूर्व पश्चिम का समन्वय करने का होना चाहिए ।" एक कल्याणकारी राज्य की प्राप्ति में, जाकिर साहब का यह भय उचित ही है कि राज्य की शक्ति स्वाभाविक रूप से बढ जाय । इसलिए आप चाहते है कि 'कानून के समक्ष समानता के सिद्धान्त द्वारा राज्य के अवाछनीय शक्तिवर्द्धन को धर्म निरपेक्ष समाज के विकास के लिए सीमित कर दिया जाय ।

कानून सर्वोपरि

प्रसिद्ध राजनीतिक दार्शनिक बोदा की भाति आप भी विभिन्न प्रकार के कानूनो का प्रतिपादन करते है । आप के अनुसार व्यक्तियो के बीच सम्बन्ध स्थापित कराने वाले और सरकार व जनता के बीच सम्बन्ध स्थापित कराने वाले पृथक्-पृथक् कानून है । राज्य को अपनी सम्पूर्ण कार्यवाहियो को कानून की सीमा के अन्तर्गत ही करना चाहिए। आपके अनुसार देश की जनता को व्यवस्थापिका सभा तथा कार्यपालिका के अनुचित अधिकार-शक्ति प्रयोग से रक्षा प्राप्त करने का अधिकार है । कानून के हाथ सरकार व जनता दोनो के लिए ही बहुत लम्बे है । पिछले गणराज्य दिवस पर भारत के नाम सदेश प्रसारित करते हुए आपने कहा कि "देश की कठिन समस्याओ को सुलझाने के लिये कानून की अवहेलना करना कभी भी स्वीकार नही किया जा सकता ।"

मर्यादित दल

डा० जाकिर साहब जनतन्त्रीय शासन पद्धति के सर्वाधिक समर्थक रहे है, लेकिन उनका मत है कि केवल जनता का शासन मे भाग लेना ही जनतन्त्र का परिचायक नही है जब तक कि जनता मे जनतान्त्रिक या लोकतान्त्रिक सस्कृति व अनुशासन उत्पन्न न हो। लोकतन्त्र के विकास मे राजनीतिक दल एक अनिवार्य कडी है, किन्तु आपके अनुसार प्राय राजनीतिक दल शक्ति गठन के सिद्धान्त पर बनाये जाते है, जिससे उनमे भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद जैसी सकुचित विचार-धारा व तदनुरूप कार्यवाहिया उभरती रहती है। आवश्यकता इस बात की है कि राजनीतिक दल सविधान की परिसीमा मे ही गठित व परिचालित हो।

डा० जाकिर साहब पू जीवादी व्यवस्था के समर्थक नही है—इसका यह भी अभिप्राय नही है कि आप साम्यवादी है। आप पू जीवाद का विरोध इसलिए करते है कि इस अर्थ-व्यवस्था का उद्देश्य व्यक्तिगत लाभ है। आप पूर्वी तथा पश्चिमी पू जीवाद के मध्य कोई पृथकता नही देखते। प० नेहरू के समान योजनाबद्ध आर्थिक व्यवस्था के भी आप समर्थक है। आप आर्थिक व्यवस्था पर सामाजिक नियन्त्रण के पक्ष मे है, क्योकि इसी से सामाजिक जागृति को बल मिलता है।

बापू व जाकिर हुसैन

डा० जाकिर साहब के राजदर्शन को गाधीजी ने बहुत प्रभावित किया है। गाधीजी के समान वे राज्य को नैतिकता से सम्बन्धित करते है। गाधीजी की भॉति आप व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य के साथ-साथ सामाजिक विकास मे विश्वास रखते है। आप गाधीजी की भॉति ही विश्व शान्ति के पुजारी भी है। गाधीजी की भॉति नैतिक शक्ति व मानवीय प्रतिभा मे आपका बहुत विश्वास रहा है। आपके मत मे भी भारत अहिसा के आदर्श को नेतृत्व प्रदान कर सकता है। आप गाधीजी की भाति मैकियावेली के शक्ति सिद्धान्त अथवा मार्गेन्थोव के शक्ति सघर्ष का समर्थन नही करते। किन्तु आप गाधी के राज्य के प्रति उस अराजकवादी दृष्टिकोण का समर्थन नही करते जहा गाधीजी ने राज्य को एक आत्महीन मशीन की भाति समझा है। दूसरी ओर आपके मत मे जैसा अरस्तू ने भी कहा है—"राज्य सुन्दर जीवन की एक आवश्यक शर्त है"—एक नागरिक की राज्य के प्रति देशभक्ति अनिवार्य है। राज्य ही एक मात्र सस्था है जिसमे व्यक्ति और समाज दोनो का सक्रिय रूप से विकास हो सकता है। इस प्रकार राज्य के सम्बन्ध मे वे गाधी जी से उस सीमा तक निकट है जहा तक नैतिकता का सम्बन्ध है, किन्तु गाधीजी के विपरीत वे राज्य को अराजकता के प्रतिनिधि के रूप मे स्वीकार नही करते।

इस प्रकार डा० जाकिर साहब एक उच्च कोटि के राजनीतिक दार्शनिक है। आपका राजनीतिक-दर्शन आदर्शवाद व यथार्थता का समन्वय प्रस्तुत करता है। एक ओर प्लेटो की तरह दार्शनिक है तो दूसरी ओर अरस्तू तथा कौटिल्य की भाति व्यावहारिक। एक ओर गाधीजी की भाति आदर्शवादी है तो दूसरी ओर बेन्थम् व जॉन स्टुअर्ट की भाति उपयोगितावादी भी। आपके राजनीतिक दर्शन मे अर्थशास्त्र, धर्म, सस्कृति का भी सुन्दर सम्मिश्रण है। आपका राजदर्शन भारतीय परिस्थितियो मे पल्लवित तथा सार्वभौमिकता की ओर उन्मुख एक सफल गवेषणा है। ●

प्रेरणा स्रोत—

प्रेमचन्द विजयवर्गीय

हमारे वर्तमान राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन वास्तव में मूलत: एक शिक्षक और शिक्षा शास्त्री अधिक है। शिक्षा और शिक्षण सस्थाओ मे उनकी अभिरुचि सर्वोपरि है। इसी कारण जब डा० जाकिर हुसैन १ दिसबर, १९६३ ई० को राजस्थान स्थित महिला शिक्षा की अखिल भारतीय सस्था वनस्थली विद्यापीठ के अट्ठाइसवे वार्षिकोत्सव में पधारे तो यह विद्यापीठ के लिए तो सौभाग्य और हर्ष का विषय रहा ही, स्वय तत्कालीन उपराष्ट्रपति के लिए भी यह नूतन और सुखद अनुभव रहा।

उस दिन प्रात.काल ८.४५ पर जब आप विद्यापीठ पधारे तो विद्यापीठ की छात्राओ, यहा के कार्यकर्त्ताओ, बाहर से आये हुए अतिथियों और दर्शको की अपार भीड ने आपका भव्य स्वागत किया। राजस्थानी भाषा में रचित स्वागत गान को सुनकर डा० साहब भाव विभोर हो उठे थे। यह स्पष्टत. देखा जा सकता था। स्वागत के पश्चात् विद्यापीठ की छात्राओ द्वारा प्रस्तुत आकर्षक 'मार्च पास्ट' मे आपने सलामी ली। मार्च पास्ट मे एन० सी० सी० की वरिष्ठ और कनिष्ठ टुकड़ियो के अतिरिक्त घुड़सवार छात्राओ तथा अन्य छात्राओ ने भाग लिया था, जिनकी सख्या ५०० से ऊपर थी। डा० जाकिर हुसैन ने जिस जीप गाड़ी मे खडे होकर सलामी गारद का निरीक्षण किया, उसे विद्यापीठ की मोटर चलाना सीखी हुई छात्राओ में से ही एक-छात्रा चला रही थी और मार्चपास्ट मे सबसे पीछे विद्यापीठ के जिस हवाई जहाज ने डा० साहब को नीचे उडकर सलामी दी, उसे भी विद्यापीठ में सीखी हुई एक छात्रा ही उडा रही थी। मार्च पास्ट में छात्राओ के साथ-साथ उठते हुए कदमो को

देखकर ऐसा लग रहा था कि राष्ट्र की एकता कदम से कदम मिला कर चल रही है।

तत्पश्चात् तत्कालीन उपराष्ट्रपति ने विद्यापीठ के उस सबसे पुराने और सबसे बडे छात्रावास को देखा जो आज भी कच्चा है, तथा जो विद्यापीठ के जन्म की कहानी स्वय कहता है। इसी छात्रावास—शान्ताबाई शिक्षा कुटीर मे आपने देखा सभा भवन के एक कोने मे स्थित उस छोटे से किंतु ऐतिहासिक मन्दिर को, जो न केवल उन कच्ची ईटो से बना हुआ है, जिन्हे विद्यापीठ के सस्थापक अध्यक्ष प० हीरालाल शास्त्री की स्व० पुत्री शान्ताबाई ने केवल १२½ वर्ष की अल्पायु मे ही मृत्यु से पूर्व, गाव मे लडकियो का एक स्कूल शुरू करने की धुन मे, अपने हाथो से बनाया था, वरन् जहा उन ईटो मे से, आज भी कुछ ईट सुरक्षित रखी हुई है और जहाँ सुरक्षित रखे है "जीवन-कुटीर" मे उस होनहार लाडली बेटी के खिलौने। यह स्थल प्रेरणा का वह स्रोत है, जहा प्रति वर्ष विद्यापीठ के स्थापना दिवस के दिन सस्था की छात्राएँ और यहा के कार्यकर्ता एकत्र होकर, सूर्योदय के आलोक के साथ, भावी प्रगति और विकास के लिए नयी प्रेरणा और शक्ति ग्रहण करते है। विद्यापीठ की जीवन-यात्रा के इस प्रथम चरण को देखने के पश्चात् डा० साहब ने 'ग्रहस्थ शिक्षा मन्दिर' मे छात्राओ द्वारा किये जाने वाले गृहकार्य को देखा। गृहस्थ शिक्षा मन्दिर से प्रवेश करने पर तत्कालीन उपराष्ट्रपति का सर्वप्रथम स्वागत किया उस सजावट और अल्पना ने जो प्रत्येक सद्गृह की शोभा है। अन्दर जाकर भी डा० जाकिर हुसैन ने जो चित्र देखा वह स्वावलम्बी मध्यवर्गीय भारतीय गृहस्थ का सा ही था। डाक्टर साहब ने देखा कि कुछ छात्राएँ अनाज साफ कर रही है तो कुछ हाथ की चक्की से अनाज पीस रही है। एक ओर छात्राएँ सामूहिक पाक तैयार कर रही है तो दूसरी ओर मट्ठा बिलो रही है। खाना बनाने का कार्य प्राथमिक विद्यालय तथा महाविद्यालय की छात्राएँ व्यक्तिश भी कर रही थी। भोजन बनाने के अतिरिक्त कुछ छात्राएँ पापड-मँगोडी भी बना रही थी, और फिर भोजन बनाते हुए ही नही, छात्राओ की भोजन-सरक्षण विधि को भी उन्होने देखा। गृहस्थ शिक्षा मन्दिर मे इन कार्यो के अतिरिक्त छात्राओ ने उन्हे कपडो की धुलाई और रँगाई तथा बर्तनो पर कलई करने का कार्य भी बताया। गृहस्थ शिक्षा की पूर्णता और व्यावहारिकता का यह क्रियात्मक चित्र देख कर जब वे बाहर पधारे तो छात्राओ द्वारा तैयार किये गए विविध व्यजनो का स्वाद अवश्य उनकी जिह्वा पर बसा हुआ होगा, क्योकि वे बढिया खाने के शोकीन है। पकोडियो का उल्लेख उन्होने अपने भाषण तक मे एक से अधिक बार किया।

काम को देखा और सराहा। चित्रकला सम्वन्धी तीन कक्षो मे आपने क्रमश छात्राओ के द्वारा बनाये हुए चित्र, विद्यापीठ के चित्रकला विभाग के शिक्षको द्वारा वनाये हुए चित्र सग्रहीत देखे। उच्च माध्यमिक विद्यालय के पुस्तकालय को देखने के पश्चात् आपने होमनर्सिग तथा प्रारम्भिक चिकित्सा करती हुई छात्राओ को देखा। एक कक्ष मे आपको छात्राओ द्वारा वनाया हुआ भोजन दिखाया गया, तो दूसरे में आपने तेल-सावुन-वेसलीन वनाती हुई तथा जिल्द साजी करती हुई छात्राओ को देखा। एक अन्य कक्ष में छात्राओ द्वारा वनाये गये मिट्टी तथा कपडे के खिलौनो को देखकर आपने प्रसन्नता व्यक्त की।

इस भव्य प्रदर्शनी को देखने के पश्चात् सम्मानित अतिथि 'वाल मन्दिर' मे गये जहा उन्होंने शिशु कक्षा के वच्चो के खेल एव शिक्षण के लिए प्रयुक्त अनेकानेक उपकरण देखे। यह वाल मन्दिर शिशु वर्ग के लिए इतना वडा आकर्पण केन्द्र है कि इसे छोडकर वच्चे पहली कक्षा मे जाना पसद नही करते। वाल मन्दिर के निकट ही डा० जाकर हुसैन ने 'कला मन्दिर' मे चित्रित उन भित्ति चित्रो को देखा जिन्हे ग्रीष्मावकाश के दो माहो मे वाहर से आये हुए प्रशिक्षणार्थी, इस कला को यहा सीखकर, वना जाते है। भित्ति चित्र कला का शिक्षण मुख्यत शान्तिनिकेतन और वनस्थली विद्यापीठ मे ही होता है। विविध शैलियो मे चित्रित ये भित्ति चित्र प्रतिवर्ष अभिवर्धित होते हुए विद्यापीठ के भवनो की शोभा को वढाते जाते है।

इसके पश्चात् मुख्य अतिथि महोदय ने लक्ष्मी वाई मैदान मे विद्यापीठ की छात्राओ के शारीरिक शिक्षा के उस प्रदर्शन को देखा जो सदैव से दर्शको को आकर्पित करता रहा है।

१२ वजे से तीन वजे तक भोजन तथा विश्राम के पश्चात् डा० जाकिर हुसैन ने 'वीर वाला मैदान' में छात्राओ की घुडसवारी का कार्य-क्रम देखा, जिसके अन्तर्गत विशेप उल्लेखनीय है एक छात्रा की दो घोडो की सवारी, खडे होकर घोडे को चलना, टाटी कुदाना तथा सरपट घुडदौड। सरपट घुडदौड का यह दृश्य स्तब्ध कर देने वाला था! डा० जाकिर हुसैन ने उस दिन वीर वाला का साक्षात रूप अपनी आँखो से देखा। वे चकित भी दिखलाई पडते थे और चमत्कृत भी।

चाय के पश्चात् सायकाल ४ वजे से नाट्यशाला मे डा० जाकर हुसैन नृत्य ने का रोचक कार्यक्रम देखा। इस कार्यक्रम के आकर्षण थे वन्दना, वृन्दवादन, भजन, सितार वादन, गायन और नृत्य। शास्त्रीय सगीत के इस कार्यक्रम के पश्चात् मुख्य अतिथि के सम्मुख छात्राओ की राष्ट्र सभा का कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया। प्रश्नोत्तर काल, मत्रो का वक्तव्य तथा विरोधी दल के सदस्यो द्वारा वहस, प्रधान मत्री द्वारा वहस का उत्तर, आदि कार्यवाही थोडी देर के लिए वास्तविक ससद का भ्रम उत्पन्न किये देती थी।

राष्ट्र सभा के पश्चात् उसी स्थान पर सभा का कार्यक्रम आरम्भ हुआ। छात्राओ द्वारा मगला-चरण, स्वागत भाषण आदि के वाद जव डा० जाकर हुसैन ने ७-८ हजार लोगो के समुदाय के सम्मुख अपना भाषण दिया तो उनके वक्तव्य से शिक्षाशास्त्री का सूक्ष्म निरीक्षण और एक उपराष्ट्र पति की उत्तरदायित्व पूर्ण वाणी व्यक्त होती थी। विद्यापीठ के शैक्षणिक कार्यक्रम तथा यहा के वातावरण के दिन भर के निरीक्षण के पश्चात् आपने कहा था

आज यहां दिन भर का कार्यक्रम देखकर मुझे चार बातें अनुभव हुई : यहां बच्चो के प्रति मुहब्बत है, सेवा की भावना है, महिला शिक्षा के महत्व को समझा गया है और शिक्षा के बारे मे यहा के विचार सही है। अच्छा शिक्षक मा के स्थान पर होता है, जिसे अपने विद्यार्थी के प्रति प्रेम होता है। और यदि बच्चे के प्रति मुहब्बत और सम्मान है तो उसे खुद आगे बढने देना चाहिए। जो विद्यार्थी पर अपना ठप्पा लगाना चाहता है वह सच्चा शिक्षक नही है। साथ ही, अच्छा शिक्षक उस माली की तरह होता है जो सब पौधो को समान भाव से खाद और पानी देता है।

शिक्षा मे स्वतन्त्रता तथा स्त्री-शिक्षा के महत्व पर जोर देते हुए डा० जाकिर हुसैन ने अपने भाषण मे कहा कि अच्छी शिक्षण संस्था के लिए आजादी जरूरी है, क्योकि सब के लिए एक से माप-दण्ड नही हो सकते। आगे आपने कहा कि लड़कियो की शिक्षा का काम तो लडको की शिक्षा से भी अधिक महत्वपूर्ण है। इस दृष्टि से यहां की लडकियो को समझ लेना चाहिए कि उनका यहा शिक्षा प्राप्त करना भी देश सेवा का काम है। छात्राओ को सम्बोधित करते हुए आपने कहा कि तुम दो चीजो को कभी न भूलना—एक तो यह कि शिक्षा का काम तब तक अच्छी तरह नही हो सकता, जब तक उसमे महिलाओ का हाथ न हो, दूसरे तुम्हे घर का भी ध्यान रखना है। यदि इस देश के घर बिगड़ गये तो हमारी संस्कृति भी बिगड़ जायेगी। मुझे खुशी है कि यहा घर का काम भी सिखाया जाता है।

उनके विचार से अच्छी शिक्षा वही है जो सर्वाङ्गीण हो और जिसमें प्रयोग करने की स्वतत्रता हो। इसी प्रकार उनकी दृष्टि मे एक अच्छे शिक्षक मे अपने विद्यार्थी के प्रति मा जैसा स्नेह होना चाहिए उसे शिक्षार्थी पर स्वय को आरोपित करने का प्रयत्न नही करना चाहिए था। उसकी दृष्टि मे सब विद्यार्थी समान होने चाहिए। इनके अतिरिक्त डा० साहब शिक्षा के क्षेत्र मे महिलाओ के कार्य को अधिक महत्व देते है और गृह-निर्माण तथा संस्कृति की रक्षा मे उनसे महती अपेक्षा रखते है। वनस्थली विद्यापीठ में दिया गया डा० जाकिर हुसैन का यह संदेश आज के संदर्भ मे और भी महत्वपूर्ण हो उठता है जब कि शिक्षा, शिक्षक, शिक्षार्थी और शिक्षण संस्थाए-सर्वत्र अराजकता-सी फैली हुई है।

डा० जाकिर हुसैन देश के जिन शिक्षको और शिक्षण संस्थाओ के लिए प्रेरणा स्रोत रहे है, उनकी ओर से समुचित और सम्यक अभिनन्दन यही हो सकता है कि वे उन्हे देश का प्रथम शिक्षक मान कर उनके शिक्षादर्शो को ठीक से समझे और उन्हे व्यवहार मे क्रियान्वित करे। इस रूप मे उनका अभि-नन्दन वस्तुत : स्वय शिक्षा और शिक्षक का ही अभिनन्दन होगा। ●

शिक्षा-दार्शनिक

डा० चन्द्रशेखर भट्ट

गणतन्त्र की सफलता और समृद्धि तथा उसके नागरिको का सुख और सौरभ उसके दार्शनिक शासक पर ही आधारित होता है। हमारे देश के लिए यह बडे सौभाग्य की बात है यहा सर्वोच्च पद पर महान् दार्शनिक ही आसीन रहे है। डा० राजेन्द्र प्रसाद एक राजनीतिज्ञ दार्शनिक के रूप मे, डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन विशुद्ध दार्शनिक के रूप में और और हमारे वर्तमान राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन एक शिक्षा दार्शनिक के रूप मे प्रसिद्ध हैं।

डा० जाकिर साहब के शैक्षणिक विचार इतर शिक्षा शास्त्रियो के सदृश चिंतन और मनन के परिणाम नही है। उन्होने अपने शिक्षा दर्शन का निर्माण भावनाओ के प्राबल्य तथा कल्पना लोक के विचरण से नहीं किया है अपितु विचार और प्रयोग, चितन और क्रिया तथा ज्ञान और कर्म मे परस्पर समन्वय और सह सबध की स्थापना करके किया है। वस्तुत डा० जाकिर साहब का जीवन ही स्वय में शिक्षाशास्त्र की एक अनुपमेय रचना है। जीवन के विभिन्न अवसरो और घटनाओ के अनुभूत परिस्थितियो से अन्तरदर्शन और आत्मपर्य-वेक्षण के परिणाम स्वरूप जो विचार प्रसूत हुए है उनसे ही डॉ० जाकिर साहब के शैक्ष-णिक विचार सुदृढ, सुनियोजित, सुव्यवस्थित एवम् परिपुष्ट हो कर व्यावहारिक शिक्षा दर्शन के रूप मे उभर पाये है।

डा० जाकिर साहब की प्रारम्भिक शिक्षा आग्ल शिक्षको द्वारा इसी देश मे हुई तथा उच्चतम शिक्षा जर्मनी मे हुई, फिर भी विदेशी शिक्षा तथा विदेशी शिक्षण सस्थाओ के प्रति आप मे अनासक्ति ही रही। विदेशी शिक्षा तथा शिक्षा प्रणाली का उन्होने अपने देश की राजनैतिक, सामाजिक व सास्कृतिक

परिस्थितियो और मूल्यो के सदर्भ मे अध्ययन किया और विश्लेषणात्मक अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि भारतीय जीवन दर्शन के मूल्यो की मौलिकता के सचयन हेतु व हमारे देश के नागरिको के सामाजिक, राजनैतिक, सास्कृतिक व आर्थिक जीवन की समृद्धि की अभि वृद्धि हेतु भारतीय शिक्षा तत्व, भारतीय शिक्षा प्रणाली तथा भारतीय शिक्षण सस्थान ही उपयुक्त है। आपकी मान्यता है कि हमारे देश वासियो मे भारतीयता की भावना भरने हेतु भारतीय शिक्षा प्रणाली और भारतीय शिक्षण सस्थान ही समर्थ हे। इसी उद्देश्य की पूति हेतु आपने जामिया मिलिया की स्थापना की।

सत्य और अहिसा का मत्र डा० जाकिर साहब ने महात्मा गाधी से प्राप्त किया और गाधीजी सदैव उनके जीवन प्रेरणा के स्रोत भी रहे।

महात्मा जी ने डा० जाकिर साहब मे अपने शैक्षणिक विचारो की एक साकार प्रतिमा देखी और इसीलिए आपने राष्ट्रीय बुनियादी शिक्षा के लिये उद्देश्य, पाठ्यक्रम तथा स्वरूप के निर्धारण हेतु जिस समिति का सर्व प्रथम गठन किया, उसका अध्यक्ष डा० जाकिर साहब को ही बनाया और उक्त समिति द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदन डा० जाकिर हुसैन कमेटी रिपोर्ट के नाम से प्रसिद्ध है जो एक महत्वपूर्ण सदर्भ ग्र थ के रूप मे आज भी पढा जाता है। वस्तुत डा० हुसेन ने गाधी जी को अपने जीवन गुरु के रूप मे माना और आपके समस्त कार्य कलापो मे गाधी जी का जीवन दर्शन ही व्याप्त रहा और आप आजीवन सत्य और अहिसा पर आधारित गाधी जी के जीवन दर्शन से प्रसूत शिक्षा तत्वो का ही बुनियादी शिक्षा के क्षेत्र मे परीक्षण व प्रयोग करते रहे।

देश की तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियो का डॉ० जाकिर साहब पर बडा प्रभाव पडा। डॉ० जाकिर साहब के युवावस्था के समय हमारा समाज, हमारा राष्ट्र एक सक्रान्ति काल से गुजर रहा था। देश मे नवचेतना, नव जाग्रति एवम् नवनिर्माण का बिगुल बज रहा था। समस्त भारतीय देश मे स्वशासन प्राप्त करने के लिए आतुर थे, प्रयत्नशील थे। ब्रिटिश सत्ता और सस्कृति के प्रति घृणा और विद्वेष की भावनाएँ बलवती होती जा रही थी। यह स्पष्ट हो चुका था कि सामाजिक एव सास्कृतिक पुनर्निर्माण के लिए शिक्षा ही एक अमोघ अस्त्र है। अत इसकी प्राप्ति के लिए शिक्षा नीति एवम् शिक्षा प्रणाली और उसके व्यवहार मे समाज के परिवर्तनशील मूल्यो के अनुरूप परिवर्तन और परिवर्तन अवश्यम्भावी है। यही पर डॉ० जाकिर साहब की यह धारणा परिपुष्ट हो पाई कि राजनीति नहीं अपितु शिक्षा के द्वारा ही राष्ट्रीय समुन्नयन सभव हे। यही कारण है कि राजनीति से पृथक् रहे और शिक्षा के क्षेत्र मे एक सिपाही की तरह भिन्न भिन्न स्थितियो मे कार्य करते रहे।

३ शिक्षा क्रम व शिक्षा प्रणाली
४ शिक्षक शिक्षार्थी सबध

यहा भी डा० जाकिर साहब के शिक्षा दर्शन का अनुशीलन,परीक्षण और समीक्षण उक्त बिन्दुओं पर करना ही अधिक समीचीन होगा।

शिक्षा के उद्देश्य

डा० जाकिर साहव शिक्षा के उद्देश्य की व्याख्या अत्यन्त स्पष्ट एवम् सीधी भाषा में करते हुए यह मानते है कि व्यक्ति मे प्रेम, सहिष्णुता, त्याग, बलिदान तथा मानवता के गुणों का विकास करने वाली शिक्षा ही सच्ची शिक्षा है। उनकी यह भी मान्यता है कि व्यक्ति में मानवीय मूल्यो के विकास के साथ श्रम में रुचि और स्वावलम्बी बनने की भावना का भी विकास आवश्यक है। साथ ही शिक्षा ऐसी हो कि हर मानव मात्र के प्रतिप्रेम और बन्धुत्वकी भावना से ओत-प्रोत होकर राष्ट्रीय मूल्यो का अनुकरण करते हुए अन्तराष्ट्रीय दृष्टिकोण को विकसित कर सह सबंध स्थापित करने में सफल हो सके। डा० हुसैन का मत है कि जिस प्रकार भारतीय सास्कृतिक एव सामाजिक मूल्य की "विभिन्नताओं में एकता" एक मौखिक विशेषता है उसी प्रकार भारतीय शिक्षा पद्धति भी समस्त गुणो का सम्पोषण करने वाली होने के साथ ही मौलिक भी होनी चाहिये, डा० जाकिर साहब अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तिका "पोस्टवार एजूशन इन इण्डिया" मे रास्ट्रीयता को सर्वोच्च स्थान देते हुए कहते है कि हमारी शिक्षा योजना के उद्देश्य और स्वरूप का निर्धारण राष्ट्रीयता के सदर्भ मे होना चाहिए।

शिक्षण पद्धति मे ऐसी राष्ट्रीयता का आह्वान किया गया तो जो भिन्नता के भावो का अन्त-करने वाली और अपनत्व, स्वदेश-प्रेम और अटल विश्वास की जननी तथा प्रेम, सेवा, वीरता और वलिदान आदि गुणो की सम्पोषक होने के साथ सास्कृतिक व सामाजिक मूल्यो की पोषक भी हो।

अत. डा० जाकिर साहब के अनुसार शिक्षाके स्वरूप की व्याख्या निम्न प्रकार की जा सकती है·

१. शिक्षा स्वदेशी हो तथा देश की आवश्यकताओ और मूल्यो के अनुरूप हो।
२ राजनीति से सर्वथा दूर हो।
३ सास्कृतिक मूल्यो का सम्पोषण करने के साथ राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता के दृष्टिकोण में समन्वय स्थापित करने वाली हो।
४. शिक्षार्थियो मे त्याग, वलिदान, सहिष्णुता, सेवा और सहयोग के मानवीय गुणो का विकास करने वाली हो।
५ श्रम की सत्ता और उसके महत्व को अनुप्राणित कर स्वावलम्बन में विश्वास और निष्ठा उत्पन्न करने वाली हो।
६ जिसमें समाज का अधिकतम योग तो और जो शिक्षार्थी को अपने मूल्य का भास कराती हो।

आपने जामिया मिलिया की स्थापना भी इसी शिक्षा के स्वरूप को साधार रूप देने की दृष्टि से की थी। वहाँ पर आप द्वारा किये गये प्रयोगो और कार्य से स्पष्टहो जाता है कि डा० जाकिर साहव शिक्षा का ऐसा स्वरूप चाहते है, जिसमें शिक्षको में कोई भेद भाव न हो, शिक्षक व शिक्षार्थी बाह्य ठाठ-बाट के

आडम्बर से परे हो और सादगी पूर्ण जीवन व्यतीत करते हुए शिक्षा के व्यय मे अधिकतम मितव्ययता का उदाहरण प्रस्तुत करे।

शिक्षाक्रम एवम् शिक्षण विधि

डा० जाकिर हुसैन की मान्यता है कि वालक को विचार ग्रहण एवम् विचाराभिव्यजन तथा हिसाब किताब की क्षमताओ के अतिरिक्त अत्यावश्यकता इस वात की है कि उसमे मानवी गुणो के साथ श्रम के प्रति निष्ठा उत्पन्न की जाय। इसीलिये अनुभवो के आयोजन को ही वह पाठ्य क्रम का प्रमुख एवम् एक मात्र आधार मानते है। उनके अनुसार वालक को विभिन्न परिस्थितियो मे विभिन्न प्रकार के सुव्यवस्थित अनुभवो को सुनियोजित रूप मे आयोजित कर छात्रो को अपने भौतिक एवम् सामाजिक वातावरण से समायोजन करने की कला का प्रशिक्षण देना ही पाठ्यक्रम निर्माण का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए।

आपकी राय मे पाठ्य-क्रम का नियोजन इस प्रकार किया जाना चाहिए कि उससे प्रयोजन शिक्षण का सचरण और सचयन हो तथा स्वकार्य कलाप स्वत ही छात्रो द्वारा प्रयोग एवम् परीक्षण हेतु प्रस्तुत हो।

शिक्षण विधियो के सबध मे आपका अभिमत है कि शिक्षण विधियाँ प्रकृति के अनुकूल और स्वाभाविक हो और प्रयोग तथा अन्वेषण की सक्षमताओ से परिपूर्ण हो। इस सबध मे वह रूसो के सिद्धान्तो के हामी है।

शिक्षक-शिक्षार्थी के सबधो के डा० जाकिर साहव का मत है कि दोनो एक दूसरे के निकटतम होने चाहिएँ। शिक्षार्थी शिक्षक के व्यक्तित्व मे ईश्वर के प्रतिविव के दर्शन करे और शिक्षक शिक्षार्थी को देवत्व की प्रति पूर्ति माने। शिक्षक और शिक्षार्थी के वीच भय और अधिकार के वातावरण के स्थान पर प्रेम और सेवा का वातावरण हो और हो अभि व्यक्ति की स्वतन्त्रता। इसी प्रकार शिक्षार्थी के मन मे शिक्षक के प्रति विश्वास, श्रद्धा और सेवा की भावना हो और शिक्षक शिक्षार्थी को स्वतन्त्रता, निर्भीकता और प्रेम का पाठ पढा उसमे स्वशासी दृष्टिकोण विकसित कर आत्मा लोचन से उद्भूत अनुशासनु वर्तिता की भावनाओ की अवतारणा करे।

अत हम कह सकते है कि हमारे राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन के शैक्षणिक विचारो मे समन्वयवाद परिलक्षित होता है। यह शिक्षाविद उद्देश्यो मे आदर्शवादी, प्रणाली मे प्रकृति वादी, स्वरूप मे यथार्थवादी और पाठ्यक्रम मे प्रयोगवादी है।

सच्चे अध्यापक

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी

डा० जाकिर हुसैन हमारे देश के गौरव है। उनके समान निरभिमानी, सदाचारी और विचारवान सत्पुरुष दुर्लभ ही होते है। वे अध्यापक रहे है और अध्यापक शब्द की सारी गरिमा से आरभ से ही मंडित रहे है। उनका जीवन त्याग और तपस्या का जीवन था। यह हमारे देश का महान सौभाग्य है कि उनके जैसा विशाल हृदय अध्यापक आज देश के सर्वोच्च पद पर आसीन है।

डा० जाकिर हुसैन का व्यक्तित्व बहुत ही प्रभावशाली और मोहक है। मै जब-जब उनसे मिला हूँ, तब-तब उनसे प्रेरणा मिली है। उनका जीवन गगा की धारा के समान शामक और पवित्र है। उनके भीतर और बाहर में कोई अन्तर नही है। बडा वह होता है जिससे मिलने वाले का बडप्पन जागृत होता है। जिसके सपर्क से मनुष्य में सुप्त दैवी भावनाएँ बलवती होकर ऊपर आती है, वही वस्तुत: दैवी सपदा से सम्पन्न कहा जा सकता है। डा० जाकिर हुसैन के सपर्क में आने वाले के हृदय में उच्चतर दैवी शक्ति जागृत होती है। उनके सहज व्यवहार में ऐसी मोहक शक्ति है कि वह मिलने वालो को अवश्य प्रभावित करती है।

सच्चा अध्यापक वही है, जिसके निकट आने पर सहज ही विद्यार्थी को ज्ञान के प्रति उत्सुकता और जिज्ञासा उत्पन्न होती है और उसके मन, वचन और कर्म से जिज्ञासु का समाधान होता है। विद्यार्थी के जीवन और बाहर के जीवन में उसका व्यक्तित्व बराबर ऐसा ही शामक प्रभाव उत्पन्न करता रहता है डा० जाकिर हुसैन ऐसे ही सच्चे अध्यापक है।

आज उनका अभिनन्दन करके हम सब स्वय अपने आपको अभिनदित कर रहे है। परमात्मा उन्हे दीर्घायु और स्वस्थ बनाए ताकि इस देश मे स्वस्थ प्राणधारा संचारित करते रहे। इस अवसर पर मै इस महान आत्मा का सोल्लास अभिनन्दन कर रहा हूँ।

डा० जाकिर हुसैन का शिक्षादर्श

श्री शिवचरण माथुर,
शिक्षामन्त्री, राजस्थान

राष्ट्रपिता महात्मा गाधी के नेतृत्व मे राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए जो विराट् अहिसात्मक आन्दोलन चला, वह केवल राजनीतिक ही नही था। वस्तुत वह राजनीतिक से अधिक नैतिक और आध्यात्मिक था। सदियो की परतन्त्रता से प्रताडित पद-दलित एव मुमूर्षु राष्ट्र के प्राणो मे नवीन जीवन-चेतना के सचार का वह एक अश्रुत-पूर्व प्रयत्न था, क्लैव्य, कार्पण्य आदि अनेक प्रकार के दोषो से उपहत स्वभाव वाले देश की बाह्य और आभ्यतर शुद्धि के निमित्त आयोजित वह एक अभूतपूर्व सामूहिक अभियान था। इस आन्दोलन और अभियान के माध्यम से राष्ट्रपिता बापू ने राष्ट्र के आत्मा के सर्वतोमुखी साक्षात्कार का दैवी अनुष्ठान किया था। बापू का वह 'प्रत्य-भिज्ञा-दर्शन' राजनीति, दर्शन, और व्यावहारिक अध्यात्म की अनुपम त्रिवेणी बन गया था। इस आन्दोलन के फलस्वरूप आत्म-विस्मृत राष्ट्र मे सभी स्तरो पर और सभी क्षेत्रो मे अपने आपको पहचानने की प्रक्रिया का श्रीगणेश हुआ। लोगो ने अपने देश के साथ-साथ अपनी भाषा, अपनी वेश-भूषा, सस्कृति आदि के महत्व को भी समझा। उसको आग्रहपूर्वक जीवन मे प्रतिष्ठित किया। इस आन्दोलन का एक उल्लेखनीय पक्ष यह है कि यद्यपि राष्ट्रपिता बापू और उनके सहयोगी नेता अग्रेजो की दण्डनीति की चक्की मे बराबर पिसते रहते थे, उनका अधिकाँश समय जेलो मे बीतता था, फिर भी उनका तेजस्वी चिंतन देश की विविध समस्याओ के समाधान का मार्ग उद्घाटित करता रहता था। कारण बापू और उनके सहयोगियो को यह विश्वास था कि केवल

राजनीति के सकीर्ण साधन से समग्र जन-जीवन को रूपान्तरित करने वाला जागरण असभव है। अतएव, बापू ने अ ग्रे जो की कल्र्क-निर्मात्री शिक्षा-पद्धति को बदल कर उसके स्थान पर राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था को प्रवर्तित करने का व्यापक उपक्रम किया । इसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय शिक्षातन्त्र के उद्भव और विकास के लिए जीवन अर्पित करने वाले कई त्यागव्रती महान् व्यक्तित्व सामने आये और काशी विद्यापीठ, गुजरात विद्यापीठ, बिहार विद्यापीठ, गुरुकुल कागडी, बंगाल नेशनल युनिवर्सिटी, तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ, जामिया मिलिया जैसी राष्ट्रीय शिक्षा के अनेक सस्थानों की स्थापना हुई । इस प्रकार राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था के उन्नयन के क्षेत्र में जिन लोगो का योगदान चिरस्मरणीय है, उनमें डा० जाकिर हुसैन का नाम अग्रणी है । दूसरे शब्दो में इसे इस प्रकार कह सकते है कि डा० जाकिर हुसैन आधुनिक भारत के अन्यतम शिक्षा-शास्त्री और शिक्षक है ।

त्याग और तपस्या

डा० जाकिर हुसैन के चरित्र की सब से बड़ी विशेषता मुझे यह प्रतीत होती है कि राष्ट्रपति के सर्वोच्च गौरव-मडित पद पर समासीन हो कर भी वे इस उपलब्धि को अपने दीर्घकालीन शिक्षक जीवन की सहज परिणति मानते है । इसी भावना से प्रेरित होकर उन्होने स्वतन्त्र भारत के तीसरे राष्ट्रपति पद के उत्तरदायित्व को अ गीकार करते हुए अपने भाषण में कहा था कि इस उच्च पद पर मेरा वरण विशेषत: इसीलिए किया गया है कि मै अपने देश की जनता की शिक्षा के साथ दीर्घकाल से सबद्ध रहा हूँ । राष्ट्रपति के पद की बागडोर हाथ में लेते हुए अपने शिक्षक जीवन का स्मरण करना शिक्षक के जीवन के प्रति उन की असामान्य निष्ठा का प्रमाण है । शिक्षक के रूप में डा० जाकिर हुसैन का जीवन जामिया मिलिया के प्रारम्भ और विकास के साथ घनिष्ठ भाव से जुड़ा हुआ है । उन के शिक्षक-जीवन का यह इतिहास त्याग, तपस्या, सेवा, सघर्ष और बलिदान की रोमाँचकारी कहानी है ।

सन् १६२६ के आसपास डा० जाकिर हुसैन शेखुल जामिया नियुक्त हुए थे । उस समय से जामिया की कहानी डा० जाकिर हुसैन के जीवन की कथा बन जाती है । उन दिनों जामिया मिलिया नामक संस्था नई दिल्ली के करोल बाग मुहल्ले की एक किराये की इमारत में अवस्थित थी । सस्था की आर्थिक स्थिति बहुत खराब थी, पर जाकिर साहब ने सकल्पपूर्वक इस सस्था के नवनिर्माण का कार्य आरम्भ किया । यद्यपि वे विदेशो से ऊ ची से ऊ ची शिक्षा प्राप्त करके लौटे थे, पर उन्होंने जामिया में रह कर प्राइमरी स्कूल मे पहले स्टैण्डर्ड मे भी स्वय पढाया । वे छात्रावासो में रहने वाले विद्यार्थियो से बराबर मिलते-जुलते थे, उनके साथ भोजन करते थे और उन्हे राष्ट्रीय जीवन और राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण की नित्य नवीन प्रेरणाए देते थे । बाहरी और भीतरी स्वच्छता का उनका आग्रह अनेक रूपो मे विद्यार्थियो के समक्ष अभिव्यक्त होता था । एक बार कक्षा में जाते हुए वे मार्ग मे बिखरे हुए छोटे-मोटे कागजों के टुकडो तक को बीन कर अपनी अचकन की जेब में रख कर ले गये थे और उन्हे विद्यार्थियो के सामने निकाल कर रखते हुए कहा था "जामिया ज्ञान का मन्दिर है, इसे पूर्ण स्वच्छ रखा जाना चाहिए । ये टुकडे मैने रास्ते मे बीने है ।" उनको कक्षाओ की खिड़कियो के शीशो तक की सफाई का पूरा-पूरा ध्यान रहता था । अध्यापन के अतिरिक्त वे जामिया के लिए धन सग्रह का कार्य भी

अपरिमित उत्साह से करते थे। साथ ही साथ वे जामिया के लिए श्रेष्ठ शिक्षकों का चयन भी निरंतर करते रहते थे। उन्हीं के आकर्षण के कारण जी रामचद्रन और देवदास गाँधी जैसे लोगो ने जामिया की सेवा की थी।

सन् १९३७ मे महात्मा गाधी ने अपनी बुनियादी शिक्षा की योजना राष्ट्र के समक्ष रखी। यह कहना अत्युक्ति नही है कि डा० जाकिर हुसैन ही इस शिक्षा-योजना के सर्वश्रेष्ठ दार्शनिक एव सब से महान् प्रवक्ता और प्रयोक्ता सिद्ध हुए। बुनियादी शिक्षा योजना का प्रारूप बनाने के लिए जो शिक्षा समिति महात्मा गाँधी के द्वारा गठित की गई थी, उस के अध्यक्ष डा० जाकिर हुसैन ही थे। इसके बाद बुनियादी शिक्षा के आन्दोलन का सचालन वे बराबर करते रहे और उसे देश मे सर्वमान्य बनाने मे सफल हुए।

शिक्षा क्षेत्र में सेवा

मेरा विचार है कि डा० जाकिर हुसैन ने राष्ट्रीय शिक्षा के स्वरूप को निर्धारित करने के लिए जो कार्य किया है, वह अप्रतिम है। अभी तक इस दिशा मे किये गये उनके चिंतन और कार्य का समुचित मूल्याकन नही हो पाया है। सत्याग्रह आन्दोलन के साथ-साथ राष्ट्रीय शिक्षा के उन्नयन और विकास के लिए जो कार्य हो रहा था, उसके सम्बन्ध मे जाकिर साहब ने अपने एक भाषण मे कहा है, "मै समझता हूँ जब इस बेदारी (जागृति) की तारीख (इतिहास) लिखी जायगी, तो उस जमाने मे कौमी तालीमगाहों (राष्ट्रीय शिक्षा सस्थाओ) का कयाम हमारी कौमी जिन्दगी के लिए शायद सब से ज्यादा अहम वाकै तस्लीम किया जायगा।" उन्होने सन् १९३५ के काशी विद्यापीठ के अपने दीक्षान्त भाषण मे इस बात पर दुख प्रकट किया था कि इस देश मे समझदार लोगो का एक बडा दल राष्ट्रीय शिक्षा की आवश्यकता का ही अनुभव नही करता। उन्होने कहा था "ये लोग अक्सर वे हैं जो अंग्रेजी पढ-लिख लेने या कोई हुनर सीख लेने का नाम तालीम जानते है।" शिक्षा के वास्तविक स्वरूप का निरूपण करते हुए उन्होने इसी सन्दर्भ मे कहा है कि, "तालीम दर असल किसी समाज की उस जानी-बूझी सोची-समझी कोशिश का नाम है जो वह इसलिए करता है कि उसका वजूद (अस्तित्व) बाकी रह सके और उनके अफराद (व्यक्तियो) मे यह काबलियत पैदा हो कि बदले हुए हालात के साथ समाजी जिन्दगी (सामाजिक जीवन) मे भी मुनासिब और जरूरी तब्दीली (परिवर्तन) कर सके। कौमी जिदगी (राष्ट्रीय जीवन) मे तालीम इसी तरह गुजरे हुए जमाने से मौजूदा जमाने को मिलाती है।" शिक्षा और राष्ट्रीय शिक्षा विषयक अपने इन विचारो को और अधिक स्पष्ट करते हुए उन्होने कहा है, "तालीम बस कुछ बातें रट लेने या चद बाते जान जाने का नाम तो नही है, बल्कि तालीम उसे कहते है कि आदमी जो दिमागी कूवतें (मानसिक शक्तियां) ले कर पैदा हुआ है, उनमे तरक्की का जितना इमकान हो, वह उसे हासिल करे। जिस तरह इन्सान का जिस्म (मनुष्य का शरीर) एक छोटे से तुख्म (बीज) से शुरू होता है, फिर मुनासिब गिजा पा कर हरकत और काम और सकून व आराम से तबियात और कीमिया के कानूनो से मुनासिब कमाल के दर्जे को पहुँचाता है, इसी तरह जहन (मस्तिष्क) का नश्व-नुमा भी जहनी गिजा पाकर अपने कानूनो के मुताबिक होना है।"

इस यक्ष पर बल देते हुए उन्होने कहा है 'देखना यह चाहिये कि जहन को यह गिजा किन चीजों से पहुँच सकती है और इस के असर के कानून क्या है ? तो गुजारिश यह है कि जहनी गिजा मिलती है तमद्दुन से तमद्दुन की माद्दी और गैर माद्दी चीजो से, मसलन समाज के इल्मी निजाम (शिक्षा व्यवस्था) से, समाज के फनो से, समाज के मजहब से, समाज को सनअत से, समाज के इखलाक के वसूलों से, समाज के कानूनो से, समाज के रस्मो-रिवाज से, समाज की बडी-बड़ी शख्सियतो की जिदगी से, समाज मे खानदानी जिदगी के नमूनो से, समाज के गाँवो, कस्वो और शहरो की जिदगी से, समाज की हुकूमत से, फौज से, अदालतो से, समाज के मदरसो से।"

इस उद्धरण में डा० जाकिर हुसैन ने राष्ट्रीय शिक्षा के सभी स्रोतो का निर्देश किया है, और सच्चे शिक्षक, शिक्षा-शास्त्री या शिक्षाधिकारी की जानकारी की यह कसौटी निर्धारित की है कि "हर वह शख्स जो तालीम की सही माहियत को समझता है, इस बात पर मजबूर है कि वडी हद तक जहन (मस्तिष्क) की तरवियत (सस्कार) के लिए खुद उस समाज की तमद्दुनी चीजो से काम ले जिस से तालिवइल्म (विद्यार्थी) का तअल्लुक (सम्वन्ध) है। वरना उसकी कोशिश के अकारथ जाने का डर है। नतीजा यह निकला कि खुद तालीम की माहियत हमें मजवूर करती है कि हम कौमी तालीम का निजाम (राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था) कायम करे।" जिस समय जाकिर साहब ने ये बाते कही थी, उस समय देश परतन्त्र था, शिक्षा व्यवस्था परकीय थी और शिक्षा के साधन अत्यन्त सीमित थे। यह जानते हुए भी उन्होने यह आग्रह किया था कि 'उस्ताद अपने देश की कौमी तालीम का एक निजाम बनाये" अर्थात् शिक्षकगण अपना राष्ट्रीय शिक्षा का तत्र प्रवर्त्तित करे।

डा० जाकिर हुसैन ने कुछ वर्ष पूर्व इस वात पर खेद प्रकट किया था कि इस देश में राष्ट्रीय शिक्षा की समस्या पर बहुत कम विचार किया गया है— 'सियासी (राजनीतिक) ही नही इल्मी और तालीमी (ज्ञान परक और शैक्षणिक) जमाअतो ने भी कौमी तालीम के मसले पर बहुत कम गौर किया है। इसके मुताल्लिक (सबन्ध मे) कुछ कहा है तो वस यही कि मौजूदा निजाम बहुत बुरा है। जाकिर साहब ने आज से तीस वर्ष पूर्व जो कुछ कहा था, उसका महत्व आज भी कम नही हुआ है। देश के स्वतन्त्र हो जाने के वाद भी हम राष्ट्रीय शिक्षा की कोई प्रभावशाली व्यवस्था नही कर पाये है। शिक्षा की प्रारम्भिक भूमिकाओ को अभी तक हम समाज की परम्पराओ और व्यावहारिक उपयोगिता के साथ अच्छी तरह जोड नही सके है। उच्च शिक्षा के क्षेत्र हमारे विश्वविद्यालय स्वार्थसेवी राजनीति के अखाड़े वन गये है। वस्तुत. विश्वविद्यालयो से ही देश और समाज को ज्ञान का प्रकाश मिल सकता है, विश्व-विद्यालयों के अध्यापक अपने आचरण और व्यवहार से समाज के लिए कल्याणकारी जीवन-मूल्यो का निर्माण कर सकते है, जिनके द्वारा समाज का पथ प्रदर्शन हो सकता है। पर आज की स्थिति सर्वथा विपरीत हो गई है। दुर्भाग्य से हमारे विश्वविद्यालय अन्धकार के गढ वन गये है। उच्चकोटि के चारित्र्य और ज्ञानसपन्न अध्यापकों का प्राय. अभाव हो गया है। जो थोडे बहुत है वे राजनीति और षड्यंत्र का शिकार हो रहे है। ऐसी स्थिति मे जाकिर साहब का शिक्षादर्श हमारा पथ प्रदर्शक हो सकता है। ●

डा० जाकिर हुसैन की उत्कर्ष–साधना

सुशीला माथुर

डा० जाकिर हुसैन का जीवन उत्कर्ष-साधना की अत्यत प्रेरणादायक कहानी है। जिन लोगो ने उनके जीवन का निकट से अध्ययन किया है, उन्हे उसमे बहुत से अ तर्विरोध दिखाई पडते है। पर ये अ त-र्विरोध उनकी उत्कर्ष - साधना के विविध पक्षो को प्रकाश मे लाते है और उसके वैभिन्नय और वैशिष्ट्य को उद्घाटित करते है। प्रोफेसर मुजीव ने उनके विषय मे लिखा है कि वे इतने जीवत, इतने जटिल और परिस्थितियो के प्रति इतने संवेदनशील है कि उनके व्यक्तित्व को सही और सतोपजनक विवरण की सीमा मे निवद्ध करना सभव नही है।

डा० जाकिर हुसैन का जन्म एक सपन्न परिवार में हुआ था, पर उन्होने जान-बूझ कर गरीवी और अभाव का जीवन चुना और दीर्घकाल तक स्वेच्छापूर्वक उसे अपनाये रहे। उनकी शिक्षा-दीक्षा प्रमुखत एक अर्थशास्त्री के रूप मे हुई, पर उन्होने अपने लिए अध्यापक के जीवन का वरण किया। अध्यापक के रूप मे उनको जो असाधारण सिद्धि और प्रसिद्धि मिली, उसके द्वारा उनका एक महान् अर्थशास्त्री और राजनीतिक चितक वाला रूप प्राय आवृत और विस्मृत हो गया है। शिक्षा की ही तरह अर्थशास्त्र और राजनीति के क्षेत्र मे भी उन्होने अत्यत मौलिक चिंतन किया है। डॉ० जाकिर हुसैन के जीवन की एक वडी भारी विशेषता यह भी है कि यद्यपि उन्होने सक्रिय राजनीति को छोड रखा था, फिर भी उन्हे देश ने ऐसे पद पर प्रतिष्ठित किया है जिसके राजनीतिक महत्व को यदि सर्वोपरि भी कहा जाय, तो इसमे कोई अत्युक्ति नही हो सकती। उनके स्वभाव में भी कुछ ऐसी विशेपताये दिखाई

पड़ती है, जो बरबस ध्यान आकृष्ट कर लेती है। एक सपन्न परिवार में जन्म लेने के कारण अभिजात्य उनमें सहजात है, फिर भी वे छोटे-से-छोटे लोगों के साथ भी परम आत्मीय सबध रखते आये है और जामिया-मिल्लिया के लिए धन-सग्रह के निमित्त सारे देश में भ्रमण करते रहे है। यद्यपि स्वभाव से वे अल्प भाषी है, पर उनकी बातचीत बड़ी मोहक और प्रभावशाली मानी जाती है। उनके आत्मीय जनो का कहना है कि उनमें मैत्री के निर्माण और निर्वाह की असाधारण क्षमता है। उनका जीवन एक पवित्र ग्र थ की भाति खुला हुआ है, फिर भी उसकी गहराई की थाह पा लेना आसान नही है।

डॉ० जाकिर हुसैन ने अपने जीवन में सर्वोत्तम की उपलब्धि को ही अपना लक्ष्य बनाया है, द्वितीय स्थान उन्हे कभी अभिप्रेत या सहज स्वीकार्य नही हो सका है। रशीद अहमद सिद्दीकी, प्रोफेसर मुजीब, आबिद हुसैन, बी० एच० जैदी, आदि उनके अ तरंग साथियो ने उनके जीवन की इस विशेषता पर विशेष बल दिया है। चाहे वे अलीगढ या बर्लिन के विद्यार्थी हों, अथवा जामिया या अलीगढ के शिक्षक हो, चाहे वे मित्रों की सीमित गोष्ठी में हो अथवा विशाल जन-समूह में हो, सभी स्थितियो में उन्होने अपने को सर्वोत्तम कोटि में ही रखने का प्रयत्न किया है। जामिया मिलिया के प्राध्यापक और शेख के रूप में भी उनका कृतित्व सर्वोत्तम ही रहा है। प्रोफेसर डब्ल्यू० सी० स्मिथ ने अपने 'माडर्न इस्लाम इन इ डिया' नामक ग्र थ में लिखा है कि जामिया मिलिया की शिक्षा-व्यवस्था अत्यन्त प्रगतिशील और सर्वोत्तम में से एक है।

विद्यार्थी-जीवन में ही जाकिर साहब ने अपनी असाधारण प्रतिभा के अनेक प्रमाण दिये थे। बी० ए० करने के बाद उन्होने प्रोफेसर एडविन कैनन के प्रसिद्ध ग्र थ 'एलीमैण्टरी पोलिटिकल इकानोमी' का उर्दू अनुवाद किया। उन्होने प्लेटो के प्रसिद्ध ग्र थ 'रिपब्लिक' का भी उर्दू अनुवाद किया। इस अनुवाद में उनका विशिष्ट भाषाधिकार विशेष रूप में परिलक्षित हुआ था। मौलाना इकबाल अहमद सुहेल ने इस अनुवाद की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि यदि प्लेटो ने अपना ग्र थ उर्दू में लिखा होता, तो वे निश्चय ही जाकिर हुसैन की भाषा-शैली को अपनाते। अर्थशास्त्र के विषय को लेकर उन्होने उर्दू मे 'मशियात कौमी', 'मशियात' जैसे अन्य ग्र थ भी लिखे जो बहुत प्रसिद्ध और प्रशंसित हुए।

लेखक के रूप में उनको सर्वाधिक सफलता बच्चों की कहानिया लिखने में मिली है। वे एक पूर्णतावादी लेखक है और लेखन-कार्य को श्रमसाध्य कला मानते है। वस्तुतः डॉ० जाकिर हुसैन के व्यक्तित्व और अ तरग की सच्ची झाकी उनकी रचनाओ में ही मिलती है। उनकी मान्यता है कि बच्चो की कहानियां साहित्य का अधिक स्थायी रूप प्रस्तुत करती है और उनके द्वारा बहुत कुछ कहा जा सकता है। साहित्य की इस विधा मे उनकी रुचि सबसे अधिक है। पहले वे 'सकटया रेहाना' के छद्मनाम से जामिया की पत्रिका 'पयामे तालीम' में बच्चों को कहानियां लिखा करते थे। ये कहानिया आगे चलकर 'अबूखा की बकरी और चौदह और कहानियाँ' के नाम से एक सग्रह के रूप में प्रकशित हुईं। बच्चो की कहानी–लेखन कला का उत्कृष्ट रूप उनकी 'कछुवा और खरगोश' नाम की कहानी में देखा जा सकता है, जिसमें उन्होने पुरानी कथा को नवीन अर्थवत्ता के साथ प्रस्तुत किया है।

डॉ० जाकिर हुसैन को सौन्दर्यप्रियता बहुत प्रसिद्ध हो चुकी है। कला और प्रकृति के प्रति उनके हृदय में सहज अनुराग है। साथ-साथ उनका यह प्रेम अकृत्रिम और गंभीर भी है जिनके द्वारा

उनकी परिष्कृत ऐन्द्रिय सवेदना का प्रमाण मिलता है। पाश्चात्य शास्त्रीय सगीत और आधुनिक कला मे भी उनकी गहरी रुचि है। जामिया मिलिया के अपने कार्यकाल मे भी जब उन्हे प्राय धनाभाव रहता था वे पैसे बचा कर उदीयमान चित्रकारो की कृतिया खरीद कर उन्हे प्रोत्साहित करते थे। अभावग्रस्त प्रसिद्ध चित्रकार रजा की एक कृति उन्होने सन् ३० के आस-पास बवई की एक प्रदर्शिनी मे ३०) रुपये मे खरीदी थी। कलाकार के रूप मे रजा के विकास मे जाकिर साहब के सरक्षण का बडा महत्वपूर्ण योगदान रहा है। किसी ने डॉ० जाकिर हुसैन को सौन्दर्य प्रेमी फकीर कहा है, जो सर्वथा उपयुक्त है।

डॉ० जाकिर हुसैन अनन्य काव्य-रसिक भी है। जामी, रूमी, उर्फी, निजामी, सादी, गालिब और इकबाल उनके प्रिय कवि है। उनके काव्य-प्रेम ने कई उर्दू कवियो को प्रोत्साहित किया है, सिकन्दर अली वज्द उनमे से एक है। इसी प्रकार हुसैन, गुजराल, रामकुमार इत्यादि भी उनके प्रिय है। चित्रकार हुसैन को डॉ० हुसैन ने विशेष रूप से प्रोत्साहित किया है। उनका अध्ययन बडा व्यापक और गभीर है। प० जवाहर लाल नेहरू के साथ समसामयिक साहित्य पर उनकी चर्चा प्राय होती रहती थी।

डॉ० हुसैन साहब ने विभिन्न क्षेत्रो की व्यापक से व्यापक और गभीर से गभीर जानकारी प्राप्त की है। १९५२ के अपने अमरीकी प्रवास में डॉ० जाकिर हुसैन ने बहुत से अमरीकी विश्व-विद्यालयो को देखा। इन विश्वविद्यालयो मे ज्ञान की विभिन्न शाखाओ मे छात्रो को शिक्षा देने के जो विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम चल रहे थे, उनका उन्होने बडी दिलचस्पी के साथ निरीक्षण और परीक्षण किया। जिन विश्वविद्यालयों मे ज्ञान-विज्ञान के शोध और प्रशिक्षण का श्रेष्ठ कार्य सम्पन्न हो रहा था, उनको उन्होने तीर्थस्थान घोषित किया।

जिन दिनो डॉ० जाकिर हुसैन बिहार के राज्यपाल के पद पर प्रतिष्ठित थे, उन दिनो उन्हे विशिष्ट फासिलो, चट्टानो और खनिज पदार्थो के सग्रह का शौक पैदा हुआ। इन दिनो इस सग्रह मे १५०० से ऊपर चीजे है। बागबानी का उनका शौक भी काफी पुराना और गहरा है। उनके उद्यान मे विभिन्न स्थानो के चुने हुए पुष्प-वृक्ष सदैव स्थान पाते रहे है। दक्षिण भारत की अपनी यात्रा से वे एक बार विभिन्न स्थानो के एक सौ बीस पौधे ले आये थे।

वे जामिया में शेख थे, वे दिन जामिया के घोर गरीबी के दिन थे। समय पर किसी को वेतन नही मिल पाता था। पर किसी को कोई शिकायत नही थी। कारण, शेख का स्वार्थ त्याग और तपोनिरत जीवन सबको नि स्वार्थ बनने की प्रेरणा प्रदान करता था। इन्ही दिनो जवाहरलाल नेहरू, चक्रवर्त्ती राजगोपालाचारी और डॉ० मुहम्मद इकबाल ने जामिया को देखा और शेख के व्यक्तित्व, सकल्प-शक्ति और परियोजनाओ से प्रभावित हुए। यही से डॉ० जाकिर हुसैन को राष्ट्रीय ख्याति मिलनी आरभ हुई। इसके पश्चात् वे जहा, जिस किसी पद पर रहे उनकी यह ख्याति बराबर बढती रही। अलीगढ़ विश्वविद्यालय के उपकुलपति के रूप में, बिहार के गवर्नर के रूप मे तथा उपराष्ट्रपति के रूप में उन्होने देश का असाधारण सम्मान पाया है।

भारत के तृतीय राष्ट्रपति के गौरवशाली पद का उत्तरदायित्व वहन करते समय उन्होने कहा था कि उनका वरण इस पद पर मुख्यत इसलिए हुआ है कि वे दीर्घकाल तक इस देश की शिक्षा के साथ अध्यापक के रूप मे सबद्ध रहे है। राष्ट्रपति के ये उद्गार शिक्षक के व्यवसाय के प्रति उनकी सहज सम्मान-भावना को व्यक्त करते है। वस्तुत शिक्षक के रूप में और शिक्षा के क्षेत्र में डॉ० जाकिर हुसेन का परिदान महान् है। महात्मा गाधी की बुनियादी शिक्षा की नौका के वे प्रमुख कर्णधार रहे है। जो लोग इस देश को शिक्षा के इतिहास से परिचित है, वे जानते है कि गाधी जी की बुनियादी शिक्षा की योजना का उग्र विरोध भी हुआ था। विरोध करने वालो में प्रोफेसर के० टी० शाह जैसे प्रतिष्ठित शिक्षाशास्त्री भी थे। पर डा० हुसैन की योग्यता और लगन से ही वह योजना स्वीकृत और सर्वमान्य हुई।

ऊपर डा० जाकिर हुसैन के सम्वन्ध में जो कुछ कहा गया है, उससे यह सिद्ध होता है कि जिस प्रकार वट के सरसो से भी छोटे बीज मे विशालकाय परम, शक्तिशाली वृक्ष अंतर्हित रहता है, उसी तरह जीवन की अत्यत छोटी और साधारण प्रतीत होने वाली घटनाओ से महान् जीवन का अविर्भाव होता हुआ देखा जाता है। डा० जाकिर हुसैन के जीवन में भी यही सत्य चरितार्थ होता है। अग्रेजो के साम्राज्यवाद के क्रूर बन्धनों में जकड़े हुए इस देश के एक सामान्य परिवार के बालक के सम्बन्ध में कोई यह कल्पना भी नही कर सकता था कि कभी वह स्वतन्त्र भारत का राष्ट्रपति बनेगा। पर अगरेजो के साम्राज्यवाद के विरुद्ध इस देश में जो सघर्ष चला, विशेषत जो विराट् अहिसात्मक आन्दोलन महात्मा गाधी के नेतृत्व में प्रवर्त्तित हुआ, उसकी अति नगण्य प्रतीत होने वाली घटनाओ के भीतर से अनेक महान् व्यक्तित्वो और स्वतन्त्र भारत के इतिहास के अनेक स्वर्ण अध्यायो का अविर्भाव हुआ है। डा० जाकिर हुसैन का जीवन इसका प्रमाण माना जा सकता है। उनका स्वय का कहना है कि गाधी जी के आह्वान पर अपने विद्यार्थी-जीवन मे उन्होने जो निर्णय लिया था, उसी के स्रोत से उनका जीवन-प्रवाह बहा है। १० मार्च, १९२० को गाधीजी ने अपनी सत्याग्रह की योजना पहली बार देश के समक्ष रखी थी। खिलाफत आन्दोलन का भी उन्होने जोरदार समर्थन किया था। गाधीजी के इस आह्वान पर जिन असख्य लोगो के जीवन का क्रम सर्वथा परिवर्त्तित हो गया था, उनमें डा० जाकिर हुसैन भी एक थे। उन्होने अपने आपको राष्ट्रीय आन्दोलन को समर्पित कर दिया था। उनका यह समर्पण ही उनकी आजीवन उत्कर्ष-साधना का श्रीगणेश बन गया।

धर्म निरपेक्ष राष्ट्रपति

ए० यू० चैलानी

डा० जाकिर हुसैन को अपना राष्ट्रपति वना कर भारत अपनी धर्म निरपेक्षता की कसौटी पर खरा उतरा है। भारत मे मुसलमान राष्ट्रपती, यह आज के विश्व के लिए नया अनुभव है। भारत ने विश्व को दिखा दिया कि भारत केवल काल्पनिक आदर्श ही नही रखता वल्कि उन्हे कार्यान्वित करने मे भी पहल और दृढता से काम लेता है। यह सिद्धातो एव आदर्शो की विजय तो है ही, साथ ही एक महान् शिक्षा शास्त्री, उच्च देश भक्त व कर्मठ कार्यकर्ता के साधनापूर्ण जीवन और मानवतावादी दृष्टीकोण का आदर भी है। वास्तव मे. एक महान पद के लिए एक महान व्यक्तित्व को चुना गया। लगता है, जैसे राजनीति, शिक्षा का आदर करना सीख रही है।

४८ वर्ष से लगातार प्रमुख रूप से देश की सेवा मे रत रहने वाले जाकिर साहव, एक निर्भिमानी, स्पष्ट वक्ता, सादगी पसन्द, अध्ययन प्रिय और सौम्य व्यक्तित्व के धनी है। अंग्रेजी और उर्दू भाषा का यह प्रकण्ड विद्वान जर्मन भाषा का भी ज्ञाता है। इसी विद्वता एव अध्ययनशीलता ने उन्हे जाकिर साहव से डा० जाकिर हुसैन वना दिया है। अलीगढ विश्वद्यिालय के इस स्नातक ने जर्मनी के वर्लिन विश्वविद्यालय से पी–एच० डी० की उपाधि प्राप्त की थी। शिक्षा के प्रति प्रगाढ प्रेम और झुकाव ने, उन्हे इसी क्षेत्र की ओर अग्रसर किया। शिक्षा-पद्यति में राष्ट्रीयता का अभाव देख कर इस विद्वान नवयुवक ने अलीगढ मे शिक्षक वनना स्वीकार किया। शिक्षा-प्रणाली मे राष्ट्रीयता के मूल-सत्यो के समावेश हेतु, उन्होने वुनियादी शिक्षा-पद्धति को देश मे लागू करने, उसे नवीन रूप और आकार देने मे मुख्य भूमिका निभायी। इस

शिक्षा-शास्त्री की यह हार्दिक इच्छा थी कि बुनियादि शिक्षा-प्रणाली को हमारे देश की शिक्षा-पद्धति का आवश्यक अंग बनाया जाय। किन्तु, किन्ही कारणों से ऐसा सम्भव न हो सका।

सन् १८९९ मे अफगान परिवार में जंन्मा और प्रमुख वकील पिता के लाड प्यार से पालित-पोषित यह होनहार बालक, भारत का तीसरा राष्ट्रपति होगा, सम्भवत· किसी ने सोचा भी न होगा। किन्तु उनके शैक्षणिक-चितन, अथक-प्रयत्न एव कार्य-कुशलता को परखने वाली नजरें उस समय भारत का नेतृत्व कर रही थी। अत. भला उस महात्मा की पैनी नजर से यह योग्य व्यक्तित्व कैसे छिपा रह सकता था? १९२० में गाँधीजी के सम्पर्क में आते ही जाकिर साहब के जिम्मे बुनियादि शिक्षा का कार्य सौंप दिया गया। जाकिर साहब ने भी इस पुनीत कार्य को पूर्ण लगन और उत्साह से किया। जाकिर साहब की योग्यता ने गाँधी जी को बहुत प्रभावित किया।

हमारे राष्ट्रपति एक सुवक्ता एवं प्रख्यात लेखक भी है। इतनी संयत, प्रभावशाली एव मधुर-वकतृता उनको सर्वप्रिय बनाने में सर्वाधिक सहायक सिद्ध हुई है। उनके भाषण उनके गहन अध्ययन एव विद्वता के द्योतक होते है, जिनमें एक अध्यापक का व्यक्तित्व झलकता है, एक साधक की साधना परिलक्षित होती है। जिस प्रकार उनकी वकतृता निराली है, उसी प्रकार उनकी लेखन-शैली भी विशिष्ट है। लेखन का चमत्कार उनके स्फुट-लेखों, दीक्षान्त-भाषणो एव प्लेटो के 'रिपब्लिक' के अनुवाद में देखा जा सकता है। जाकिर साहब की शैक्षणिक, सास्कृतिक एव सार्वजनिक देन का सही मूल्याँकन एक कठिन कार्य है।

डा० जाकिर साहब के राष्ट्रपति बनने से पूर्व की गाथा, एक महत्वाकाक्षी, पर स्वयं निर्मित्त आदर्श व्यक्तित्व की सुनहरो कहानी है, जिसमें हम देखते है अलीगढ विश्वविद्यालय का शिक्षक किस तरह उसी विश्वविद्यालय का उप-कुलपति, यूनेस्को कार्यकारी मण्डल का सदस्य, फिर बिहार का राज्यपाल, पुनः भारत का उप-राष्ट्रपति तथा अन्त में विश्व के सबसे बड़े गणतंत्र राष्ट्र का राष्ट्रपति बन जाता है।

७१वर्षीय जाकिर साहब पूर्ण धार्मिक-आस्था वाले व्यक्ति है। उनकी इस धार्मिक-आस्था में सकीर्ण और साम्प्रदायिकता को लेश मात्र भी स्थान नही है बल्कि सृष्टा के प्रति श्रद्धा का भाव ही प्रमुख है। उन्होने कहा भी है — "अखण्ड-विश्व-समाज के लक्ष्य तक पहुँचने के लिए रूढि, धार्मिक विधानो और रस्मी-पूजा के दायरे से आगे देखना चाहिए।" उन्होंने अपने आपको धर्म की सकीर्णता में कभी नही बाधा। उनके विचारो में देशभक्ति और ऊचे दर्जे की मानवता सदा परिलक्षित होती रही। राष्ट्रपति-पद को शपथ लेते हुए उन्होने यही कहा था — "मै धर्म व भाषा के भेदभाव के बिना अपने देश के प्रति निष्ठा की शपथ लेता हूँ। मै अपने देश को मजबूत और प्रगतिशील बनाने के लिए तथा जाति, रग व जन्म के भेदभाव के बिना, जन-कल्याण की शपथ लेता हूँ।"

डा० जाकिर हुसैन की धार्मिकता ने विज्ञान का कभी निरादर नही किया और न ही धर्मान्धता के घेरे में बन्द होकर विज्ञान और धर्म के बीच की खाई को पाटने में कोई कमी ही रखी है। उन्होने कहा था कि—"यदि विज्ञान और धर्म के बीच की खाई को नही पाटा गया तो विज्ञान थोथा साबित होगा और धर्म में विज्ञान की भावना का समावेश हुए बिना धर्म अन्धविश्वास बन कर रह जायेगा।

जाकिर साहब को समझने के लिए यह आवश्यक है कि उनके व्यक्तित्व को समझे और उसमे अवगाहन कर उनके जीवन का सार-तत्व समझे। तो आइये, जाकिर साहब की इच्छा-शक्ति का पता उनके अपने ही शब्दो मे लगाए "मैने जन-सेवा का जीवन गाँधीजी के कदमो मे रह कर शुरू किया था। गाँधीजी आज तक मेरे जीवन की प्रेरणा के स्रोत है। साधन और साध्य की पवित्रता मे विश्वास रखने वाले — गांधी जी के बताये गये मार्ग पर चल कर मै जनता की सेवा कर सकू और जनता को मार्ग सुझा सकू, इसी मे मेरा जीवन धन्य होगा और यही मेरी कामना है। दलित और पिछडे हुए लोगो के प्रति गांधी की सहानुभूति थी और वे विभिन्न जाति, धर्म और सम्प्रदायो के भारतवासियो के बीच एकता लाना चाहते थे। आज मेरा भी वही रास्ता है और वही मजिल है।" ●

काम का महत्व

कोई काम बडा या छोटा नही होता। प्रत्येक को अपने काम मे श्रेष्ठता लाने का उद्देश्य रखना चाहिए। यही एक जरिया है जिसमे कोई भी अधिक अच्छा व्यक्ति बन सकता है।

सभी लोगो को भरसक अच्छा काम करना चाहिए, क्योकि काम मनुष्य के जीवन मे सकल्प और एक महान सुअवसर है तथा इसका एक अ ग है। यदि हम अच्छा काम करते है तो इसके परिणाम स्वरूप देश का हित सम्पादन होगा।

—डा० जाकिर हुसैन

खण्ड : २

काव्यांजलियां

अभिनन्दन १.

[डा० हनुमान दास चकोर']

कुशल प्रशासक ! सौम्यमूर्ति !
विद्वद्वर तुमको नमस्कार !
भारत का जन-जन देख तुम्हे,
हो रहा हृदय में मुदित आज ।
धारण कर देह विदेह-सदृश,
कर रहे देश का वहन ताज !
हे कार्य-कुशल ! आनन्द-मूर्ति !

मानववर तुमको नमस्कार !

घन-तम में पथ दिखला हमको,
रवि-रश्मि, सदृश जगमगा दिया !
दे नवल जागरण भारत को,
सरसिज-संपुट-सा खिला दिया ।
हे आशा-घन ! औदार्य रूप !

आभामय ! तुमको नमस्कार !

अभिनन्दन २.

[रामेश्वर 'अज्ञात']

जा धरती ने वेद विचार्‌या,
मानवता रा वैण उचार्‌या-
सुथरी सस्कृति दीनी जग कू,
सत्य-अहिसा दर्शन गाया
वा धरती रा राजमुकुट, हे !

अभिनन्दन।

जा धरती पै उपजी सीता,
जा विन घट नारी रा रीता-
जा धरती रे ग्वाल वाल ने,
लिख दीनी जीवन री गीता।

वा धरती रा राजमुकुट हे।

अभिनन्दन।

जा धरती पै राम अवतर्‌या,
रांणा और शिवाजी जन्म्या-
जन्म्या लाल वहादुर वीरा,
कोटि-कोटि नयना रा प्यारा।
वा धरती रा राजमुकुट हे !

अभिनन्दन।

जा धरती रा मुकुट हिमालय
पतित पावनी गगा माई-
हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई,
जहा रहे सब भाई-भाई।
वा धरती रा राजमुकुट हे !

अभिनन्दन।

बंदगी !

[बी० सी० ठाकुर 'श्याम']

उस दिन
जब आप राष्ट्रपति बने,
सचमुच !
हिंदुत्व की सनातन उदारता
हिन्दुस्तान की धर्म निरपेक्षता मूर्त बन गई।
संविधान में तैरता हुआ स्वप्न,
इतिहास के कॅनवास पर,
हर्फ-ब-हर्फ साकार होगया !

कुछ अनुचित
कुछ संकुचित ..
(ऐसे लोग कमो-बेश सभी मुल्कों में
होते थे....होते होंगे और हैं)
सत्य को छिपाने की गरज से,
उरजा गये थे,
लेकिन आपने.... ...
रूद्राक्ष की माला की भाँति,
उनके शब्दों को भी ओढ लिया ।
व्यक्तित्व में गजब की सादगी,
वाणी में शिक्षक की अभिव्यंजना
और अंधेरे से लड़ने का बेहद उत्साह
ये सब यथार्थ देखते हुए
कंठ-कंठ से कोई अल्लादक आवाज
पूरब-पश्चिम
उत्तर-दक्षिण

सर्वत्र गूं ज ती है
बं द गी !
बं द गी .. !

ओ मेरे राष्ट्रपति !

[दुर्गा प्रसाद 'मुकुर']

उस रोज सवेरे
उडीसा के सम्वलपुर में
जव मैं उतरा था-तो पाया—
लोग ताक रहे है आकाश की ओर
सारे के सारे एक साथ ।

हा,
तुम्हारा विमान उठ रहा था ऊपर
ऊपर ही ऊपर

ठीक उसी तरह
जैसे अपने जीवन में
तुम क्रमश. ऊँचे ही उठते गए
ओ मेरे राष्ट्रपति !

मालूम हुआ
तुम आए थे, कल ही
(५ जनवरी १९६८ को)
करने उद्‌घाटन–उड़ीसा के एक और
विश्वविद्यालय का ।
तुम्हारे पावन हाथो ने
फिर रोपा एक 'ज्ञान का पौधा'
जो समय पाकर फलेगा-फूलेगा-फैलेगा
ओ मेरे राष्ट्रपति !

तुम्हारे इन पावन करो ने ही तो
'वुनियाद' रखी थी-उस शिक्षा-भवन की
जिसे आज हम 'वुनियादी शिक्षा' कहते है
तुम्ही ने तो लगाई थी वह डाली
जिसे हम जामिया-मिलिया-इस्लामिया
कहते हैं
जिसकी जड़ें फैल गई हैं काफी गहरी
जिसकी छाया सघनतर है ।

फल–पौष्टिक ।
मगर सत्य कहता हूँ
ओ मेरे राष्ट्रपति !

जब मै 'अशोक भवन' देखने गया
(जिसमें कल रात तुम ठहरे थे)
तो मुझे, न जाने क्यो, ऐसा लगा
जैसे तुम्हारी खुशबू भी फैली थी
वहां
जो हम जैसे भावुकों के कान में
चुपके-चुपके फुसफुसा गई
कि, कल रात
तुम सोए कम-अधिक रोए थे
या कि तुम कुछ खोए-खोए थे
क्यो ? क्यो ?? क्यो ???

इसलिए कि, ओ मेरे राष्ट्रपति !

मुझसे ज्यादा तुम्हे यह दीख गया होगा
कि पावन हाथो से रोपे गए वृक्ष
देने लगे है "विष फल"
ज्ञान के मदिर बन गये है अज्ञान के
क्रीडागार
उनकी घनी छाया, 'रिजर्व' कर ली है
उन्होने–उन दरिन्दो ने
जिनके नाखून खरोचते है औरों को
जिनके दातो में चमकते है लहू के दाग
सारस्वत जनो के !

क्या सच ?

मैने अकपका कर पूछा 'जवाहर मीनार' से
जो 'हीरा कुंड बाध' की अथाह जल
राशि मे
निरख रहा है अपना प्रतिबिंब।
जबाब नही मिला
मै लगा ताकने उस 'जल-भंडार' की ओर

जिसे जमा किया गया है
धोने के निमित्त-उन आँसुओ को
जो बहते रहे है-सदियो से
मगर हाय ! ओ मेरे राष्ट्रपति !
मुझे उसमे चमकता नजर आया
तुम्हारी भी आँखों का 'जल विन्दु'
जो अन जाने ढुलक गया होगा
किसी 'अनौपचारिक' क्षरण मे
अनायास ।
नही नही मेरा हृदय कहता है
अनायास नही-सहज भाव से
क्योंकि ओ मेरे राष्ट्रपति !
तुम फौलादी हो-जरूर हो
किन्तु मन तो तुम्हारा पत्थर का नही !

खण्ड : ३

विचार

बच्चों के नाम

[पयामे तालीम के १९३४ ई० के वार्षिक अङ्क के लिए जाकिर हुसैन साहब ने यह पयाम सम्पादक की प्रार्थना पर लिखा था।]

बच्चो! खुश रहो और स्वस्थ रहो! तुम्हारी 'पयामे तालीम' के निकालने वाले पीछे पडे है कि इस पर्चे में मेरा सन्देश होना चाहिए। भला कोई इनसे पूछे कि जो आदमी रोज तुमसे मिलता हो और तुमसे बाते करता हो, तुम्हारे साथ उठता-बैठता हो वह सहसा कैसे सन्देश दे डाले? जो लोग कही दूर हो, कभी-कभी तुमसे मिलते हो, वे कोई संदेश भेजे तो कोई समझ की बात है। मगर यह 'पयामे तालीम' वाले एक नही सुनते, बस उन्हे तो सन्देश चाहिए। क्या कीजिए, इनकी बात माननी ही पडेगी और सच है कि इनका यह पर्चा और पर्चो से है भी जरा अलग। इसलिए सन्देश न सही, इस अवसर पर तुम से कुछ बाते कर लूँ।

तुम जानते हो इस पर्चे में क्या खास बात है? यह बात है कि यह २९ अक्टूबर को सब भाइयो को मिलेगा। १४ वर्ष हुए इसी तारीख को जामिया मिलिया का काम प्रारम्भ हुआ था। तुम में से बहुत से तो उस वक्त पैदा भी नही हुए थे। बहुत से छोटे लडके जो प्रारम्भ मे जामिया मिलिया मे आये थे, वे अब ईश्वर की कृपा से जवान है। बहुत से दूर-दूर के देशो से शिक्षा ग्रहण कर वापस आ गये है। बहुत से यही शिक्षा समाप्त कर के सेवा कर रहे है, पाठशाला में बालको को पढा कर योग्य और अच्छा बनाने का प्रयास कर रहे है, अच्छे-अच्छे पत्र निकाल कर लोगो को सच्ची जानकारी देते है और अच्छी बाते बताते है। कुछ लोग व्यापार में रुपया कमा रहे है और इस कमाई से अन्य लोगो की सहायता भी करते है।

यो तो ये अपने-अपने धन्धो मे लगे है मगर जामिया मिलिया का ध्यान सब को है।

जामिया मिलिया इन सब को प्यारी है । और देश के लोग जहाँ भी है जामिया मिलिया की सहायता कर रहे है ।

जरा सोचो तो सही, ऐसा क्यो ? ये इस जामिया मिलिया को क्यो प्यार करते है ? जहाँ का खाना-पीना फीका मालूम होता था, जहाँ सुबह मुँह अन्धेरे उठना, वुजु करना और नमाज पढना, फिर कड़ाकड़ी के जाडो मे व्यायाम के लिए मैदान मे जाना, इन्हे कैसा खलता था ! जहाँ इनके रहने को बहुत अच्छे मकान भी न थे । मदरसे मे बैठने को कुर्सियाँ भी नही थी । जहाँ न बहुत आराम था, न बहुत ठाठ । यह जामिया इन्हे इतनी प्यारी है ।

इसलिए प्यारी है कि इसने इन्हे आदमी बनाया । इनके दिल मे पवित्र जीवन की लगन लगाई और भय दिखला कर नही बल्कि परिश्रम से इनके दिल मे 'खुदा और रसूल' की मुहब्बत पैदा की । इन के सीनो मे अपने भाइयो की सेवा का जोश पैदा किया । इसने उन्हे सिखाया कि जहाँ रहो, कुछ भी करो, सच्चाई को न छोडो । इस रास्ते मे कठिनाई आये तो मुँह मत मोडो । खुद ही कठिनाइयाँ उठाओ और दूसरो के लिए आसानियाँ पैदा करो । तन-बदन मोटे कपडे से ढक लो और रूखा-फीका खा कर गुजारा कर लो, मगर दिमाग ऊँचे से ऊँचे ख्याल सोच सके, दिल अच्छी से अच्छी इच्छाओ से भरा हुआ हो ।

प्यारे बच्चो ! जामिया मिलिया भी तुम्हे यही सिखाना चाहती है और निश्चय है कि यह सब कुछ कर पाओगे तो यहा की तकलीफे याद करके भी उतनी शिकायत तुम्हारी जुबान पर नही आयेगी । तुम सच्चे होगे, अच्छे होगे, तन्दुरुस्त होगे । साफ सुथरे होगे, ईमानदार होगे, धुन के पक्के होगे, बुरो के लिए लोहा होगे और अच्छो के लिए मोम, गरीबो का सहारा होगे, लाचार आदमियो का आसरा, सोतो को जगाओगे, डूबतो को उबारोगे, तुम गरीब होगे तब भी दिल अमीर होगा । दूसरो की दोलत को मुँह फेर कर न देखोगे, अमीर होगे तो अपनी दोलत को खुदा की दौलत समझोगे और इसको बन्दो की सेवा मे खर्च करोगे । तुम जहाँ भी होगे अपने साथियो के लिए, पडौसियो के लिए, बस्ती के लिए वरदान होगे ।

डा० जाकिर हुसैन व्यक्तित्व और विचार

मेरी जगह पर तुम मे से कोई 'पयामे तालीम' में इस अवसर पर कुछ लिखेगा तो हिन्दुस्तान के हर घर में लोग इसे चाव से पढेगे। इसलिए कि मदरसे के बच्चो में ही नही, चारो ओर तुम्हारे काम की चर्चा होगी। शिक्षा तुम्हारे हाथ मे होगी। राजनीति तुम्हारे सकेतो पर चलेगी। जनता की राय पर तुम्हारा प्रभाव होगा। आज हम कमजोर है। उस समय तुम मजबूत होगे। उस वक्त यह बात न भूल जाना कि तुम्हारी सारी सफलता यह है कि तुम और तुम्हारे अगलो ने निःस्वार्थ सेवा को अपना रास्ता बनाया, जो ठीक समझा वह दिल लगा कर किया और नतीजे को खुदा पर छोडा।

बात बहुत बढ गई। बस अब रुकसत। जामिया को और तुम्हे यह दिन मुबारक!

सही सुधार

हमारे शैक्षिक सगठन मे व्यक्ति और समाज की पारस्परिकता पर शायद ही ध्यान दिया जाता है। स्कूल तथा शिक्षण सम्बन्धी दूसरी सस्थाए तथाकथित बौद्धिक प्रगति के काम मे इतनी अधिक व्यस्त है कि उन्हे इन बातो के लिए—जो उनकी नजर मे छोटी बाते है—समय नही है। सामाजिक उत्तरदायित्व की शिक्षा देने के लिए इन सस्थाओ का सगठन सामूहिक निवास की इच्छाइयो के रूप मे होना चाहिए। पानी मे तैरने से ही तैरना आता है, समाज मे सेवा करने से ही सेवा भी आती है। जब तक यह सिद्धान्त हमारी शिक्षण सस्थाओ का प्राण नही बन जाता, दूसरे सुधार के कार्य छुपपुट रूप से किए गए ऊपरी या सतही कार्य होगे। ऐसे सगठन के सदस्य रहने के सिवा भला किसी सुदृढ सामाजिक सगठन के नैतिक मूल्य का अनुभव कैसे किया जा सकता है?

—डा० जाकिर हुसैन

क़ौमी तालीम

[१४ अगस्त, सन् १६३५ को काशी विद्यापीठ के दीक्षान्त समारोह मे डा० जाकिर हुसैन का भाषण।]

मैं किस प्रकार कृतज्ञता प्रकट करूँ कि आप ने मुझे यहा बुला कर और भाषण देने की अनुमति दे कर मेरे सम्मान मे बढ़ोतरी की है। मेरा काम, क्यो कि मुझे बराबर विद्यार्थियो के साथ रखता है इसलिए अपने विद्यार्थी जीवन और आजकल के समय मे, मुझे कोई अन्तर नही लगता। मै अपने को आज भी उसी प्रकार का विद्यार्थी समझता हूँ जैसा कि आज से पन्द्रह वर्ष पहले समझता था। इसी लिए जब मुझे आप के कुलपति जी, हम सब के बुजुर्ग डा० भगवानदास जी का तार मिला कि तुम काशी विद्यापीठ के दीक्षान्त समारोह के उत्सव मे आकर कुछ कहो, तो मुझे बहुत ही आश्चर्य हुआ, ऐसा ही आश्चर्य जैसा कि आप के किसी कम आयु वाले विद्यार्थी को ये तार पा कर हो कि तुम आकर जामिया मिलिया के दीक्षान्त समारोह के उत्सव मे मुख्य भाषण करो। इस कारण से मैने उत्तर मे भी कुछ देर की और मेरा पहला विचार यही था कि मै डाक्टर साहब से क्षमा चाहूँ और यह लिखूँ कि शायद आप ने तार मे गलत आदमी का पता लिख दिया है, लेकिन मैने विचार किया कि शायद इस बुलावे मे एक और बात छिपी है, अर्थात ये कि जामिया मिलिया मे मेरे मित्र राष्ट्रीय शिक्षा का जो काम बडी कठिन दशा मे कर रहे है, इसमे काशी विद्यापीठ के भाई और मित्र जो स्वय इस प्रकार के कार्य मे लगे हुए है, हमारा साहस-वर्द्धन करना चाहते है। मै स्वय की ओर से तो क्षमा माग लेता, पर मेरे हृदय मे आप के काम करने वालो का जो सम्मान है उसने आज्ञा नही दी कि इनके इस निमत्रण को ना मजूर कर दूँ। यही कारण है कि मैं इस समय आप के समक्ष उपस्थित हूँ।

दुर्वल प्रयास

आज से कोई पन्द्रह वर्ष पूर्व जव इस विद्यापीठ की नीव डाली गई थी तो वह समय हमारी कौम के लिए वडी वेचैनी का समय था। इस वेचैनी का क्रम अव तक किसी न किसी रूप मे चल रहा है। कभी उभर आती है और कभी दव जाती है। इस वेचैनी ने हमारी कौम में वडी चेतना पैदा की है और कौमी जिन्दगी के विभिन्न क्षेत्रो ने इस से वहुत कुछ लाभ उठाया है। किन्तु मैं समझता हूँ कि जव इस चेतना का इतिहास लिखा जायगा तो इस समय में राष्ट्रीय विद्यालय की स्थिति हमारी कौमी जिन्दगी के लिए शायद सव से अधिक महत्त्वपूर्ण घटना स्वीकार की जायेगी। जिस प्रकार कठिन वीमारी की दशा मे शरीर अपने रोग को दूर करने के लिए प्राकृतिक ढग से कुछ न कुछ करता है और इसमें सोच विचार का अधिक भाग नही होता उसी प्रकार हमारी कौम ने भी कौमी तालीम के मामले में कुछ अधिक सोचा तो न था लेकिन दु ख वढ़ा तो उसने इसे दूर करने के लिए और उपायों के साथ अपने आप ही यह उपाय भी किया कि कौमी तालीम का कुछ प्रवन्ध करे। जव रोगी वहुत दुर्वल हो जाता है तो रोग को मिटाने के लिए प्रयास भी दुर्वल ही होते है। हमारे दूसरे प्रयासो की भाँति यह कौमी तालीम का प्रयास भी वहुत दुर्वल है। वल्कि स्वय हमारी कौम मे अच्छे समझदार आदमियो का एक विशेष वडा दल है, जो इस प्रयास की आवश्यकता को ही स्वीकार नही करता और इसके लाभो से विलकुल अनभिज्ञ है। ये लोग प्राय वे है जो अ ग्रेजी पढ-लिख लेने या कोई हुनर सीख लेने का नाम शिक्षा जानते है और सोचते है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी आवश्यकता और हैसियत के अनुसार, जो और जितना पढना-लिखना चाहता है लिख-पढ लेता है और सीख लेता है। अगर इन लोगो के विचारो की गहराई मे पहुँचने का प्रयास कीजिये तो पता चलता है कि इन के निकट समाज अपने स्थान पर कोई वस्तु नही होता। अलग-अलग आदमियो के मिलने से वन जाता है, जैसे पत्थरो का ढेर, कि इस में असली चीज तो अलग-अलग पत्थर है। एक स्थान पर आ जाने से ढेर वन गया है। समाज मे भी उनके विचार से व्यक्ति अकेला आदमी है। असली और प्रथम चीज है समाज जो इन अकेलो के मिल जाने का नाम है। मानसिक-जीवन की नदी अकेला आदमी ही है—वही सोचता है, वही समझता है, वही सव मानसिक चीजे पैदा करता है और अतिरिक्त इस के कि जीवन को सहज वनाने के लिए दूसरो से कुछ सहायता ले ले या उनकी कुछ सहायता कर दे, विचार और मस्तिप्क के अर्थ में वह अपना संसार स्वय है। हमारे शिक्षित लोग प्रजातत्र के उदार दर्शन को पढ-पढ कर, हर्क्यू लिस, प्रोमीथिस और रविनन के नामो, कार्यो और कहानियो से प्रभावित हो कर अकेले आदमी को सामाजिक जीवन की सही वास्तविकता और समाज को इन अकेलो का ढेर मानने लगे है।

मानसिक जीवन

परन्तु इसके मुकाविले में एक दूसरा विचार भी है और मैं समझता हूँ कि कही अधिक ठीक भी है अर्थात् यह कि असली वस्तु और प्रारम्भिक वस्तु समाज है और अकेला आदमी, व्यक्ति इस के सहारे और इसी के लिए हो सकता है और होता है। समाज की हैसियत शरीर की है, और अकेला आदमी या छोटे-छोटे समाजी दल इस शरीर के भाग होते है। शरीर के भागो का शरीर से और पत्थरों के ढेर का पत्थरों से जो सम्वन्ध है, उस का अन्तर प्रकट है। इस विचार के अनुसार मैं समझता हूँ कि

मानसिक जीवन बिना समाज के सम्भव नही। अकेला आदमी बतौर जानवर के समझ मे आ सकता है मगर पूरे इन्सान की हैसियत से, जिस का विशेष गुण बुद्धि है इसकी कल्पना भी सभव नही। मानसिक जीवन तो किसी मानसिक जीवन से ही पैदा होता है। ये दीपक सदैव किसी दूसरे दीपक से ही जलाया जा सकता है। मानसिक जीवन मे ही तो मैं भी है नही तो मैं का स्थान भी न हो—इसी लिए मानसिक जीवन के लिए, जो वास्तविक अर्थ मे मानव-जीवन है, समाज का स्थान आवश्यक है। शरीर मे प्रत्येक अ ग की कुछ अलग हैसियत भी अवश्य होती है। किन्तु इसी सीमा तक कि वह सारे शरीर से सम्बन्धित है और इसके अन्तर्गत अपनी सेवाएँ प्रस्तुत कर रहा है। एक अ ग के कट जाने से शरीर मे कमी आ जाती हे। मगर वह बाकी रह सकता है। किन्तु अ ग शरीर से अलग हो कर कभी नही रह सकता। वृक्ष मे प्रत्येक शाखा और पत्ती भी अलग-अलग स्थान रखते है परन्तु शाखा या पत्ती के टूट जाने से वृक्ष समाप्त नही होता, वृक्ष से अलग हो कर शाखा और पत्ती के लिए मिट जाने के सिवा भले ही और कुछ नही है।

कभी न टूटने वाला क्रम

जिस प्रकार कुछ समय मे शरीर का एक-एक कण बदल जाता है मगर शरीर का जीवन बराबर जारी रहता ह, जिस प्रकार वृक्षो की पत्तिया बदल जाती है मगर पेड वही रहता है, इसी प्रकार समाज के व्यक्ति भी बराबर समाप्त होते रहते है, मगर सामाजिक जीवन बाकी रहता है। प्रत्येक जीवित प्राणी की तरह समाज मे भी दो काम बराबर होते रहते हैं, एक तो बदलते रहने का और एक अपने—हाल पर स्थिर रहने का। इन मे से कोई एक काम भी रुक जाय तो मौत का सामना होता है। जो शरीर अपने को स्थिर नही रख सकता वह तो मिट ही जाता है। पर जिसमे अपने को बदलते रहने की शक्ति न रहे वह भी मौत के ही घाट उतरता हैं। समाज मे व्यक्ति के रहने का उद्देश्य यह है कि इस मौत और जिन्दगी, टूटना और परिवर्तन, स्थिति और प्रमाण का कारण बने और इन्हे इस योग्य बनाने के लिये समाज के उपाय और इसका कर्त्तव्य नई नस्लो की शिक्षा है। शिक्षा वास्तव मे किसी समाज के उस सोचे-समझे प्रयत्न का नाम है जो कि वह इस लिए करता है कि इसकी स्थिति बाकी रह सके और उस के व्यक्तियो मे यह योग्यता पैदा हो कि बदली हुई दशा के साथ सामाजिक जीवन मे भी उचित और प्रादरणीय परिवर्तन कर सके। कौमी जिन्दगी मे शिक्षा इसी प्रकार भूतकाल को वर्तमान काल मे जोडती है, जैसे अकेले आदमी के जीवन मे, उसकी स्मरण शक्ति। जो समाज अपनी शिक्षा का प्रबन्ध ठीक नही रखता वह अपनी स्थिति को भय मे डालता है और जिस तरह स्मरण शक्ति समाप्त हो जाने से अकेले जीवन का क्रम बाकी नही रहता उसी प्रकार कौमी तालीम न होने से कौमी जिन्दगी का सिलसिला समाप्त हो जाता है। अगर दुनिया के समाज मे भारतीय समाज को अपना अलग अस्तित्व स्थिर रखना है और दूसरे समाजो के मुकाबले मे इसके पास कुछ है जो इसे दूसरो से अलग करता हे और वह इस योग्य ह कि बाकी रहे और दुनिया की जिन्दगी से मालामाल हो तो हमारे समाज का कर्त्तव्य है कि अपनी शिक्षा मे उन वस्तुओ का ध्यान रखे, जिन्हे विशेष वह अपना समझता है। अपने [illegible] को अपनी आने वाली नस्लो तक पहुँचाने का प्रबन्ध करे, इसलिए कि केवल पुस्तको मे लिखे [illegible] से हमारा इतिहास जीवित नही रह सकता। इस के जीवन का बस एक ही उपाय है कि ये समाज [illegible] और मस्तिष्क के अ ग-अ ग मे जीवित रहे। मगर बहुत से लोग ऐसे भी ह

जो कहेगे कि ये पुरानी रूढिवादी बाते है। कौमी परम्पराएँ तो अक्सर कौम के रास्ते मे रुकावट ही है और भूत का बोझ गर्दन पर उठा कर कौम के लिए आगे चलना कठिन हो जाता है। इन छोटे विचारो से स्वतन्त्र होना चाहिए और वर्तमान आवश्यकताओ का विचार कर के और आने वाली आवश्यकताओ को सामने रख कर अपनी नई नस्लो को सिखाना-पढ़ाना चाहिए। वस यही कौमी तालीम है और शेष सव ढकोसले है। ऐसी वाते वे लोग भी करते है जो दिल से कौम की भलाई चाहते है और जिनके दिल मे इस बात की लगन है कि उनकी कौम जल्द से जल्द उन्नति करे और जितनी तेजी से आगे वढ सकती है आगे वढे। अर्थात् खुद कौम के लिए वे कौमी तालीम के इस विचार को पसन्द नही करते, जिसका जिक्र ऊपर हुआ। मै इन लोगो की नेकनीयती पर एक क्षण के लिए शक नही करता, मगर मुझे लगता है कि ये शिक्षा के महत्त्व से अनजान है वर्ना शायद ऐसी वात न करते। शिक्षा केवल कुछ बोल रट लेने या कुछ बाते जान लेने का नाम ही नही है, बल्कि शिक्षा तो उसे कहते है कि आदमी ने जो मस्तिष्क की शक्तियाँ ले कर जन्म लिया है उन के विकास की जितनी सभावना हो वो उसे प्राप्त करे। शिक्षा आदमी के मस्तिष्क की पूरी-पूरी परवरिश का नाम है। जिस प्रकार इन्सान का शरीर एक छोटे से वीज से शुरू होता है फिर उचित भोजन पा कर हिलने-डुलने लगता है और काम करने, शक्ति और आराम से, भौतिक और रासायनिक सिद्धान्तो के अनुसार पराकाष्टा की श्रेणी को पहुँचता है, इसी प्रकार मस्तिष्क का लालन-पालन भी मानसिक भोजन पा कर मानसिक सिद्धान्तो के अनुसार होता है। देखना ये चाहिए कि मस्तिष्क को ये भोजन किन-किन वस्तुओ से पहुँच सकता है और इसके प्रभाव का सिद्धान्त क्या है। निवेदन यह है कि मस्तिष्क को मानसिक भोजन मिलता है सस्कृति से, सस्कृति से सम्वन्ध रखने वाली अन्य वस्तुओ से—उदाहरणार्थ समाज को शिक्षा पद्धति से, समाज के कला-कौशल से, समाज के धर्म से, समाज की कारीगरी से, समाज की सभ्यता के सिद्धान्तो से, समाज के नियमो से, समाज के रीति-रिवाजो से, समाज के वडे-वडे व्यक्तियो के जीवन से, समाज में पारिवारिक जीवन के आदर्शो से, समाज के नगरो व कस्वो और शहरो के जीवन से, समाज के शासन से, सेना से, न्यायालयो से, समाज की शालाओ से।

मस्तिष्क की उपज

अव यह वात याद रखने की है कि समाज से सम्वन्धित सारी वाते मानव मस्तिष्क की उपज होती है। मानव मस्तिष्क अपने को इन वस्तुओ में प्रकट करता है या यो कहिये कि मस्तिष्क अपने को अपने से वाहर ये रूप देता है। इन वस्तुओ मे उस व्यक्ति के मस्तिष्क का प्रभाव भी होता है, जिसने इन्हे वनाया। उस जाति या नस्ल का प्रभाव भी होता है जिससे वनाने वाला सम्वन्धित था। उस समय और स्थान के वातावरण का प्रभाव भी होता है जिन मे उस ने ये वस्तुएँ वनाई थी। इन सव का प्रभाव कहिये जो इस चीज मे आ कर छिपा रहता है, सो जाता है। कोई नया मस्तिष्क वाला व्यक्ति जव उसे अपने अन्दर स्वीकार करता है तो ये छिपी हुई शक्तियाँ उभरती है। सोई हुई शक्तियाँ जागती है। सास्कृतिक वस्तुओ की इन सोई हुई शक्तियो के फिर से इन्सान के मस्तिष्क को जगाने से इस मस्तिष्क की शिक्षा होती है और किसी वस्तु से मस्तिष्क की दीक्षा उस सीमा तक समझनी चाहिये, जिस सीमा तक इस की सोई हुई शक्तियाँ स्वीकार करने वाले के मस्तिष्क मे जागी है। उदाहरणार्थ, अच्छे से अच्छे शेर को कोई रटे जाय, मस्तिष्क की कोई शिक्षा नही होगी अगर पढने वाले के मस्तिष्क मे पूरी तरह या कुछ

न कुछ वे दशाएँ उत्पन्न न हो, जो कहने वाले पर छाई हुई थी और जिन्हे उस ने अपने कलाम मे गोया लाकर सुलाया था। कोई व्यक्ति अगर दूसरो के धार्मिक जीवन का हाल उम्र भर पढता या सुनता रहे लेकिन उसके मस्तिष्क मे इस जिक्र से धर्म की सच्ची दशा न पैदा हो तो उम्र भर के सम्बन्ध के होते हुए, उस के मस्तिष्क को इन धार्मिक वातो से कोई शिक्षा न होगी और यही हाल तमाम दूसरी सास्कृतिक चीजो का है। शिक्षा के कार्यो से सम्बन्ध रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति को ज्ञात है कि हर मस्तिष्क की दीक्षा सस्कृति की हर एक वस्तु से नही होती। जिस प्रकार प्रत्येक शरीर को एक भोजन नही भाता, उससे कही अधिक हर मस्तिष्क को भी हर मानसिक भोजन नही पचता। वच्चा जिस समाज मे जन्म लेता है उस के सस्कार से पैतृक सम्बन्ध होने के कारण ही उस के मस्तिष्क मे कुछ सम्बन्ध स्थापित हो जाते है और इसी लिए स्वय अपने समाज की सास्कृतिक चीजो से उस के मस्तिष्क की अधिक उत्तम दीक्षा हो सकती है। दीक्षा पा जाने, उन्नति कर चुकने के वाद मस्तिष्क दूसरे समाज की वस्तुओ को भी अपना सकता और उनसे भी पूरा लाभ उठा सकता है, किन्तु प्रारम्भ मे अपने पैतृक सम्बन्धो के कारण एक रूप मे वडी सरलता और दूसरे मे वडी कठिनाइयाँ होती है, इस लिए प्रत्येक वो व्यक्ति जो शिक्षा के वास्तविक महत्व को समझता है इस वात पर विवश है कि एक वडी सीमा तक मस्तिष्क को दीक्षा के लिए स्वय इस समाज की सास्कृतिक वस्तुओ से काम ले जिन से विद्यार्थी का सम्बन्ध है। वर्ना इस के प्रयत्न के वेकार जाने का भय है।

पहला कर्त्तव्य

इस लिए वावजूद इस के कि स्वय हमारी कौम के वहुत से समझदार लोग अभी इस वात को सही नही मानते, हमे प्रसन्न होना चाहिए कि कौमी तालीम के कुछ विद्यालय तो देश में स्थापित हो चुके है। इन विद्यालयो का जिनमें आपकी विद्यापीठ का वडा महत्त्व है, कर्त्तव्य यही नही कि वे विद्यार्थियो की शिक्षा का प्रवन्ध कर दे, जो इनके यहा आते है या कुछ साधारण जानकारी की और कुछ मुख्य खोज की पुस्तके छाप दे, इन विद्यालयो का आवश्यक कर्त्तव्य है कि कौमी तालीम का पूरा-पूरा प्रवन्ध करे। मै जानता हूँ कि यह प्रवन्ध अभी वहुत कुछ कल्पनात्मक होगा और उनको जारी करने का इस समय अवसर नही है, किन्तु जारी करने के अवसर कह कर नही आते। फिर जब आते है तो ऐसी दशाओ मे आते है कि सोचने—समझने का वहुत समय नही होता, और समय पर जो वन पडता है कर लिया जाता है और इस मे अक्सर वडी त्रुटिया हो जाती है, जिनकी हानि शताब्दियो तक जारी रहती हे। इस कर्त्तव्य को अभी से पूरा करने की आवश्यकता इस कारण से और भी है कि हमारे देश मे राजनीति ही नही, शैक्षणिक सस्थाओ ने भी कौमी तालीम की समस्या पर वहुत कम ध्यान दिया है। इसके सम्बन्ध मे कुछ कहा हे तो वस यही कि वर्तमान प्रवन्ध वहुत वुरा है और उसमे जो सुधार प्रस्तुत किए है वो अक्सर वहुत एकागी है। इसलिए हमारी शिक्षा के प्रवन्ध मे वस इतने परिवर्तन से काम नही चलेगा कि इसमे देशी भाषा के लिए अच्छा स्थान निकल आए और इतिहास की पुस्तके वदल दी जाय। हमारी कौमी तालीम की समस्या वहुत पेचीदा है। उदाहरणार्थ हमारे देश मे तरह-तरह के लोग वसते है जिनकी वोलिया अलग-अलग है। रहने-सहने के ढंग भिन्न है। आदतें और रस्मे अलग-अलग है। धर्म अलग-अलग है। कौमी तालीम का प्रवन्ध करने वालो को सोचना होगा कि वो प्रवन्ध की समानता के लिए और एक कौम पैदा करने के उत्साह मे इन भिन्नताओ

पर बिल्कुल ध्यान न दे या प्रत्येक प्रदेश और प्रत्येक दल को, जिसकी संस्कृति इतनी है कि अपने व्यक्ति को मानसिक शिक्षा का साधन बन सके, इस बात का अवसर दिया जाय कि वह अपनी सांस्कृतिक वस्तुओ से शिक्षा ले और अपनी शिक्षा से अपनी सस्कृति की उन्नति के कारण निकाले। अगर आपके करीब शिक्षा का वह दृष्टिकोण ठीक है जिसका जिक्र मैने अभी किया है तो लगभग अपने शहरियों के इन विभिन्न दलो को अपनी-अपनी सस्कृति से शिक्षा को काम लेने का अवसर देना—राजनीतिक बुद्धिमानी की माग ही नही समझी जायगी, बल्कि स्वय सही शिक्षा के लिए ठीक माना जायगा। उदाहरणार्थ आप हिन्दी मुसलमानो की शिक्षा की समस्या को ही ले लीजिए, क्या भारत की कौमी शिक्षा का प्रबन्ध इन मुसलमानो को इस बात का अवसर देगा या नही कि वे अपने सास्कृतिक जीवन को अपनी शिक्षा का माध्यम बनाएं? आप जानते है कि ये कौमी समस्या हमारी जिन्दगी के लिए कितनी कठिन है। सम्भव है कि कुछ नेकनीयत, अत्यधिक कौम परस्त सम्पूर्ण भारतीय जातीयता का ऐसा चित्र अपने मस्तिष्क मे रखते हो कि जिसमे मुसलमानो को ये अधिकार देना कौम की शक्ति और कौम के लिए हानिकारक हो। किन्तु हमारे शिक्षा शास्त्री अगर नेकनीयती से भारत की शिक्षा विधि बनाये तो मुझे यकीन है कि वे मुसलमानो की इस इच्छा को प्रसन्नता से स्वीकार लेगे कि वो अपनी शिक्षा की नीव अपनी सस्कृति पर रखे जो कि सही शिक्षा और सही राजनीति दोनो की माग है। आप मुझे क्षमा करे अगर इस सम्मानित उपस्थिति के समक्ष मै सचाई से ये बात प्रस्तुत करूँ कि मुसलमानो को जो वस्तु पूरी हिन्दुस्तानी कौमियत से बार-बार अलग खीचती है उसमें जहां तक व्यक्तिगत स्वार्थ, सूक्ष्म दृष्टि और देश के भविष्य की सही कल्पना न करने के कारण है, वहा इस गहरे सन्देह का भी बड़ा भाग है कि कौमी शासन के आधीन मुसलमानो के सास्कृतिक जीवन के सर्वनाश होने का भय है। और मुसलमान किसी हाल मे ये मूल्य देने को तैयार नही और मै, बहैसियत मुसलमान ही नही, सच्चे हिन्दुस्तानी की हैसियत से भी, इस पर प्रसन्न हूँ कि मुसलमान इस मूल्य को अदा करने के लिए तैयार नही। इसलिए कि इससे मुसलमानो की हानि होगी सो होगी ही, स्वय हिन्दुस्तान की सस्कृति भी कहाँ से कहाँ पहुँच जायगी। यही कारण है कि सच्चे मुसलमान हिन्दुस्तानी अपनी धार्मिक परम्पराओ, अपने इतिहास, अपनी सास्कृतिक सेवाओ और अपनी सस्कृति से आशाओ के कारण अपने धार्मिक सगठनो को स्वय अपने लिए ही मूल्यवान नही समझते बल्कि हिन्दुस्तानी कौमियत के लिए बहुत अधिक मूल्यवान समझते है और इनके मिटाये जाने पर, कमजोर किये जाने को अपने ही साथ अत्याचार नही बलिक हिन्दुस्तानी कौम के साथ भी बडा धोखा समझते है। हिन्दुस्तानी मुसलमानो को अपना देश किसी अन्य से कम प्यारा नही। वे हिन्दुस्तानी कौम का अ ग होने गर्व पर करते है, मगर वे ऐसा अंग बनना कभी स्वीकार न करेंगे जिसमे उनकी अपनी हैसियत बिलकुल मिट चुकी हो। उनका उत्साह है कि अच्छे मुसलमान हो और अच्छे हिन्दी और न कोई मुसलमान इन्हे हिन्दी होने पर लजाये और न कोई हिन्दी इन के मुसलमान होने पर उँगली उठाये। हिन्दुस्तान मे इनका धर्म देश से सम्बन्ध न रखने का बहाना नही बल्कि सेवाओ का उत्तरदायित्व इन पर डाले, इनके लिये दोष न हो बल्कि सम्मान हो। इस विचार का फल यह होगा कि सब मुसलमान राजनीतिक क्षेत्र मे दूसरे तमाम हिन्दी लोगो के साथ होगे। अलग और मिले हुए चुनावो के झगडे भुलाये जा चुके होगे और लगभग कर्मचारियो की नीतियो मे भी मुसलमान एक स्वाभिमानी दल की तरह बजाय रक्षा के, मुकाबले पर आने के लिए आग्रह करते होगे। इस समय भी वे अवश्य चाहेगे कि उनकी शिक्षा के प्रबन्ध में उनकी सास्कृतिक वस्तुओ का पूरा-पूरा

समन्वय हो। मुझे यकीन है कि भविष्य का बुद्धिमान भारतीय शासन उनकी इस भाग की पूर्ति कर के मुसलमानो की उन्नति और इस से स्वय अपनी शक्ति का सामान तैयार करेगा।

कमजोरी का कारण

बात जरा दूर जा पडी। मै निवेदन यह कर रहा था कि हमारे दक्ष शिक्षा शास्त्रियो को देश के धार्मिक और भौगोलिक दलो के अलग-अलग या बिल्कुल एक से प्रवन्ध के सम्बन्ध मे ध्यान देना चाहिये। परन्तु अगर उनका निश्चय यही है जिसकी ओर मैने सकेत किया है तो एक और कठिन प्रश्न का हल इन्हे सोचना पडेगा—यानी इस प्रकार वर्गो को सास्कृतिक स्वतन्त्रता दे कर के एक कौम और इसकी रियासत को कमजोर नही होने देगे, इसलिए कि अगर वर्गो की इस स्वतन्त्रता के साथ, कुल के साथ, प्रेम का बहुत ही मजबूत सम्बन्ध स्थापित नही हुआ तो नि सन्देह ये स्वतन्त्रता कुल कौम के लिए कमजोरी और कुछ दशाओ मे मृत्यु का कारण हो सकती है। इसलिए हमारी कौमी शिक्षा के प्रवन्ध को मुख्य विचार यह प्रस्तुत करना होगा कि जिस तरह व्यक्ति के भीतर मुख्य पालन-पोषण और व्यक्तित्व की पूर्ति का यही रास्ता है कि वे अपने समाज की सस्कृति से अपना पालन-पोषण करे और इसकी सेवा को अपनी उन्नति का साधन जाने, इसी प्रकार हमारे बडे हिन्दुस्तानी समाज मे जो वर्ग और छोटे-छोटे समाज है, इनमे भी यह निश्चय बहुत हो पक्का हो जाना चाहिये कि किसी भी वर्ग की स्थिति मे वे उस समय पूरी उन्नति कर सकते है जबकि बडे समाज का अपने को सेवक जाने। इसकी भलाई मे अपनी भलाई, और इसकी बुराई मे अपनी बुराई देखे। इस निश्चय का पैदा करना, अगर राजनीतिक प्रवन्ध की अच्छाइयो पर आधारित है तो शिक्षा के प्रवन्ध पर भी बहुत अधिक आश्रित है।

यही क्या, ऐसे अनगिनत और भी प्रश्न है, जिन पर हिन्दुस्तान के सबसे अच्छे मस्तिष्कों के ध्यान देने की आवश्यकता है। उदाहरणार्थ अगर हमारा शिक्षा प्रवन्ध हमारे हाथ मे हो तो उस समय भी क्या पाठशालाएँ केवल पुस्तके पढा देने के लिए स्थापित होगी और उनका उद्देश्य भी स्वस्थ, अच्छे सच्चे आदमी पैदा करने के स्थान पर चलते-फिरते पुस्तकालय पैदा करना होगा? क्या इस समय भी बच्चो की मूल प्रवृतियो का ध्यान रखे बिना सब को एक ही लकडी से हाँका जा सकेगा और उस प्रकार कौम की मानसिक शक्ति को, जो कि इसकी सबसे मूल्यवान पूँजी है, बर्बाद कर दिया जायगा? या भिन्न-भिन्न प्रवृत्ति वालो के लिए, भिन्न-भिन्न प्रकार की पाठशालाएँ होगी, जिनमे प्राथमिक शिक्षा के पश्चात् बच्चे भेजे जा सकेगे और अपने विशेष मस्तिष्क के रुझान के अनुसार शिक्षा पायेगे? क्या उस समय भी हमारी पाठशाला और कौम के जीवन मे इतना ही कम सम्बन्ध होगा जैसा कि इस समय है या बचपन ही मे ऐसे अवसर भी मिला करेगे जिससे प्रत्येक हिन्दुस्तानी के दिल मे यह बात बैठ जाए कि कौन सी सेवा करके वह अपनी उन्नति का रास्ता निकाल सकता है? क्या उस समय भी हमारी पाठशालाएँ स्वार्थ और आपनी मुकाबिले ही के प्रायोगिक पाठ दिया करेगी और दूसरो की सेवा या सहायता के अवसर उन मे न पैदा होगे? क्या उस समय भी पाठशालाओ को बस इससे मतलब होगा कि विद्या सिखा दी लेकिन विद्या के प्रयोग और चाल-चलन पर प्रभाव डालने का कोई सामान न होगा? क्या उस समय भी हमारा पाठ्यक्रम ऐसा ही चूँ-चूँ का मुरब्बा होगा, जैसा कि अब है? यानी क्या उस समय भी प्रत्येक वस्तु का विषय बना कर और पाठ्यपुस्तक मे सम्मिलित करके बच्चे के लिए

कठिनाई और उसकी शिक्षा के लिए प्रभाव रहित होने का सामान किया जायगा या एक या थोड़ी सी बातो मे अच्छी दक्षता पैदा करके ऐसी योग्यता उत्पन्न करदी जायगी जिससे वो दूसरी वस्तुओ को आवश्यकता के समय स्वयं प्राप्त कर सके ? क्या उस समय भी पेशे और सार्वजनिक शिक्षा को बिल्कुल अलग-अलग रखा जायगा या पेशे की ऐसी शिक्षा का प्रबन्ध हो सकेगा कि वही सार्वजनिक शिक्षा की मजबूत नीव साबित हो ? गरज यह है कि इन जैसी अनगिनत समस्याएँ है, जिनका जिक्र करके मै आपका समय नष्ट नही करना चाहता। इतना भी सिर्फ इसलिए जिक्र किया कि यहा एक बड़ी कौमी विद्यापीठ के कार्यकर्ता उपस्थित है। इन्हे इस ओर आकर्षित करने से शायद इस बात का अवसर निकल सके कि हमारे शिक्षा क्षेत्र मे कार्य करने वाले इन समस्याओ पर विचार करें और अपनी खोज के फलो को कौमी शिक्षा के किसी विद्यालय की ओर से छाप सके, ताकि होते-होते सब के सोच-विचार से कौमी तामील का एक शुद्ध कार्यक्रम तैयार हो जाय और अगर सारी व्यवस्था को प्रतिकूल वातावरण के कारण जारी न किया जा सके तो कम से कम प्रारम्भिक शिक्षा की समस्या को निश्चित करने के पश्चात् पाठशालाएँ स्थापित की जाएँ और कम से कम शिक्षा की इस बुनियादी मन्जिल को म्यूनिसिपल और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के ही द्वारा ठीक करने का उपाय किया जाय। कुलपति जी! मैने आपके निमत्रण और इस उत्सव से लाभ उठा कर कुछ शिक्षा सम्बन्धी समस्याओ का जिक्र कर दिया कि शायद इससे खोज का द्वार खुले। जिसकी मैने प्रार्थना की है। लेकिन मुझे निश्चय नही कि मैने यह ठीक भी किया या नही। इस समय तो मुझ से आशा होगी कि मै इन नवयुवको से कुछ कहूँ जो आपकी विद्यापीठ से शिक्षा समाप्त करके जा रहे है। अब आपकी आज्ञा से इन विद्यार्थियो से कुछ कहना चाहता हूँ। अजीजो! तुम शिक्षा के इस नगर काशी से यहा की इस प्रसिद्ध विद्यापीठ मे अच्छे-अच्छे और योग्य-अध्यापको से शिक्षा पाकर अब दुनिया मे कदम रखते हो। मुझे मालूम नही कि इस दुनियाँ में जो विद्यापीठ से बहुत ज्यादा सख्त और बे रहम जगह है, तुम क्या करना चाहते हो ? हो सकता है कि व्यापार या नौकरी से बहुत सा धन-दौलत कमाओ और चैन से अपने और अपने खान्दान की जिन्दगी गुजारने का सामान करो। अगर ऐसा है तो खुदा तुम्हारे इरादो में बरकत दे, मगर मुझे तुम से फिर कुछ बहुत कहना नही है—तुम अपनी कामयाबी के लिए खुद राहे तलाश कर लोगे। अगर ठीक रास्ते पर पडे तो ज्यादातर अपना फायदा करोगे। अगर गलत पर पडे तो सजा भुगतोगे। मगर दूसरो का कुछ बहुत नुकसान न होगा। लेकिन चाहे तुम धन-दौलत की फिक्र ही मे लग जाओ, कम से कम काशी विद्यापीठ के स्नातक हो कर तुम कभी अपनी कौम की राह मे रोक न बनना। अपनी कामयाबी के लिए बहुत से लोग कौम का नुकसान करने से भी नही चूकते। तुम इसका ध्यान रखना कि कामयाबी के लिए यह जरूरी नही है कि अपने कर्त्तव्यो को छोड कर अपनी सारी अच्छी इच्छाओ को पैरो तले रौद कर इस तक पहुँचा जाय। जो अपने उद्देश्य के लिए इतना अन्धा हो जाय कि अपने देश और अपनी कौम को हानि पहुँचाने से भी न चूके, वो आदमी नही जानवर है और अगर काशी विद्यापीठ मे पढे हुए होने के कारण तुम अपनी जिन्दगी देश की सेवा मे लगाना चाहते हो तो मुझे तुम से बहुत कुछ कहना है।

कसौटी

तुम जिस देश में यहा से निकल कर जा रहे हो वो बडा अभागा देश है। वो गुलामो का देश है, जाहिलों का देश है, बेइन्साफियो का देश है, बेरहमियो का देश है, जालिमाना रस्मो का देश

देश है, गाफिल पुजारियो का देश है, भाई-भाई मे नफरत का देश है। भूख और मुसीबत का देश है। गरज वडा कम्वख्त देश है। लेकिन क्या कीजिए। तुम्हारा और हमारा देश है। इसी मे जीना और इसी मे मरना है। इसलिए ये मुल्क तुम्हारी हिम्मतो के इम्तिहान, तुम्हारी दक्षता के इस्तेमाल और तुम्हारी मुहव्वत की आजमाइश की जगह है।

मुमकिन है कि अपने चारो तरफ इतनी बरवादी, इतनी मुसीवत, इतना अत्याचार देख कर तुम वेसब्री मे ये चाहो, जैसे वहुत से नौजवान चाहने लगे है कि इसमे वसने वाले समाज को ही खत्म कर दो और वर्वाद कर डालो, इसलिए कि इसमे सुधार की कोई सूरत नही। तुम्हे अख्तियार है, मगर अपने एक भाई की राय सुन लेने मे क्या नुकसान है, सो मेरा खयाल ये है कि वर्वादी से हमारा काम कुछ सहज नही होगा। तवाही और वर्वादी तो पहले ही से काफी मौजूद है। कौमी जिन्दगी का कौन सा भाग है जिसमे पहले से तवाही का दौर-दौरा न हो? लेकिन हमारी वेशुमार वीमारियो और अनगिनत कठिनाइयो मे से ऐसी वहुत कम है कि हम एकाएक गर्मा कर थोडी सी देर मे उन्हे खत्म कर डाले। मैं समझता हूँ कि हमे विगाडना इतना नही है जितना कि वनाना है। हमारे देश को हमारी गर्दनो से उवलते खून की धारा की जरूरत नही है वल्कि हमारे माथे के पसीने का वारहमासी वनने वाला दरिया दरकार है। जरूरत है काम की। खामोश और सच्चे काम की। हमारा भविष्य किसान की टूटी झोपडी, कारीगर की धुएँ से काली छत और देहाती पाठशालो के फूस के छप्पर तले वन और विगड सकता है। राजनैतिक झोपडी, काफ्रेंस और काग्रेसियो मे कल और परसो के किस्सो का फैसला हो सकता है। लेकिन जिन जगहो का नाम मैने लिया इनमे सदियो तक के लिए हमारे भाग्य का फैसला होगा और इन जगहो का काम सब्र चाहता है और दृढता। इसमे थकन भी ज्यादा और कद्र भी कम होती है। जल्दी नतीजा भी नही निकलता है। कोई देर तक सब्र कर सके तो जरूर फल मीठा मिलता है।

वेसब्री घातक

अजीजो! इस नए हिन्दुस्तान के वनाने के काम मे तुम से जहा तक वन पडे, हाथ वँटाना मगर याद रहे कि अगर मिजाज मे वेसब्री है तो तुम इस काम को अच्छी तरह नही कर सकते। यह वडा देर तलव काम है। अगर तवियत मे जल्दवाजी है तो भी तुम काम विगाड दोगे। ये वडा पत्ता मारने का काम है। अगर जोश मे वहुत सा काम करने की आदत है और इसके वाद ढीले पड जाते हो तो भी शायद ये कठिन काम तुमसे न वन पडेगा। इसलिए कि इसमे अरसे तक एक सी मेहनत और लगन की आवश्यकता है। अगर असफलता से निराश हो जाते हो तो इस काम को न छूना। इनमे असफलताएँ आवश्यक है। वहुत असफलताएँ और वार वार असफलताएँ। ये काम वही कर सकता है जिसे हर असफलता और ज्यादा मेहनत करने पर उभारती है। इस देश की सेवा मे पग-पग पर स्वयं देश के लोग तुम्हारा विरोध करेंगे, वो लोग विरोध करेंगे जिन्हे हर परिवर्तन से हानि होती है, वो जो इस समय चैन से है और डरते है कि शायद दशायें वदले तो वो इस तरह दूसरो की मेहनत के फलो से अपनी झोलिया न भर पायेंगे। लेकिन याद रखो कि ये सब थक जाने वाले है। इन सब का दम टूट जायगा। तुम ताजा दम हो, जवान हो, तुम्हारे दिल मे अगर सन्देह हो और भरोसा न हो तो

इस कार्य में बडी कठिनाइया सामने आयेगी। इसलिए शुरू से शक्ति पैदा करो। गदे हाथ और मैले दिल लेकर भी तुम इसको अन्जाम तक न पहुँचा सकोगे। ये पवित्र काम है। घृणा व बदगुमानी भी इसके काम में कुछ अच्छे साथी साबित न होगे। तुम्हारी जातीयता की इमारत की बुनियादे मुहब्बत और भरोसे की चट्टानो पर बन सकेगी। सक्षेप यह है कि तुम्हारे सामने तो अपने जौहर दिखाने का अजीबो-गरीब मौका है। मगर इस मौके से काम लेने के लिए बडी कडी मेहनत की आवश्यकता है। जैसे कारीगर होगे वैसी ही इमारत होगी और काम क्योकि बडा है, एक या थोडे से आदमियो के कुछ दिनो के परिश्रम से पूरा न होगा। दूसरो से सहायता लेनी होगी और दूसरो की सहायता करनी होगी। तुम्हारे वश के सारे हिन्दी नवयुवक अगर अपना सारा जीवन इसी एक धुन मे लगा दे तब शायद ये नाव पार लगे। देखना यह है कि तुम सहायता करने और सहायता लेने योग्य होगे या नही और दूसरे सहायता देने के लिए तैयार होगे या नही। जब जात-पात, धर्म, भाषणो के अन्तर से हमारा देश टुकडे-टुकडे नजर आता है, जिस देश मे स्टेशनो पर मुसलमान पानी और हिन्दू दूध मिलता है उस देश मे विभिन्न प्रकार के वश मिलते है, जहा बिल्कुल भिन्न प्रकार की सस्कृतिया साथ-साथ जारी है, जहा एक का सत्य दूसरे का झूठ है, जहा मूर्ति पूजने वाले और मूर्ति तोडने वाले को प्रकृति ने साथ-साथ दु ख-सुख के लिए साथ जीने और साथ मरने के लिए एक स्थान पर कर रखा है, इस देश मे नवयुवको से ऐसे मिलकर काम करने की आशा जरा कठिन है। मगर दिल यही गवाही देता है कि थोड़े दिन और धक्के खाने के बाद इस देश के नवयुवक देश की सेवा के लिए एक दिल हो जायेंगे। इसलिए मेरा पूरा-पूरा विश्वास है कि हिन्दुस्तान के भाग्य मे प्रकृति ने ये बात रखी है कि यहाँ बिल्कुल विभिन्न प्रकार के इन्सानो के नमूने एक दूसरे से मिलकर एक ऐसा इन्सान तैयार करे जो सभ्यता और सस्कृति का एक नया रूप हो। प्रकृति के इस अनुभव और इसके उद्देश्य मे उसकी सहायता करना तुम्हारा काम है, और इस सहायता के लिए अपने आपको अच्छा आदमी बनाना और अपने दिल को कपट से खाली करना आवश्यक है। बलिदानो के लिए तैयार रहने की आवश्यकता है। अपने सकल्प को दृढ करने और वासनाओ पर सयम रखने की आवश्यकता है। अगर तुम मे और तुम्हारे साथी नव-युवको मे ये गुण न हुए और आज ही तुम्हे किसी महात्मा की कृपा से राजनीतिक और सास्कृतिक जीवन के अच्छे-अच्छे उपदेश बैठे–बिठाये मफ्त मे प्रकृति की ओर से भेट मे मिल गये तो भी याद रखो कि ये भेट बेकार होगी। ये पाठ सब के सब ऊँचे होते हुए उस स्तर पर पहुँच जॉयगे, जिस पर तुम्हारी चारित्रिक शक्ति होगी और उनका रूप ऐसा बिगड जायगा कि कठिनाई से उन्हे कोई पहचान सकेगा। कौम अपने उद्देश्यो और अपने पद को उस श्रेणी पर स्थिर रख सकती है जिस पर कि स्वय अपने बाहुबल से पहुँचने योग्य हो। इसलिए हिन्दुस्तान की बडाई तुम्हारी अच्छाइयो पर निर्भर है। अपनी जाति की तमाम शक्तियो की उन्नति कर के एक ऐसा सुसस्कृत व्यक्तित्व बनाओ जिसे भारत माता के सामने प्रस्तुत करने जाओ तो तुम्हे स्वय लज्जा न आये और वो प्रसन्न होकर उसे स्वीकार कर ले। सेवा के इस मार्ग मे जिसका वर्णन कर रहा हूँ, प्रकट है कि बडी कठिनाइयाँ है इसीलिए ऐसे समय भी आयेगे कि तुम थक कर अत्यधिक निराश हो जाओगें, बेदम से हो जाओगे और तुम्हारे दिल मे ये सन्देह भी उत्पन्न होने लगेगा कि ये जो कुछ किया कही बेकार तो न था। इस समय भौतिक और आध्यात्मिक ढग पर स्वतन्त्र भारत माता के इस चित्र की ओर ध्यान लगाना जो तुम्हारे दिल मे सदा रहना चाहिये। अर्थात् इस देश

े चित्र पर जिसमे सत्य का शासन होगा, जिसमे सबके साथ न्याय होगा, जहाँ धनी और निर्धन का अन्तर न होगा बल्कि सबको अपने-अपने व्यक्तित्व के विकास का अवसर मिलेगा, जिसमे लोग एक दूसरे पर भरोसा करेगे और एक दूसरे की सहायता, जिसमे धर्म का प्रयोग इस कार्य मे न होगा कि झूठी बाते मनवाए और स्वार्थियो की आड बने, बल्कि जीवन को सुधारने और उसको सार्थक बनाने का साधन होगा। इस चित्र पर दृष्टि डालोगे तो तुम्हारी थकान दूर हो जायेगी और तुम नये सिरे से अपने काम पर लग जाओगे फिर। भी अगर चारो ओर नीचता और स्वार्थपरता, मक्कारी और बहानेबाजी, दासता और दासता पर स्वीकृति पाओ तो समझना काम अभी समाप्त नही हुआ है। मोरचा जीता नही गया है। अभी युद्ध जारी रखना है और जब भी समय आये बस को आना है, और इस मैदान को छोडना पडे तो ये शान्ति तुम्हारे लिए बहुत होगी कि तुमने अपनी शक्ति भर उस समाज को स्वतन्त्र करने और अच्छा बनाने का प्रयत्न किया जिसने तुम्हे आदमी बनाया था। तुम चले जाओगे, दूसरे तुम्हारे कार्य को जारी रखेगे, इस लिए ये कार्य कभी समाप्त होने वाला कार्य नही। समाज की स्वतन्त्रता और समाज का स्वास्थ्य ऐसी वस्तुए नही, जो बस एक बार मे प्राप्त कर ली जाएँ। ये ऐसे समाज को मिलती है और ऐसे के पास रहती है जिसके सपूत इन्हे प्रतिदिन नये सिरे से प्राप्त कर सके।

बस अब विदा! तुम्हे तुम्हारी शिक्षा का प्रमाण पत्र मुबारक, तुम से बहुत सी आशाएँ हे। ईश्वर करे कि निराश न करो!

असली शिक्षा

असली शिक्षा आदमी के अपने ही हाथो होती है। दूसरा घोड़े को पानी तक ले जा सकता है, पानी पीना तो उसे आप ही पडता हैं। मेरी प्रार्थना शिक्षको स्नातको सभी से यही हे कि इसे अपना काम बनाइये, ऐसा कार्य जिसने मन का विकास हो।

—डा० जाकिर हुसैन

बच्चों की शिक्षा

[१० मार्च, १९३४ को डा० जाकिर हुसैन की ऑल इण्डिया रेडियो से प्रसारित वार्ता]

हमारी रगारग दुनिया मे ऐसी चीजो की क्या कमी है जिन्हे देख कर आदमी आश्चर्य से उंगली दाँतो तले दबा ले। परन्तु आदमी के बच्चे से अधिक आश्चर्य में डालने वाली शायद और कोई वस्तु नही। किसी और जानदार का बच्चा इतना बेबस नही होता न इतने समय तक अपने माता-पिता और बड़ों का मुँह ताकता है। कोई अन्य बच्चा अपनी सारी शक्तियो को पूर्ण उन्नत करने मे इतनी देर नही लगाता। प्रथम तो इसकी लाचारी और सुस्त गति पर हँसी आती है। पर जरा सोचिये तो विचार होता है कि यह ससार के अधिकारी और सम्राट इन्सान का बच्चा है। शायद प्रकृति चाहती है कि बड़े होते-होते सम्राट के कार्य के योग्य हो जाये इस लिए इसकी शिक्षा का पाठ्यक्रम इतना लम्बा रखा गया है। इसके शरीर की उन्नति तक में ऐसा ज्ञात होता है कि प्रकृति ने विशेष प्रबन्ध किया है कि काम खूब पक्का हो, कही जल्दबाजी में खराब न हो जाये।

प्रथम वर्ष बच्चा बडी तेजी से बढता है, परन्तु दो वर्ष से पाच वर्ष की आयु तक प्रकृति गति को सुस्त कर देती है। पहले साल के खिचाव के पश्चात् ये भराव उस समय होता है। पाच से सात साल तक बच्चा फिर तेजी से बढता है। ये खिचाव का दूसरा समय है जिसके पश्चात् सात से बारह वर्ष तक फिर भराव के लिए होते है। इसके पश्चात् एक बार फिर खिचाव होता है और इसी से सम्बन्धित एक भराव का दौर और आता है जो इसे उत्साह और उमग वाला नवयुवक बना देता है। सक्षेप मे प्रकृति अपना कार्य खूब ठोक बजा कर करती है, इसलिए कि यही तो इसके खजानो का मालिक है और यही इसकी दुनिया का सरदार। गरीब प्रकृति

बहुत कुछ कर देती है मगर सब कुछ तो नही कर सकती । इस नन्ही सी जान को दुनिया मे—खुदा के मनशा तक पहुँचाने मे इसके मा-बाप रिश्तेदार और सारी इर्दगिर्द की इन्सानी दुनिया को भी बहुत कुछ करना होता है और प्राय इसी भाग मे कसर हो जाती है और आदमी के सुपुर्द अपने बच्चो की शिक्षा और देखभाल का जो काम है इसमे वह ऐसी-ऐसी मूर्खताएँ कर गुजरता है कि अक्सर प्रकृति की इच्छा पूरी नही हो पाती और इच्छा पूरी होनी दूर रही हमारे देश मे तो लाखो बच्चो को तो जन्म के साल भर के अन्दर-अन्दर ही इस ससार ही से विदा होना पडता है और लाखो को पाँच वर्ष तक पहुँचने से पहले-पहले ही । जो बच रहते है वो पिता की बुद्धिमानी, या अम्मा के लाड प्यार का अभ्यास-पट बनते है । मस्तिष्क मे तरह-तरह की ग्रन्थियाँ डाल दी जाती है जो उम्र भर उलझने नही सुलझती । उस मे भी कोई बच निकले तो पाठशालाओ मे एक से एक बढकर अध्यापक पडा हुआ है, वो इन्हे मनुष्य बनाने के प्रयास मे पशु से बदतर दर्जे पर पहुँचा देता है और जब ये ससार मे ईश्वर से विरोध कर कारोबार सभालने निकलते है तो तन ठीक होता है और न मन, न उत्साह, न उमग, न जोश, न निश्चय, भयभीत सहमे-सहमे, हर चीज से भय, हर चीज पर सन्देह, न किसी से लगाव, न किसी पर भरोसा, न काम का शौक, न तफरीह का सलीका । कुछ करते भी है तो गुलामो की तरह, सजा के डर से या इनाम के लालच से । न अपने आसपास की वास्तविकता की जानकारी, न इन मे मिलने की योग्यता, ख़याली पुलाव पकाते है और हवाई मसूबे गाँठते है जिन्हे पग-पग पर जिन्दगी की कठिन वास्तविकता टुकडे-टुकडे कर देती है । ये जिन्दगी को बेकार जानने लगते है और जिन्दगी इन से बेजार रहती है । दुनिया इनके लिए कारागृह और ये दुनियाँ के लिए अभिशाप !

इस बदहाली को और बडो के हस्तक्षेप से छोटो की जिन्दगी कडवी और बेअसर होते देख-कर कुछ नेक दिल लोग ही ये तक कहने लगे है कि बच्चो की शिक्षा के लिए कुछ करना ही न चाहिये, इन्हे अपने हाल पर छोड दो तो कुछ न कुछ हो कर रहेगे । इस खयाल मे कुछ तो मा-बाप और अध्यापको की लापरवाही और त्रुटियो पर उचित क्रोध की मिलावट है मगर साथ ही स्वतन्त्रता के दर्शन की दृष्टि को चकाचौंध करने वाली चमक का भी थोडा बहुत मेल है, जिसकी तेज रोशनी कभी-कभी अँधेरे मे रहने वालो की रही सही दृष्टि को भी समाप्त कर डालती है और ये बेचारे बेसमझे शब्दो के गोरखधन्धे मे फँस कर न इधर के रहते है न उधर के । बच्चो पर तरह-तरह की रुकावटो के बुरे-पन को देख कर बहुत से अच्छे समझदार लोगो ने इन रुकावटो को कम करने की ओर ध्यान आकर्षित किया है जो अपने स्थान पर उचित बात है, परन्तु इससे हमारे यहा के खयालो के उचक्के न जाने क्या समझ लेते है और लगते है कहने कि बच्चो को उन के हाल पर छोड दो । इसलिए निवेदन यह है कि हा छोड सके तो अवश्य छोड दीजिए मगर आप को नही एक तन्दुरुस्त बच्चे को जो सारी शक्तिया ले कर दुनिया मे आया हो । यही कोई बीस बाइस हजार साल की उम्र पाते-पाते सभ्यता की उस श्रेणी पर पहुँच जायेगा जिस पर कुशलता से आप है कि अपनी वर्तमान स्थिति पर पहुँचने के लिए कहते है कि इन्सानियत को कमबख्त इतना समय लगा है ।

इस लम्बे समय पर मुझे एक किस्सा याद आया । कहिये तो सुना दूँ ? मगर हाँ, आप इस समय तो मुझ से पर्श नही सकते, सिर्फ सुन सकते है । खैर सुनिये । आप जानते है कि अमेरिका के लोग दुनिया के सारे नए धनवानो की तरह हर चीज की कीमत बहुत पूछा करते है ।

एक अमेरिकन करोड़पति एक बार ऑक्सफोर्ड पहुँचे। कहते है कि ऑक्सफोर्ड के हरे लॉन बहुत ही अच्छे है। अमेरिकन करोड़पति साहब इन पर रीझ गये थे। फौरन जैसे किसी ने बटन दबा दिया हो, ये सवाल मुँह से निकला—'ऐसे लॉन कितने मे तैयार हो जायेगे ?" साथ जो प्रोफेसर साहब थे उन्होने कहा कि "मै तो इल्मुलइन्सान के विभाग का अध्यक्ष हूँ। इसके बारे में बिलकुल अजान हूँ। आप कहे तो माली को बुला दूँ, आप उससे दरियाफ्त फरमाले।" "बुलाइये" माली आया। करोड़पति साहब ने कहा, 'हम बिलकुल ऐसा ही लॉन अपने यहा चाहते है, कितने में तैयार हो जायगा ?" माली ने कहा, "साहब. इसमे कितने का क्या सवाल है ? कौडियो मे तैयार होता है, कौडियो मे ! जमीन तो आपके पास होगी ही, जरा अच्छी तरह बराबर कर लीजियेगा, उस पर घास जमा लीजियेगा। जब घास जरा बढ़ जाय तो उसे काट कर ऊपर से रोलर फेर दीजियेगा और बस यही कोई समझिये, पांच बरस करते रहियेगा, बस ऐसा लॉन तैयार हो जायगा।" हा तो अगर इसी तरह बच्चों को बिलकुल आजाद छोड कर कोई साहब ठीक से शिक्षा करना चाहे तो इन बच्चो को कोई बीस हजार साल तक जिन्दा रखने का उपाय करले। हालात अनुकूल हुए और ईश्वर ने चाहा तो इस उम्र को पहुँचते पहुँचते इच्छानुसार फल निकल आयेगा। इस समय तक तो हमारा विचार यही है कि बच्चो को मदद की आवश्यकता है। उपदेशो की आवश्यकता है। सहानुभूति और परिश्रम की आवश्यकता है। समझने और समझाने की आवश्यकता है। इसमे सन्देह नही कि कार्य कठिन है पर केवल सहज काम ही तो करने के नही होते। पिछले दिनो बच्चे के शारीरिक लालन-पालन, उस की मस्तिष्क की उन्नति और प्रवृत्ति के सम्बन्ध में बहुत कुछ छानबीन हुई है, मगर माता-पिता, अध्यापक अपने काम के महत्व को समझे और सोचे कि इन्सान के थोडे से ध्यान से दुनिया मे कितना दु ख कम हो सकता है और कितनी खुशी बढ सकती है, तो वे अवश्य इस खोज का लाभ उठा कर अपना काम समझ-बूझ कर करेगे।

इस समय इस खोज के वर्णन का अवसर नही है। दिल्ली ब्राडकास्टिग स्टेशन से आप इस विषय पर कुछ न कुछ सुनते ही रहते है। विभिन्न आयु के बच्चो के स्वास्थ्य के लिए क्या उपाय करने चाहिए, इनके लिए भोजन कौन से उचित है, इनमे सोने-जगने, खाने-पीने, पेशाब-पाखाने के समय की पाबन्दी की आदते किस तरह डालनी चाहिएँ। ये बाते शायद आप इससे पहले सुन चुके है। मै तो इस समय केवल उन्ही गुत्थियो का जिक्र करता हूँ जो प्राय माता-पिता और सरक्षक बेजाने अपने बच्चो के मस्तिष्क मे डाल देते है और इन मे भी बस कुछ मोटी-मोटी बातो का। इस सम्बन्ध मे सब से अधिक याद रखने की बात यह है कि नन्हा बच्चा भी एक व्यक्तित्व रखता है। वह कोई बे जान चीज नही, खिलौना नही। जब लोग उसे गुडिया से अधिक नही समझते है तो वह उसी समय से चुपचाप अपने लिए कोई उद्देश्य, कोई मजिल निश्चित भी कर लेता है और उस तक पहुँचने की बराबर कोशिश करता है। सारी दुनिया को इस उद्देश्य की रोशनी मे देखता है और अपने आस-पास के हालात को गलत समझ कर ये मकसद निश्चित कर लिया है तो सारी दुनियाँ ही को गलत समझना पड़ता है। अपने छोटे होने, कमजोर होने बड़े भाई से छोटे होने या चहेते भाई की बदसूरत बहन होने, माँ-बाप के घृणित समझने—सक्षेप मे तरह-तरह की कमियो का उसे एहसास होता है। ये एहसास उस के विचारों को कार्य क्षमता प्रदान करता है। वह अपनी हालत को सुधारने और अपनी हैसियत को उभारने में ल। जाता है। कमी का एहसास और उसको पूरा करने की कोशिश ये दो चीजे उसकी जिन्दगी का केन्द्र होती है। इनमें गलती होती है तो सारी जिन्दगी गलत राह पर पड जाती है। माँ बाप की तरफ

मे शिक्षा की बुनियादी गलतियाँ ये होती है कि वे या तो बच्चे मे कमी और घटियापन का एहसास, गैर जरूरी तरह से पैदा कर देते है या कमी पूरी करने की कोशिश मे रुकावट बनकर उन्हे गैर-मामूली तौर पर उकसा कर गलत रास्ते पर जाने देते या डाल देते है । कमियो का सही एहसास हो और पूरा करने के उचित उपाय हो तो बच्चे की शिक्षा ठीक हो मगर इस मे ज्यादती हुई और सतुलन बिगडा, उदाहरणार्थ माँ-बाप की बातचीत से, उनके कार्यो से उनकी सख्ती, बुरा-भला कहने से, अगर बच्चे मे अपने घटिया और कम दर्जे होने का एहसास ज्यादा मजबूत हो जाये तो वह इस से बचने के नित नये उपाय करता है । आगे बढना चाहता है, अच्छा बनना चाहता है । अपनी ओर ध्यान आकर्षित करना चाहता है, यह सब अपने स्थान पर ठीक है, लेकिन अगर उचित सीमाओ से बढ जाये तो उसी से बच्चे मे द्वेश और जलन पैदा हो जाती है । ऐसे बच्चे अपने बराबर वालो की, भाई की, बहन की दूसरे बच्चो की बुराई चाहने लगते है । अपनी कदर बढाने के लिए दूसरो की चुगलिया खाते है । उन पर झूठे आरोपण करते है । उनके भेदो को बताते है और कुछ रूपो मे तो यह प्रवृत्ति अपराधी रग अख्तयार कर लेती है और नन्हे-नन्हे बच्चे दूसरे बच्चो को शारीरिक हानि पहुँचाने से भी नही चूकते है । कभी-कभी यह होता है कि माता-पिता और सम्बन्धी बच्चे के आगे बढने की इच्छा को अनुचित ढग पर उभार कर उसके उत्साह की तीव्रता को और दूसरो से बढचढ कर रहने की इच्छा को रोग की श्रेणी तक पहुँचा देते हैं । अपने बच्चे को कक्षा की परीक्षा मे प्रथम नम्बर पर देखने की व्यर्थ इच्छा कितने भले मानुसो को सताती है । इस बनावटी उत्साह से बच्चे की मानसिक दशा मे एक तनाव पैदा हो जाता है जिसको वह अधिक समय तक बरदाश्त नही कर सकता है । इस एकाकी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए जिस पर बडो ने ध्यान जमा दिया है, और जिसमे सफलता से उनको भारी प्रशसा मिल सकती है, यह बच्चा अपनी सारी शक्ति उसी पर व्यय करता है । परीक्षा मे प्रथम आता है । बस पुस्तके है और वह है । न खेल की सुद न व्यायाम का ध्यान । सारा ससार तज दिया जाता है, कुछ दिन दूसरो की आशाओ को पूरा करने मे लगा रहता है । मगर उनकी बोझिल और एकतरफा आशाओ का बोझ उसके कमजोर कन्धो के लिये आवश्यकता से अधिक साबित होता है । लेकिन दूसरो से वाह-वाही पाने का चस्का पड जाता है । इसी लिए छोटी-छोटी काल्पनिक बातो मे सफलता प्राप्त करके उनका प्रचार करता है । जब यह शक्ति भी समाप्त हो चुकती है तो कई बार बिल्कुल नई स्याली मार्ग अखत्यार करता है । बगैर लोगो को अपनी ओर आकर्षित किये उसे चैन नही आता है । सोचता है । बदनाम अगर होगे, तो क्या नाम न होगा । घर से गायब रहने लगता है । पाठशाला से भागता है, मार पीट होती है । उसे भी प्रसिद्धता का साधन समझता है । इस जैसी कठिनाई मे फँसे हुए और भी लडके होते है । उनके गिरोह मे जा मिलता है । उनकी सरदारी के लिये मुजरिमाना कार्यवाहियो तक उतर आता है । पर यह क्यो ? इसलिए कि पिताजी को बडी इच्छा थी कि बच्चा प्रथम नम्बर पास हो । मजा यह है कि प्राय अध्यापको, डाक्टरो, वकीलो सक्षेप मे शिक्षित पिताओ के बच्चे कठिनाइयो मे फसे होते है । सम्भव है इसीलिए समय के इन प्रकाण्ड पण्डितो को अव्वल नम्बर पास होने वाले पुत्र का बाप होना अधिक पसद होता है ।

इससे बिल्कुल विपरीत यह गलती माता-पिता बडो से यह होती है कि वे बच्चे को तुच्छ और नीचे दर्जे का समझते है । अपना बडप्पन जताने के लिए बेचारा बच्चा ही मिलता है । "मूर्ख है" "पागल है", "निकम्मा है", 'किसी काम का नही है' । गरज बात-बात पर बच्चे पर बरस पडते है । उसे

लज्जित करते है। सब के सामने उसके ऐब गिनवाते है। उसे अपमानित करते है। यही बच्चे जिन पर बडो की यह तवज्जे होती है बडे होकर किसी चीज को अच्छा नही समझते है। हर एक को उकसाते है। न किसी की प्रसशा करते है न सुन ही सकते है। बचपन में उन्हे अपमानित किया गया था। अब वे इसका बदला लेते है और सबको बुरा समझते है। दुनिया से इनकी अनबन रहती है। बच्चे को बचपन मे अपमानित और निराश करके बुजुर्ग उसकी सारी जिन्दगी को कड़वा बना सकते है।

बचपन मे कुछ अवसर ऐसे आते है कि बच्चे को अपनी कमियो का, दूसरो से कम होने का बडा ख्याल पैदा होता है। यही वक्त बच्चे को सहारा देने का होता है। इस समय जरा सी त्रुटि या लापरवाही से उसके जीवन को प्राय. न पूरी हो सकने वाली हानि पहुँच सकती है। इन अवसरो का जिक्र भविष्य मे किसी अवसर पर करूँगा।

मेरी ये बाते सुनकर शायद कोई साहब फरमाये कि यह अजब बात है। बच्चे का साहस बढाईये तो आप अप्रसन्न, उसे बुरा कहिये तो आप ना खुश, आप भी खूब आदमी है। तो क्या कीजिये? मामला कुछ यूँही है? न आवश्यकता से अधिक प्रसन्नता बच्चे के लिए अच्छी है। न बेजा लज्जित करना। न इतना गिराइये कि फिर कदम ही न उठा सके न इतना चढाइये कि जमीन पर कदम न रखे। स क्षिप्त सी बात है। शर्त यह है कि दिमाग मे बैठ जाये। बच्चे को ईश्वर का सेवक समझिये। न वह आपकी चीज है न आपका खिलौना, आपके पास ईश्वर और इन्सानियत की अमानत है। इसमें प्रकृति ने जो मूल प्रवृतिया रखी है उन्हे न बहुत उकसा कर बहुत खराब कीजिये न बहुत दबाकर और हा इस बात का दूसरा पहलू भी याद रहे कि अगर बच्चा आपका खिलौना नही है तो आप भी बच्चे का खिलौना नही है, आप भी भगवान् के सेवक है। बस जरा ज्यादा अनुभवी है। न आप उस पर अत्याचार करे न वह आप पर, न आप उससे खेले न वह आप से। दोनों में एक-दूसरे पर भरोसा हो प्रेम हो और भगवान् करे तो आप जरा थोडा सा अधिक समझ ले, बस! ●

गलत हाथों में अस्त्र

नासमझ तथा सम्पूर्ण सत्ता के हाथ में शिक्षा एक ऐसा अस्त्र है जो वास्तविक माननीय विकास के मार्ग में भारी खतरे डाल सकता है। ऐसे अधिकार से किस तरह छुटकारा पाया जाए यह वास्तव में केवल अथवा प्रधान रूप से शैक्षिक प्रश्न नही है। यह तो अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा विशाल एक सामाजिक एव राजनीतिक चुनाव का प्रश्न है।

—डा० जाकिर हुसैन

वच्चों की शिक्षा–२

[८ अप्रेल, १९३९ को डा० जाकिर हुसैन द्वारा आल इण्डिया रेडियो दिल्ली से प्रसारित वार्ता]

कोई तीन सप्ताह होते है मैने बच्चो की शिक्षा पर आपसे बाते की थी। बाते यो ही की थी और समय भी काफी व्यतीत हो गया। मुझे यकीन है कि आप सब कुछ भूल गये होगे और मै आज भी वही कथा फिर दोहराऊँ तो शायद ही कोई पकड पाये। मगर पास आगा साहब खडे है। क्यो इसकी इजाजत देने लगे। इसलिए कुछ और कहना पडेगा। मैने उस बार बताया था कि बच्चे के मानसिक जीवन मे दो चीजो पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। एक इसके उस अनुभव करने पर कि वह औरो से कम है और दूसरे उस कमी को दूर करने के लिए इसके प्रयासो पर। इन्ही दो चीजो से इसके मानसिक जीवन का ढाचा बनता है। इन्ही मे उसे सहारे और पथ-प्रदर्शन की आवश्यकता होती है और इस मे माता-पिता से त्रुटियाँ हो जाती है। आज मै यह बताना चाहता हू कि ये त्रुटियाँ साधारणतया विशेष अवसरो पर होती है। माता-पिता इन से परिचित हो जायें तो शायद इन त्रुटियो से बचने मे सरलता हो।

सब से प्रथम तो उन त्रुटियो से बचने की आवश्यकता है जो माता-पिता इस कारण से करते है कि उन्हे या तो अपने बच्चे के शारीरिक गुणो की जानकारी नही होती, या जानकारी होती है तो वे उधर ध्यान नही देते और अभाव के कारण से बच्चे के सामने जो कठिनाइया आती है उनका जरा ख्याल नही करते है। कितने बच्चे है जो आँखो की खराबियो की वजह से कभी बिना तकलीफ पढ-लिख नही सकते है। किसी को दोहरा दीखता है। किसी के पढने से सिर मे

दर्द हो उठता है। ये बच्चे पढने-लिखने में औरो से पीछे रहते है, तो बजाय इसके कि उनकी असली कठिनाइयो को मिटाया जाय. उन्हे बुरा-भला कहा जाता है। दण्ड दिया जाता है। बच्चा अपने दोष को समझता नही। दण्ड को अत्याचार जानता है और अपने बस भर इससे बचने का उपाय निकालता है या अपनी अयोग्यता का यकीन करके परिश्रम और ध्यान से हाथ उठा लेता है। आप को सुन कर आश्चर्य होगा कि बच्चो मे बहुत बडी सख्या बाएँ हाथ से लिखने वालो की होती है। आप का जी अगर आजमाने को चाहे तो बच्चो की किसी कक्षा से कहिये कि अपने पजे मे पजा डालो। जिस बच्चे का बाया अँगूठा सीधे अँगूठे के ऊपर हो वह बाएँ हाथ से कार्य करने वाला ही होता है। यह तरीका सौ फी सदी सच्चा नही, लेकिन करीब-करीब ठीक नतीजे बता सकता है। इन बेशुमार बाएँ हाथ से लिखने वाले बच्चो को भी रहना-सहना है। बाएँ हाथ से लिखने वाले इस दुनिया मे गुजर करने को तो करते ही है, लेकिन उन की कठिनाई का कुछ तो अन्दाजा करना चाहिये और उनसे कुछ तो सहानुभूति रखना आवश्यक है। अगर आप हिन्दुस्तान से, जहा सडक पर बाएँ हाथ को बचते है, जर्मनी जाये जहा दाहिने हाथ को बचना होता है तो आप को इन गरीब बच्चो की कठिनाई का कुछ अन्दाजा होगा। आपको कदम-कदम पर किसी न किसी से क्षमा याचना करनी पडेगी, या डाँट सुननी होगी। अगर आप खुद अपनी मोटर कार चला रहे हो तो खुदा जाने आप पर क्या गुजरे! मगर इस से बहुत ज्यादा मुसीबत है इन बाएँ हाथ से काम करने वाले बच्चो की। इन्हे दाहिने हाथ से काम करने वाली दुनिया मे रहना पडता है, सीधे हाथ से लिखना सिखाया जाता है। जब अच्छा नही लिखते तब बुरा-भला कहा जाता है। क्या आश्चर्य है कि बहुत से भले मनुष्यो का लेख इतना बुरा होता है कि लिखावट भी कुछ लोगो के भाषण की तरह भेदो को छुपाने का साधन बन जाती है। यह नही कि ये बच्चे सीधे हाथ से लिखने का पूरा प्रयास लगातार नही करते। यो तो कुछ चित्रकार जो सीधे हाथ से काम करते थे, बाएँ हाथ वाले थे। मगर आवश्यकता इसकी है कि कठिनाइयो को समझ कर बच्चो का उत्साहवर्द्धन किया जाय। उल्टी डाँट से उन्हे जिद्दी या निरुत्साह होने का सबक न दिया जाय। यही हाल आँख, कान के बहुत से दोषो का है। जन्म दोष के बाद बच्चे की भविष्य मे मस्तिष्क की देखभाल के लिए कठिनाई का एक वह समय होता है, जब उसका दूध छुडाते है। साधारणतया जिस तरह धोका देकर डरा-धमका कर दूध छुडाते है, मा उस समय बच्चे से छुपी हुई, अलग-अलग रहती है। वह बच्चो मे माताओ की तरफ से ऐसी बेएतबारी करने का सामान होता है जो अक्सर सारी उम्र साथ नही छोडता। मा की गोद और मा का दूध यही तो बच्चे के सारे आनन्द और प्रसन्नता का ससार था। अब कुछ चालो से उनसे उसे वचित किया जाता है तो जिस पर बच्चा सबसे ज्यादा भरोसा करता था उस पर ही सन्देह करने लगता है। दूध छुडाने के साथ यह आवश्यक नही कि मा बच्चे से अलग-अलग दूर-दूर भी रहे और उसे अपनी मुहब्बत से और अपनी गोद की आत्म-वर्द्धक गर्मी से भी वचित कर दे। इस समय मे तो बच्चे से और भी ज्यादा, और अधिक प्रेम करने की आवश्यकता है ताकि बच्चा अपने जीवन के इस पहले परिवर्तनशील अनुभव के प्रभाव पर से आसानी के साथ गुजर सके।

एक और कठिनाई का समय वह होता है जब बच्चा बोलना प्रारम्भ करता है। बोलना सामाजिक क्रिया है और बोलने की योग्यता समाज के अनुभवो से विकसित होती है, जो बच्चे दूसरो से बेफिक्र मिलते है वे जल्द बोलना सीखते है। जो ठिठके-ठिठके अकेले रहते है वे देर मे बोलना सीखते है। बच्चो का

यह ठिठकना और झिझकना बे वजह नही होता है। इसकी वजह भी भरोसे की कमी होती है। इसलिए जरूरत है कि उन्हे जमाने मे मिलने-जुलने का अवसर दिया जाय, उनका उत्साहवर्द्धन किया जाय और उनमे बे सहारे रहने की आदत डाली जाये। खेल-कूद और सरल-सरल काम करने के अवसर निकाले जाये ताकि उनमे सफलता से धैर्य बने और अपने पर भरोसा बढे तथा अपने घटिया रहने के विचार और औरो से कम रहने के विचार पर काबू पा सके। कुछ मा-बाप, विशेषकर मालदार अपने बच्चो के ऊपर इतने नौकर-चाकर नियुक्त कर देते है और लाड-प्यार मे वे इतना अपव्यय करते है, जब कि गरीब को अपनी आवश्यकताओ तक के प्रकट करने का अवसर नही होता। प्रकट करने से पूर्व ही कोई न कोई उसे चूसने पर तैयार मिलता है। इसी कारण से वह अक्सर बहुत देर मे बोलना सीखता है और यह है भी वाजिब। बदायू के वह मशहूर लल्लाह जो खासी बडी उम्र तक अपनी अन्ना की अगुली थामे बाहर निकलते थे, इन्ही मालदार अभागो मे से थे। यही बात थी कि बडे होने पर भी तुतलाते थे। किसी ने पूछा "मिया साहबजादे क्या पढते हो ?" तो शर्माये तथा चेहरा लाल हो गया। धाय के लहगे से मुँह आधा छुपा लिया और बोले, "अन्ना टू ही टह दे के लुल टू लूल पटता हूँ।"

हकलाने की आदत भी अक्सर बिना किसी अ ग दोष के बचपन मे इसी कारण से पैदा हो जाती है कि दूसरो से सम्बन्ध पैदा करने मे किसी कमी का विचार हो। दूसरो के फटकारने से, मा-बाप के बुरा कहने से झिझक पैदा हो जाती है। यही कारण है कि वार्तालाप के साधन से दूसरो से सम्बन्ध पैदा करने मे कोई जटिलता पैदा हो जाती है। उदाहरणार्थ किसी लिखी हुई या याद की हुई कविता को पढना हो और इस प्रकार खुद सोचना न हो, जिससे बात की जाय उसकी तरफ से ध्यान हटा लेना सम्भव हो, तो हकलाने मे बहुत कमी हो जाती है। प्राय हकलाने वाले क्रोध मे बिलकुल नही हकलाते, खूब खरी-खरी सुनाते है। इश्क और मुहब्बत के एकान्त स्थान मे भी कहते है हकलाहट जाती रहती है। लेकिन दूसरो से सम्बन्ध स्थापित करने के अतिरिक्त एक और कारण हकलाहट के पड जाने का यह होता है कि बच्चा सदा दूसरो का ध्यान अपनी तरफ खीचना चाहता है। जो बच्चे आरम्भ से साफ बोलते है उनकी तरफ कोई ध्यान नही देता, पर जिन बच्चो की बोली मे कोई दोष होता है उनकी ओर सब ध्यान देने लगते है, उन्हे सब छेडते है। उन पर सब हँसते है। उनकी नकल करते है। लाचार यह बच्चा भी अपनी बोली की तरफ ज्यादा तवज्जे करता है और इसकी वजह से बोलना और कठिन हो जाता है। बहुत से काम जिन्हे बच्चा आरम्भ के तौर पर आसानी से करता है, अगर उनकी तरफ ध्यान हो जाये तो उनका करना मुश्किल हो जाता है।

इस पर मुझे एक दोस्त का किस्सा याद आया। वह नार्वे के रहने वाले थे, बहुत बूढे कोई ७०-७५ वर्ष की उम्र थी। उनका कई वर्ष बीते स्वर्गवास हो गया। उनकी याद किस कारण आई ? उन की दाढी बडी शानदार थी। ऐसी वैसी नही, पूरी सूँडी तक और निहायत घनी, सफेद जैसे बुर्राक। एक दिन रेल मे बैठे जा रहे थे। सामने एक महिला बैठी थी और उनकी आठ वर्ष की बच्ची साथ थी। यह बच्ची कई मिनट तक हर पहलू से उनकी तरफ देखती रही। फिर माँ के कान मे कुछ कहा। माँ मुस्करा कर चुप हो रही। उसने फिर माँ से कहा, 'पूछूँ ?" माँ चुप हो रही। फिर कहा, "पूँछू" ? तो माँ ने कहा, "पूछ ले।" बच्ची हर नीलजू के पास सदन से आकर खडी हुई और कहा, "बाबा एक बात पूँछू ?" हर नीलजू ने प्यार से

उसके सिर पर हाथ फेरा और कहा "बेटी, पूछो"। बच्ची बोली, "बाबा, तुम रात को सोते समय यह दाढी लिहाफ के अन्दर रखते थे या बाहर ?" गरीब बावा ने वहुत सोचा मगर समझ मे कोई उत्तर नही आया कि क्या जवाब दे। आदमी सच्चे थे कह दिया कि "बेटी, याद नही आता।" खुद कहते थे कि उस दिन दिन भर यही ध्यान रहा। रात हुई, सोने लेटा तो दाढी पहले लिहाफ के अन्दर रखी। जी घबराया, बाहर रखी। फिर बेचैनो सी रही। इसे अन्दर बाहर करते तीन पहर रात वीत गई। आखिर उठ कर एक सोफे पर बैठा। पैरो पर कम्वल डाल लिया तो रात बीती।

हाँ तो हकले बच्चे अपनी बोली की तरफ ध्यान देने लगते है तो बोलना और भी मुश्किल हो जाता है और कमजोर या किसी कमी का विचार रखने वाले बच्चे को अपनी इस कमजोरी मे बडो को अपनी ओर आकर्षित करने का एक और साधन हाथ आ जाता है। इसी प्रकार कमी का विचार रखने वाले बच्चे जब कोई ठीक तरीके अपनी कमियो को छोडने के नही अख्त्यार कर पाते तो कुछ कमजोरो की राजनीति से काम लेते है तथा औरो का ध्यान उनकी ओर न हो इसका उपाय सोचते है। उदाहरणार्थ यह कि काम मे सुस्ती करने लगते है। बीमार बन-बन कर पड जाते है। खाना नही खाते और कुछ नही बन पडता तो वे बिस्तर पर पेशाब कर देते है। विशेष कर जिस भोजन को मा खिलाना चाहती है उसे इन्कार होता है। मा की ओर से खुशामद होती है। फिर धमकियां, फिर ठुकाई। उस का उद्देश्य सब से हसिल होता है। औरो का ध्यान आकर्षित कर लिया। धीरे-धीरे भोजन की तरफ से तबियत में एक रुक सी पैदा हो जाती है और ये बच्चे कभी-कभी वास्तव मे बीमार हो जाते है। बिस्तर पर पेशाब कर देने की वजह भी साधारणतथा कोई अ ग दोष की नही होती। बच्चे का मसाना और आतें ठीक होती है। यह तो मा-बाप या उस्ताद का ध्यान आकर्षित करने की एक चाल होती है। इस पर दण्ड देने से जिद्द या ध्यान आकर्षित करने की सफलता से एक मूर्खता की बात पैदा हो जाती है जिसका अमल रफता-रफता आदत बन जाती है। अगर इन हालतो मे डाक्टरी इलाज के स्थान पर मानसिक इलाज किया जाय यानी बच्चे का ध्यान आकर्षित करके किसी और तरह सन्तोष करा दिया जाय, उसका भरोसा हासिल किया जाय, इसका उत्साहवर्द्धन किया जाय तो अवश्य सफलता होगी। इससे विपरीत बच्चे को औरो के सामने शरमाना बडी गलती है। इस से वच्चे मे अपने ऊपर भरोसा और कम होता है और मर्ज घटने की बजाय बढता है।

फिर बच्चे की शिक्षा के लिए एक कठिन समस्या दूसरे भाई-बहन के पैदा होने के समय उपस्थित होती है। जिस परिवार मे वहुत से बच्चे हो वहा सब से वडा वच्चा एक समय तक अकेला बच्चा होता है। दूसरे बच्चो को यह सम्मान प्राप्त नही होता। जव पीठ का बहन-भाई पैदा होता है तो इस बडे भाई को ऐसा लगता है कि इस नवजन्म ने मुझे सिहासन से उतार दिया और इसमे माता पिता ने इस नये आने वाले की मदद की और मुझ से बेवफाई बरती। इस पर माँ-बाप से और नव आगतुक से बच्चा अप्रसन्न होता है तो क्या बेजा करता है ? और अपने खोए हुए राज्य को दुबारा हासिल करने के लिए प्रयास करता है तो क्या आश्चर्य ?

मै एक परिवार को जानता हूँ। इस मे दो वच्चे है। एक भाई है और एक बहन। बहन ६ वर्ष छोटी है। भाई की उम्र ११ वर्ष की है। वाप इन्शोरेन्स कम्पनी के ऐजेन्ट है। हमेशा दौरे मे रहते है। शादी के बाद ४ वर्ष बे-औलाद गुजरे। वडी प्रार्थना और मानताओ, तावीज, गण्डे, इलाज, मानताओ

के बाद बच्चा पैदा हुआ । जाहिर है कि माँ की आखो का तारा है । उसने जो चाहा वही हुआ । बच्चे की मा लिखी-पढ़ी होशियार बीवी है । बच्चे की मामूली शिक्षा अच्छी हुई थी । तीसरे दर्जे मे पाठशाला मे भी बड़े चाव से पढ़ने जाता था । सब परीक्षाओ में पास होता था । इधर दो वर्ष से हाल ही कुछ और है । मा को तरह-तरह से दिक करता है । बाल खेचता है । मेहमानो से विशेष कर असभ्यता करता है । कपड़े फाड़ता है । मना रहता है । अध्यापक बराबर शिकायत घर लिख लिख कर भेजता है । आप समझते हैं कि कारण क्या है ? बात यह है कि बहिन ने इस को जिन्दगी का साचा बदल डाला । इस का अपना ही उस को अच्छा नही लगा था । जब वह तीन साल की हुई तो अपने मीठे-मीठे बोलो से मा का दिल लुभाने लगी । यह मदरसे मे रहता और वह माँ की गोद मे । बाप भी दौरे से आते तो उसी से बातें ज्यादा करते । यह सहन करने योग्य न था । अब यह बहन उसे कसे समझता । उसे प्रतिद्वन्द्वी जानता है । मुकाबले का केन्द्र समझता है । इसका सिहासन छिन गया । आप चाहते है कि इसका उपाय न करे ? उसी सिहासन को फिर से पाने के लिए बचपनी उपाय करता है । यह प्रयास बेशक बचपने के हे । आप का जी चाहे हँसे मगर इसके दिल से पूछिये इसे यही उपाय आता है । इसी असभ्यता से मा-बाप को, बेवकाओ को, अपनी तरफ ध्यान देने के लिये आकर्षित करता है । अध्यापको की खराब रिपोर्टों से खुश होता है । इसलिए कि एक बार किसी अध्यापक ने कह दिया था कि तुम पढते-लिखते नही हो । हम तुम्हारा नाम काट देगे । तुम घर पर ही पढा करो ।

इससे आशा हो गई है कि पाठशाला से छुटकारा पा कर घर रह सकूँगा तो दिन भर वह प्रतिद्वन्द्वी मा पर कब्जा न कर सकेगा । सक्षेप यह है कि इस बच्चे ने अपनी सारी जिन्दगी इसी एक ख्याल पर आश्रित कर ली है । लेकिन क्या यह आवश्यक और जरूरी है ? अगर मा बड़े बच्चे को छोटे के पैदा होने से पहले इस अवसर के लिए तैयार कर ले तो इसमे बहुत कुछ कमी हो सकती है । फिर प्रतिद्वन्द्विता का ख्याल रहे तो अपने इस वचित रहने के विचार को इस प्रकार अनुभव न करे । समझदार माताओ के लिये यह असम्भव न होना चाहिये कि वे इस बड़े बच्चे के लिए इस जन्म अवसर को शत्रु के जन्म की घटना की जगह वास्तविक भाई, दोस्त, साथी की आमद का मुबारक अवसर बना दे ।

अधिक बच्चे वाले परिवारो मे इस बात से भी अमूमन बच्चो के मस्तिष्क पर बुरा असर पडता है कि उन का पद इन बच्चो मे क्या है । छोटा अमूमन सबसे तेज होता है या बिल्कुल निकम्मा । वजह साफ है । यह सब से कम होता है । इसलिए सब से बढना चाहता है । अगर होशियारी हे और वातावरण अनुकूल है तो तेजी से बढता है और सब से आगे बाजी मार लेता है । अगर शक्तिया उत्साह का साथ नही देतीं तो बिल्कुल सहम कर निराशा से कधा डाल देता हे । सब से छोटे बच्चे के लिए यह भय भी है कि कुछ न हो और यह भी सम्भव है कि सब कुछ हो जाये । इसके मुकाबले मे सब से बडा बच्चा शक्ति का पुजारी, जबरदस्ती को मानने वाला, शासन और कानून का साथी होता हे । इसलिए कि उसने सम्मान का आनन्द लूटा है और जब दूसरे बच्चो के जन्म ने उस से सम्मान को छीना तो वह उस समय से उसे और भी मूल्यवान समझने लगा । माँ-बाप अगर इन अवसरो पर जिन का जिक्र मैंने किया है, जरा होशियारी से काम ले तो बच्चे की जिन्दगी मे बहुत से पेच न पडने पाये । जरूरत है मुहब्बत के साथ दोनों समझ और सोच से उस की और हाँ, सब की । मुहब्बत तो कहते है कि माँ-बाप को बच्चे से होती ही है । मगर ये आखरी तीन चीजे कम मिलती है । ●

बच्चों की शिक्षा–(३)

[२६ अप्रैल १६३६ को डा० जाकिर हुसैन द्वारा ऑल इण्डिया रेडियो से प्रसारित वार्ता]

आप को याद हो या न हो इससे पहले "बच्चो की शिक्षा" पर आपसे दो बार बाते कर चुका हूँ, रेडियो का प्रबन्ध कुछ ऐसा है कि बस आदमी अपनी सुनाता है। दूसरे की नही सुनता। मगर अभी अल्लाह रखे डाक का महकमा सलामत है। इसलिए यहाँ से १५ मिनिट बाते करके जाइये तो यह नही कि बात आई-गई हुई। तीसरे ही दिन से खत आना शुरू हो जाते है। और अजब-अजब, भाँति-भाँति के, बहुत से झूठ-मूठ की प्रशसा लिख भेजते है। कुछ किसी छोटी सी बात का जिक्र लिख भेजते है। उदाहरणार्थ दो शब्द आपने ऐसे बोल दिये जो इनकी समझ मे नही आये। कई रुष्ट भी होते है। बहुत से लिखते है कि अब की बार यह बात अवश्य कहियेगा, यह बात जरूर ही बताइयेगा। और हाँ, यहाँ तक कि चाहे तो हमारा नाम भी ले लीजियेगा। तो जनाब सुनिये। हजरत, आपसे अर्ज है कि जिन्होने ये खत लिखे थे इन सबका जबाब देना तो मेरे बस की बात नही। प्रशसा करने वालो का धन्यवाद। रुष्ट होने वाले साहब का भी धन्यवाद। यह मुझे निश्चय है या समझिये कि मै देख रहा हूँ कि इनमें से एक साहब तो इस वक्त भी अपने रिसीवर के पास बैठे है। इस की एक घुण्डी को घुमा–घुमा कर मेरी आवाज को, जो पहले ही से बहुत अच्छी नही, और खराब कर रहे है और चाहते है कि जो शब्द इनके समझ में नही आये वह कम से कम बहुत जोर से तो बोल ही दिया जाये। अलीगढ के प्रसिद्ध अध्यापक मौलवी अल्लाह हुसैन साहब फरमाया करते थे कि भाई 'कुरात' का फन अब खत्म हो गया। मेरे स्वर्गीय अध्यापक इसके आखरी जानने वालो मे से

थे। फरमाया करते थे कि अगर "कॅ" का शुद्ध उच्चारण मटके के अन्दर कर दू तो मटका फट जाय! तो जनाव वटन घुमाने वाले साहव, आप से निवेदन है कि मै तो अपने देश के लोगो से सीधी-सादी भाषा वोलता हूँ। इसमे एन 'काफ' कही-कही आ जाता है तो इसे खराब नही समझना। न आपको ऐसा समझना चाहिये। मेरा तो उच्चारण भी हिन्दी होगा, मगर फिर भी किसी 'काफ' का उच्चारण कुछ भी सही हो गया तो आपके सैट का वाल्व तो फट ही जायेगा। वस बात सुनिये और एक-एक लफ्ज के पीछे न पडिये। भगवान ने चाहा तो आप की समझ मे भी आ जायेगा। हाँ, जिन साहवो ने राय भेजी है उनका वससे ज्यादा शुक्रिया। वे अव सुने, उनकी रायो पर वहुत कुछ अमल किया गया है। चाहे इसमे वह हैदरावाद वाले साहव खुश हो या झासी वाले दोस्त, वम्वई वाले भाई या ढाके वाले वुजुर्ग कि हमारी वाली राय पर अमल हो रहा है। सच यह है कि सव सच पर है। और खुद का भी यही कहने का इरादा था। यानी क्या ? लीजिये, सुनिये।

महत्वपूर्ण मोड़

मैने पिछली वातचीत मे यह वताया था कि वच्चे की शुरू की जिन्दगी मे कुछ खास-खास वक्त ऐसे होते है कि जव उससे अपने आस-पास के ख्यालात या इर्द-गिर्द के लोगो के समझने मे चूक हो जाती है और वह वेचारा तो इसे अपनी भूल जानता ही नही इसलिए इस पर अपने जीवन की भारी इमारत उठाये चला जाता है। वुनियाद की ई ट की टेड ऊपर तक जाती है। और यह हमेशा उसको भुगतनी है। उदाहरणार्थ मैने वताया था कि जव वच्चे का दूध छुडाते है, जब वच्चा कुछ वाते करने लगता है, जव किसी सख्त वीमारी से उठता है, जव कोई भाई-वहन पैदा होता है, आदि। इन्ही कठिन आपत्तियो मे से पहले-पहल पाठशाला जाने का समय भी है। वच्चा जव पाठशाला जाता है तो यू समझिये की नई दुनिया मे दाखिल होता है। जिन्दगी की सडक के वे मोड जहा वडी होशियारी और समझ-वूझ की जरूरत है और जहाँ टकरा कर नुकसान उठा जाने का वडा डर है, इनमे से एक सख्त मोड पाठशाला भी है। जिस तरह दूसरे किसी मोड के लिए वच्चे को तैयार करके उसकी मुश्किल को समझ कर खतरे को वहुत कुछ वटाया जा सकता है, उसी तरह इस मोड यानी पाठशाला के लिए भी वच्चे को तैयार किया जा सकता है। यदि पहिले से वच्चे को दूसरो से मिलने-जुलने की आदत हो, अगर वह पहले से अपने ऊपर भरोसा करके आप अपना थोडा वहुत काम करना सीख चुका हो, अगर अध्यापको के पास जाने के पहले माता-पिता के स्नेह और ध्यान मे अपने भाई-वहन को सम्मिलित करना जान गया हो और इन से उसका मन न उठ गया हो तो शायद पाठशाला का ससार उसे उतना अनोखा न जान पडे जितना कि प्राय लगता है। परन्तु होता यह है कि इस प्रकार की तैयारी नही कराई जाती, वल्कि मुद्दतो पहले से वच्चे को पाठशाला भेज दिये जाने की धमकी दी जाती है। पाठशाला से डराने का काम लिया जाता है "खवरदार ऐसा करोगे तो पाठशाला भेज दिये जाओगे", पिता जी फरमाते है। माता जी कहती है "देखो, यह काम कर लो वरना पाठशाला भेज दूगी"। वच्चे के विचार मण्डल मे इस भयानक स्थान का जो विचार स्थापित होता होगा वह हरगिज ऐसा नही हो सकता कि वहा पहुचने पर वह इस स्थान मे सरलता से राजी हो, लेकिन अगर वहुत सो के लिए इस मूर्खता से पाठशाला जाने और उससे लाभ उठाने का काम कठिन हो जाता है तो ऐसे वच्चे भी अक्सर होते है और अच्छी खासी तादाद मे होते है जिनके घर की शिक्षा ठीक होती है

डा० जाकिर हुसैन व्यक्तित्व और विचार

और जब वे पाठशाला जाते है तो इस कठिन समस्या को हल करने के लिए तैयार होते है । मगर क्या कहिये कि पाठशाला पहुँच कर इनका रग भी कुछ बदल जाता है और इनकी शिक्षा में भी ऐसी गुत्थियाँ पड जाती है जो उम्र भर सुलझाये नही सुलझती है। हमे इन दोनो तरह के बच्चों पर नजर डालनी चाहिए । आइये पहले उन्हे ले जो घर से अच्छे खासे आते है, पाठशाला इनके लिए हौवा भी नही होती और घर की शिक्षा से कोई ऐसा ऐब भी साथ नही लाते जिससे, न जानने की वजह से, पाठशाला मे बच्चे के समझने और उसकी सहायता करने मे कमी हो ।

अनुशासन या जबरदस्ती

इन बच्चो की शिक्षा मे सब से पहले तो पाठशाला के साधारण प्रबन्ध और आम अनुशासन तथा इस अनुशासन की शक्ति से उलझने पैदा होती है । ये बच्चे जब मदरसे आते है तो सब तन्दुरुस्त बच्चो की तरह खेलने-कूदने, हँसने बोलने के अरमान साथ लाते है । लेकिन यहाँ अनुशासन घण्टो इन्हे खामोश, बे हिले-डुले बैठने पर मजबूर करता है। यह जबरदस्ती इन बच्चो को भला कैसे भा सकती है। मगर जबरदस्त मारे और रोने न दे । पाठशाला इन के लिए एक मन्दिर हो जाती है। इस मे अनुशासन के बे समझ और जालिम देवता की पूजा उसके जालिम पुजारी अध्यापक इन से मजबूरन कराते है। वह इस निरर्थक अत्याचार का अर्थ नही समझता । न कोई उसे समझाता है। इस जालिम देवता की इबादत मे या तो उसकी तबीयत का असली उत्साह समाप्त हो जाता है, जी बुझ जाता है और वह भी और कमजोरो, जलीलो, दबने वालो की तरह होते-होते उसका आदी हो जाता है या इससे बचने के जो तरीके सोचता है और जुल्म को जुल्म जानने के बाद इस से छुटकारे की जो राह निकालता है वह ऐसी होती है जिससे हमेशा के लिए उसकी शिक्षा के सही होने की राह बन्द सी हो जाती है । अच्छे अध्यापक बच्चो की प्राकृतिक इच्छाओ को मारे बिना और उन पर बेजा दबाव बिना उन मे इसकी आदत डाल देते है कि हर बच्चा दूसरे के हक का ख्याल, रखे अपने स्वार्थ को कक्षा और पाठशाला के लिए दबाना सीखे और दूसरे के विचारो और आवश्यकताओ का सम्मान करना जाने,मगरअच्छे अध्यापक कम होते है और अधिकाश को अनुशासन की बेजा ज्यादती ही ठीक राह नजर आती है। इन अध्यापको मे बहुतसे गरीब ऐसे होते है जिनकी उम्र का इब्तदाई जमाना माँ-बाप की मार खाते और अध्यापको की डाँट-डपट सहते कटा,अब शासन का अवसर मिला है तो दिल खोल कर शासन करना चाहते है और यह बीमारी कुछ ऐसी है कि ज्योज्यो शासन करनेका अवसर बढता है यह मर्ज भी बढता ही जाता है । बहुतेरे ऐसे होते है कि सुस्ती की वजह से उत्साह और कार्य करने की रुचि की कमी से बस यही अच्छा समझते है कि काम एक ढर्रे पर पडे । कौन हर वक्त नई-नई बाते सोचे और नई-नई समस्याये हल करे । यह डर है कि लडको मे उपज और स्वतन्त्रता को बढाया तो हर लहमे नये उपाय करने और नये मार्ग निकालने होगे और इतना दिमाग कहाँ । इस कठिनाई मे कोई क्यो पडे। लडके समय पर आये और समय पर जाये । चुपचाप बैठे सुने और यह जैसे-तैसे पाठ्य क्रम समाप्त करा दे और रजिस्ट्रो मे काम पूरा कर दें और उन्नति के लिये मुख्य अध्यापक महोदय की सिफारिश हासिल करे । बस अल्लाह-अल्लाह खैर सल्लाह । सच, यह मशीन बनना सहज है, आदमी रहना मुश्किल है। इसी दल में वे अध्यापक होते है जिन्हे अपने ऊपर भरोसा नही होता । वे हर वक्त डरते है कि बच्चो के काम मे जरा भी ढील की और वे काबू से निकले । उन्हे अनुभव तो होता है

अपनी कमियो का और बच्चो मे एक विरोधी शक्ति का हउआ देख-देख कर डरते रहते है। बच्चो पर उनका अत्याचार वास्तव मे इसी डर का फल होता है। ये अध्यापक अच्छी शिक्षा के शत्रु है और जिन पाठशालाओ मे ये साहवान कार्य करते है उन मे जिस दिन अच्छी शिक्षा का प्रबन्ध हो जायेगा उस दिन चिरायते का बीज बो कर शकर की फसल भी काटी जाने लगेगी। अल्लाह का शुक्र है कि शिक्षा का काम करने वाले अब अनुशासन की वास्तविकता को समझने लगे है और शायद वह वक्त जल्द आये कि पाठशाला का अनुशासन भी हर सच्चे अनुशासन की भाँति स्वय बच्चो के विचारो पर आधारित हो और इन के प्राकृतिक गुणो को विकसित करने का साधन बने, न कि इन्हे मारने का शस्त्र।

साधन और उद्देश्य

कडे अनुशासन के भूत के अलावा पाठशालाओ मे प्रचलित पाठ्यक्रम भी बच्चो की शिक्षा ठीक नही होने देता। आदमी के इतिहास पर नजर डालिये। इसकी बडी-बडी निराशाएँ इस कारण पैदा हुई है कि यह जिन चीजो को पहले किसी कार्य का साधन बनाता है, होते-होते इसी साधन को खुद अपना उद्देश्य मान लेता है। साधन पास होता है और उद्देश्य दूर। बस-साधन ही दृष्टि मे रह जाता है। उद्देश्य ओझल हो जाता है। निराशा की इस कहानी मे पाठशाला का प्रबन्ध भी एक परिच्छेद है। इसने पाठशाला अपने आने वाली नस्लो के मस्तिष्क की शिक्षा के लिए बनाई। इस शिक्षा के लिए समाज ने अपनी बनाई हुई मानसिक वस्तुओ को साधन बनाया और ठीक बनाया। होते-होते ये साधन खुद उद्देश्य बन गये। भाषा, सभ्यता, इतिहास, गणित, धर्म ये सब पाठशाला मे इसलिए पहुँचे कि बच्चे की शिक्षा का साधन बने। मगर वे वहाँ शासक है, बच्चा शासित। बच्चा वहाँ इसलिए जाता है कि वहा उनका बोझ उठाये, इसलिए नही कि ये बच्चे का बोझ हल्का करे। अब कोई नही देखता इन साधनो से मस्तिष्क की शिक्षा होती भी है कि नही। ये साधन तो पाठ्यक्रम की "लाल किताब मे दर्ज है" इन्हे कौन छेड सकता है। इनके सयोग से अध्यापको को वेतन मिलता है। पाठशाला को सहायता मिलती है। यह कौन देखे कि इन विषयो के ढेर के नीचे कितने होनहार मस्तिष्क घुट-घुट कर समाप्त हो जाते है। उम्र भर शिक्षा और दीक्षा का काम करते है, पर यह सोचने का अवसर कैसे मिलता है कि भला मानसिक शिक्षा होती कैसे है? हालाँ कि साफ सी बात है। शरीर जिस तरह विभिन्न दशाओ मे विभिन्न भोजनो से पलता और बढता है, आदमी का मस्तिष्क भी उन चीजो मे पलता है और बढता है और अपनी प्राकृतिक शक्तियो को तरक्की देता है, जो इससे पहले समाज मे दूसरे आदमियो ने अपने मानसिक प्रयास से बनाई है। इन चीजो मे भाषा सभ्यता भी है। रस्म-रिवाज भी, लतीफे भी है, इमारते भी औजार भी है और कला-कौशल भी। सक्षेप यह है कि सब कुछ जिसको पिछलो के मानसिक प्रयासो ने कोई ऐसी सूरत दे दी है जो उस तक पहुँचाई जा सकती है, वह सब इसकी मानसिक शिक्षा के लिए साधन है। इसलिए कि बनाने वाले के मस्तिष्क ने इसमे अपनी जो-जो शक्तियाँ बन्द की है। सुलादी है, वे सब उस बच्चे के मस्तिष्क मे आ कर खुलती है, जागती है तो इससे इसकी शिक्षा होती है। याद रखने की बात यह है कि शिक्षा के थाल पर जो बेशुमार भोजन चुने है, हर मस्तिष्क इन सब को खा कर नही पचा सकता। कुछ इसे रास आते है कुछ नही और यह क्यो? यो कि इन चीजो मे जो-जो

शक्तिया सोई हुई है वे जिस मस्तिष्क का साया है। उसमे और वच्चे के मस्तिष्क की प्राकृतिक वनावट मे कुछ न कुछ समानता अवश्य होनी चाहिए। इस मुआफिक मिजाज. ओस से वच्चे के मस्तिष्क की कली खिलती है और फिर सारी जिन्दगी को अपनी खुशबू से सुगन्धित कर देती है। इसी समानता रखने वाले दीये से इस बच्चे के मस्तिष्क का दीपक भी प्रकाशित होता है जो फिर ससार के अंधियारे मे हर अँधेरे कोने को उजागर करने मे सहायता देता है। यह उजाला हर मस्तिष्क का हक है। पर हर एक को यह हक एक ही तरह हासिल नही होता। किसी को यह रोशनी कही से मिलती है किसी को कही से। किसी का मस्तिष्क सभ्यता से शिक्षा पाता है तो किसी का खेती के कार्य से तो किसी का खिलौनो और औजारो से। सभ्यता वाले के मस्तिष्क को औजारो से और औजार वालो को पौधो से शिक्षा देने के प्रयास करना बस शिक्षा देने के महत्त्व ही से बेखवरी है। पाठशाला का कार्य यह है कि बच्चो की मस्तिष्क की बनावट का अनुमान करके उस चीज या उन चीजो से उसकी शिक्षा का प्रवन्ध करे जो उसके अनुसार हो वरना हम रोज देखते है कि अशुद्ध प्रयास बेकार और व्यर्थ ही नही होते वल्कि इन चीजो मे असफलता से जिससे बच्चे का कोई सम्वन्ध नही पर जिसका जुआ उसकी गर्दन पर व्यर्थ रखा हुआ है, निराश और निरुत्साह हो कर और माननोय मास्टर साहब के अङ्को और टिप्पणियो और माता-पिता के निराशा से भरे वचनों से अपनी कमियो का यकीन होने पर कितनी असाधारण प्रतिभाओ का खून रोज हमारी आखो के सामने होता है। अगर अध्यापक सफल प्रयास करने और सफल काम करने के जादू से वाकिफ हो तो प्रकट मे कमजोर बच्चो को देखते-देखते कहाँ से कहाँ पहुँचा देता है और सहज पाठ्यक्रम की रस्मी पावन्दी से यू प्रतिभाओ का खून न करे। वह दिन दुनियाँ के लिए वडा मुबारिक दिन होगा जब इसकी पाठशालाओ मे अध्यापक यह समझ लेगे कि वह किसी ऐसे कारखाने के काम करने वाले नही है जिसमे से सब माल एक ही ठप्पे और एक की मार्के का निकलना जरूरी है। वल्कि जो भिन्न-भिन्न तरह की प्रतिभाए उनकी अमानत मे दी जाती है, उन्हे उन्नति की पराकाष्ठा तक पहुँचाने मे सहायता पहुँचाना उनका वहुत बडा कर्त्तव्य है।

कुछ गलतियां

इन बुनियादी गलतियो के अलावा पाठशाला मे अध्यापको से कुछ और गलतियाँ भी ऐसी होती है जिनसे वच्चे की शिक्षा पर बुरा असर पडता है। इनमे एक बहुत ही आम गलती तरफ-दारी और नाइन्साफी की है। वच्चे जब अध्यापक की वेजा तरफदारियाँ देखते है तो उन पर वडो से वहुत ज्यादा इसका असर होता है। वे अभी प्राकृतिक जीवन के निकट होते है और ससार की वेइन्साफियो का अनुभव न होने का कारण उन्हे अपनी सादगी मे यह चीज वहुत खलती है। और चूँकि अध्यापक उनके लिए वडो की दुनियाँ का दूत होता है इसलिए इस पर से भरोसा उठा और यूँ समझिये सब वडो की इन्साफ पसन्दी की पोल इनकी नजर मे खुल गई। वच्चे उस्तादो की तरफदारी और नाइन्साफी का ऐसा गहरा असर लेते है कि यह अक्सर उम्र भर इनके जहन से नही हटता है और पाठशाला के और अच्छे दूसरे प्रभाव इस अनुभव के कारण मिट जाते है।

दण्ड के सम्बन्ध मे भी कुछ ऐसी गलतियाँ होती है कि सही शिक्षा का उद्देश्य विलकुल मर

जाना है। दण्ड का अगर कोई शैक्षणिक महत्त्व है तो बस यह कि यह पछतावे का रूप है। इसलिए दण्ड को डराने-धमकाने का साधन नही होना चाहिए। दोष के मान लेने से छुटकारा दिलाने का साधन होना चाहिए वरना यह शिक्षा के मार्ग मे रोडा होता है। सच्चा और लाभदायक दण्ड उस समय सम्भव है जबकि बच्चे को अपने दोष का भान हो जाए, उस पर पछतावा भी हो और उसके दिल मे स्वय ही पछता कर फिर ऐसा न करने का विचार आए। वरना सजा भय है, इलाज नही। और शारीरिक दण्ड आम तौर पर पूछताछ का रूप अख्तयार नही कर सकता इसीलिए शिक्षा के लिए अक्सर बे लाभ और हानिकारक होता है। शारीरिक दण्ड आम तौर पर बच्चो मे जिल्लत का ख्याल पैदा करता है। किसी को अपमानित करके उसके चरित्र और आत्मिक शक्तियो को उभारा नही जा सकता। फिर यह शरीर को तकलीफ देता है और शरीर का दुःख बिल्कुल हमारी सारी तव्वजा अपनी तरफ खीच लेता है और तमाम शक्तियो को विरोध के लिए तैयार कर देता है। विरोध का यह ख्याल सजा के गुजर जाने के बाद भी कायम रहता है और इस तरह दण्ड का उद्देश्य ही समाप्त हो जाता है। इस प्रकार की और बहुत सी गलतियाँ पाठशाला मे होती है, जिनसे बच्चे के मस्तिष्क का साँचा गलत बनावट अख्तयार कर लेता है और फिर सारी जिन्दगी ही इस गलती के साँचे मे ढल जाती है।

पाठशाला की तकलीफे

ये सब कठिनाइयाँ तो सब बच्चो पर बराबर पडती है। पर उन का क्या हाल पूछिये जिन के लिए घर की शिक्षा की कमिया पाठशाला को बिल्कुल नर्क बना देती है। इन बच्चो मे पाठशाला मे अधिक तकलीफ तीन प्रकार के बच्चो को होती है। एक तो घर के लाडलो को जिन्हे इसका कभी अवसर नही मिला कि अपना कोई काम आप कर लेते। दूसरे बच्चो के साथ समान बर्त्ताव करते। मारते तो पिटते भी, कहते तो सुनते भी। सदा इनका कहना माना गया। इन्हे खाना किसी और ने खिलाया। कपडे किसी और ने पहनाये। मुँह हाथ तक धोने की नौबत न आई। कभी अकेले सोये नही। सक्षेप मे हे मिर्जा फोया। दूसरे पाठशाला मे उन बच्चो को बडी कठिनाइयाँ होती है जो घर पर मुहब्बत और प्यार को तरसते है। सौतेली माँओ के हाथो तकलीफे उठाते है। जिन से नई माँ ने पिता का प्रेम भी छीन लिया और मानवता से सदा के लिए इनका भरोसा उठा लिया। तीसरे वे बच्चे है जिनमे कोई शारीरिक दोष होता है। जिन बालको मे शारीरिक दोष होते है उनकी शिक्षा की कठिनाइयो पर मै पिछली दफा कह चुका हूँ। वे कठिनाइयाँ पाठशाला जाते समय और बढ जाती है। अक्सर पाठशालाओ मे छात्रो की सख्या इतनी होती है कि ऐसे दोष पर कोई ध्यान नही रखता। फिर अगर यह दोष चेहरे को या शरीर को बदनुमा करता है तो इस पर दूसरे बच्चे नादानी मे हँसते है। बेचारा मरीज कुढता है और विरोधियो की दुनियाँ से बेजार रहता है। वह जितना घबराता है, दूसरे उतना ही और छेडते है और आपस मे मेल-मिलाप पैदा होने के मार्ग बन्द होते जाते है। अगर दोष आँख, कान का या कोई छुपा हुआ दोष है तो बडे समय तक कोई पता नही, मगर इससे बच्चे की पढाई पर असर पडता है। वह फिस्सडी शुमार होने लगता है। मार सुनता है अपमान सहता है और यू उसके जहन मे इन तमाम बुराइयो के पैदा होने का कारण

पंदा होता जाता है जो कमियो के गहरे विचार के साथ पैदा होती और जिन्दगी को गलत रास्ते पर डाल देती है।

मुहब्बत को तरसे हुए बच्चे दुनियाँ की तरफ से अविश्वास रखते है, इसलिए इस नयी दुनिया मे भी हर चीज को सन्देह से देखते है। मुहब्बत की वह भूख जो यह साथ लाए है यहाँ और भी बढ जाती है।इसके दूर करने का सामान भी नही होता है और यो इनकी मस्तिष्क की गुत्थियो में वृद्धि ही का भय बढता जाता है। लेकिन सब से ज्यादा कष्ट लाडले मिया और मिर्जा फोया को होता है। इनकी आदत तो यह कि सारा घर इनकी सेवा मे खडा रहे। पहुँचे शामत के मारे पाठशाला मे, किसी ने डॉट जमाई, किसी ने धक्का दिया, किसी ने मुँह चिढाया, उनके रोने से सब हँसने लगे। अध्यापक महोदय आए तो यह समझे कि पिता को तरह हमे ही बस गोद मे उठा लेगे। अध्यापक महोदय गरीब के जिम्मे शैतानो की एक पूरी फौज। इनसे छुटकारा पाना मुश्किल, उन्होने बात भी न पूछो। बस, साहब जादे का सम्बन्ध पहले दिन से पाठशाला से खराब हो गया और जिस तरह पहले बता चुका हूँ इस गलत ख्याल पर सारे भविष्य के जीवन की इमारत खडी होने लगी। लेकिन क्या इन सब कठिनाइयो का कोई इलाज नही। प्रकट मे तो मालूम होता है कि नही है। ससार का केन्द्र ऐसा मालूम नही होता है कि मूर्खता पर आ जमा है। पाठशाला मे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन के प्रयास जारी है। मगर कौन सुनता है। पाठ्य शिक्षा के पाठ्यक्रम पर अत्याचार को समझने वाले रोते है। मगर जिन के हाथो मे प्रबन्ध होता है वे इसे बहुत अधिक महत्व नही देते, बच्चे नष्ट होते है। किसी को कानो-कान खबर नही होती। पशुओ की तरह उस्ताद बच्चो को मारते है—लेकिन किसी के कान पर जूँ नही रेगती। बहुतेरे बच्चो पर पाठशाला मे जो आत्मिक कष्ट गुजरते है उसका हाल उन्ही का दिल जानता है। हाल मे एक किताब पढ रहा था। साइस के एक अध्यापक (Willisenohans) की लिखी हुई (The dark Pleaces of Education) इसने कई काफी मशहूर आदमियो के बयानात दर्ज किये है कि इन पर पाठशाला मे क्या गुजरी! पढ़ कर ख्याल होता है कि पाठशाला किसी सख्त जालिम की ईजाद है। इसके कष्टो और दुखो की याद उम्र भर दिल से नही मिटती। मगर इस निराशा मे बस एक आशा की किरण है। वह यह कि अगर पाठशाला मे एक अच्छा अध्यापक पहुँच जाए, तो इस अँधेरे स्थान को जगमगा देता है। बेजान अधिकारीगण और निरीक्षण, रजिस्टर और डायरियाँ पडी रह जाती है और यह अपने व्यक्तित्व के जादू से मुर्दो को जिन्दा और जिन्दो को अधिक जिन्दा कर देता है। बच्चो की उजाड दुनियाँ बस जाती है और तबीयत की कुमलाई कली खिलने लगती है। मगर आप कहेगे कि अच्छे अध्यापक होते कहाँ है? जी हाँ—सच है। ये कम मिलते है। मगर ऐसा नही कि नही मिलते है। मुझे कुछ ऐसे अध्यापको के साथ कार्य करने का गौरव और सम्मान प्राप्त है इसलिए मै तो निराश नही। भविष्य मे मिलने पर निवेदन करूँगा कि ये अच्छे अध्यापक होते कैसे लोग है। ●

अच्छा अध्यापक

[१५ मई १९३६ को डा० जाकिर हुसैन द्वारा ऑल इण्डिया रेडियो से प्रसारित वार्ता]

मनुष्य का जीवन सदा किसी अन्य के जीवन से सम्बन्धित होता है। उसके मानसिक जीवन का दीपक सदा किसी दूसरे मानसिक जीवन से प्रकाशित होता है। जीवन की लहलहाती वाडी मे खरबूजे को देखकर खरबूजा रग पकडता है और यूँ प्रत्येक मनुष्य किसी अन्य का अध्यापक, सिखाने वाला, बताने वाला और बनाने वाला होता है। अध्यापक के अर्थ का इतना विस्तार कर दे तो बात बहुत फैल जायेगी। हम तो यहा केवल उन लोगो से विवाद करना चाहते हैं जो जानबूझ कर सिखाने पढाने वाले का काम अपनाते है और उस को कार्य का रूप देते है। ये व्यक्ति इस कार्य को अपनाते है इसलिए कि उन के मन की रुचि इधर होती है। मन का यह मिलना एक प्राकृतिक बात है। स्वय किसी ओर झुकाव होता है, इस ही प्रकार के कार्य को जी चाहता है। इस ही मे जी सुख पाता है। कुछ लोगो के मन की रुचि स्वय अपनी ओर होती है। उन मे जो शक्ति है उसकी इच्छा कमाई का लपका, जमा करके ढेरी लगाने की लत, लालच-लोभ, औरो से हडपने की चाह होती है। कुछ व्यक्तियो के मन का झुकाव अपनी ओर नहीं अन्य की ओर होता है। उन पर सहानुभूति, सहकारिता, मेल-मिलाप, उदारता, दूसरो को सहारा देने और सहायता पहुँचाने की इच्छा राज करती है। किसी को हर वस्तु की खोज लगाने और हर बात की तह तक पहुँचने की धुन होती है। कोई ससार को बनाने वाले और पालनहार के ध्यान मे मस्त है, अपने को उसके महान अस्तित्व मे मिला देने, विरह को समाप्त करके लीन

हो जाने और मोक्ष प्राप्त करने की लग्न लगी रहती है। कोई चीजे बनाता, बिगाड़ता और नये-नये आविष्कारो मे अपने हृदय को शान्त करता है।

एक प्रश्न

मनुष्यो की इस भीड मे अध्यापक को कहा खोजे और इन भाति भाति के व्यक्तित्वो में अच्छे अध्यापक को कहाँ से पकड निकाले ? इस प्रश्न के उत्तर मे इस बात से सहायता मिलेगी कि हम यह देखे कि जिस काम को मनुष्य करना चाहता है, जिन मूल्यो का वह आदर करता है, जिन गुणो का वह सेवक है या बनना चाहता है, वह किस प्रकार पूरा हो सकता है ? कुछ गुण केवल चीजो मे आकर पूरे होते है। कुछ गुण चीजो और मनुष्यो दोनो मे अपनी विशेषता दिखाते है उदाहरणार्थ सुन्दरता का गुण वस्तुओ मे भी चमकता है और मनुष्य मे भी। सूरत मे भी अपना आकर्षण दिखाता है और आचरण मे भी। कुछ गुण ऐसे होते है कि केवल मनुष्यो मे सम्पूर्णता को पहुँच सकते है जैसे चारित्रिक और धार्मिक गुण। अब जो व्यक्ति ऐसे गुणो का सेवक है जो केवल मनुष्यो मे ही सम्पूर्णता को पहुँच सकते है तो वह स्वय या तो अपने पर ध्यान देगा या औरो की ओर ध्यान करेगा। इनमे से जिसका ध्यान अपने पर जम जाये उसके लिए आवश्यक नही कि वह दूसरो पर भी ध्यान दे। धार्मिक लोग सारी-सारी उम्र एक अपनी ही जिन्दगी को ठीक करने मे खपा देते है। एक अपने मोक्ष की चिन्ता मे लगे रहते है। कुछ तो त्रिकुटी जमा कर अपनी नाक की चोच का ध्यान करते-करते जीवन समाप्त कर देते है। परन्तु जो किसी गुण को अन्य मनष्यो तक पहुँचाना चाहता है उसे अपने सुधार पर भी कुछ न कुछ ध्यान करना होता है, जो किसी को कुछ सिखाना चाहता है उसे स्वय को भी सीखना होता है, जो किसी को कुछ बनाना चाहता है उसे स्वय को भी कुछ बनना होता है। ऐसे मनुष्य की मानसिक बनावट मे दो बाते, सहानुभूति और दूसरो से मेल-मिलाप की इच्छा, पहले दिन से होती है। ये व्यक्ति यूँ कहिये जातीय और सामाजिक मनुष्य होते हैं।

अच्छा अध्यापक

अध्यापक भी इस प्रकार का सामाजिक मनुष्य होता है। यह सत्य है कि प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक मनुष्य नही होता परन्तु अच्छा अध्यापक अवश्य इस ढाँचे में ढला होता है। सामाजिक व्यक्ति होना, दूसरो के जीवन मे उन गुणो का चाहने वाला होना जिन का यह आप सेवक है, औरों को कुछ बनाने की इच्छा, इस के लिए स्वय कुछ बनने या होने की आवश्यकता, यह अच्छे अध्यापक के मस्तिष्क की बनावट का ताना-बाना है। बाजार में इससे मिलता-जुलता माल भी बहुत मिलता है, परन्तु इससे धोखा नही खाना चाहिए। ऐसे अध्यापक भी होते है जिनका मन दूसरो की ओर तनिक भी नही झुकता, इन विशेष गुणो से भी कोई मन का लगाव नही होता। इन्हे बस अपना पेट पालना होता है। दूसरे को कुछ हुनर सीखने की आवश्यकता होती है, ये दुकान लगा देते है। लोग दाम देते है, ये हुनर बेचते है। अनाज बेच कर न कमाया, खेती पर दो पुस्तके लिख कर कमा लिया। इसी अध्यापक के रूप ऐसे में लोग भी होते है। प्राय. अध्यापक के वेश में ऐसे कारीगर होते है जिन की सारी उम्र की कोशिश से कुछ झूठे जाल-साज जो देखने मे तो बहुत अच्छे धार्मिक और सभ्य व्यक्ति हैं, पैदा होते है, परन्तु जिनके अच्छे कार्यो की जड़े उनके मन तक नही पहुँचती। ये लोग झूठे माल पर

अपने कारखाने का ठप्पा लगा देना काफी समझते है और असली धातु के स्थान पर मुलम्मा कर देने पर राजी रहते है।

प्रेम की आवश्यकता

अच्छे अध्यापक के लिए आवश्यक है कि वह दूसरे मनुष्यो से प्रेम रखता हो। उसके मन मे मनुष्य के रूप मे मनुष्य से प्रेम हो। आप इन सच्चे पण्डितो और अच्छे अध्यापको पर दृष्टि डालिये तो इन मे बहुत से कट्टर धार्मिक व्यक्ति नजर आयेगे। सुन्दरता और आकर्षण के प्रेमी कलाकार भी इनकी कतार मे मिलेंगे। परन्तु ये गुण उनकी मानसिक बनावट मे बेलबूटे है, ताना-बाना वही सेवा की रुचि और मानव जाति का प्रेम है।

अध्यापक के जीवन की पुस्तक के मुख्य पृष्ठ पर "विद्या" नही लिखी रहती, "प्रेम" का शीर्षक होता है। समाज जिन गुणो का इच्छुक है उनसे प्रेम होता है, इन नन्ही-नन्ही आत्माओ से प्रेम होता है, जो आगे चल कर इन गुणो को अपनाएगी। इनमे जहा तक और जिस ढग से इन गुणो को पूरा करने का सामान है वह इस मे सहायता देता है, इस काम मे अपने मन मे चैन और आत्मा मे शान्ति पाता है।

मन का रुझान

अच्छे अध्यापक की सब से प्रथम और सब से बड़ी पहचान यही है कि उसके मन का रुझान आप ही आप बच्चो और नवयुवको के बनते हुए व्यक्तित्व की ओर होता है। इन ही मे रह कर उसे शान्ति मिलती है, उन के बिना ससार मे परदेशी की भाति भटकता है। वह केवल पाठशाला की कक्षा मे ही अध्यापक नही होता बल्कि हर समय उस का मन अपने शिष्यो मे अटका होता है। अध्यापक के इस प्रेम की व्याख्या बहुत कठिन है। सम्भव है इस मे अन्य बहुत सी इच्छाए मिली हुई हो, सम्भव है अपने को मनवाने की इच्छा भी उस के मन मे कार्य करती हो। सम्भव है बच्चो का दिल हाथ मे लेने, अपने लिए उन का प्रेम और आज्ञा पालन करने की भावना प्राप्त करने की इच्छा भी इस मे मिली होती हो। अर्थात थोड़ा सा स्वार्थ भी, हाँ क्यो नही, आवश्यक होता होगा और यदि मेल अधिक हो जाये तो वास्तविक जाहिर गुण सम्भव है दब जायें। परन्तु सावधानी से विचार किया जाये तो अच्छे अध्यापक के सारे कार्य मे ऐसे मोल-तोल और हिसाब-किताब का भाग नही होता। अच्छा अध्यापक अपने बरन मे कार्यो को बच्चो ही की तरह प्राकृतिक ढग पर अधिक विचार किये बिना ही कर डालता है। जो कार्य अपना उद्देश्य आप स्वय होते है और अपने से बाहर कोई उद्देश्य नही रखते उन्हे खेल कहते है। हाँ, तो अध्यापक का काम बहुत कुछ तो खेल ही खेल मे पूरा हो जाता है। उसका कार्य प्राय अपना पारितोषिक आप होता है। ससार वालो, नापतौल करने वालो की दृष्टि मे यह मूर्खता हो, तो बेचारा अच्छा अध्यापक इस मूर्खता मे फँसा होता है। यूरोप के एक प्रसिद्ध अध्यापक पेस्टोलोजी ने एक स्थान पर अपनी और एक हिसाबी-किताबी दुनियादार की बातचीत अच्छी लिखी है। पेस्टोलोजी ने कहा है "मै तो अपने जीवन मे सदा कुछ बच्चा ही सा रहा। शायद यही बात थी कि लोग हजारो रग से मुझ से [illegible] रहे।" बुद्धिमान दुनियादार बोला, "यदि आपकी दशा यह है तो अच्छा हो किसी कोने

ा जाकर बैठे रहे, अपनी मूर्खता पर लज्जा करे और बस चुप रहे।" उत्तर मिला, "हाँ महाशय, शायद ग्रापका विचार ठीक है।" दुनियादार भला कब चुप रहने वाला था, "तो फिर ऐसा करते क्यों नही ?" ।स्टोलोजी ने कहा, "हाँ महाशय। ऐसा भी कर चुका हूँ, लेकिन क्या करूं। अब भी कुछ ऐसे मनुष्य ाडे है जिनसे लोग इस ही प्रकार खेलते है जैसे मुझ से खेलते है, कभी कभी इन से कुछ खेलने को मन चाहता है।" दुनियादार बुजुर्ग इस सादगी की ताब न ला सके। और बेतकल्लुफ हो कर बोले, "यार तुम तो अब तक बस नन्हे बच्चे ही हो।" तो पेस्टोलोजी क्या अच्छा उत्तर देता है, जिसमें अच्छे अध्यापक की आत्मा झलकती है, "हाँ महाशय, बच्चा ही हूँ और मरते दम तक बच्चा रहना चाहता हूं, तुम्हे क्या बताऊँ मन को इससे कैसी शान्ति मिल सकती है कि मनुष्य थोडा-थोडा बच्चा भी है। ऐसा यकीन कर सके, भरोसा कर सके, प्रेम कर सके, गलती हो जाये, भूल-चूक हो, मूर्खता हो तो इनसे लौट आये और आपके सारे बुद्धिमान लफगो से अधिक भोला, अधिक अच्छा और अन्त में चल कर अधिक बुद्धिमान भी निकले। महाशय, इसके विरुद्ध बहुत कुछ देखा और बहुत कुछ सुना, मगर फिर भी इसमे बडा आनन्द है कि मनुष्य मनुष्यो के प्रति अच्छे से अच्छा विचार रखे और चाहे रोज फरेब खाये, रोज नये सिरे से मनुष्यो के मन की सुन्दरता पर विश्वास करे और बुद्धिमानो को और मूर्खो को जो कि दोनो पथ भ्रष्ट होते है, क्षमा करे।

बचपन भी जरूरी

यह कथन एक अच्छे अध्यापक का हो सकता है। बुद्धिमान लोग इसे मूर्खता जाने तो ठीक, मूर्खता ही सही और इसे बचपन बतायें तो बेशक बचपन है और जब तक अध्यापक में बचपन है वह बच्चो के भेद जानता है और इनके जीवन में लगातार सम्मिलित हो कर इन को बलदी की ओर ले जा सकता है। जिस अध्यापक मे यह बचपन नही होता वह बच्चो के मन की बोली नही समझता, न उन्हे अपनी समझा सकता है। मूर्खता से जिधर पग उठाता है, तो कुछ न कुछ कुचल डालता है। कुछ न कुछ तोड़ डालता है। जिस अध्यापक मे शिक्षा सम्बन्धी खोज का चाव हो या निरीक्षण करने की अधिक रुचि हो वह इस के बचपन को कम कर देता है। वह पहले से अधिक उत्तम ज्ञानवान हो जाता हो या वह चीज जिसे "माहिरे तालीम" कहते है, परन्तु अध्यापक वह पहले से खराब होता है।

प्राकृतिक लगाव

हाँ, मैने अध्यापक की जो यह पहली पहचान बताई कि उसे बच्चो और नवयुवको से प्राकृतिक लगाव और प्रेम हो और वह बच्चो मे बच्चा बन सके तो यह पहली और आवश्यक बात है परन्तु केवल यही काफी नही। प्रत्येक अच्छे अध्यापक मे इसका होना आवश्यक है, पर प्रत्येक वह व्यक्ति जिन मे यह हो, अच्छा अध्यापक नही होता।

प्रेम के इस मिलान को एक विशेष प्रकार से प्रयोग करने की योग्यता भी होनी आवश्यक है। यह योग्यता लगातार कार्य करने और प्रयासो से उन्नत हो सकती है, परन्तु होती यह भी प्राकृतिक है— ईश्वर की देन। इसे बहुत सी विद्याओ से सहायता भी मिलती है। शिक्षा और प्रवृत्तियो आदि के सिद्धान्तो की जानकारी से भी काम निकलता है, परन्तु वास्तविक बात यह है कि अच्छे अध्यापक

मे बच्चो के व्यक्तित्व को समझने की योग्यता होना चाहिए। जब कोई किसी बढती हुई, बदलती हुई जीवित वस्तु पर प्रभाव डालना चाहे जैसा कि अध्यापक चाहता है तो उस वस्तु को समझना अत्यन्त आवश्यक है। अच्छे अध्यापक मे वह गुण होना चाहिए जो अच्छे ड्रामा लिखने वाले, अच्छे उपन्यास लिखने वाले, अच्छे इतिहासकार मे होता है कि वह एक साधारण सी घटना से, एक जरा सी बात से, एक साधारण सी हरकत से, मुख के रग से, आँखो के प्यार से, सक्षेप मे प्रकट करने के साधारण ढग से पूरे मनुष्य की दशा का पता लगा लेते है।

मानवीय प्रचलित सिद्धान्त यहाँ आ कर धोखा देते है और परदा वन जाते है। कोई प्राकृतिक मस्तानी शक्ति होती है जो इन नन्ही-नन्ही खिडकियो से झाँक कर आत्मा की गुप्त दशा को देख लेती है और समझ लेती है। अध्यापक का दूसरी पहचान यह है कि उसमे ये मस्तियाँ हो और अनुभव करने की यह तेजी।

सूझ-बूझ

परन्तु समझ लेना, जान लेना भी तो काफी नही। समझ कर जान कर ठीक ढग से प्रभावित करने की योग्यता भी तो होनी चाहिए। जाँच के विना इलाज नही होता, परन्तु किसी को केवल जांच आती हो और इलाज न आता हो तो वह भी तो स्वास्थ्य प्रदान नही करता। अध्यापक की तुरन्त उपज होनी चाहिए कि मामले को समझते ही करीब-करीब विना सोच-विचार किये ठीक उपाय उसकी समझ मे आ जाये। पुस्तके पढ कर वच्चो पर प्रभाव डालने वाले सोच-विचार करते रहते है और मामले और उसके उपाय को अनगिनत पुस्तकीय सम्भावनाओ के गोरख-धन्धे मे भटकते ही रहते है और अच्छा अध्यापक सूझ-बूझ से ठीक उपाय कर गुजरता है। कभी हँस कर, कभी रुष्ट हो कर, कभी प्रशसा कर के, कभी हलका सा बुरा-भला कह कर, कभी उकसा कर, कभी थोडा सा रोक कर, कभी अपनी ओर खेंच कर, कभी अपने से दूर कर के, कभी नुकता-चीनी से और कभी टाल कर वह अपना काम कर लेता है। इन सब अवसरो के लिए पुस्तको मे हिदायते दर्ज होगी इसलिए कि पुस्तको मे तो अब सब कुछ दर्ज है। पर जिस समय काम पडता है तो "लाल पुस्तक" के देखने का अवसर नही होता और यदि उनको आम हिदायत याद हो तो इस आम नियम को इस खास मामले पर लगाना भी तब ही सम्भव होता है जब कि अध्यापक मे यह प्राकृतिक सूझ मौजूद हो।

वे वने व्यक्तित्व

सुधारको और पैगम्बरो की भाँति अध्यापक को वने वनाये व्यक्तित्व से वास्ता नही पडता वल्कि उन से सरोकार होता है जो अभी वन रहे है। सुधारक और पैगम्बर तो वने हुए व्यक्तित्व से अपना काम लेते है। उन्हे उन विश्वासो, रीतियो, पाठशालाओ और विचारो का सेवक वना देते है, जिनके फैलाने या स्थापित करने के लिए वे आये है, जो इन्हे कत्ल करने निकलते है उनके जीवन का रुख वदल कर उन्हे विरोधियो के वास्ते अभिशाप वना देते है, जो पहले एक ओर झुकता था उसका सिर दूसरे के सामने झुका देते है। अध्यापक का वास्ता पडता है वे वने व्यक्तित्व से उसे। उसे अपने शिष्य के वनने वाले व्यक्तित्व का रुख समझना और उसकी उन्नति की सम्भावनाओ का अनुमान करना पडता है और उसको उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँचाने मे सहायता करनी होती है। न केवल वुद्धि की

डा० जाकिर हुसैन व्यक्तित्व और विचार

दृष्टि से ये सम्भावनाएँ दिखाई देती है कि मनुष्य के जीवन मे न जाने अबुद्धिमानी के भाग सम्मलित होते हैं; न केवल जाँच, खोज और तीव्र बृद्धि पर अध्यापक भरोसा कर सकता है। यहाँ जाँच और बुद्धि को मिलाने की आवश्यकता है। अच्छा अध्यापक विभिन्न साँचो की जानकारी रखता है जिनमें मनुष्य का चरित्र ढलता है और इस साधारण जानकारी के साथ बच्चे की मुख्य दशा का निरीक्षण उसे ठीक नतीजे तक पहुँचा सकता है। इसलिए पहले वर्णन किए हुए गुणो के साथ अच्छे अध्यापक में ठीक निरीक्षण का गुण भी होना चाहिए जिसके विना वह अपने शिष्य के व्यक्तित्व की पूरी जाँच नही कर सकता। इसके विना पूर्ण उन्नति मे सहायता नही दे सकता। इस निरीक्षण मे प्राय: स्वय अध्यापक का बनाया हुआ व्यक्तित्व रोक बन जाता है। मनुष्य मुर्दा चीजो का निरीक्षण तो कुछ बेतकल्लुफी से कर सकता है परन्तु मनुष्य के शरीर का निरीक्षण कैसे बेतकल्लुफी से हो सकता है ? इसके लिए स्वय अपने से लडना और अपने को दबाना होता है। परिश्रमी और बुरी रुचि वाला, सीधे और शरीर, आज्ञाकारी और अवज्ञाकारी, तेज और सुस्त, हँसमुख और रोनी सूरत सब को एक दृष्टि से, बेतकल्लुफी के साथ देखना सरल कार्य नही। परन्तु अच्छे अध्यापक का काम भी सरल नही होता और यह सम्मान तो प्रत्येक को प्राप्त भी नही हो सकता।

अध्यापक का मुख्य कार्य चरित्र की तैयारी और सारी शिक्षा का बुनियादी उद्देश्य यही होता है कि बच्चे के इरादे और कार्य करने की शक्ति को किसी सीधी राह पर डाल दे और सच्चे सिद्धान्त के प्रकाश मे, अच्छी आदतो की सहायता से उस के चरित्र मे, विचार मे अटलता और पक्कापन पैदा कर दे। जो व्यक्ति अध्यापक बन कर शिक्षा का यह काम करता है उसे स्वय भी तो ज्ञात होना चाहिये कि वह चरित्र को किस राह पर डाले। खुद इसके चरित्र का भी तो कोई रग, स्वय इसके जीवन का भी तो कोई अपरिवर्तनशील ढग होना चाहिये। इस के प्रभाव से बच्चे में अटलता भी तभी पैदा होगी कि स्वय इसमें अटलता हो। जो थाली के बैंगन की तरह इधर-उधर लुढकता हो वह दूसरो को एक दिशा मे कैसे चला सकेगा। चरित्र की अटलता के विभिन्न प्रश्नो पर विवाद करने का यह अवसर नही। इतना कहना काफी है कि अच्छा चरित्र उसी को नसीब होता है जिसके इरादे मे कोई मजबूती हो, जिसकी राय मे पक्कापन हो, जो सही हुक्म लगा सके और ठीक तमीज कर सके, जिसके जजबात मे लताफत हो और जो दूसरो के हाल को इस लताफत की वजह से आसानी के साथ समझ सके, फिर जिसमें इन गुणो के लिए, जिन्हे वह जानता है, जोश और उत्साह हो। और तीन गुणो का वर्णन तो पहले किसी न किसी सम्बन्ध में हो चुका है। यह अन्तिम जोश और उत्साह का गुण भी याद रहे कि अध्यापक के लिए बहुत जरूरी है। अच्छे अध्यापक की जजबाती जिन्दगी मे गुंजाइश भी होती है, गहराई भी और टिकाऊपन भी। उसकी आत्मा में सच्चाई, सुन्दरता, नेकी, पवित्रता, न्याय और स्वतन्त्रता के दृश्यो से गर्मी पैदा होती है जिससे वह दूसरे दिल को गर्माता है और जिसमे तपा-तपा कर अपने शिष्यो के चरित्र को अच्छा बनाता है।

बहुत बड़ा फर्क

इस स्थान पर एक बात साफ कर दूँ। शिक्षक अपने प्रभाव से शिष्यो को जो रग देता है उसमे शायद किसी को शासन और शक्ति की, जबरदस्ती की झलक नजर आये, क्योंकि शासक भी दूसरो के इरादो

को अपने मुताबिक बनाते है और अध्यापक भी दूसरे के जीवन को अपने पद-चिन्हो पर चलाने के उपाय करता है और दूसरो से अपने इरादे पूरे कराता है। लेकिन यह धोका है। बात यह नही। अच्छे शिक्षक मे शक्ति और शासको की आदत का एक कण भी नही होता। शासको और इनमे पृथ्वी और आकाश का फर्क है। शासक जबरदस्ती करते है, यह सन्तोष करता है। वे मजबूर करके एक राह पर चलाते है। यह स्वतन्त्र छोड कर साथ लेता है। एक के अत्याचार और जबरदस्तिया, दूसरे की मुहब्बत और सेवा। एक का कहना भय से माना जाता है, दूसरे का रुचि से। एक आज्ञा देता है, दूसरा राय। वह गुलाम बनाता है और यह साथी। इन गुणो के अतिरिक्त और भी बहुत से गुण अध्यापक मे पाये जाते है। अच्छा शिक्षक होने के लिए यह अच्छा वक्ता भी होता है। और ऐसे ही बहुत से छोटे-छोटे गुण और रखता है। मगर मुख्य अन्तर यही है कि इसके जीवन की जडे प्रेम के सरोवर से सिचती रहती है इसलिए वह वहा आशा रखता है, जहा दूसरे निराश हो जाते है, वहा ताजा दम रहता है जहाँ दूसरे थक जाते हैं, इसे वहाँ रोशनी दिखाई देती है जहाँ दूसरे अन्धेरे की शिकायत करते है। यह जीवन की परिस्थितियो को भी देखता है। लेकिन इनकी वजह से ऊंचाइयो को भूल नही जाता और बडे की कदर के के साथ-साथ छोटे के महत्व को ओझल नही करता। मनुष्यता मे मानव श्रेष्ठता का विचार भी आँखो के सामने रखता है, मगर नादान और विवश बच्चे की सेवा को अपने जीवन का गौरव मानता है। बच्चे की ओर से जब सारा ससार निराश हो जाता है तो बस दो व्यक्ति है जिनके मन मे आशा शेष रहती है' एक उसकी माता और दूसरा उसका अध्यापक। ●

तीसरा रास्ता

अहिसा और विज्ञान खयाली और बाते भी हो कर रह जा सकते है, किताबी चीजे बन जा सकते है और बहुतो के लिए है भी। गाँधी जी की अहिसा और विज्ञान खयाली, किताबी न था। इसलिए उन्होने एक तीसरा रास्ता बनाया था। यह काम का रास्ता है। अहिसा को भी जीवन मे बरतना और विज्ञान को भी जीवन के लिए काम मे लाना, उन्होने अपने जीते जी यह कर के भी दिखाया था।

—डा० जाकिर हुसैन

तिब्बी तालीम

[राजकीय तिब्बिया कॉलेज, पटना मे १९३८ मे डा० जाकिर हुसैन का दीक्षान्त भाषण]

सज्जनो ! आपकी आज्ञा थी, उपस्थित हूँ और कृतज्ञ हूँ कि आप ने याद फरमाया और इस सम्मानित उत्सव में भाषण देने का सम्मान प्रदान किया। परन्तु सही निवेदन करता हूँ कि अभी तक मै ठीक-ठीक नही समझा कि इस राजकीय तिब्बिया महाविद्यालय के प्रमाण-पत्र बाँटने के अवसर पर मै इस कार्य के लिए क्यो बुलाया गया हूँ ? इस गुत्थी को सुलझाने का प्रयास किया तो विचार हुआ कि कही मेरे नाम के साथ जो कुछ दिन से डाक्टर शब्द जुड गया है उस से तो धोखा नही हुआ ! कभी-कभी ग्रामो और कस्बो मे लोगो ने मुझ से नब्ज देखने और नुस्खा लिखने का आग्रह इस ही धोखे मे किया है। परन्तु हमारे देश मे तो यूनानी तिब्बियो और एलोपेथिक डाक्टरो मे कुछ ऐसी बहुत बनती भी नही है कि सन्देह मे मुझे यहाँ बुलाया जाता।

फिर विचार हुआ कि शायद यह कारण हो कि एक शिक्षा सस्था का उत्सव है। मेरा भी एक शिक्षा सस्था से सम्बन्ध है। शिक्षक और शिक्षार्थी का सम्बन्ध, शिक्षा और दीक्षा का कार्य और इस का उत्तरदायित्व अधिकतर एक सा ही होता है। चाहे शिक्षा केन्द्र मे रहन-सहन, राजनीति, दर्शन और सभ्यता का पाठ हो या व्याख्या एव अङ्गों की दुर्बलता, तिब्ब एव चीर फाड का, परन्तु आज कल प्रत्येक कलाकार अपनी-अपनी कम्पनी मे कुछ ऐसा मस्त रहता है और शिक्षा केन्द्रो मे भी कुछ ऐसी बाते दिखाई देती है कि इस का भी भली प्रकार निश्चय नही हो सका।

फिर सन्देह हुआ कि शायद मुझे, सम्भव है, रोगियो के उस दल का प्रतिनिधि जानकर

आप ने निमन्त्रण दिया हो जो आप की उच्च कला से लाभ उठाता है और आप के नए प्रमाण-पत्र पाने वालों के लिए कम से कम कुछ वर्ष और आप के कुछ मजेदार साथियो के लिए उम्र भर अभ्यास का काम देता है। परन्तु हमारे देश मे वास्तविक और काल्पनिक रोगियो की भी कुछ ऐसी कमी नही है कि सुनने वाले की दृष्टि मुझ तक पहुँचती।

किसी एक कारण पर तबीयत पूरी तरह जमी नही तो मैंने सोचना बन्द किया और यह तय किया कि जो तीन कारण समझ मे आये है उन्ही को ठीक मान कर आप के सामने कुछ निवेदन कर दूँ। पहली बात यह है कि नवीन पश्चिमी तिब्ब और यूनानी तिब्ब मे क्या वास्तविक बुनियादी अन्तर है, दूसरे यह कि मेरी राय मे यूनानी तिब्ब की शिक्षा मे किन बातो का विशेष ढग पर विचार होना चाहिए और तीसरे यह कि भारत का प्रत्येक साधारण नागरिक इन तिब्बियों मे, जो आप के महाविद्यालयो से पढ कर निकलते है, क्या आशा रखता है।

अनभिज्ञता

मेरा विचार यह है कि नये पाश्चात्य तिब्ब और यूनानी तिब्ब से मनुष्य जितना अनजान होगा उतना ही उनके अन्तर पर जिद करेगा। इनको अच्छी तरह जानना होगा कि ये वास्तव मे एक, बस शाखा मे भिन्न है। सत्य यह है कि पश्चिमी तिब्ब, यूनानी तिब्ब की बेटी है। बेटी ने माँ की बहुत सी वस्तुएँ ले ली हैं। परन्तु कुछ छूट भी गई है। बेटी बडे घर ब्याही है साधनो की कमी नही, उसने बहुत कुछ नई दौलत प्राप्त कर ली है, प्रारम्भ मे कुछ नई दौलत का गर्व था, कुछ कम आयु होने के कारण अनुभव की कमी, माँ की जो वस्तुएँ रह गई थी, उन्हे जरा घृणा से देखने लगी थी या उनकी ओर से लापरवाह हो गई थी, परन्तु है होशियार ओर बुद्धिमान। अब भी इन वस्तुओ को ले सकती है और शायद ले लेगी। माँ जरा चक्कर मे आ गई, समय परिवर्तन हो गया, साधनो का अभाव रहा इसलिए जो कुछ अपने पास था उस को भी सभाल कर न रख सकी। बद हाली मे साहस भी कम हो जाता है नई वस्तुओ को प्राप्त करने का हौसला भी नही रहता, कुछ मिजाज भी चिडचिडा हो जाता है, इसलिए बेटी की वस्तुओ की ओर एक आँख देखना भी उसे न भाता था।

परन्तु बेटी की दौलत इल्म की दौलत है जिसमे किसी का इजारा नही होता। यह उसी को मिलती है जो उसे बरतने को तैयार हो और उसी के पास रहती है जो उसे बढाने का प्रयास करे और दूसरो को देने पर तैयार हो। इधर मा का मिजाज भी सम्भल रहा हे और जमाने का रग भी, वह क्यो न इन वस्तुओ को अपना लेगी।

बेशक इन अपनाने के पश्चात् भी दोनो मे भूगोल ओर रहन-सहन के वातावरण के कारण कुछ अन्तर रहेगा, पर इसमे कोई हर्ज नही। उदाहरणार्थ बेटी के घर मे जडी-बूटियाँ कम होती हैं और बाहर से लानी होती है, प्रकट है वह इस उपाय मे रहती है कि इन के जौहर (सत) निकाले ताकि सरलता से इधर-उधर भेज सके। फिर तबीयत भी जरा व्यापारिक है। धन मे सम्बन्ध है। इस की दृष्टि तो हरदम हर वस्तु से लाभ पर लगी रहती है।

अधिक लाभ का लालच

दवाओ से नि सन्देह मनुष्य का दु ख दर्द कम होता है । परन्तु लाभ भी तो उठाना है और जहा तक हो सके अ धिक लाभ । बडे पैमाने पर व्यापार करना है । कारखाने में वर्ष के बारह मासो में एक ही दवा बनती रहे तो क्या कहना । ऐसा करने में प्रकृति की प्रसिद्ध वस्तुओ से सम्बन्ध हो तो कष्ट होता है, इसलिए यू भी धन की रुचि दौलत पैदा करने के पूरे क्षेत्र में जिन्दा से मुर्दा की ओर है । वह मकान और पुल और जलयानो में लकडी के स्थान पर लोहा लगाना चाहता है, सरसो और तिल्ली के तेल के स्थान पर मिट्टी के तेल से काम चलाता है और फूलो के स्थान पर तारकोल में रंगो के कोष खोज निकालता है । प्रकट है कि इसकी दृष्टि इस पर है कि जडी-बूटियो से छुटकारा भी मिले और अप्राकृतिक तत्वो से काम निकले तो अधिक उत्तम है । प्राकृतिक तत्वो को भी रसायनिक ढंग पर बनाया जा सके तो अच्छा है और यह न हो सके तो जड़ी-बूटियो के सत निकाल कर और यू तोल कम कर के और माल मे समानता उत्पन्न कर के उनकी बिक्री का क्षेत्र तो बढ़ा ही लिया जाय ।

माँ का घर जडो बूटियो से भरा पडा है । इन में बहुतसियो को तो बेटी ने अभी बरता ही नही । परन्तु माँ के देश में चारो ओर निर्धनता है । यहाँ महगी दवाइयाँ बेच कर लाभ उठाने का विचार करे तो यहा के निर्धन लोग तो दवा को तरस-तरस कर ही मर जायें । यहाँ आदमी इनकी प्राकृतिक सूरत को बदल कर टके सीधे करने की अधिक चिन्ता न करे तो क्या बुरा है । फिर दवाइयो की प्राकृतिक किस्म देने से उनका बहुत से कष्टो से भी बचाव हो जाता है । माँ की दवाओं का कोष बेटी से कही बड़ा है । उस की दवाओ के प्रभाव शताब्दियो के अनुभवो से जाचे और परखे जा चुके है । बेटी को नई दवाओ को बरतते अभी जुमा-जुमा आठ दिन हुए है । नि.सन्देह कुछ बीमारियो के लिए अचूक है, परन्तु अभी किसे ज्ञात है कि इन के प्रयोग से कही जीवन के काल पर तो प्रभाव नही पड़ता या शारीरिक बनावट में इन से कोई और बुरा प्रभाव तो इसके पश्चात् उत्पन्न नही होता । इस बेटी को अपनी वस्तुओं पर बहुत इतराना न चाहिये और माँ को उनका अनुभव करने मे अधिक लज्जा नही करनी चाहिये ।

सक्षेप में दवाओ के सम्बन्ध में आपसी लेन-देन में यूनानी तिब्ब को कुछ देने का ही अधिक अवसर है । इसके कार्य करने वालो का धर्म है कि जो अनगिनत जडी-बूटियाँ इनके प्रयोग में है और जिन पर इनका हजारो वर्षो का अनुभव है उनके प्रभावो की नई हकीमी खोज करे और उनके गुण पश्चिमी तिब्ब को बताये । नये ढग से रसायनिक खोज कर के उनके प्रभावो और गुणों का अधिक शुद्ध मूल्य स्थापित करे ।

यूनानी तिब्ब ने ही नये तिब्ब की नीव रखी । जब यूरोप सो रहा था, तो इसने यूनानियों की विद्या की रक्षा की और उसे उन्नत कर के कहा से कहा पहुँचा दिया । और फिर यूरोप वालों के सुपुर्द किया । आज भी वह अपने दवाइयों के कोष से पश्चिमी तिब्ब को बहुत वर्षो दे सकती है । पिछले वर्षो में जो कार्य इस सबध में हमारे देशमें हुआ है, विशेषकर आयुर्वेदिक और यूनानी तिब्बी कालेज, देहली की खोज सम्बन्धी शाखा में डा० सलीमउलजमा साहब सद्दीकी की खोजो ने अपनी ओर पश्चिमी बुद्धिमानो को

आकर्षित किया है । हमे आशा रखनी चाहिये कि यह सिलसिला बढेगा और यदि हम अपने पुराने शिष्यो से बहुत कुछ लेंगे तो उन्हे कुछ न कुछ दे भी सकेंगे । आपके तिब्ब और नये तिब्ब की सबसे महत्वपूर्ण समानता तो यह है कि दोनो का आधार निरीक्षण पर है । यूनानियो और उनके पश्चात मुसलमानो ने इस कला की सब से बडी सेवा यही की है कि वहम और गुमानो के गोरख-धन्धे से निकाल कर निरीक्षण और परीक्षण पर इस नीव को सुदृढ किया । बुकरात और जालीनूस से कुछ अधिक ही राजी और इबने सीना के प्रति तिब्ब कृतज्ञ है कि उन्होने इस कला को हकीमी नीव पर स्थित किया । फिर इस नीव पर यूरोप ने तामीर को और ऊचा उठाया । इस हकीमी नीव के लिये रोग और इलाज का निरीक्षण क्षेत्र बहुत आवश्यक है । आज नई तिब्ब जिस लम्बे चौडे पैमाने पर निरीक्षणो को इकट्ठा कर रही है उससे मनुष्य आश्चर्य मे पड जाता है । परन्तु आपके पास भी हजारो वर्षो के जमा किये हुए निरीक्षणो का कोष है । अफसोस कि इसका बहुत सा भाग निरीक्षको के साथ नष्ट हो गया, परन्तु फिर भी आपकी खानदानी और शिक्षा की परम्पराओ मे बहुत कुछ शेष है और आपकी प्राचीन पुस्तको मे विभिन्न देशो और विभिन्न दशाओ मे जमा किये हुए निरीक्षणो का इतना ढेर है कि आज फिर ससार के सामने लाया जाये तो शायद तिब्ब की फिर से उन्नति मे और इस मे खोज करने वालो को नये मार्ग समझाने मे बडी सहायता दे सके । हमारा कर्तव्य है कि इन निरीक्षणो की ऐसी ध्यान देने योग्य बातो पर अडने के स्थान पर जिन को इनके पश्चात निरीक्षणो ने झूठा सिद्ध कर दिया है, स्वय इन निरीक्षणो को ले और इन पर हकीमी कार्य करे । रोगो की पहिचान और इनके इलाज के सम्बन्ध मे आप की पुस्तको मे जो व्याख्याये दर्ज है, जैसे अबुबक्र, मोहम्मद जकर या राजी को "हादी" मे जिसकी कलमी पुस्तके आज यूरोप के कोई आधे दर्जन पुस्तकालयो मे बिखरी पड़ी है और किसी मेहनती खोज करने वाले की बाट जोह रही है । उनको पढकर आज भी लाभदायक फल निकाले जा सकते है । या आप का नब्बाजी का फन है, इसमे हजारो वर्षो के निरीक्षण का निचोड है और इन वस्तुओ से पश्चिम के दक्ष लोग दिल के रोगो को आज फिर से मालूम कर रहे है । जिस चीज पर आज से कुछ वर्षों पहले और उन से अधिक उन के जाहिल चेले हसा करते थे, उसकी बारीकियो का पता चलाने पर आज स्वय नित नये औजारो की सहायता से ध्यान देते है । आप का फन अपने हजारो वर्षो के निरीक्षण की सहायता से इस नई खोज की सफलताओ को बहुत से मार्ग बता सकता है ।

वातावरण का प्रभाव

कहते है कि हर फन पर रहन-सहन के वातावरण का प्रभाव भी होता है । आपकी तिब्ब जिस काल मे बनी थी वह व्यक्ति से अधिक समाज का और अ ग से अधिक पूर्णता के महत्व का काल था । पश्चिमी तिब्ब की उन्नति उस समय हुई जब यूरोप, अ ग या भाग को मानने वाला काल था । गोरतत्त्व, निबन्ध दर्शन विज्ञान सब की माँग यह थी कि ध्यान पूर्णता की ओर से हट कर अ ग की ओर आये । इस अनुमान के उत्पन्न करने मे भी अवश्य अरबी और इस्लामी मस्तिष्क का कुछ भाग था और यह बात सत्य की सीमा मे आती है, परन्तु अधिकता तो प्रत्येक वस्तु की बुरी होती है [illegible] हुआ [illegible] प्र ग पर ध्यान देने ने कुल की ओर से गाफिल कर दिया । ये लोग पेडो को देखने

मे ऐसे तन्मय हुए कि जंगल आखो से ओझल हो गया । तिब्ब में भी यही हुआ । रोगों की एकाङ्गी खोज और विशेष रोग के विशेषज्ञो के पृथक् कार्य का फल यह हुआ कि रोगी के पूरे व्यक्तित्व पर से दृष्टि हट गई । आपके तिब्ब का मार्ग कुछ और था ।

अफलातून से एक प्रसिद्ध बातचीत में सुकरात ने पूछा है, "क्या तुम ख्याल करते हो कि कुल महत्व का पता लगाये बिना तुम आत्मा के महत्व को समझ सकते हो ?" तो उसने उत्तर दिया कि 'जी, सुकरात का कथन तो यह है कि आत्मा तो आत्मा है । शरीर का महत्व भी कुल के विचार से ही समझा जा सकता है ।"

आज पश्चिमी जिन्दगी के साचे बदल रहे है । जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इस समय अश से कुल की ओर रुख है । इस लिए मेरा तो ख्याल है कि पश्चिमी तिब्ब, जो एक सत्य मार्ग पर तनिक अनुचित सीमा तक बढ गई थी वहा से लौटेगी और आप की तिब्ब को यह विशेषता कि रोगी के पूरे व्यक्तित्व को सामने रख कर उसके एक-एक अङ्ग के दु ख-दर्द का इलाज खोजती थी, फिर नये तिब्ब के अभ्यास मे वापस आयेगी और क्या आश्चर्य है कि मिजाजो और तबीयतो की वह दृष्टि जिससे आप रोग की खोज और इलाज की तजवीज मे क्या कुछ सहायता नही लेते, फिर नये तिब्ब मे अधिक विस्तार और कारणो सहित स्पष्ट होकर प्रवेश करे ।

परन्तु जहा आपकी ओर से नये पश्चिमी तिब्ब पर ये प्रभाव पड़ सकते है, वहा इसकी भी आवश्यकता है क नये तिब्ब ने जिन पुरानी अशुद्धियो को रद्द किया है, जो नई बाते मालूम की है उन्हे आप खुले मन से स्वीकार करे । खोज की नयी विधियो को अपनाये जोकि आप ही की पुरानी परन्तु भुलायी हुई विधिया है, नई हकीमी बोलचाल के ढंग सीखे कि अपनी समझाये और दूसरे की समझ सके । योग्यताओ की विरुद्धता से ही न जाने कितने परदे पड गये है । एक ही बात कहते है और दूसरो को विरोधी समझते रहते है । आप के पास जो कुछ है दीजिये और उनके पास जो कुछ है लीजिये । विद्या उसकी सम्पत्ति होती है जो इसे खोजता है और इसे प्रयोग करता है । अपनी पुरानी पुस्तकों को झाड़ डालिये । इन से अभी बहुत कुछ सीखा जा सकता है । इनसे सीखिये और दूसरो को सिखाइये । दूसरो की पुस्तको मे जो है उसको अपनी पुस्तको मे लिखिये । आपके पूर्वज यदि उस ही पर संतोष करते जो उन के पास था, तो उनका "फन" कहा होता ? उन्होने तो हनीन बिन इसहाक और ईसा बिन अहिया और साबित और इब्राहीम के साथ अनुवाद कर्ताओ की सेना लगा दी थी और जहा से जो मिला अपनी भाषा में लिख लिया और फिर उस की बुनियाद पर आगे कदम बढाया । आज यूनानियो की बहुत सी खोजे संसार को अरबी अनुवाद के द्वारा मिल सकती है । आपके "फन" के बाबा आदम जालीनूस की व्याख्याएँ आज यूनान में नायाब है और अरबी अनुवाद द्वारा ही ससार तक पहुंची है । ससार के परिवर्तनो को पूर्व ही से कौन देख सकता है । लेकिन शायद नये पश्चिमी तिब्ब की वस्तुएँ आने वाली पीढियो को भारतीय अनुवाद से पहुचे । परन्तु ऐसा तब ही हो सकता है कि आप मे विद्या के लिए वही लगन हो जो आपके पूर्वजो को थी और सीखने का वही उत्साह हो जो प्रत्येक स्थान पर और प्रत्येक व्यक्ति को अच्छी

बात सीखने को तैयार रखता है। इस समय हमारे देश मे 'दोनो' दलो मे बिना भेदभाव ऐतिहासिक दृष्टिकोण आवश्यकता है। यह पैदा हो जाय तो दोनो एक दूसरे से लाभ उठाये और तिब्बिया कालेज मे प्रमाण पत्र वितरित करने के अवसर पर किसी डाक्टर और मेडिकल कालेज के उत्सव मे किसी यूनानी तिब्ब को बुलाने मे दोनो हिचकिचाहट न करे।

जिम्मेदारी

मैने ऊपर जिन गुणो का वर्णन किया है अर्थात् अपने ऊपर विश्वास और दूसरे से सीखने की भावना, विशाल दृष्टि और बिना भेदभाव उनके पैदा करने का काम बहुत कुछ तिब्ब के शिक्षा केन्द्रो के जिम्मे है। आज्ञा दीजिये कि यूनानी तिब्ब की शिक्षा के सबध मे कुछ विचार सक्षेप मे प्रस्तुत कर दूँ। पहली बात जिसका कहना जरूरी समझता हूँ यह है कि इन शिक्षा केन्द्रो को हरदम यह याद रखना चाहिये कि तिब्ब एक "फन" है, विद्या पर आधारित। इसके शिक्षा पाने वाले को इसे विद्या की तरह जानना और "फन" की तरह सीखना चाहिये। विद्या सत्य का पता लगाना चाहती है दूसरे के कहने पर सदेह करती है। फिर अपने निरीक्षण और सोच विचार से इस सन्देह का हल ढूँढती है और जब उसे मिल जाता है तब ही उसे सन्तोष होता है। 'फन' किसी उद्देश्य के प्राप्त करने के लिए शुद्ध साधनो की खोज करत हे और उन्हे प्रयोग करने की विधियाँ निकालता है। 'फन' बताता है कि यह कैसे हो सकता है। विद्या बताती हे कि क्यो ऐसा हुआ। तिब्ब मे विद्या के बिना 'फन' अन्धा रहता है और फन के बिना विद्या बेकार। अच्छे तिब्बी शिक्षा केन्द्र का काम यह है कि तिब्ब की विद्या और तिब्ब का फन दोनो सिखाये। यह आवश्यकता इस कारण से और भी महत्वपूर्ण है कि इस 'फन' से अपरिचित दावेदारो की दुनिया मे कभी कमी नही रही। प्राचीन काल से हर व्यक्ति ने इसमे ध्यान दिया और आज तक करीब-करीब हर रोग, और प्रत्येक रोगी की सेवा करने वाले नुस्खो मे परिवर्तन की प्रार्थना करना और खोज की बात करना वह अपना जन्म सिद्ध अधिकार समझता है। किसी रईसका किस्सा है कि उन्हे एक बार ख्याल आया कि आओ याद करें कि नगर मे कौन से धन्धे वाले सब से अधिक है। इन दिनो संख्या और गिनती तैयार करके छपती नही थी। उन्होने अपने मित्रो और सहयोगियो से पूछा। किसी ने कुछ बताया किसी ने कुछ। दरबार के मसखरे ने कहा "हूजूर, तबीब सबसे ज्यादा है।" तबीब इस शहर मे ऐसे बहुत थे नही। सब ने इस बात को काटा तो मसखरे ने कहा, "बहुत अच्छा जिन्दगी है तो किसी दिन अपने कथन का सबूत पेश कर दूँगा"। दूसरे ही दिन प्रात मसखरे ने अपने चहरे पर ऊपर से नीचे तक एक चौडी सी पट्टी लपेटी और घर से निकला। पहला ही व्यक्ति जो द्वार पर मिला उसने पूछा, "क्यो भाई, क्या हुआ"? मसखरे ने कहा "दाढ मे दर्द है, रात भर पलक से पलक नही लगी"। जवाब मिला, "भाई, बडी ही अच्छी दवा है, इसकी हजार बार परीक्षा कर ली गई है, फला फला चीज लो और पीस कर मल लो। भला दर्द खडा तो रह जाय"। मसखरे ने एक कागज के टुकडे पर कुछ लिखा जैसे दवा का नाम लिख रहा हो, परन्तु लिखा था तबीब साहब का नाम। कुछ पग ही आगे बढा होगा एक और बडे बूढे मिले। "अरे भाई यह क्या" ? मसखरे ने फिर वही बात कही, उत्तर मिला "भाई, इसकी तो बडी अच्छी दवा मेरे पास है, एक साधू ने बख्शी थी, फलाँ-फलाँ चीज ले कर पानी मे उबालो और उससे गरारा कर लो। एक ही बार मे दर्द गायब हो जायगा"। मसखरे ने उन का नाम भी दर्ज किया। रास्ते भर पग-पग पर कोई महाशय मिलते और कोई न कोई परीक्षित नुस्खा बताते

ग्रौर यह सब तबीबो का नाम लिखता जाता। होते-होते रईस साहब के महल पर पहुँचा। नौकरों, साथियो में से जो मिलता है यही पूछता है कि, "क्या हुग्रा"? ग्रौर झट एक परीक्षित दवा बता देता है। इसने इन सब के नाम भी लिख लिए। इतने मे रईस साहब का सामना हो गया बोले, "ग्रमाँ ये क्या"? कहा "हुजूर, दाढ मे सख्त दर्द है। रात भर सोया नही। जी चाहता है कि दीवार से सर मारू।" "नही ग्रमाँ" रईस साहब बोले "ये भी कोई बीमारी है। इसमें क्या रखा है। उठाना तो वह मेरी लाल पुस्तिका। इसके तो दसियो परीक्षित नुस्खे है। लो ये दवाएँ मगा लो, सब को पीसकर पोटली बना लो ग्रौर गर्म करके जरा सेक लो, बस दर्द गायब"। मसखरे ने रईस साहब का नाम भी दर्ज कर लिया। पट्टी खोल दी ग्रौर हाथ जोड कर निवेदन करने लगा कि "हुजूर जब मैने यह निवेदन किया था कि तिब्ब का धन्धा सब से ज्यादा ग्राम है तो स्वय मुझे भी खबर न थी कि इतने तबीब होगे। घर से यहाँ तक ग्राते-ग्राते कोई सौ से ऊपर तबीब मुझे मिल गये। फ़हरिस्त देखिये। हुजूर का भी नाम बुद्धिमान तबीबो की इस फ़हरिस्त मे दर्ज है।"

यह दशा कुछ हमारे ही देश मे विशेष नही है न ग्रशिक्षित मूर्खो तक सीमित है। उदाहरणार्थ इंग्लिस्तान के हकीमो की सब से प्रसिद्ध सभा रॉयल सोसायटी के स्थापित करने वाले, रसायनिक जानकारी की नीव डालने वाले, फैलाव के सम्बन्ध मे उस मशहूर नियम के दरियाफ्त करने वाले जो ग्राज तक उनके नाम से प्रसिद्ध है, राबर्ट बाइल ने भी ग्रभी ढाई सौ वर्ष भी नही हुए ऐसे ही परीक्षित नुस्खो का सकलन प्रकाशित कराया था जो बहुत सी बेकार ग्रौर बहुत सी हानिकारक दवाइयो से भरा हुग्रा था। इसे भी बहुत समय नही हुग्रा है कि इंग्लिस्तान के एक प्रसिद्ध ग्रमीर ने एक 'सफूफे हमदर्दी' का ग्राविष्कार किया था। किसी रोगी व्यक्ति के खून से सने हुए वस्त्रो को इस सफूफ के मिश्रण में तर करने से घाव ग्रच्छे हो जाते थे। इस सफूफ को हजारो जख्मियो ने इस्तेमाल किया होगा ग्रौर सैकड़ो सच्चे ग्रंग्रेजो के प्रमाण पत्र इसके प्रभाव की गवाही देते है। खून से सने कपड़ों को मिश्रण में भिगो दिया ग्रौर बस दर्द घटने लगा। जख्म भरना शुरू हो गया। खुद हमारे देश में हमारे ही समय में ऐसे पवित्र इलाज करने वाले गुजर चुके है, जिनके चित्र को प्रातः ही देखने से हजारो बीमार ग्रच्छे हो जाते थे।

प्रथम कार्य

मैने इस भय का तनिक विस्तार से इसलिए वर्णन किया है कि यदि ग्राप की शिक्षा इस का इलाज न कर सकी तो मानो इस ने ग्रपना बुनियादी काम नही किया। ग्राप का "फन" निरीक्षण ग्रौर परीक्षण पर ग्राधारित है परन्तु बुकरात के कथनानुसार निरीक्षण बडे धोके देते है ग्रौर निश्चित तय करना बडा कठिन है। ग्राप की शिक्षा का प्रथम काम यह है कि शुद्ध निरीक्षण की योग्यता उत्पन्न करे, इस के धोखो से बचने ग्रौर शुद्ध निरीक्षण से शुद्ध फलो पर पहुँचने का ग्रभ्यास कराये। ठीक देख सकना, तर्क विधि पर सोच सकना सिखा दीजिए तो ग्राप ने शिक्षा का तीन चौथाई कार्य कर दिया। ऊपर जिन लोगो का वर्णन हुग्रा ये सब इरादे से धोखा न देते होगे ग्रौर जो इनकी बात मानते थे वे सब बिलकुल गधे न होगे, बात केवल इतनी है कि तर्क विधि से सोचने का गुण मनुष्य मे ग्राम नही होता, शिक्षा भी प्रायः इस ग्रावश्यक कार्य की ग्रोर से उदासीन रहती है ग्रौर समझती है कि

कुछ पुस्तक रटा देने से, कुछ नुस्खे लिखा देने से, कुछ अद्भुत-अद्भुत नाम याद करा देने से मनुष्य शिक्षित हो जाता है, हालाँकि शिक्षा का कार्य है मानसिक शक्तियो का विकास करना इसमे, क्रम और निरीक्षण के धोके से बचने की योग्यता उत्पन्न करना। धोकेबाजी और इरादे की दुर्बलता के जो उदाहरण ऊपर दिए गए उन मे बस यही अशुद्धि तो आम तौर पर होती है कि यदि कोई वस्तु किसी दूसरी वस्तु के पश्चात् प्रकट हो तो लोग पहली को रोग का कारण और दूसरी को वह रोग जिसका कोई कारण हो समझ बैठते है। ख्याल होता है कि यह इसके पश्चात् हुआ है इसलिए इसके कारण हुआ होगा। हालाँकि तर्क विधि पर सोचने वाला सदा यह ज्ञात करना चाहता है कि आया यही फल बिना पहली वाली बात के भी प्रकट होता या नही या यह कि कही यह फल पहली बात के होते हुए तो पैदा नही हुआ। इन प्रश्नो के उत्तर के लिए वह अपने निरीक्षण को अनुभव से जाँचता है। कुछ हालात को बदलता है कुछ को उन के हाल पर रहने देता है और यूँ धीरे-धीरे रोग के कारणो और रोग के सम्बन्ध का पता लग जाता है।

यदि आप अपने शिष्यो को तिब्ब की सारी पुस्तके रटा दे, परन्तु इनमे निरीक्षण और निरीक्षण से जाच की आदत न डाले तो आप तिब्ब की शिक्षा नही देते, वैसे ही बताते है। आप के फन मे इस का भय और अधिक इस कारण से है कि यह निरीक्षण पर आधारित है। यदि विद्या का सहारा इसे न हो तो यह धीरे-धीरे 'तिब्ब के फन" की श्रेणी से अट्ट-पट्ट पर और अट्ट-पट्ट से प्राणो के भय तक पहुँच सकता है। हमारे देश मे तिब्बी शिक्षा के प्रबन्ध की खराबी ने इस 'फन' को नीची से नीची मंजिल तक पहुँचाने मे क्या कमी की है।

आपका कर्त्तव्य है कि इसे इसकी विद्वता की श्रेणी से गिरने न दे। बल्कि सबमे ऊँचे पद पर इसे पहुँचाए, जिस के लिए आवश्यकता है कि बजाये इसके कि सब कुछ थोडा-थोडा बताया जाये, कुछ ही चीजे अच्छी प्रकार से सिखाई जाये। पाठ्यक्रम को हरे-सूखे से भर देने के स्थान पर इसका प्रबन्ध हो कि बुनियादी विद्याओ रसायन, व्याख्या और अङ्गो के कार्यो की विद्यार्थियो को पूरी जानकारी हो जाय, केवल समय पर पूरा करने और परीक्षा पास करने के लिए नही बल्कि वास्तव मे इनके सिद्धान्त की विद्यार्थी जानकारी प्राप्त कर ले, इन विद्याओ मे जिस प्रकार उन्नति होती है उस के गुर को समझ ले और प्रयोगशाला तथा आपरेशन थियेटरो मे उन विधियो का प्रयोग भी कर ले जिन पर चल कर फन वालो ने कमाल हासिल किया है, तो बडी बात हो। इन राहो पर चलने का समय तो सारी उम्र मिलता रहेगा। परन्तु इन पर चलने की योग्यता और इच्छा विद्यार्थी काल मे अवश्य पैदा कर देनी चाहिए। यह विद्या लम्बी-चौडी तो न हो परन्तु गहरी हो। इस की गहराई आप के विद्यार्थियो को अट्ट-पट्ट के उथलेपन मे बचायेगी।

प्रयोगात्मक शिक्षा

सब से अधिक जरूरी यह है कि आपको पुस्तकीय शिक्षा मे कही अधिक ध्यान प्रयोगात्मक शिक्षा की ओर देना चाहिए। निरीक्षण और अनुभव का, अभ्यास का अवसर भी शिक्षार्थी को शफाखाने मे

मिलेगा और प्रयोगात्मक इलाज करने और देख भाल का भी, यही इस की शिक्षा की नीवे सुदृढ होगी और "फन" की महारत भी प्राप्त हो सकेगी। आज पश्चिमी तिब्ब के शिक्षा केन्द्रो के साथ जैसे प्रयोगशालाओ और शफाखानो का प्रबन्ध होता है, कोई कारण नही कि इससे कम दर्जे पर इस्लामी तिब्ब के शिक्षा केन्द्रो के साथ हो। इस्लामी तिब्ब ने जिन दिनो यूनानियो की विद्या में चार चॉद लगाए थे तो इसकी शिक्षा हेतु भी ये साजोसामान होता था। आज से हजार वर्ष पूर्व के उस शफाखाने का हाल मालूम कीजिए जो अहमद बिन तूलून ने काहिरा मे स्थापित किया था। फिर मारस्तान डल कबीर डल मसूरी का हाल पढिये, जो १३८४ मे कही स्थापित हुआ। इसके खर्चो के अनुमान देखिये, हर रोग के रोगियो के पृथक-पृथक रहने के प्रबन्ध का जिक्र देखिए, बीमारो के खाने की तैयारी के प्रबन्धो का विस्तार सुनिए, शफाखाने के साथ शिक्षा के लिए पढाने के कमरो का प्रबन्ध देखिए, दवाइयो के पृथक कोषो का विस्तार ज्ञात कीजिए तो ख्याल होता है कि बीसवी शताब्दी के किसी बहुत बडे पश्चिमी शफाखाने का हाल सामने है। फिर तेरहवी शताब्दी के मध्य मे तबरेज मे रशीदउद्दीन फज्ल इल्लाह के रबी रशीदी की सैर कीजिये। इस के पत्रो मे तमाम ससार से अच्छी से अच्छी दवाइयो की बडी मिकदारो के आर्डर देखिए और इस की देख-रेख मे तिब्ब की शिक्षा के विस्तृत हालात ज्ञात कीजिए तो ख्याल होता है कि ठीक-ठीक शिक्षा देने का प्रबन्ध आज भी कही इससे अधिक उत्तम नही है। इस एक तबीब वजीर ने हिन्दुस्तान, मिस्र, श्याम और चीन से पचास बाकमाल तबीब जमा कर लिए है, प्रत्येक अपने फन मे अपने समय का अद्वितीय है, प्रत्येक के साथ केवल दस-दस चुने हुए होनहार शिक्षार्थी नियुक्त है। इनके जिम्मे शफाखाने मे निश्चित कर्त्तव्य है। ये बीमारो की दशा का निरीक्षण करते है, इसके नोट्स रखते है और अपने अध्यापको से इन के सम्बन्ध मे बातचीत करते है। शफाखाने के कामो के लिए हर प्रकार के दक्ष लोग सहायक है, जिन के साथ प्रयोगिक कार्य सीखने के लिए पॉच-पॉच सहायक शिक्षार्थियो मे से है। इन शिक्षार्थियो से यह आशा हो सकती है कि इन्हे शुद्ध निरीक्षण की विधि आ जायेगी और निरीक्षण से शुद्ध फल निकालने की योग्यता सीख लेगे। इन से आशा हो सकती है कि ये निरीक्षण के धोखो से बच सकेंगे और अपने फल के पद को अपने प्रयासो और अनुभवो से बुलन्द करेगे। मेरे विचार से तो आप के फन की तालीम में सफलता का गुर बस यही है कि शिक्षा-काल मे बुनियादी चीजे सिखाये। ऊॅची बातो को छोडिए, कम चीजे सिखाइये और पुस्तको के स्थान पर प्रयोगिक कार्य की ओर अधिक ध्यान दीजिए। विद्यार्थियो मे अध्यापक अपने उदाहरण से, अपने फन से प्रेम, इसकी शराफत की अनुभूति, मेहनत की लगन, काम को हमेशा अपने बस भर अच्छी से अच्छी तरह करने की आदत, रोगियो से सहानुभूति की आदत पैदा कर दे और इन की मानसिक शिक्षा की वह व्यवस्था जिसका जिक्र कर चुका हूँ, तो इन्हे विश्वास होना चाहिए कि एक शरीफ फन के अच्छे फन वाले इनकी सहायता से पैदा हुए और यह विश्वास इतना बडा इनाम है कि कोई अध्यापक इस से अधिक की इच्छा नही कर सकता।

विद्यार्थियों से अनुरोध

अब इस तिब्बिया केन्द्र के कार्यकर्त्ताओ से और विशेषत: विद्यार्थियो से जो इस वर्ष निवृत्त हुए है और आज प्रमाण-पत्र प्राप्त कर रहे है, उस दल की ओर से कुछ कहना चाहता हूँ

जिन की सेवा इन के जिम्मे है, अर्थात् ग्राम हिन्दुस्तानी नागरिको की ओर से, उस आबादी की ओर से जिसकी निर्धनता, जिस की मूर्खता और जिसकी दासता इसे प्राय यह जानने भी नही देती कि स्वास्थ्य किसे कहते है, इलाज किसका नाम है, दु.ख-दर्द मे कोई सहायता भी कर सकता है या नही, उस आबादी की ओर से जिसकी सेना की सेना चेचक, हैजे, प्लेग मे प्रति वर्ष एक बेतोप, बे बन्दूक की लड़ाई मे काम आ जाती है, जिस के लाखो आदमी प्रति वर्ष मलेरिया मे फँसते है और मरते है और मरने से बचते है तो उम्र भर को अपने सारे काम को खो बैठते है, जिस ने एक इन्फ्लुएंजा की महामारी मे दो वर्षो के अन्दर कोई पचास लाख आदमी हाथ से खो दिए थे, उस आबादी की ओर से जो रोग के आक्रमण के सामने ऐसे ही लाचार है जैसे सिंह के सामने बकरी, जो न स्वास्थ्य रक्षा के नियमो से परिचित है न रोग का सामना करने के उपायो से, जो सिसक-सिसक कर जीना और एड़ियाँ रगड-रगड कर मरना जानती है और अपनी लाचारी को सन्तोष का नाम दे कर प्रसन्न हो लेती है . इस आबादी को रोगो से बचाना, रोग होने पर इस का इलाज करना आप के जिम्मे है। इस मे गिनती के लोग खाते-पीते है और शेष गरीब और निर्धन, खुश हाल बस ऐसे ही है जैसे किसी गरीब की हाँडी मे शोरबे पर चिकनाई की कुछ बूँदे। अब आप को यह तय करना है कि आप अपना सारा ध्यान इन गिनती के खुशहालो पर केन्द्रित करेंगे जो भूख से नही अधिक खाने से बीमार होते है या उन पर जिन के बच्चो की हड्डियाँ ठीक भोजन न मिलने के कारण पूरी परवरिश तक नही पा सकती और जो जीवन मे कभी एक बार भी भरपेट खाना नही खाते इसलिए किसी रोग के आक्रमण का सामना नही कर सकते। आपका मन भी खुशहालो मे शरीक होने को चाहता हो तो अपना समय खुशहालो के लिए शक्तिदायक माजूनो और पाचक चूर्णो के नुस्खे लिखने मे व्यतीत कर देंगे। परन्तु देश का काम इस से नही चलेगा। यूँ तो आदमी आँखो पर ठीकरिया रख ले तो कोई क्या कर सकता है, पर आप के चारो ओर जो दु ख, रोग फैले हुए है, गरीबी और फाके ने ग्राम स्वास्थ्य का जो हाल कर रखा है, मूर्खता ने जिस प्रकार इस बुरी दशा को और अधिक बुरा बना दिया है, उस की अनुभूति आप को होगी तो आप चैन की नीद न सो सकेंगे। जीवन की विपदा, दु ख, बीमारियाँ हममे इतनी पास है कि प्राय हम इनमे लापरवाह हो जाते है। आहे इतने सीनो से निकलती है कि सारा वातावरण इन मे भर जाता है और हम इन्हे सुन नही सकते और शायद अपनी जिन्दगी गुजारने के लिए यह ठीक ही हो, इसलिए कि यदि पूरी-पूरी अनुभूति हो, हर आह सुनाई दे और हर दु ख दिखाई दे तो ऐसा हो जाय जैसे कोई घास के उगने और बढने की आहट सुनने लगे और हर जीव की दिल की धड़कन अनुभव करने लगे और शायद हम इस भयानक शोर को सहन न कर सके जो विपदा के इस सन्नाटे मे छिपा हुआ है। भले ही यह सुनाई दे कर हमारे कानो के परदे न फाड़े और दिखाई न दे कर हमारी आँखो को मला-मला कर ज्योति हीन न करे, परन्तु इसके अस्तित्व की जानकारी हम मे है और इस से भागना सम्भव नही। मेरा निवेदन आप से यह है कि इस दु ख के दूर करने के लिए आप कमर बाँधे। साहस मे सब काम हो जाते है। चेचक की महामारी जिस मे आप ही के प्रान्त मे हजारो मनुष्य प्रति वर्ष मरते है यूरोप मे भी ऐसी ही आम बीमारी थी जैसी हमारे यहाँ है, बल्कि इस से कुछ अधिक। वहाँ तो करीब-करीब प्रत्येक व्यक्ति को यह रोग होता था। हर बारह मनुष्यो मे से एक मनुष्य इससे मरता था। जो बच जाते थे उन की बदनुमा आँखे और चेहरे उम्र भर इस के दु ख की याद दिलाते थे। धनी और निर्धन सब इस के हाथो तङ्ग थे। न मालूम कितने बादशाह

इस के शिकार हुए, अट्ठारवी सदी मे कोई छ करोड़ मनुष्य यूरोप में इस रोग से मरे, अर्थात् प्रति वर्ष कोई छ लाख, परन्तु आज यूरोप इस महामारी से करीब-करीब मुक्त है।

महामारियाँ

प्लेग की महामारी जिस मे आज भी हमारे अनेक देशवासी प्रति वर्ष मरते है, कभी दूसरे देशो में भी आम थी। प्रसिद्ध लेखक गिबन ने एक स्थान पर लिखा है कि 'यदि पूछा जाय कि ससार के इतिहास मे सब से अच्छा काल कौन सा था। तो मै रोम का सन् ९६ और १८० ई० के मध्य का समय बताऊँगा।" गिबन बडा लेखक है और इसकी बात वजन रखती है, परन्तु आप को शायद ज्ञात होगा कि इतिहास के इस सब से उत्तम समय मे रोम मे कम से कम तीन बार प्लेग की महामारी फैली और सन १६४ ई० से तो बराबर १६ वर्षो तक रही। इस 'सब से उत्तम' समय का प्रारम्भ इस महामारी से हुआ जिसमे एक-एक दिन मे दस-दस हजार प्राण गए। इस समय इस सारे देश मे मलेरिया फैला और तीन शताब्दियो तक देश को नष्ट करता रहा। यहाँ तक कि जर्मन-जङ्गलो के असभ्य कबीलो ने इसे नष्ट-भ्रष्ट किया परन्तु इस के बावजूद गिबन ने इसे 'सब से उत्तम' समय इसलिए कहा है कि गिबन के इस समय तक इस महामारी के जो आक्रमण यूरोप मे होते रहे वे इन से भी अधिक भयङ्कर थे। गिबन के लिखने के समय यूरोप पर प्लेग की चार शताब्दियाँ समाप्त हो चुकी थी। इन पश्चिमी नगरो मे भी यहाँ की भाँति प्रति दिन हजारो मौते होती थी परन्तु आज इस रोग के कारण ज्ञात हो जाने से और उन्हे काबू में लाने की कोशिश से यूरोप इस रोग से स्वतन्त्र हो गया। अभी सन् १७९३ ई० मे फिलेडेलफिया की जनसख्या में प्रति १०० मे१० आदमी पीले बुखार के शिकार हो गये थे। परन्तु अमरीकी डाक्टरो की विद्या और प्रयास ने अपने देश को इस सङ्कट से बचा लिया। और उदाहरणो से क्या लाभ, आप के सामने एक बडा महत्वपूर्ण, शानदार काम मजबूत दिल और बुलन्द हिम्मत लोगों के करने का काम है। स्वार्थियों के लिए पैसा कमाने का अवसर है परन्तु उनकी छाती पर यह बोझ रहेगा कि उन्होने अपनी जाति वालो, अपने देशवासियो की निर्धनता, नासमझदारी, दासता, लाचारी से लाभ उठा कर कुछ धातु के टुकडे इकट्ठे कर लिए और रोगो और बीमारियो के विरुद्ध लडने और अपनी जाति को इससे छुटकारा दिलाने के मुबारक काम मे हाथ न बटाया। नि सन्देह अपना जीवन व्यतीत करने के हेतु भी प्रत्येक को कुछ आवश्यकता होती है। आप के जीवन व्यय का प्रबन्ध सरकार को करना चाहिए, आप के धन्धे के लोगो के लिए प्राचीन काल मे यह रीति थी। सरकार इनकी सारी आवश्यकताये पूरी करने का प्रबन्ध कर देती थी और ये निश्चिन्त हो कर धनी और निर्धन की सेवा बिना भेद-भाव के किया करते थे। इन परिवर्तित दशाओ में जब कि सरकार का साया उठ गया था, जिस प्रकार तबीबो के बहुत से प्रसिद्ध वशो ने सारे देश मे निर्धनो की सेवा की है, वह हमारे राष्ट्रीय जीवन की वह पूँजी है जिस पर हमें गर्व है। धन के जग से राष्ट्रीय जीवन की सुन्दरता को सुरक्षित रखने हेतु कोई वस्तु इतनी प्रभावशाली नही होती जितना कि नि.स्वार्थ काम करने वालो का ऐसा दल जो इस के सुनहरे हार का इच्छुक न हो बल्कि इसका सारा ध्यान 'सत्य' की खोज हो, जो 'सत्य' के प्रचार और मानव सेवा के लिए समर्पित हो। मेरा आशीर्वाद है कि आप के केन्द्र से प्रमाण-पत्र लेने वाले उस दल मे सम्मिलित हो और सच्चे सैनिको की भाँति देश को अज्ञान और रोगो जैसे शत्रुओ से स्वतन्त्रता दिलाये।

बुनियादी तालीम

[जामिया नगर मे बुनियादी शिक्षा सम्मेलन के अवसर पर ११ अप्रेल १९४० को डा० जाकिर हुसैन का भाषण।]

राजन बाबू, भाइयो और बहनो! आज बुनियादी शिक्षा की दूसरी कान्फ्रेंस आरम्भ ही हो रही है। हमारे बुलावे पर आप सब लोग दूर और नजदीक से यात्रा की कठिनाइयाँ उठा कर, कामो का हर्जा करके इस मे सम्मिलित होने आये है। हम हृदय से आप के कृतज्ञ है। हमे बडी आशा है कि अपनी बात सुना कर और दूसरो की सुन कर, अपनी सफलताओ से औरो का साहस बढा कर और अपनी असफलताओ से दूसरो को आगाह कर के आप के यहाँ मिलने से देश सही बुनियादी शिक्षा की राह पर एक कदम आगे बढ सकेगा।

आपको याद होगा, पहली बुनियादी कान्फ्रेंस एक मालदार प्रदेश की हुकूमत ने आयोजित की थी। आज आप एक गरीब, कौमी विद्यालय के बुलावे पर यहाँ एकत्रित हुए है। आप को अगर रहने-सहने और खाने-पीने का वैसा आराम न हो तो हमे क्षमा कीजिएगा और विश्वास मानिए कि आप के आराम मे अगर कोई कमी है तो इस कारण से नही कि हम आराम देना नही चाहते, बल्कि इस कारण से है कि हमारे पास इस का पूरा सामान नही है। वैसे मुझे तो यकीन है कि आप शायद इन छोटी-छोटी कठिनाइयो पर ध्यान ही नही देगे। लेकिन पहली और दूसरी कान्फ्रेंस के इस अन्तर मे ध्यान इस ओर अवश्य जाता है कि ये बुनियादी शिक्षा का काम है किस का, शासन का या निजी आदमियो और विद्यालयों का? मैं चाहता हूँ कि हम सब इस बात को अच्छी तरह सोचे। जैसा कि आप को मालूम है, बुनियादी शिक्षा का प्रस्ताव निजी आदमियों ने बनाया था। अगर कोई शासन

इस प्रस्ताव को न अपनाता तब भी लोग शिक्षा के इस ढङ्ग को ठीक समझते। इस को कही न कही अवसर पाकर चलाते, अपने अनुभवो से विद्यालयो को शायद कोई नया मार्ग दिखा सकते या, जैसे बहुत से कल्पनिक प्रस्ताव बनाये जाते है, यह प्रस्ताव भी बनाया जाता और एक छोटी पुस्तक के रूप मे कही न कही किसी पुस्तकालय मे मिलता। लेकिन मै आपसे पूछता हूँ, क्या आप के विचार से यह पहला और दूसरा रूप सम्भव था ? मै तो समझता हूँ कि ये प्रस्ताव बना ही इसलिए था कि बनाने वाले के करीब हमारे देश को एक अच्छा राज्य बनने का समय आ गया था। अगर राज्य बन जाये तो वे इस काम को सभाले, न बने तो शिक्षा सम्बन्धी कार्य करने वालो का कर्त्तव्य है कि वे इसे चलाये और इस को चला कर सच्चे और अच्छे राज्य के आने का समय करीब ले आएँ। इस प्रस्ताव को बनाने वालो को अवश्य मालूम होगा कि अच्छे राज्य का बनना खेल नही। बनते-बनते ही बनता है। इसलिए शायद वे पहले ही दिन से राज्य की सहायता के विना चलाने के लिए कमर कस चुके होगे। यह तो बस सयोग की बात थी कि इस शिक्षा-प्रस्ताव को कई प्रदेशो की हुकूमतो ने थोडी बहुत काट-छाँट के बाद एक ही समय मे मान लिया और बिना बहुत तैयारी के, और कही-कही तो ऐसे ऐसे लोगो के हाथो जिन्हे इस पर पूरा भरोसा था, इसे शुरू कर दिया, कही छोटे पैमाने पर कही बड़े पैमाने पर और आज भी इन में से कई जगह तो यह नया परीक्षण बडी महनत से चलाया जा रहा है। कही बे दिली से इसे घसीटा जा रहा है और एकाध जगह तो आठ-दस महीने के लम्बे अनुभव के पश्चात् जैसे थक कर या लज्जित हो कर इस से तोबाह भी कर ली गई है। इस मे भी सन्देह नही कि ये हुकूमते इस प्रस्ताव को मान न लेती तो इस पर जितना अनुभव हुआ है, न हो पाता. मगर साथ-साथ यह भी सच है कि हुकूमत के बाहर निजी लोगो को शायद इस से बैठे-बिठाये बे-वजह इतनी बे-चैनी भी न होती। केवल इस कारण से कि कुछ ऐसी हुकूमतो ने इसे चलाया कि जिनसे वे लोग राजी न थे, ये इस प्रस्ताव को जाँचना और मानना तो क्या एक दृष्टि देखना भी नही चाहते। यह भी हुआ कि हुकूमत ने इसे आज्ञा से चलवाया और काम कही नही तो जा कर ऐसे लोगो के हाथ में आया जो स्वय या तो इस प्रस्ताव को समझे नही थे या किसी ऐसी वजह से जिस का शिक्षा से कोई वास्ता नही, इसे पसन्द नही करते थे।

सरकार का काम

शासन के हाथ में इस प्रस्ताव के आने से अगर लाभ हुआ तो हानि भी अवश्य हुई। फिर हमे क्या करना चाहिए ? क्या इसकी कोशिश करनी चाहिए कि इस काम को सरकार के हाथ मे दे या कि गैर-सरकारी शक्तियो को इस की सेवा मे लगाये ? मै अपनी राय आप को बता दूँ। मै समझता हूँ कि बुनियादी शिक्षा का काम सरकार का काम है। यह इतना बडा और फैला हुआ काम है कि निजी प्रयास इसे समेट नही सकते। लेकिन अगर राज्य किसी एक वर्ग या एक गुट के शासन का नाम है तो शिक्षा इस के हाथ मे कभी अधिक समय तक सीधे मार्ग पर नही चल सकेगी। हाँ, राज्य अगर सामाजिक जीवन के उस प्रबन्ध को कहते है जिसकी नीव इन्साफ पर हो, जो स्वय दिन-प्रतिदिन अपनी इस नीव को सुदृढ करके चरित्र की उन्नति करता जाता हो और जिसकी निगरानी मे दिन पर दिन हर तबके क्या हर आदमी के लिए सुसस्कृत व्यक्तित्व के पूर्ण विकास का मार्ग सरल से

सम्पन्न होता जाता हो तो फिर शिक्षा ऐसे राज्य का सबसे आवश्यक काम है। इस लिए कि स्वय उस की चारित्रिक उन्नति इस काम से होती है। ससार का कोई राज्य पूर्णतया बेऐब नही हो सकता। मगर कुछ प्रदेश की नींव चरित्र और नेकी पर होती है और कुछ की नही। कुछ राज्य चरित्र की अच्छाइयो पर चलते है और कुछ नही चलते। कुछ न्याय के निकट होना चाहते है, कुछ नही चाहते। कुछ मे सब के लिए उन्नति के मार्ग खुले हुए है, कुछ मे कुछ के लिए खुलते है और कुछ के लिए बन्द हो जाते है। बुनियादी शिक्षा का कार्य प्रथम प्रकार के राज्य का कार्य है। दूसरे प्रकार के राज्य के हाथ मे यह न पहुँचे तो अच्छा है। हमारे मुल्क मे अभी इस चारित्रिक राज्य का बनना शेष है। फिर जब तक वह नही बनता क्या हम हाथ पर हाथ धरे बैठे रहे ? नही। जिस तरह आजाद और अच्छे आदमियो का कर्त्तव्य है कि वे जल्द से जल्द अपने सामाजिक जीवन की नीव ऐसे चारित्रिक राज्य पर रखे जैसा कि मैने अभी बयान किया है, वैसे ही हर सच्चे तालीमी काम करने वाले का फर्ज है कि वह ऐसे राज्य के बनने मे अपने काम से सहायता करे। इस मे शक नही कि इसका काम इस राज्य मे कठिन होगा। परन्तु इस कारण से उसे छोडा तो नही जा सकता। हाँ, यह अवश्य जानना चाहिए कि खोदना बहुत होगा और पानी बहुत कम निकलेगा। परन्तु क्या आश्चर्य है कि इस परिश्रम ही से लोगो का ध्यान कुछ पलटे और हमारे देश मे वह राज्य बने जो हमारे धीमे काम को एक ही बार मे कही से कही पहुँचा दे। इस समय सौभाग्य से बाबू राजेन्द्र प्रसाद जी यहाँ मौजूद है और हमारी कान्फ्रेंस का अभी कुछ मिनटो मे उद्‌घाटन करने का कष्ट करेगे। मै इनके जरिये से शिक्षा का काम करने वालो की यह प्रार्थना अपने देश के सब राजनीतिक पथ-प्रदर्शको की सेवा मे पहुँचाना चाहता हूँ कि ईश्वर के लिए इस देश मे राजनीति को सुधारिए और जल्दी से जल्दी ऐसे राज्य की नीव डालिए जिसमे कौम काम पर भरोसा कर सके कमजोरो को जोरावर का डर न हो। निर्धन धनियो की ठोकर से बचा रहे। जिसमे सस्कृति के साथ शान्ति फल फूल सके और हर एक से दूसरे की खूबिया उजागर हो। जहाँ हर एक वह बन सके जिसमे बनने का उसमे गुण है और वह बन कर सारे गुणो के साथ अपने को समाज का सेवक जाने।

मैं जानता हूँ कि इन बातो का कह देना सरल है और करना किसी एक आदमी के बस की बात नही। लेकिन मुझे यकीन है कि आज यह बात हमारे राजनीतिक पथ-प्रदर्शको के हाथ मे इतनी है जितनी पहले कभी न थी कि कुछ समझकर, कुछ समझाकर, कुछ मान कर कुछ मनवा कर, ऐसे राज्य की नीव रखदे। जब तक यह नही होता हम शिक्षा के काम करने वालो का हाल दया के योग्य है। कब-तक उस राजनीतिक मन्मथन मे हल चलाये। कब तक सन्देह और बदगुमानी के धुए मे शिक्षा को घुटने सिसकने देगे ? कबतक इस डर से थर्राते रहे कि हमारी उम्र भर के प्यार को कोई एक राजनीतिक कल्पना कोई एक राजनीतिक जिद भस्म कर देगी ? हमारा काम भी तो कोई फूलो की सेज तो है नही। इसमें भी बहुत निराशाएँ होती है और प्राय दिल टूटता है। फिर जब हमारे कदम डगमगाये तो हम कहाँ सहारा ढूँढे ? क्या इस समाज मे, जहाँ भाई एकदिल नजर नही आते, कोई कदर आखरी कदर मालूम नही होती, जिसमे कोई गीत नही जो सब मिलकर गाये, कोई त्योहार नही जो सब मिल कर मनाये, ? कोई शादी नही जो सब मिल कर रचाये, कोई दुख नही जो सब बटाये ? हमारी यह कठिनाई दूर कीजिये और जल्द कीजिये। अब भी काफी देर हो चुकी है और देर न जाने क्या दिन दिखाये।

गैर सरकारी जिम्मेदारी

भाइयो और बहिनो मैने राजन् बाबू के यहाँ होने से फायदा उठा कर ये जो बाते कहीं, मै जानता हूँ कि आप सब के दिल की गूँज है। लेकिन अगर राजन बाबू कुछ न करे, अर्थात् राजनीतिक पथ-प्रदर्शक कुछ न कर सके तो क्या हमें थक कर बैठ जाना चाहिये ? हो सकता है कि थकावट हम में इतना दम न छोडे कि हम कुछ कर सके। मगर जब तक ऐसा नहो है इस बात का ख्याल भी अच्छा नही लगता। अगर हम को भरोसा है कि बुनियादी शिक्षा का काम हमारी कौम के लिए आवश्यक काम है, तो हमे बैठे-बैठे यह सोच कर राजनीति का मुँह नही ताकना चाहिये कि जब वह दुरुस्त हो जायेगी और जब ऐसा राज्य बन जायेगा जो अपने कन्धो पर सब नागरिको की शिक्षा का बोझ उठा सके तो उस समय हम भी उस की मदद करेगे। नही, अगर आज ही से इस अच्छे काम मे लगे न रहेगे तो शायद इस वक्त भी और अपनी नासमझो, अनुभव होनता से काम को बिगाडेंगे। अच्छे से अच्छा राज्य भो तो अपने एक सकेत से वे नदिया नही बहा सकता, जिनके स्रोत पहले से खुले न हो। इसलिए इस काम को तो चलाना ही है और इस तरह चलना है कि जब कोई शासन बुनियादी शिक्षा के कार्य को लेना चाहे तो वह यह न कह सके कि हम जानते नही कि यह काम कैसे होगा और हो भी सकेगा या नही। यही नही, जब प्रादेशिक शासन इस काम को सम्भाल ले और इसे हमारी इच्छाओ के अनुसार ही चलाये तो क्या उस वक्त हमारा काम समाप्त हो जायेगा ? मै समझता हूँ कि नही। कोई राज्य ऐसा नही होता कि उस में उन्नति की आवश्यकता न हो हर अच्छा राज्य, अगर सच्चाई और नेकी पर उसकी बुनियादी है तो अच्छे से और अच्छा होता जाता है। आदमी के सब उद्देश्यो का यही हाल है। आगे बढते है, नही तो पीछे हटना होता है। अच्छा राज्य होता ही वह है जिस मे नगरिक अपने जीवन को बराबर उत्तमतर बनाते जाये। इसलिए अगर राज्य ने बुनियादी शिक्षा के काम को अपने हाथ में ले लिया तब भी अच्छे समझदार और शिक्षा के काम से लगाव रखने वालो की एक सेना की सेना इस शिक्षा को अधिक उत्तम बनाने में शासन के स्कूलों के बाहर भी लगी होगी। वह ऐसे अनुभव कर सकेगो जो हुकूमत अपने काम के फैलाव की वजह से न कर सके और वह अपने अनुभवो से, सफलताओ से और असफलताओ से शासन को फैले हुए शिक्षा कार्य को नया मार्ग दिखा सकेगी। सक्षेप यह है कि गैर सरकारी लोगो पर काम का बोझ अब भी है और कल भी रहेगा। राजनीतिक परिवर्तन होते रहेगे मगर बुनियादी शिक्षा का काम चलेगा। कभी शासन के हाथों, कभी शासन की सहायता के बिना। बुनियादी शिक्षा के प्रस्ताव में जो चीजे बुनियादी है उन्हे अब हमारी कौम, जहा तक मै समझता हूँ हाथ से नही जाने देगी। पहली बात तो यह है कि हमारे मुल्क में ऐसा शासन होगा कि जो सब की भलाई बराबर चाहेगा, जो अमीर और गरीब, हिन्दू और मुसलमान हिन्दुस्तानी और गैर हिन्दुस्तानी मे अन्तर न करेगा जो हुकूमत सब की स्वीकृति से और सब की भलाई के लिए होगी वह सब लडके और लडकियो के लिए कम से कम ७ साल की शिक्षा का प्रबन्ध करेगी और इसे अनिवार्य बनायेगी। मैने ७ साल कम से कम कहा। तरक्की होगी तो शायद राज्य इस समय को बढायेगा लेकिन अब किसी प्रकार किसी उत्तरदायी शासन में 'अपर प्राईमरी' और लोअर प्राईमरी और प्रारम्भिक तालीम के चक्कर मे कौम ७ साल से कम अवधि की मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा पर राजी न होगी। दूसरी बात जिसे इस तरह आखरी तौर पर तय समझना चाहिये यह है कि ये सात साल की तामील मातृ-भाषा मे होगी। तीसरी बात जो मेरी राय में इन्ही दो की भाँति महत्त्वपूर्ण है वह

यह है कि तालीम के इन सात साल मे काम को प्रमुख स्थान दिया जायेगा और जहाँ तक हो सकेगा इसके माध्यम से सिखाने और बताने की चीजे सिखाई और बताई जायेगी। इस तीसरी बुनियादी बात का भी मेरी जानकारी मे कोई विरोध है नही, मगर यह जरूर नई सी बात है, इसलिए इसके समझने मे खुद बुनियादी तालीम के काम करने वालो को भी दिक्कत होती है। आप इजाजत दे तो मै थोडे शब्दो मे अपना विचार बताऊँ कि शिक्षा कार्य का क्या अर्थ है और जो हम पुस्तको की पाठशाला को काम की पाठशाला मे बदलना चाहते है तो काम से क्या मतलब लेते है।

शिक्षा और काम

काम को शिक्षा में सम्मिलित करने की चर्चा आज से नही बहुत दिनो से है, मगर जितने मुँह इतनी बाते। कोई कहता है कि काम को सिद्धान्त के तौर पर मानो, इसे विषय न बनाओ। कोई कहता है कि इसे एक विषय बना लो, एक घण्टा दे दो, मगर और सब ज्यो का त्यो रहने दो। कोई कहता है कि काम ऐसा हो कुछ दाम भी हाथ आये। 'हरकत में बरकत है' बच्चो को जरा हाथ पैर चलाने का अवसर दो, चाहे कुछ बने या न बने। यह कोई मजदूरो का काम थोडे ही है। यह तो बनाने का काम है। मै इन लोगो मे से किसी से झगडा मोल नही लेता, लेकिन अपने विचार प्रकट करना चाहता हूँ। मेरा विचार है कि जब हम शिक्षा के सम्बन्ध मे काम का जिक्र करे तो हमे वही काम ध्यान मे रखना चाहिए जिस से तालीम हो, मस्तिष्क की दीक्षा हो, आदमी अच्छा आदमी बने। मैं समझता हूँ कि आदमी का मस्तिष्क अपने किए को परख कर इसके अच्छे बुरे पर नजर करके उन्नति करता है और जब आदमी कुछ बनाता है या कोई काम करता है, चाहे यह काम हाथ का हो चाहे दिमाग का, तो इस काम से इसके मस्तिष्क को शिक्षा लाभ उसी समय पहुँचा सकती है जब वह इस काम का पूरा-पूरा हक अदा करे। काम से शैक्षणिक लाभ वही उठाता है जो उस काम का हक अदा करने मे काम के अनुशासन को पूर्णतया माने। इसलिए हर काम शैक्षणिक कार्य नही हो सकता।

चार मजिलें

शिक्षा का कार्य उसी समय हो सकता है कि आरम्भ मे मस्तिष्क की तैयारी करे। जिस कार्य का आधार मस्तिष्क न हो वह कार्य मुर्दा मशीन भी कर सकती है और इस से मस्तिष्क की शिक्षा-दीक्षा नही होती। कार्य करने से पूर्व मस्तिष्क मे कार्य का खाका, कार्य का चित्र बनाना आवश्यक है। फिर दूसरा कदम भी मस्तिष्क का ही होता है, अर्थात् इस चित्र को पूरा करने के साधन सोचना। इन मे से किस को लेना किस को छोड देना। तीसरा कदम होता है इस कार्य को उन चुने हुए साधनो द्वारा सपन्न कर डालना, और चौथा कदम है किए हुए काम का मूल्याकन कि जो चित्र बनाया था, जो करना चाहा था वही किया और जिस प्रकार करने का निश्चय किया था उसी प्रकार किया या नही और फल इस योग्य है या नही कि इस कार्य को किया जाता। ये चार मजिले न हो तो शिक्षा का कार्य सम्भव ही नही हो सकेगा परन्तु यदि ये चारो हो, तब भी प्रत्येक कार्य शिक्षा नही होता। प्रत्येक ऐसे कार्य से कुछ योग्यता अवश्य पैदा हो जाती है, चाहे हाथो की योग्यता, चाहे मस्तिष्क की, भाषा की, परन्तु योग्यता शिक्षा नही है। शिक्षित व्यक्ति का चित्र जो हम सबके समक्ष आता है, उसमे केवल योग्यता का रग नही

होता । योग्य चोर भी होते है । योग्य धोखेबाज भी होते हैं । योग्य सच को झूठ भी कर दिखाते है । ऐसी योग्यता शिक्षा का उद्देश्य नही हो सकती । शिक्षा का कार्य वही कार्य हो सकता है जो किसी ऐसे मूल्य की सेवा करे जो हमारे स्वार्थ से दूर हो और जिसे हम मानते हो । जो अपने ही स्वार्थ का कार्य करता है, वह योग्य अवश्य हो जाता है, परन्तु शिक्षित नही होता । जो मूल्यो की सेवा करता है वह शिक्षा पा जाता है । मूल्य की सेवा मे मनुष्य का कार्य उत्तरदायित्व निभाता है, अपने आनन्द की खोज नही करता । इससे वह आदमी बनता है, अपना चरित्र सजाता, है इसलिए कि चरित्र और है ही क्या इसके अतिरिक्त कि जो मूल्य स्वीकृति योग्य है, उनकी सेवा में मनुष्य अपनी इच्छाओ और लालचो और आनद को दबाये, मूल्य की पूरी-पूरी सेवा करे और इस सेवा का जो उतरदायित्व है वह पूरा-पूरा अदा करे । कार्य का यह गुण हस्तकला मे हो सकता हैं और हस्तकला इससे रिक्त भी हो सकती है । सच्चे कार्य की पाठशाला वही है जो बच्चो मे कार्य से पूर्व सोचने और कार्य के पश्चात परीक्षण और मूल्यॉकन की आदत डाले, ताकि कार्य से इस बात की आदत सी हो जाए कि जब कभी कोई कार्य करे हाथ या दिमाग का, तो उसका पूरा-पूरा उत्तरदायित्व निभाने का प्रयास करे । कार्य को शिक्षा का माध्यम बनाने वालो को प्रतिक्षण याद रखना चाहिए कि कार्य उद्देश्य हीन नही होता । कार्य प्रत्येक फल को स्वीकार नही करता । कार्य बस कुछ करके समय काट देने का नाम नही, कार्य केवल दिल बहलाव नही, कार्य खेल नही कार्य कार्य है, स-उद्देश्य परिश्रम है । कार्य शत्रु की भांति आपसे आपना हिसाब करता है । जो इसमें पूरा उतरता है, उसे वह ऐसी प्रसन्नता देता है जो कही नही मिलती । कार्य खेती है, कार्य ईश्वर की प्रार्थना है ।

सच्ची शिक्षा

परन्तु खेती और प्रार्थना मे भी तो लोग स्वार्थी हो जाते है; अपना स्वार्थ पक्का कर लिया दूसरे से क्या मतलब ? कार्य की सच्ची पाठशाला यदि सच्ची शिक्षा का स्थान है तो काम को कभी अकेले का स्वार्थ नही बनने देती, बल्कि सारी पाठशाला की पाठशाला एक कार्य मे लगी एक कक्षा बन जाती है जिसमे सब मिलकर कार्य करते है और सब के कार्य से ही सारा कार्य पूरा होता है । सब से सब का काम निकलता है और सब के किये बिना काम बिगडता है किसी एक की त्रुटि से सबके कार्य का हर्ज होता है । कमजोर को पीछे छोड कर आगे चल देना कठिन होता है, यूं मिल जुलकर काम करने में खवे से खवा मिलता है तो वे गुण पैदा होते है जिनकी हमारे देश में बडी कमी है अर्थात आदमी का निभाव करना और उत्तरदायित्व को अनुभव करना जिससे समाज का प्रत्येक कार्य, प्रत्येक का कार्य बन जाता है और फिर कार्य की अच्छी पाठशाला इस पर भी राजी नही होती कि इसके बच्चों ने काम से अपनी शिक्षा करली । कार्य से इसके बच्चे एक समाज से बन गये और इसके कर्त्तव्य और जिम्मेदारियाँ जानने और समझने ही नही बल्कि बरतने और उठाने भी लगे । बल्कि कार्य की अच्छी पाठशाला समाज को भी किसी ऊँचे उद्देश्य का सेवक बनाती है ताकि कही यह न हो कि अकेलो के स्वार्थ से तो बच जाये मगर इससे बचकर समाजी स्वार्थ के दल-दल में फस जाय। साराश यह है कि कार्य की पाठशाला यदि बन जाये तो वह अपने बच्चो को इस प्रकार का कार्य सिखा देती है जैसा कि कार्य का हक है । इन को मिल जुलकर कार्य करने का अवसर देती है और इनमे विश्वास पैदा कर देती है कि इन का काम समाज की सेवा है और फिर इस समाज मे भी इस बात की

लगन पैदा कर देनी है कि आदमी के ख्याल मे अच्छे से अच्छे समाज का जो चित्र आ सकता है उसमे यह समाज रोज नजदीक होता जाय । वह इस वात की नीव डालता है कि समाज मे आदमी कोई तरह का काम करे इस काम को अपना समाजी धर्म और चारित्रिक कर्त्तव्य जाने और अपने कामो तथा अपने जीवन से अपने समाज को अच्छा समाज वनाने मे सहायता करे । यदि कभी हमारा समाज अच्छा समाज वन गया तो वह ऐसी पाठशालाओ विना एक मिनट भी कैसे चैन लेगी । लेकिन जव तक पहिले ऐसी पाठशालाए न होगी वह समाज सरलता से कैसे वन जायेगा ? इसलिए जिससे वन पडे ऐसी पाठशालाये स्थापित करे । मेरा निवेदन केवल आप से नही, जो वुनियादी शिक्षा के साथी है, उनसे भी है और उनसे भी है, जिन्होने वुनियादी शिक्षा के प्रस्ताव को वुरा माना है । मै उनसे केवल यह कहना चाहता हूँ कि वुनियादी शिक्षा यदि वही वस्तु है जो मैने अभी वर्णन की तो आप इसके विरुद्ध कैसे हो सकते है ? जरूरी है कि किसी और वात ने आपको इसका विरोधी वताया है । शायद आपको वुनियादी शिक्षा के इस पाठ्यक्रम मे जो एक निजी सभा ने वनाया था, कुछ वाते न जॅचती हो । कुछ वाते आपके नजदीक इसमे कम होगी, कुछ ऐसी होगी जिन्हे आप नापसद करते होगे, परन्तु पाठ्यक्रम वुनियादी शिक्षा की योजना नही है । पाठ्यक्रम सिद्धान्त नही । पाठ्क्रम ऐसा नही कि वदला न जा सके । पाठ्यक्रम उपस्थित करते समय भी पाठ्यक्रम वनाने वालो ने यह कह दिया था कि यह आजमाइशी चीज है । इस पर आज तक कोई आधी दर्जन सभाओ ने सोच–विचार तथा वहस कर करके कुछ घटाया-वढाया है और वहुत कुछ मान लिया है । लेकिन यह मानना भी कोई अन्तिम वात नही । अभी दो दिन पश्चात् इस कान्फ्रेंस मे इस पाठ्यक्रम पर वहस होगी और न जाने कितनी त्रुटियाँ सामने आयेगी परन्तु इन त्रुटियो के कारण प्रस्ताव के वुनियादी सिद्धान्तो को, जो कि मेरी मान्यतानुसार शुद्ध और ठीक है छोड न देना चाहिए । इसमे छोडने वाले को ही हानि है । इन सिद्धान्तो को सामने रख कर दूसरा पाठ्यक्रम तैयार कीजिए, ऐसी कुछ पाठशालाओ मे परीक्षण कीजिये और स्वय अपने फल का मूल्याकन कीजिये । अच्छा होगा तो दूसरे भी इससे लाभ उठायेगे और यदि आप गलती पर होगे तो गलती समझ मे आजायेगी । शायद आप इस प्रस्ताव को इस कारण से न चाहते हो कि जिन्होने इसे वनाया है आपको वे व्यक्ति अच्छे नही लगते । परन्तु अच्छी और ठीक वात तो अच्छो का खोया हुआ माल है, जहा भी हो वे उसे उठा लेते है । इस वात मे आप क्यो अपने फैसले पर प्रभाव डालते है कि यह प्रस्ताव किस ने वनाया, और कहा वनाया और किन व्यक्तियो ने इसको स्वीकार किया । नाम न तो पूछे ही जाये न इनसे यू भडकना चाहिये ।

मुझे क्षमा कीजिये , मैने आप का वहुत सा समय ले लिया । मै दिल से आप सव का स्वागत करता हूँ आप के सामने तीन दिन परिश्रम का काम है। इन तीन दिनो के पश्चात और भी मेहनत आप के लिए है अर्थात यहा जो कुछ सोचा जायगा , उसे करना है । अगले वर्ष फिर अपने काम के फलो को परखना होगा और जिस प्रकार हम काम-पाठशालाओ मे वच्चो को काम मे शिक्षा देना चाहते है, उसी प्रकार स्वय अपने काम मे अपनी शिक्षा का काम लेना होगा। भगवान हमे शक्ति दे कि हम अपने को अपने काम मे अच्छा सेवक वना सके । उस मे प्रार्थना है कि हमे सीधा मार्ग दिखाये । ●

नन्हा मदरसे चला

[३१ मई, १६४२ को डॉ० जाकिर हुसैन द्वारा ऑल इण्डिया रेडियो से प्रसारित वार्त्ता]

लीजिए, अब आप का नन्हा मदरसे चला। आदमी का बच्चा प्रारम्भ में ऐसा बेबस होता है और बड़ा हो कर आदमी के जिस पद पर उसे पहुँचना होता है वह इतना ऊँचा है कि उस की शिक्षा में बहुत दिन लगते है और उस को शिक्षित बनाने में बड़े जतन करने पड़ते हैं। इस शिक्षा और दीक्षा के काम में आप, अर्थात् नन्हे के माता-पिता, सरक्षक अकेले जो कुछ कर सकते थे, कर चुके। अब शायद आप समझते हैं कि कार्य केवल आप से न सम्भलेगा, इस में दूसरो की सहायता की आवश्यकता है, इसलिए नन्हा मदरसे भेजा जाता है; परन्तु शिक्षा और दीक्षा का कार्य ऐसा मिला-जुला काम है, विभिन्न प्रकार की शक्तियाँ प्रत्येक ओर से चल कर बच्चे के व्यक्तित्व में इस प्रकार गड-मड होती है कि उन्हे अलग-अलग करना कठिन है। मदरसा जब इस कार्य को अपने सिर पर लेता है तो घर बहुत कुछ बना या बिगाड़ चुका है। फिर मदरसे के सुपुर्द होने के पश्चात् भी घर का प्रभाव समाप्त नहीं हो जाता। या तो मदरसा और घर साथ-साथ चलते है और एक दूसरे के काम को समझ कर हाथ बटाने की व्यवस्था करते है या वह एक ओर खीचता है और यह दूसरी ओर। इस की ढोलकी अलग, उस का राग अलग।

दौलत का बोझ

अब जो नन्हा पाठशाला चला तो देखना यह है कि आप, अर्थात् माता-पिता और सरक्षक, उसे पहले से क्या बना चुके है। परन्तु 'आप' तो न जाने क्या-क्या हो सकते है। सम्भव है आप उन अभागों

मे हो जिन के पास दूसरो की कमाई हुई दौलत इतनी होती है कि समझ में नही आता कि उसे करे क्या । दौलत की अधिकता का बोझ कभी-कभी बुद्धि की कमी से हल्का होता है । क्या आश्चर्य है कि आप का बोझ भी कुछ इस प्रकार हल्का हुआ हो । यदि ऐसा है तो गुमान यही है कि आप ने नन्हे की शिक्षा का कर्त्तव्य दौलत के खर्चे से पूरा करना चाहा होगा । नन्हे के लिए अनगिनत बेकार नौकर होगे और अनावश्यक सामान । तरह-तरह के कपडो से बक्स भरे होगे, परन्तु शायद ही कोई पोशाक इस बच्चे के लिए उपयुक्त होगी । जूतो की कतारे होगी और नन्हा प्राय नङ्गे पैर रहता होगा । खिलौनो का एक अच्छा खासा सग्रह होगा, जिससे बच्चा कभी का उकता चुका होगा । यह नौकरो पर, आप के पद चिन्हो पर चलते हुए, उचित-अनुचित शासन जताता होगा । घर मे लाड-प्यार करने वाली दादी या नानी होगी तो उन की प्रसन्नता के लिए कभी-कभी आप को भी कुछ सुना देता होगा । अपने हाथ पैर से काम करने की नौबत कठिनाई ही से कभी आती होगी क्योकि यह अमीरो की शान के विरुद्ध है । बस खाना स्वय पचाता होता होगा । शायद यही काम ठीक नही किया जा सकता होगा । बच्चा चिडचिडा होगा, जिद्दी होगा, असभ्य होगा, मनमानी करने वाला होगा और अब यह पाठशाला जायेगा । आपके किसी मित्र ने बताया होगा कि अमुक पाठशाला मे भेजो, वहाँ फीस अधिक है इसलिए पाठशाला अच्छी होगी । आप को यदि अवकाश मिला होगा तो एक पत्र अ ग्रेजी भाषा मे प्रधानाध्यापक के नाम लिख दिया होगा और सुपुत्र दो-तीन नौकरो और एक दो आयाओ के साथ आप की बडी मोटर मे बैठ कर पाठशाला पधारे होगे । यदि नानी अम्मा ने एक सप्ताह के भीतर बच्चे को पाठशाला से न उठा लिया तो निश्चय समझिये कि पाठशाला आप के किये को 'अन किया' किये बिना अपना कर्त्तव्य कठिनाई से ही पालन कर सकेगी। और फिर भी न जाने घर कहाँ-कहाँ पाठशाला के मार्ग मे आयेगा ।

जीनियस या गधा

हो सकता है कि आप उन सम्मानित व्यक्तियो मे हो जिन्होने अपने को स्वय के प्रयासो से बनाया है, अपनी मेहनत और योग्यता से आगे बढ कर अपने व्यवसाय या कारोबार मे विशेष सम्मान प्राप्त किया है या किसी ऊँचे सरकारी पद पर पहुँच गये है । आप ने यह सोचा होगा कि अपने बच्चो को अपने मे बेहतर शिक्षित बनाये, परन्तु आप स्वय को इतना कम अवकाश होगा कि इस की देख-भाल कोई दूसरा ही करता होगा । परन्तु जिस प्रकार आप अपने कार्य मे व्यस्त होते हुए भी जीवन के सब आवश्यक क्षेत्रो-धर्म, रहन-सहन का ढग, राजनीति पर पक्की और निश्चित राय रखना और उस का प्रचार अपने कम पढे-लिखे और कम धनी लोगो मे आवश्यक जानते है और समझते है कि इस से अपने व्यस्त जीवन के एक-तरफा झुकाव मे कुछ सीध पैदा करेगे, इसी तरह आप अपने बच्चे की ओर ध्यान न देने का बदला उस के सम्बन्ध और इस की शिक्षा की सम्भावना के सम्बन्ध मे पक्की और अफसोस कि निश्चित राय कायम कर चुकाना चाहते है । आप चूँकि सफल मनुष्य है, इसलिए अपनी दृष्टि मे आप ही सफलता का मापदण्ड है । यदि आप की दृष्टि मे कही बच्चे की यह हैसियत अधिक जमी कि वह आप की अच्छाइयो का वारिस है तो शायद आप की राय होगी कि आप का बच्चा अद्भुत है। इस की समझ के क्या कहने, इसकी स्मृति का क्या पूछना । उसे दो पद्य याद करा दिये गये है जो आप प्राय उस उमर मे अपनी मित्रमण्डली मे पढवाते है । यह इन्हे खास अन्दाज मे सिर हिला-हिला कर और

हाथ मटका-मटका कर सुनाता है। आप ने स्वय के असीमित स्नेह में एक रविवार के दिन इसे कुछ अ ग्रेजी वाक्य रटा दिये है। यह भी इसे प्राय मित्र मण्डली मे दोहराना पडता है और इन दृश्यो के पश्चात् आप अपने मित्रो को विश्वास दिलाते है कि यह लडका गजब है गजब! परन्तु आप को कौन बताये कि इस ऊँचे मापदण्ड से तो सारे तोते और सारे बन्दर भी जीनियस् है और यदि कार्य की अधिकता के कारण आप के अङ्ग कमजोर पड गये है, जिगर का कार्य भी कुछ खराब है और दुर्भाग्य से बच्चे से कोई मिजाज के विरुद्ध बात भी कई बार हो गई है, क्योकि ऐसी दशा मे मिजाज के विरुद्ध बात करने के लिए किसी बडे हुनर की आवश्यकता नही तो आप अपनी बुद्धि के कारण इस पक्के नतीजे पर पहुँच सकते है कि वह गधा है! दूसरी रायो की भाँति आप अपनी इस राय को भी समय-समय पर घोषणा करते होगे और आदमी के इस बच्चे को गधा बनाने मे अपने बस पडे कोई यत्न उठा न रखते होगे। अब आप का यह जीनियस् या आप का यह गधा अपनी शुद्ध उत्तमता की अनुभूति या अशुद्ध निकृष्टता की अनुभूति के साथ पाठशाला जाता है। देखिये, पाठशाला आप के पैदा किये हुए उलझाव को किस प्रकार सुलझाती है और आपका हस्तक्षेप वहाँ भी कही और गुत्थियाँ तो नही डालता। शायद आप की व्यस्तता पाठशाला को अपना काम करने दे और आपका 'जोनियस" या "गधा" मनुष्य बन जाये।

धमकियो से तैयारी

परन्तु सम्भव है कि न आप बे-हिसाब बे-कमाई दौलत के वारिस हो न रात दिन कमाई की खीच-तान मे सलग्न, बल्कि औसत दर्जे के ठीक भले मानस हो। अपने दो कान रखते हो, किसी कार्यालय मे सौ सवा सौ के मुलाजिम हो, किसी पाठशाला में अध्यापक हो, प्रतिदिन कुछ समय अपने बच्चो मे बिता सकते हो। घर का काम आप की धर्म पत्नी स्वयं सम्भाल लेती हो, नौकर-चाकर न हो, होशियार धर्म पत्नी घर को साफ-सुथरा रखती हो और वच्चो की देख-भाल करती हो। तब आप का बच्चा बहुत से उन खतरो से सुरक्षित है जिन को अभी बता चुका हूँ, परन्तु फिर बच्चा है, कभी आप के साफ-सुथरे घर मे कही कुछ गिरा देगा, साफ चाँदनी मैली हो जायेगी, माँ क्रोधित होगी और कहेगी, "अच्छा, आने दे तेरे अपने पिताजी को, कल ही तुझे पाठशाला न भिजवा दिया तो कहना!" कभी बच्चे से कोई चीज टूट जायगी, वही पाठशाला की धमकी, कभी खेल कूद में बच्चा चिल्लायेगा, शोर मचायेगा, अभी कपडे बदले गये थे, अभी गन्दा होकर माँ के सामने आयेगा—वही पाठशाला की धमकी दी जायेगी। धमकी का प्रभाव बढाने के लिए पाठशाला का विशेष भयानक चित्र भी कभी खीचा जायेगा और यू आज के दिन के लिए क्या ही खूब तैयारी की गई होगी, इसलिए कि आज आप का नन्हा भी पाठशाला चला है। या हो सकता है कि आप हिन्दुस्तान के उन करोडो किसानो और मजदूरो मे से हो जिनके बच्चो के लिए बस घर की कठिन जिन्दगी ही पाठशालाओ का काम देती है, जिन के लिए पाठशाला स्थापित करने को कभी काफी पैसे इकट्ठे नही हो सकते और जिन के बच्चो को शिक्षा दिलाने के लिए इतनी पाठशालाओ की आवश्यकता है कि हर शिक्षा विशेषज्ञ अँगु-लियो पर हिसाब लगा कर बता देता है कि इतनी पाठशालाएँ स्थापित करने हेतु जितनी पूँजी की आवश्यकता है वह तो इकट्ठी ही नही हो सकती। और यह बातबता कर समझते है कि वडे दूर की कौड़ी लाये। फिर इन सब कठिनाइयो के होते हुए भी यदि कुछ पाठशालाएँ इन के लिए वन जाता है तो ये

अपने बच्चो को इन पाठशालाओ को भेजने के लिए ये तैयार नही होते। मैने गलती से कहा कि आप शायद इन करोडो किसानो या मजदूरो मे से हो। इन बेचारो को इतनी फुरसत कहाँ किवेफिकरो की भाँति रेडियो पर भाषण सुने। कही-कही शिक्षा अनिवार्य हो जाने के कारण, कही इस के मुफ्त होने के लालच से, कही आस-पास के खुशहाल लोगो की देखा देखी, ऐसे किसान या मजदूर का नन्हा भी पढने के लिए बिठा दिया जाता है। वहा नन्हा, जो घर के कामो मे माता-पिता का हाथ बटाता है, जो बकरियाँ चरा लेता है, खेत पर पिता के लिए रोटी ले जाता है, माँ उपले थापती है या रोटी पकाती है तो यह छोटी बहन को बहला लेता है, हाथ पैर का अच्छा मजबूत है, बस आँखे दुखती है या नाक बहती है, परन्तु आँख मिला कर बाते करता है, वे सहारे जीवित रह सकता है, आदमी का बच्चा है, मुरमुरो का थैला नही, और हाँ, न "जीनियस" है न "गधा", परन्तु इसका पिता भी चाहता है कि बच्चा पढ कर पटवारी बन जाये, यह न हो सके तो लाल पगडी वाला चपरासी ही सही। अनिवार्य शिक्षा का कानून इस के जिले के कुछ गाँवो मे लागू हो गया है, इसलिए यह भी आज पाठशाला जाता है।

अपनी-अपनी कठिनाइयाँ

अब आप ही देखिये कि कैसे भाँति-भाँति के बच्चे पाठशाला जाते है। घर ने कैसे-कैसे नमूने बनाये है। क्या-क्या आशाएँ है और उनको पूरा करने की कैसी-कैसी तदबीरे। माँ-बाप के मानसिक उलझाव को देखिये, उनके नतीजे अर्थात् बच्चो की मानसिक गुत्थियो पर ध्यान दीजिये तब ज्ञात होता है कि पाठशाला का कार्य भी कैसा कठिन है। परन्तु क्या पाठशाला वाले वास्तव मे कठिन समझते है या उन का ध्यान अपने काम की इस कठिनाई की ओर जाता है ? उनकी ये कठिनाइयाँ तो सुनने मे आई है कि वेतन कम है, कार्य बहुत है, अधिकारियो के स्वागत-सत्कार में या उन के काम मे अवकाश का और कभी-कभी काम का भी बहुत समय निकल जाता है, छुट्टियाँ कम है, अधिकारी भेद-भाव से काम लेते है, कुछ स्थानो में महीनो वेतन नही मिलता। ये सब और इन जैसी बहुत सी शिकायते सुनने मे आती हैं और प्राय ठीक भी होती है, परन्तु शिक्षा और दीक्षा के कार्य की वास्तविक कठिनाई कुछ और ही है। वह कठिनाई वही है जिसके कारण से घर मे शिक्षा की गलतियाँ होती है, अर्थात् बडो का यह घमड कि वही सब कुछ है, बच्चा कुछ नही, वे सब कुछ जानते है, मजिल जानते है, राह पहचानते है, यात्रा की गति बता सकते है, कार्य उनकी इच्छा के अनुसार हो—इच्छा की रगारगी के क्या कहने—उन्हे घमड है कि बच्चा उनकी मिलकियत है, वह जो चाहे उसे बना सकते है, चाहे अपनी दिल्लगी के लिए उसे अपना खिलौना बनाये चाहे अपने मनमाने उद्देश्यो के लिए अपना दास। उन्हे अपनी बाजीगरी पर इतना भरोसा है कि आम को इमली और इमली को आम बना सकते है। पहले बच्चा घर मे इस मूर्खता से दो-चार होता है, फिर पाठशाला पहुँचता है। क्या पाठशाला बच्चे को इस दुख से राहत देती है ? क्या अध्यापक महोदय भी इस रोग से पीडित नही होते जिस से संरक्षक पीडित थे ? क्या वह भी सब कुछ नही जानते और सब कुछ नही कर सकते ? क्या वह भी यह नही समझते कि बच्चा उन के कुम्हार हाथो मे मिट्टी का एक ढेर है, वे जो रूप चाहे उसको दे दे और उसका मस्तिष्क एक सादा कागज का टुकडा है, वे उस पर जो चाहे लिख दे ? उन्होने शिक्षा के पूरे भवन को ऐसी अशुद्ध नीव पर

खडा कर रखा है और शिक्षा का सारा कार्य बस इस मनहूस प्रयास पर निर्भर है कि प्रकृति जो चाहती वह न होने पाये या जो हम चाहते है प्रकृति को भी वही चाहना चाहिये। प्रकृति तो प्रत्येक बच्चे में व्यक्तित्व के चित्रो की अनगिनत सम्भावनाओ में से किसी एक को पूरा करवाना चाहती है।

किसी ने खूब कहा है कि हर बच्चा जो पैदा होता है वह इस बात की घोषणा है कि ईश्वर अभी आदमी से निराश नही हुआ है। लेकिन यहाँ यह भरोसा है कि जो साचा हमने तैयार किया है बस वही आखरी चीज है। व्यक्तित्व के मोम को पिघला कर बस इसमें डाल देना चाहिये और जो ठप्पा हम ने बनाया है, वही सब से अच्छा है, उसकी छाप बच्चे पर लगानी चाहिये।

कुदरत की अमानत

इस समय मै बच्चो के अभिभावको और उन के अध्यापको को सम्बोधित कर रहा हूँ। यह निवेदन किये बिना नही रह सकता कि आप किसी तरह अपने को इस बुनियादी गलत विचार-धारा से मुक्त करे। बच्चे को आदमी का अगुआ समझे, इस को बे-सहारे स्वय भी बढने दे, इसकी प्राकृतिक योग्यता और प्रवृत्तियो का सम्मान करे, समझे कि यह नन्ही सी जान अपने विकास की स्वभाविक सीमा की ओर स्वय कदम उठाती है। इसे सहारा दीजिये, रास्ते से काँटे हटा दीजिये परन्तु इस के चलने की दिशा न बदलिये, न इस पर इतना ध्यान दीजिये कि यह फिर अपने पर स्वय ध्यान ही न दे सके। न इतना रूखा-पन बरतिये कि इस की वे आवश्यकताएँ भी पूरी न हो जिन मे वास्तव मे यह आप पर आश्रित है, न लाड-प्यार की अधिकता मे उस को मिरजा फोया बनाइये, न दुरस्ती और सख्ती से जिन्दगी से या कम से कम आदमियो से दुखी। मानसिक जीवन की अनगिनत शक्लो को ध्यान में रखिये और यह निश्चय मत कीजिये कि उच्च अधिकारियो या सफल वकीलो के सब बच्चो को ईश्वर विशेष ढ ग से सिविल सर्विस की परीक्षाओ में बैठने के लिए बना कर ससार मे भेजता है। सक्षेप मे इन सम्भावनाओं के कारण जो आप के बच्चे के मानसिक जीवन में अभी छिपी हुई है, उन मूल्यो के लिहाज से जो वह प्राप्त कर सकता है, आप उस का मान-सम्मान कीजिये। जी हाँ, आप घबराये नही, मैने कहा कि आप बच्चे का मान-सम्मान कीजिये। लाचार बच्चे से स्वतन्त्र, सचरित्र व्यक्तित्व तक पहुँचने का प्रयास वास्तव में सम्मान योग्य प्रयास है। आप ने स्वय चाहे इस राह पर कदम उठाना छोड दिया हो और थक कर कही बीच ही मे बैठ रहे हो कि अनगिनत मनुष्यो को इस मजिल तक पहुँचने का सम्मान प्राप्त नही हो पाता, परन्तु आप का बच्चा अभी इस राह पर पहले-पहल कदम उठा रहा है, इस का मार्ग न रोकिये और यह भय भी अपने दिल मे न आने दीजिये कि वह आप की मिलकियत है। आप जो चाहे उसे बनाये, वह आप की मिलकियत नही, आप के पास कुदरत की अमानत है। कुदरत के हक को अपनी इच्छा से ऊंचा मानिये।

बुनियादी सिद्धान्त

अध्यापको से भी, जिन की पाठशाला में ये बच्चे इसलिए भेजे जाते है कि समाज के विचार से घर शिक्षा-दीक्षा के कर्त्तव्य को पूरी तरह निभा नही सकता, मेरी यही प्रार्थना है कि आप भी अपने पवित्र

गम का बुनियादी सिद्धान्त इस सभ्यता और सम्मान को बनायें । यह सिद्धान्त मस्तिष्क मे आ गया तो शिक्षा के काम मे आप का सारा ढग बदल जायेगा । आप अपनी कक्षा को भेडो की रेवड न समझेगे, वल्कि इस मे प्रत्येक बच्चे की विशेष प्रवृत्तियो और विशेष आवश्यकताओ का ध्यान रखेगे । मैने आज की बातचीत मे परिवारो की दशा के कारण बच्चो मे जो भिन्नता हो जाती है उस की ओर सकेत किया है । आप यदि इन पर दृष्टि न रखेगे तो जहाँ सहारे की आवश्यकता है वहाँ धक्का लग जायेगा, जहाँ साहस बढाने से काम बन सकता है वहाँ आप बे जाने निरुत्साह का कारण बन जायेगे । जहाँ आप की एक मुस्कराहट से बच्चे के दिल की कली खिल सकती थी वहाँ आप की वेरुखी से उस के मुरझा जाने का डर उत्पन्न हो जायेगा । यदि बच्चे के प्रति सदव्यवहार और उसका सम्मान आप के नजदीक ठीक सिद्धान्त होगा तो आप अपने शिष्यो की मानसिक कठिनाइयो को समझने की कोशिश करेगे और हर एक के मुनासिब उपाय सोचेगे । इन सामाजिक अन्तरो के अतिरिक्त बच्चो की मानसिक आवश्यकताओ मे जो अन्तर होते है उन पर भी आप की दृष्टि रहेगी । पहले-पहल जब यह मानसिक अन्तर अधिक प्रकट नही होते तो आप प्रयास करेगे कि जो समानतायें अधिक से अधिक बच्चो मे हो उन्ही को कक्षा मे शिक्षा का साधन बनाये । उदाहरणार्थ सात से बारह चौदह वर्ष तक के बच्चो मे यदि आप देखे कि बच्चे हाथ के काम से रुचि रखते है तो आप शायद इस बात की जिद्द न करे कि उन की शिक्षा बस पुस्तको द्वारा ही हुआ करे क्योकि बडे-बूढो के विचार मे पुस्तको का पढना ही शिक्षा कहलाता है । छोटे का अदब प्रेम और महरबानी का रूप ले लेता है । यह सिद्धान्त जो मैने बताया है आप मे बच्चे के प्रति प्रेम और उस पर मेहरबानी का गुण उत्पन्न कर देगा । आप को असफलता का सामना करने के लिए सहनशीलता और सतोष की वह शक्ति प्रदान करेगा जो प्रेम के पश्चात् अध्यापक की सब से बडी पूँजी है । आप बच्चो के अच्छे अध्यापक, अर्थात कुदरत की अमानत के सच्चे अमीन बन जायेगे और आप के परामर्श और आप की मिसाल से बच्चो के पिता तथा सरक्षक भी अपने कर्त्तव्य को अधिक अच्छी तरह समझेगे और अध्यापक और अभिभावक के सहयोग मे शिक्षा-दीक्षा का कार्य वास्तविक ठीक तरीके से किया जा सकेगा । ●

बच्चो को पहचानिये

राष्ट्रपति पद ग्रहण करने के बाद डा० जाकिर हुसैन ने अपने प्रथम अभिनन्दन के उत्तर मे कहा मै मामूली शिक्षक हूँ, जिस पर मुझे गर्व है । आप सब से भी मेरा यही अनुरोध है कि देश की तरक्की और खुशहाली के लिए पहले शिक्षा पर ध्यान दीजिये, विशेषकर बच्चो की शिक्षा पर । जिस समाज मे बच्चो की अच्छी शिक्षा का प्रबध नही होगा, वह कभी उन्नति नही कर सकता । हमे बच्चो का सम्मान करना सीखना चाहिए । कौन जानता है कि इन्ही बच्चो मे कोई महात्मा गाँधी, जवाहर लाल, विवेकानन्द या रवीन्द्रनाथ भी हो ।

इफ्तदाई तालीम

[२४ फरवरी, १६४६ को न्यू एजूकेशनल फैलोशिप के लाहौर सम्मेलन मे डा० जाकिर हुसैन का भाषण]

भाइयो और बहनो, आपका धन्यवाद करने से पहले क्षमा चाहता हूँ कि आम दस्तूर के विरुद्ध आपकी सेवा में यह भाषण अपनी मातृभाषा में पेश कर रहा हूँ । अजब सी बात है कि ऐसी वात करने पर क्षमा चाह रहा हूँ । चाहिए तो ये था कि अगर किसी अन्य भाषा में आप को सम्बोधित करता तो क्षमा चाहता । लेकिन हमारी सभाओ के आम दस्तूर ने वर्त्तमान दशा को बिल्कुल उल्टा कर दिया है । देश में अ ग्रेजी शिक्षित वर्ग की भाषा बन गई है । वे इस में पढ़ते है, इस मे लिखते है, अगर सोचते है तो इसी में सोचते है और जब शिक्षित लोगो को सभा मे कुछ कहना हो तो अपने विचारो को अ ग्रेजी शब्दो की पोशाक पहना कर उपस्थित करते है । ऐसा क्यो और कैसे हुआ, इस से मुझे इस वक्त बहस नही । अच्छा हुआ या बुरा हुआ इस पर भी कुछ निवेदन करना नही चाहता । केवल इतना जानता हूँ कि यदि हमारे देश मे शिक्षा किसी एक छोटी सी जाति के साथ रहने वाली नही है, अगर इस देश के रहने वाले पशुओ के रेवडो की तरह नही बल्कि मनुष्य के वर्गो की तरह जीवन गुजारना चाहते है, अगर यहां का शासन किसी छोटे से ताकतवर या चालाक गिरोह का इजारा नही बल्कि यहाँ के लोकतन्त्र की इच्छा के अनुसार होने वाला है, तो इल्मी जबान के मामले में वर्त्तमान दशा बदलेगी और जल्द बदलेगी । कोई यह न समझे कि मै अ ग्रेजी जबान की कद्र करना नही जानता । मै जानता हूँ कि हम ने अ ग्रेजी भाषा के साधन से बहुत कुछ सीखा है । जानता हूँ कि इस से बहुत कुछ और सीखना है । इस ने हमारे विचार मण्डल मे हरकत पैदा की है । इस ने हमें पश्चिम के

कला-कौशल, विद्याओं विचारों और सभ्यताओं की जानकारी करवाई। इस ने राजनीति और रहने-सहने के ढङ्गों से परिचित कराया। इस का हम पर बड़ा अहसान है और इस से अभी और बहुत काम लेना है। हम में और पश्चिमी संस्कृति में यही एक साधन शायद अर्से तक समान रहने वाला है। लेकिन जहाँ मैं ये सब जानता हूँ वहाँ यह भी जानता हूँ कि हम अंग्रेजी जानने वालों ने जो एक नई जाति इस देश में बना ली है उस ने बेजा तरीके, स्वार्थ से अपने विशेष फायदों का अपने तक सीमित रखने के भी प्रयास किये हैं। उस ने अपनी शिक्षा को औरों से ऊँचा उठाने का साधन बनाया। जो सीखा वह सिखाया नहीं। विशेष व्यक्तियों को जो हासिल हुआ उसे आम जनता तक नहीं पहुँचाया गया। अपने को सींचा है और कौम को प्यासा रखा है। चूँकि इल्मो हिकमत के खजाने बचाने से घटते हैं और लुटाने से बढ़ते हैं, इसलिए इस वर्ग के स्वार्थीपन ने इसे भी कुछ कम हानि नहीं पहुँचाई। अपनी कौम के वास्तविक जीवन से असम्बद्धता ने इन्हें अपने देश में परदेशी बना दिया, देश में देश-निकाला कर दिया। इन के विचारों में नयापन पैदा नहीं होने दिया। इन के कामों को फलदार नहीं होने दिया। इन की जुबान को माँगे की बातचीत मिली और इन के उत्साह को माँगे की इच्छाएँ।

शीघ्र परिवर्तन जरूरी

खैर यह जो हुआ सो हुआ। हमें जल्द से जल्द इसे बदलना चाहिए। विशेषतया शिक्षा का काम करने वालों को इस में जरा देर न करनी चाहिए कि अपने मार्ग से एक परदेशी भाषा के साधन में तालीम देने की कठिनाई को हटायें। प्रारम्भिक और इससे पहले की शिक्षा की समस्या पर सोच-विचार करने के लिए जो सभा यहाँ एकत्रित है उस के कार्यकर्त्ताओं को तो जानना चाहिए कि इन का सारा काम बच्चों से और बच्चों के माता-पिता के साथ मातृ-भाषा ही के द्वारा सम्भव है। इसलिए अपनी भाषा में यह भाषण देने पर क्षमा चाहना कुछ आवश्यक तो नहीं है परन्तु रस्मो-रिवाज की माँगें कठिन होती हैं। हमारी शैक्षणिक सभाओं में मातृ-भाषा को स्थान मिलना नई बात है। मैं आप से आज्ञा लिए बिना इसे यहाँ ले आया हूँ इसलिए क्षमा चाहता हूँ। यद्यपि इस क्षमा याचना में थोड़ी सी शिकायत और ताड़ना भी सम्मिलित है।

आप ने क्षमा कर दिया हो, और विश्वास करता हूँ कि क्षमा कर ही देंगे, तो अब आगे बढ़ूँ। सब से पहले आप को हार्दिक धन्यवाद देना है कि इस सभा की अध्यक्षता के लिए आप ने याद फरमाया। मैं न्यू एजूकेशन फैलोशिप के काम से एक समय से परिचित हूँ और इस की दिल से कद्र करता हूँ। इस फैलोशिप ने संसार के विभिन्न देशों में शिक्षा का काम करने वालों को नये मार्ग सुझाये हैं। इस ने बच्चों के व्यक्तित्व को साँचों और ठप्पों में दबने से बचाने के प्रयास किये हैं। बच्चों की प्रवृत्तियों और रुझानों को उन की शिक्षा की बुनियाद बनाने पर जोर दिया है। बच्चों की निजी रुचियों के पालने को पाठशाला और घर में बढ़ावा दिया है। स्वतन्त्रता में अनुशासन के सही विचार से जन साधारण को प्रवगत किया है। शिक्षा में खेल और कार्य के महत्त्व को दर्शाया है और सब से कठिन पर कि शिक्षा का काम करने वाले अध्यापकों को एक नयी आशा प्रदान की है, इन में एक नया उत्साह पैदा किया है और इस बेजान बेगार को एक आनन्दपूर्ण पद दिया है। इस फैलोशिप की किसी

सभा में अध्यक्षता का सम्मान मेरे हक से बहुत ज्यादा है। लेकिन आप के प्रेम ने यह सम्मान प्रदान किया। हार्दिक धन्यवाद !

आप इस सभा में प्रारम्भिक शिक्षा और इससे पहले की शिक्षा के सम्बन्ध में सोच-विचार और वाद-विवाद करने वाले है। मैने प्रारम्भिक शिक्षा की समस्या पर सोचने और काम करने में कुछ समय अवश्य व्यतीत किया है, परन्तु इस से पूर्व की शिक्षा के सम्बन्ध मे अब तक कुछ नही कर सका हूँ, इसलिए निजी अनुभव से इस विषय मे कुछ निवेदन नही कर सकूगा। हाँ, अनिवार्य शिक्षा की हिमायत की वजह से कुछ दोस्तो ने मुझ पर जो सन्देह किया है कि मै इससे पूर्व की शिक्षा-दीक्षा को शायद कुछ महत्व नही देता और उस की समस्याओ को ध्यान देने योग्य नही समझता, वह ठीक नही है। अकेली दिनचर्या में एक समय में एक चीज का सिद्धान्त, प्राय. लाभदायक सिद्ध होता है। लेकिन इस का अर्थ दूसरी सब वस्तुओ से असम्बद्धता या बेसुधी नही होता। बुनियादी शिक्षा की आवश्यकता पर, इसे मुक्त और अनिवार्य बनाने पर पिछले चन्द वर्षो में ठीक ढग से जोर दिया जाता रहा है। इसका उद्देश्य हरगिज यह नही होना चाहिये कि इस बुनियादी शिक्षा की मन्जिल से पहले की शिक्षा और दीक्षा की समस्या कोई खास महत्व नही रखती। अफसोस है कि हमारे देश में अब तक इस प्रारम्भिक उम्र मे शिक्षा और दीक्षा की समस्या को अधिक ध्यान दिये जाने का हक नही मिला। हालाँकि जीवन की बाज बुनियादी आदतों के बनने-बिगडने मे यह जमाना बडा ही महत्वपूर्ण है। चाहे शारीरिक लालन-पालन को देखिये कि उम्र के पहले ही साल मे बच्चे का कद पैदाइश के समय से कोई तिगुना हो जाता है और फिर सारी उम्र कभी इस तेजी से नही बढता है। पहले १८ महीनो में मस्तिष्क के बढ़ने में जितनी तेजी होती है फिर कभी इतनी मुद्दत में उतनी नही होती। जोड़ों और अंगों का भी यही हाल है। शरीर की इस तीव्र बढोतरी के कारण ही यह समय स्वास्थ्य के लिए खतरो से भरा हुआ जमाना है। हमारे देश का तो कहना ही क्या। यहाँ के वातावरण में जो हजारों बच्चे पहला साँस लेते है उनमे से पौने दो सौ के करीब तो बाल्यावस्था की मन्जिल से आगे नही बढ़ पाते। दूसरे देशो में भी जहाँ जीवन इतना सस्ता नही है और बच्चे जीवन के भोजन के थाल पर बिन-बुलाये मेहमान की हैसियत नही रखते, वहाँ भी यह खतरे नन्ही-नन्ही जानो को उठाने पड़ते है। अमेरिका में यह सारी मौतो का एक तिहाई, छ. वर्ष से कम उम्र वालों के हिस्से में आता है, इंगलिस्तान में अनुमान लगाया गया है कि ८० से९०% बच्चे स्वस्थ पैदा होते है, मगर जब ५ साल की उम्र मे पाठशाला जाते है और वहाँ डाक्टरी निरीक्षण होता है तो एक तिहाई से अधिक तरह-तरह की बीमारियो में फँसे पाये जाते है। कही छूत के रोगो के फल के रूप में, कही घर के अस्वस्थ वातावरण की बदौलत, कही घर की उलझनो की खीचतान के असर से। जहाँ इन हालात को बदला गया है वहाँ यह सूरत भी बदल जाती है। निरीक्षण बताता है कि अच्छी पाठशालाओ में जा कर बच्चों का स्वास्थ्य ठीक हो जाता है। बीमारियाँ भाग जाती है। दाँतों की हालत और हो जाती है, और बच्चों के मुकाबले में कद और तेजी से बढता है। फिर यही नही कि यह समय बच्चे के लालन-पालन के विचार ही से बड़ा महत्व रखता हो, सीखने की रफ्तार भी शारीरिक बढ़ाव की रफ्तार से कुछ कम नही होती। इसी जमाने में बच्चा ज्ञानेन्द्रियो का प्रयोग सीखता है। इन की सहायता से अपने वातावरण को पहचानता है। जिस्म के पट्ठो पर अधिकार प्राप्त करता है। चलना सीखता है, बोलना सीखता है। ढाई-तीन साल की आयु में अपनी मातृभाषा को काम चलाने के योग्य सीख चुकता है। चीजो के आपसी

सम्बन्ध का अनुभव उसे प्राप्त होने लगता है। विस्तार के मार्ग पर चलना प्रारम्भ कर देता है और अनुभवो की बढोतरी मे तो इतनी तेजी होती है कि जानने वाले कहते है कि इसी समय मे इसके चरित्र की नीवे पड चुकती है। जीवन का और कौन सा समय इतने और ऐसे बुनियादी महत्व रखने वाले विस्तार से भरा होगा ?

न्यूनतम आवश्यकता

इस मे कोई शक नही कि अगर हमारे कौमी जीवन की शक्ल और प्रवन्ध जिम्मेदार वाकई इस फर्ज को पूरा करना चाहते है तो इन्हे इस उम्र के वच्चो की शिक्षा को पहले से अधिक अपने इरादो मे स्थान देना होगा। मै नही जानता कि बुनियादी तालीम छ वर्ष की उम्र से अनिवार्य की जायेगी, जैसा कि सैन्ट्रल एडवाईजरी वोर्ड का प्रस्ताव है या ७ साल की उम्र से जैसा कि बुनियादी कौमी शिक्षा के प्रस्ताव की मॉग है (या जो उम्र आपकी कॉन्फ्रेस सोच-विचार के बाद तय करे)। वहरहाल ६ या ७ साल की उम्र के वच्चो की देखभाल, डाक्टरी जॉच और मुनासिब इलाज, इन के लिए खुली हवा, अपने हम उम्रो के साथ दिन का एक हिस्सा गुजारने का प्रवन्ध, इस उम्र की आवश्यकताओ और तकाजो को जानने वालो की प्रेमपूर्ण निगरानी मे स्वास्थ्य और सफाई का, मेल जोल की जिन्दगी का, अपने नन्हे-नन्हे पैरो पर खडे हो सकने का और दूसरे नन्हे साथियो की व्यक्तिगत और दलगत आदते पैदा करने का प्रवन्ध जरूर करना होगा।

मेरे ख्याल मे इस उम्र के वच्चो को वाल-वाड़ियो मे और नन्हे शिक्षा केन्द्रो मे भेजना अभी माता-पिता के लिए अनिवार्य तो नही करना चाहिये, परन्तु वच्चो की वडी सख्या के लिए खास तौर पर जहा घर के लोग काम-धन्धो या दूसरी मजदूरियो के कारण अपना कर्त्तव्य पालन नही कर सकते, इन शिक्षा केन्द्रो का प्रवन्ध सरकार की ओर से होना चाहिये। गैर सरकारी प्रवन्ध मे ऐसे शिक्षा केन्द्र खोले जाये तो उदारता से उनकी सहायता करना सरकार का कर्त्तव्य है। इतनी छोटी उम्र के वच्चो को घर से अलग करना वहुत नई-सी वात है और वहुत से घर शायद अपना कर्त्तव्य आप पालन करने के योग्य भी हो, इसलिए फिलहाल अगर इस उम्र के वच्चो मे १० मे से २ इन शिक्षा केन्द्रो मे भेज दिये जाये तो हिसाव के विचार से तो कम ही है, मगर कार्य के विचार से काफी होगे। इनके लिए अलग शिक्षा केन्द्र खोल कर या वुनियादी पाठशालाओ के साथ इन छोटे वच्चो के लिए अलग विशेष प्रवन्ध कर के सरकार अपने कर्त्तव्य से उऋण हो सकती है, वशर्ते कि पाठशाला के इस हिस्से की देखभाल के लिए अलग शिक्षा प्राप्त अध्यापक वल्कि अध्यापिकाये इकट्ठी की जाये और वच्चो को साफ, खुली हवा मे एक अच्छे वगीचे के अन्दर, घर से वेहतर हाल मे, रखने का प्रवन्ध हो सके। साधारणतया यह समझा जाता है कि ये शिक्षा केन्द्र या वाल वाडियॉ इसलिए आवश्यक है कि वहुतेरे वच्चो को अच्छा घर नसीव नही। गरीवी और सुस्ती, वीमारी आदि अक्सर वच्चो को घर के सामाजिक वरदानो से वचित रखते है। इसलिए भी इन शिक्षा केन्द्रो की आवश्यकता है। लेकिन सच यह है कि अगर घर मे वह सब कुछ हो जो उसे होना चाहिये तव भी वह सव कुछ इकट्ठा नही कर सकता जिससे सारा वच्चे का लालन-पालन और तेजी से नये-नये रूप धारण करने वाली तवीयत

करती है। इसलिए इन नये शिक्षा केन्द्रो के बनाते वक्त यह बात सामने रखनी चाहिये कि यह घर का विकल्प भी है और घर की कमी को पूरा करने वाला भी। बच्चे की शिक्षा मे घर का वह प्रभाव है कि यदि इन शिक्षा केन्द्रो ने घर से अपना सम्बन्ध मजबूत न किया तो ये अपना काम कभी खूबी से नही कर पायेगे। एक ओर उन की जानकारी से काम लेना होगा और दूसरी ओर माँ को बच्चे की सेवा की राहे समझनी और सुझानी होगी। उसका कुछ बोझ अपने कन्धो पर लेना होगा ताकि जो बोझ इस के जिम्मे रहे वह इसे ज्यादा खूबी से उठा सके। इन शिक्षा केन्द्र को डाक्टरी सहायता पहुँचानी होगी जिसकी बच्चे को आवश्यकता होती है। इन्हे बच्चो मे अच्छी-अच्छी आदते डालनी होगी और ऐसा वातावरण पैदा करना होगा जिसमे वह अपनी आयु के अनुसार वह सीख सके जो प्रकृति चाहती है। वहा तरह-तरह के खेलो का प्रबन्ध करना होगा, विकास सम्बन्धी भी और काल्पनिक भी। आदते बनाने के सम्बन्ध मे भी और बच्चे को अपने शारीरिक विकास के लिए जिस कार्य-क्रम और प्रकृति की आवश्यकता है उसके अवसर भी इकट्ठे करने होगे। आस-पास की चीजो की विशेषता से जानकारी का सामान करना होगा। इस के बरतने मे जो दक्षता की आवश्यकता है उसकी बुनियाद डालनी होगी और बातचीत करने, अपने साथियो और अपने बडो से अपनी कहने तथा उन की समझने की आदत बनानी होगी। फिर दो-तीन साल की उम्र ही से बच्चे को साथियो की तलाश होती है। केवल माँ का साथ ही काफी नही होता। वह अपने इर्द-गिर्द और बच्चे चाहता है। इन से सहारा लेना, इन्हे सहारा देना चाहता है और सामाजिक जीवन का, साँस्कृतिक सिद्धान्तो का लेन-देन प्रारम्भ हो जाता है। इसीलिए बच्चे को दूसरे बच्चो की संगत और सोहबत मिलनी चाहिए और उसके शिक्षा-केन्द्र का प्रबध प्राय: घरो मे अधिक उत्तम ढग से किया जा सकता है। अलबत्ता यह ख्याल रखना आवश्यकहै कि साथियो का यह वर्ग कही बडा न हो जाये। जब दोस्त बहुत ज्यादा हो जाये तो वे भाई-बहन नही रहते, गिरोह बन जाते है जिसमें बच्चा खो-सा जाता है और जिस से कभी कोई लगाव पैदा नही हो पाता। वह इस गिरोह में या तो अन्दर को खिच जाता है, शर्मीला और झेपू बन जाता है या फिर लड़ता-झगड़ता है और हर एक पर धौंस दिखाने की कोशिश करने लगता है। या दब जाता है या दबाना चाहता है। तादाद बढाने में नन्हे बच्चो के लिए छूत की बीमारी का भी सख्त खतरा है। इसलिए तादाद तो कम ही रखना ठीक है और इसका ख्याल और भी आवश्यक है कि हम कही अपनी आर्थिक कठिनाइयों को सामने रखते हुए, या काम को जल्द फैलाने के लिए यह न कर बैठे कि इन शिक्षा केन्द्रो मे बहुत से बच्चो को एक स्थान पर भर दे। मेरी राय मे तो एक शिक्षा केन्द्र में तीस-चालीस से ज्यादा बच्चे नहीं होने चाहिये।

शैक्षणिक आवश्यकताएँ

इन नये शिक्षा केन्द्रो को अगर वास्तव मे एक घर का स्थान देना है और घर की कमियो को पूरा करने वाला बनाना है तो इन की इमारत, इन के बगीचे, इन के खेल के मैदान, खाना तैयार करने और खाना खिलाने का साफ प्रबन्ध, इन-मे बच्चो के पालतू जानवरों की गुंजाइश, बच्चो के लिए सफाई और शौच के स्थान, इन के लिए नीचे व हल्के साज और सामान, संक्षेप मे बहुत-सी बातो को सामने रख कर हर चीज की जगह निकालनी होगी। हमारे देश मे अभी शिक्षा के भवनो में शैक्षणिक आवश्यकताओं का ख्याल जरा कम ही रखा जाता है। इस तरह के भवन हर प्रकार के काम मे लाये

जा सकते है , परन्तु प्रकट है कि यह बात सत्य नही । क्या ही अच्छा हो कि देश के अच्छे भवन निर्माण विशेषज्ञ और शिक्षा शास्त्री आपस मे परामर्श से इन शिक्षा केन्द्रो के लिए नमूने के नक्शे बनाएँ जिन मे स्थानीय विशेषताओ को दृष्टि मे रख कर कुछ परिवर्तन कर के हर स्थान मे काम लिया जा सके। ब्रिटेन के नर्सरी स्कूल एशोसिएशन ने सन् १९४४ के शिक्षा नियम, लोकसभा मे पास होने से पूर्व ही अपनी एक कमेटी बैठा दी थी जिस ने ब्रिटेन के हालात सामने रख कर, एक रिपोर्ट भी प्रकाशित कर दी है, जिस मे इन नये शिक्षा केन्द्रो के लिए, जो इस नियम के अधीन सारे देश मे बनने वाले है, भवन और साज-सामान से सम्बन्धित तमाम कार्य पर विशेषज्ञो से परामर्श का सक्षिप्त विवरण पेश कर दिया है । क्या ही अच्छा हो कि हम भी अपने कामो में इस दूरअन्देशी का सबूत दे सके । क्यो न आप की फैलोशिप इस तरह के काम अपने जिम्मे ले ले ?

आप की कॉन्फ्रेंस के सामने दूसरी विवादग्रस्त समस्या प्रारम्भिक शिक्षा की है जिसे आज सारे देश की शिक्षा की भाषा मे हम बुनियादी तालीम कहने लगे है। यह ५-६ साल से ऊपर की आयु के लडके-लडकियो की शिक्षा की समस्या है । इस कम उम्र के लडके-लडकियो मे कुछ की शिक्षा तो सदा जैसी-तैसी होती ही रही है । लेकिन जब तक शिक्षा का यह काम निजी काम होता है, बच्चो के संरक्षक अपनी इच्छा और बच्चे से सम्बन्धित अपने विचारो की दृष्टि से इस प्रकार की जैसी और जितनी शिक्षा का प्रबन्ध चाहते है करते है या अध्यापक अपनी इच्छा से विद्यार्थी को जो चाहता है बनाता है । इसलिए शिक्षा के उद्देश्यो और उसकी विधियो के सम्बन्ध मे बहुत भिन्नता रही है । जितने मुँह उतनी बाते । जितने राही उतनी राहे । लेकिन जब शिक्षा समाज का उत्तरदायित्व बन जाती है तो समाज प्राकृतिक स्वभाव से सदा यह चाहता है कि वह शिक्षा से बच्चो को अपना लाभदायक साधन बनाये । उसे लाभदायक बनाने मे समाज की ओर से बडी ज्यादतिया होती है और बराबर होती रही है । लाभदायक बनाने की खातिर मानवता के अधिकार छीन लिये जाते है । साँचो मे कस कर हर व्यक्तिगत विशेषता का झोल मिटा दिया जाता है और एक-से काटे-छाटे ढले-ढलाये नागरिक बनाने की इच्छा को बे रोक-टोक पूरा किया जाता है । अगर समाज का प्रबन्ध लोक-तन्त्रीय हो तो चूँकि लोकतन्त्र मानव की कदर करता है, इसलिए उस की व्यक्तिगत विशेषता का लिहाज करने पर भी मजबूर होता है । मगर लाभदायक आदमी तो इसे भी दरकार होते हैं । बल्कि उसका तो अस्तित्व ही अपने नागरिको की ठीक शिक्षा पर आधारित होता है । दूसरे अगर अपने लिए लाभदायक और आज्ञाकारी जनता बनाने की सोचिए तो भी इसे अपने वास्तविक नागरिकों की शिक्षा का काम पूरा करना होता है । इसलिए जहाँ भी लोकतत्र है, पाठशालाएँ उन्नति करती हैं । शिक्षा का आम प्रबन्ध करना होता है । इसका मुफ्त प्रबन्ध करना होता है और चूंकि विषय समाज के अच्छे या पूरे बनने का ही नही होता है, बल्कि उसकी मौत और जिन्दगी का होता है, इसलिए शिक्षा को भाग्य और अवसर पर नही छोडा जा सकता, बल्कि अनिवार्य भी करना होता है । हमारे देश मे भी जैसे-तैसे राजनीति लोकतन्त्र की ओर बढी है शिक्षा की समस्या सामाजिक जीवन की एक महत्वपूर्ण समस्या बनी है और इस समय हम लोकतत्रीय शासन के बहुत करीब है, चाहे एक संयुक्त हिन्दुस्तान मे, चाहे पृथक्-पृथक् हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में । इसीलिए उस बात पर सब एक राय होंगे कि हमे उतने समय के लिए, जितना सामाजिक उद्देश्य की दृष्टि से आवश्यक हो,

अपने तमाम लडके-लड़कियों के लिए आम और मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का प्रबन्ध करना ही है। मै समझता हूं कि इस पर भी सब एक राय होगे कि यह समय यदि ४ या ५ साल का हुआ तो काम न चलेगा और स्वतन्त्रता और लोकतन्त्र का बोझ उठाने वाले नागरिको की तैयारी के लिए वर्तमान में कम से कम ७-८ साल तक की शिक्षा का प्रबन्ध करना होगा। आगे चल कर इस अवधि को और बढ़ाना पडेगा।

वास्तविक प्रश्न

परन्तु ये चीजें, मैने जिन का जिक्र किया है, बस बाहरी ढाँचे है। वास्तविक प्रश्न तो यह है कि शिक्षा हो कैसी ? इस का उत्तर सोचना और सफलता बरावर अधिक निकट लाने का प्रयास लोकतन्त्री प्रयास में यो तो सब का काम है पर विशेषकर शैक्षणिक कार्यकर्त्ताओं का कर्त्तव्य है। हमें इस कॉन्फ्रेस मे भी इस पर जरूर गौर करना चाहिए। उस प्रश्न का उत्तर तलाश करने या समाज के उद्देश्यो को हम पहली जगह दे सकते हैं। समाज की तरफ से शिक्षा का प्रबन्ध हो, इसके कार्यकर्त्ताओं को तरक्की हो तो यह आसानी से हो सकता है कि हम समाज की आवश्यकताओ को ही सामने रख कर इस प्रश्न का उत्तर दे दं, परन्तु याद रहे कि इसमें बड़े खतरे है। लोकतन्त्रीय समाज भी बिल्कुल हर तरह पाक नही होता। व्यक्तित्व के सम्मान के दावों को सामाजिक जीवन की आवश्यकताओ का कार्य रूप नकार सकता है और लोकतन्त्र में शिक्षा प्रबन्ध भी इ सान की इ सानियत को मिटा कर अपने नागरिको को मशीनो के बीच वैसा ही बनाने की तदबीरे कर सकता है। सामाजिक लाभो के लिए स्थायी उद्देश्यो को नजरअन्दाज कर सकता है, वर्तमान पर भविष्य को कुर्बान कर सकता है, इसलिए सही रास्ता यह मालूम होता है कि हम व्यक्ति को दृष्टि में रखते हुए शिक्षा के महत्व पर गौर करे तथा समाज के दृष्टिकोण से भी और देखे कि अगर दोनो में कोई भिन्नता है तो वह कैसे दूर हो।

शिक्षा के अमल में व्यक्ति और समाज के बीच पहले दिन से चोली-दामन का साथ है। आप शिक्षा का कार्य करने वाले है। आप से तो छिपा हुआ न होगा कि शिक्षा अर्थात् वास्तविक मानसिक शिक्षा कैसे होती है। मस्तिष्क अपने विकास के लिए शरीर की तरह भोजन चाहता है। यह भोजन इसे कहां से मिलता है ? समाज की सस्कृति, इसकी परम्पराओ, रस्म-रिवाज आदि से। इसके इल्म से, इसकी जवान से, इसकी भाषा से, इसकी सभ्यता से, इसके कला-कौशल दस्तकारी से, इसके चरित्र से, इसके सामाजिक जीवन के नमूने से, इसके गॉव, कस्वो की वनावट से, इसके ज्ञान-विज्ञान से, चित्रकारी से, इसकी भवन निर्माण कला से, इसकी दूकानों से, इस के कारखानों से, इसके शासन प्रवन्धो से, इसके वड़े-वडे आदमियो के जीवन के नमूनों से।

सुरक्षित शक्तियाँ

सामाजिक सस्कृति की ये सारी अन्दर और वाहर की चीजें जो मस्तिष्क के विकास के लिए भोजन का काम देती है, स्वयं भी किसी न किसी मानव मस्तिष्क की पैदावार होती है। किसी न किसी

मानव मस्तिष्क ही ने इनमे में यह रूप लिया है। किसी मानव मस्तिष्क ही ने इतनी शक्ति को सुरक्षित कर दिया है। इन मे मानव मस्तिष्क की इच्छाये, सूझ-बूझ और दोष ही तो छिपे हुए है। यह सब मस्तिष्क की पूंजी रखने वाले का गुप्त कोष है या किसी अलमस्त के आराम करने का सिरहाना। गर्ज सब जहने इन्सानियत की आभारी हैं।

तोते और सरकस के जानवर

जब कोई मानसिक व्यवस्था, मस्तिष्क इन चीजो से मिलता है तो इन की छिपी हुई ताकतें प्रकट होती है। इन मे सोई हुई शक्तिया इस नये मस्तिष्क मे जा कर जग जाती है। इसके लिए ये गडे हुए खजाने अपना मुँह खोल देते हैं और शाँत सिरहानो से इस के लिये फिर शोर उठ खडा होता है। हाँ, यह जरूर कि हर मस्तिष्क के लिए हर सास्कृतिक वस्तु अपनी छिपी हुई शक्तिया प्रकट नही करती। शारीरिक भोजनो की तरह मानसिक खाने भी सब को एक ही से नही रास आते है। किसी को कोई भाता है, किसी को कोई। भेद इस का यह है कि हर मस्तिष्क को वही चीज भाती है जो आप की मानसिक बनावट के अनुसार हो। यही तालीम का बुनियादी गुर है। इस को भूलना या इसके खिलाफ चलना ऐसा है जैसे अन्धे को रग और बहरे को आवाज से शिक्षा देने का प्रयास। जिस मस्तिष्क की बनावट सभ्यता के फलो के अनुसार हो उसे कारीगरी की चीजो से, जिस की बनावट इल्मी और नजरी चीजों से मेल रखती हो उसे अमली चीजो से तालीम देना चाहिये। इसके विरुद्ध शिक्षा के महत्व ने अनजान की दलील है और वास्तविक मानसिक शिक्षा के दरवाजो को बन्द कर के तोतो और सरकस के जानवरो का पद देना चाहती है।

अच्छा, तो इस सिद्धान्त की माँग ६-७ वर्ष की आयु के बालक-बालिकाओ के लिए क्या है? यदि ऐसा हो कि प्रत्येक बालक-बालिका की मानसिक शिक्षा पृथक-पृथक साँस्कृतिक वस्तुओ से हो सकती है तो फिर किसी सार्वजनिक व्यवस्था के बनाने की कठिनाइया असम्भव की सीमा तक पहुँच जाती। जन साधारण के लिए पूर्ण व्यवस्था करने वालो का सौभाग्य है कि इस आयु मे मानसिक भिन्नता उत्पन्न होने के पूर्व कार्य करने की रुचि बच्चो मे बहुत आम, बल्कि यूँ कहिये कि सर्वव्यापी होती है। इस आयु मे बच्चे चाहते है कि कुछ बनाये बिगाडे, तोडे, जोडे। इन के हाथ काम के लिए बेचैन होते हैं। इन की मानसिक शिक्षा के लिए इस आयु मे प्रकृति की इच्छा यही जान पडती है कि वे हाथो की सहायता से सोचे, वस्तुओ को बरत कर पहचाने और काम कर के सीखे। यह बडा ही अनजानपन और भुलावा है कि हम इस आयु के बच्चो के लिए मानसिक शिक्षा की इस सीमा को अर्थात सक्रियता को इन की शिक्षा मे स्थान नही देते और प्रकृति की माँगो को ठुकरा कर अपने मनमाने उपायो से उच्च शिक्षा के स्थान पर केवल मुलम्मेकारी पर जोर देते रहते है। मै तो समझता हूँ कि इस मे दो राय नही हो सकती कि इस मजिल मे सक्रियता को शिक्षा प्रयासो का केन्द्र बनाया जाये।

बड़ा अन्तर

विद्यार्थी और शिक्षा विधि मे अनुकूलता के अतिरिक्त इस मजिल पर हाथ का काम स्वय मानसिक व्यायाम और मानसिक व्यायाम मे मानसिक विकास का सर्वश्रेष्ठ लाभप्रद रूप है। इस के द्वारा जो

कार्य दक्षता और जानकारी अर्जित की जाती है वह मानसिक शक्ति को चमकाती है। जो केवल पुस्तको से प्राप्त हो वह शिक्षा प्राय और अधिकतर इस उद्देश्य के लिए बेकार सिद्ध होती है । हम शिक्षा का कार्य करने वालो को यह कभी न भूलना चाहिये कि प्रत्येक कला और जानकारी मानसिक शिक्षा का साधन नही होती, ये न इस से सम्बन्धित है न इस की माप । जानकारी भी दो प्रकार की होती है और कलाकारी भी दो प्रकार की । एक जानकारी वह है, जिसके लिए दूसरे कार्य करते है, वह हमे बैठे-बिठाये मिल जाती है । सूचना की दृष्टि से एक जानकारी वह होती है जो स्वय के प्रयास और अनुभव से प्राप्त होती है और जो व्यक्ति की उपलब्धि का अ श और मानसिक शक्ति बनती है , मस्तिष्क को प्रकाशित करती है और इस मे दृष्टि पैदा करती है । इस ही प्रकार एक कलाकारी मशीनी कलाकारी होती है । इस में सूझबूझ की आवश्यकता नही, बस परिश्रम की आवश्यकता है । पहले से जो निश्चित है उस का प्रतिपादन करती है। पहले से जो दूसरो ने निश्चित कर दिया है उसे पैदा करती है । एक कलाकारी ऐसी भी है जो मशीनी नही होती, स्वय की योग्यता के आधार पर नया अधिकार पैदा करने से उत्पन्न होती है । इस को अर्जित या पैदा की हुई कलाकारी कह सकते है । परम्परागत सूचनार्थ विद्या निष्प्राण होती है और प्रकाश रहित । इस से न तो मस्तिष्क को प्रकाश प्राप्त होता है और न आत्मा बढती है । प्राय· स्वार्थ के अवगुण पाने हेतु एक सुन्दर परदा है या एक खाली बरतन पर चढा हुआ चाम, जो आवाज वहुत देता है पर अन्दर से होता है खोखला । अनुभव से प्राप्त की हुई विद्या विनय, नम्रता और सम्मान पैदा करती है, मानसिक शिक्षा देती है, आत्मा का पालन करती है और सदा आगे वढने की शक्ति प्रदान करती है । यही दशा मशीनी कलाकारी के मुकाबले मे पैदा की हुई कलाकारी की है । वास्तविक शिक्षा अर्थात् मस्तिष्क की वास्तविक शिक्षा अनुभव द्वारा अर्जित विद्या और पैदा की हुई कलाकारी दोनो के लिए बुनियादी पाठशालाओ मे हाथ के कार्य को सम्मिलित करना और इस से ठीक--ठीक शिक्षा का काम लेना आवश्यक है ।

हर कार्य शैक्षणिक नहीं

इस माँग से कुछ लोग तुरन्त यह नतीजा निकाल लेते है कि फिर सूचनार्थ पुस्तकीय ज्ञान और मशीनी कलाकारी के लिए पाठशाला मे कोई स्थान ही नही होना चाहिये । मै समझता हूँ कि ये लोग जरा जल्दबाजी करते है और सैद्धान्तिक जीवन का सहचर नही वनाते वलिक जीवन को मन घडन्ती सिद्धान्तो का दास वनाना चाहते है । एक सत्य वात को वढा-चढा कर प्रस्तुत कर के एक समस्या वनाने का प्रयास करते है । सत्य यह है कि प्रत्येक पैदा करने अथवा वनाने वाला काम आवश्यक ढग से शैक्षणिक कार्य नही होता और न प्रत्येक अनुभव द्वारा अर्जित विद्या ही शिक्षा है, न सारी पुस्तको को अग्नि मे भस्म करना ही आवश्यक है । तनिक सतोप कीजिये तो ज्ञान होगा कि शिक्षा के विचार से सफल कार्य वह होता है जिसमे पहिले कार्य करने वाले को समस्या का साफ–साफ ज्ञान हो, वह अपने कार्य का मानसिक चित्र वनाये, इस के साधनों पर विचार करे, कार्य को पूरा करने के सम्भव मार्गों में से एक को चुने, फिर इस कार्य को कर डाले । करने के पश्चात अपने प्रारम्भिक उद्देश्य और चित्र को सामने रख कर इसे जाँचे । इस की अच्छाई पर प्रसन्नता हो और इस की त्रुटियो से पाठ सीखे और भविष्य मे अधिक उत्तम ढग से करने को तैयार हो । शिक्षा के कार्य में ये मजिले आवश्यक है । यही इस कार्य को शैक्षणिक गुण प्रदान करती है । सूचनार्थ शिक्षा और मशीनी काम मे ये मजिले नही होती, इसलिए ये सच्ची शिक्षा का

साधन नहीं बन सकते, परन्तु फिर भी शिक्षा के क्षेत्र मे इन के लिए स्थान है और कुछ कारणो से विशेष महत्वपूर्ण स्थान । और कुछ बातो को ध्यान मे रखते हुए मुख्य महत्वपूर्ण स्थान पर होता यह है कि वास्तविक नैसर्गिक कार्य के सम्बन्ध में काम करने वालो को बहुत सी ऐसी जानकारी की आवश्यकता होती है जिसे सब को यदि अनुभव ही से प्राप्त करना चाहे तो आयु समाप्त हो जाये । बहुत से विकास सम्बन्धी शैक्षणिक कार्यो मे ऐसी कुशलता की आवश्यकता होती है कि यदि वह पहले से प्राप्त कर के मशीनी ढग पर काम मे न लाई जा सके तो यह उद्देश्य पूरा ही न हो सके । ऐसी दशा में मशीनी कुशलता और सूचनात्मक शिक्षा अनुभव और विकास के उद्देश्यो में सहायक के ढग पर सम्मिलित हो जाते है और इस प्रकार इन की मुर्दनी भी जीवन की सहायक हो कर इन्हे जीवन प्रदान कर देती है ।

हाथ का काम

शैक्षणिक कार्य की जो मुख्य मजिले हैं, जिनका मैंने ऊपर वर्णन किया है, वे केवल मानसिक कार्य मे भी हो सकती है , सभ्यता के परकोटे बनाने मे भी शिक्षा सम्बन्धी खोजो मे भी और हाथ के प्रयोगिक कार्य मे भी । और विस्तार का अवसर नही है । थोडी सी तसल्ली से सोचने पर प्रकट हो जायेगा कि हाथ के कार्य मे ये मजिले बहुत कुशल काम करने वाले के सामने आ सकती है, इसलिए यदि हम अनुभव की गई शिक्षा और विकास सम्बन्धी कुशलता को सत्य माने तो अपनी इन बुनियादी पाठशालाओ मे हाथ के काम से यह शिक्षा सेवा लेने का उपाय करना और भी आवश्यक है ।

बुद्धिमानी का तकाजा

यह जो शिक्षा कार्य का महत्व, नैसर्गिक कार्य, अनुभव की गई शिक्षा और विकास सम्बन्धी कुशलता की शैक्षणिक शक्ति की मांगो से हम व्यक्ति की पूरी मानसिक शिक्षा के लिए हाथ के काम को बुनियादी पाठशालाओ मे रिवाज देना चाहते हैं; अवसर की बात है कि कक्षा से होने वाले लाभों की माग भी यही है । जिस वर्ग मे बहुत बडी संख्या हाथ के काम को अपने जीवन का महत्वपूर्ण धन्धा बनाने पर मजबूर है इस के शिक्षा केन्द्रो और शिक्षणालयो को हाथ के काम की हवा न लगने देना कहा की बुद्धिमानी है ? सत्य यह है कि कौमी जिन्दगी से ऐसी दूरी और इस की प्रकट मागो से ऐसी लापरवाही उसी समय सम्भव है जब ये पाठशालाये गिनती के स्वार्थियो को ऊपर बढ़ाने और अपनी जाति के बडे दायरे से अलग करने का कारण हो । कहीं और ये ठीक हो या न हो परन्तु एक लोकतन्त्रीय देश में यह कदम विचार करने योग्य नहीं है । हाथ के काम को पाठशाला मे स्थान दे कर यह लोकतन्त्र वास्तव में वह कार्य करेगा जो इस का प्रथम उद्देश्य हो सकता है अर्थात् योग्य नागरिक पैदा करना ताकि व्यक्ति का सम्मान जो लोकतन्त्र की आत्मा है और व्यक्ति इस प्रकार लाभदायक बने कि अपनी व्यक्तिगतता को भी नष्ट न करे और अपनी शिक्षा की सम्भावना से भी वंचित न हो ।

उद्देश्य ही महत्त्वपूर्ण

अच्छा, यदि हमने व्यक्ति और समाज को शिक्षा-सम्बन्धी माँगो को ध्यान में रख कर अपनी बुनियादी पाठशालाओं को लाभदायक पाठशालाएं बना दिया और इन में अनुभव सम्बन्धी शिक्षा और विकास सम्बन्धी कार्य और इनकी सहायक बल्कि सेविका पुस्तकीय शिक्षा तथा मशीनी कार्य का एक ऐसा मिश्रण तैयार कर लिया जिससे ६,७ से १४ वर्ष तक के लड़के-लड़कियो के मानसिक व्यायाम का काम उत्तम प्रकार से हो सके, तो क्या हम ने सब कुछ कर लिया जो इनकी शिक्षा हेतु करना है ? खैर, सब कुछ तो कोई कभी नही कर सकता, परन्तु हमने तो शायद अभी अपना सबसे कठिन काम भी नही किया है। हमने यदि मानसिक शक्तियो के लालन-पालन का प्रबन्ध कर दिया, यदि कुशलताएँ पैदा कर दी तो शिक्षा का काम समाप्त नही हो गया। योग्यताये और कुशलताये अच्छी होती है और न बुरी, वे अच्छी-बुरी बनती है उन उद्देश्यो से जिनकी सेवा में लगाई जाती है। आपके न्यायालयों मे झूठ को सच बना कर रुपया बटोरने वाले, आपकी व्यापारिक फर्मो में काली मण्डी के लाल सौदागर और सामाजिक पूँजी के चोर, आपके ओहदेदारो में रिश्वत का बाजार गर्म करने वाले, आपके सामाजिक कार्यकर्त्ताओ मे स्वयं के स्वार्थ के लिए जन साधारण के लाभ को चुटकी बजाते न्योछावर करने वाले, आपके विद्वानों और पण्डितो, आपके साधुओ और सूफियो मे आम जनता की मूर्खता से बिना हिचकिचाहट लाभ उठाने वाले, आपके झूठे गवाहों और जालसाज़ों के बामुराद दिल, ये सब योग्यताओं और मानसिक कुशलता में किसी से पीछे तो नही हैं। क्या हम अपनी पाठशालाओं को मानसिक गुणो के चमकाने और कुशलता उत्पन्न करने के स्थल बना कर इन मे इन्ही फौजो के लिए रंगरूट प्राप्त करना चाहेगे ? नही, शिक्षा योग्यता से नही होती, योग्यता को अच्छे उद्देश्य का अनुचर बनाने से होती है। लोकतन्त्रीय समाज में इस वास्तविकता को नजरअन्दाज करना समाज के जीवन की शर्तों में लापरवाही बरतना है। जब तक मनुष्य अपनी शक्तियो को समाज की सेवा के लिए खर्च करना न सीखे उस समय तक इसकी कार्य-कुशलता समाज की विशृंखलता का कारण बन सकती है और विशेषकर लोकतन्त्रीय राज्य में जो खोज और वास्तविकता को ढूँढ निकालने की स्वतन्त्रता है, समाज की स्वतन्त्रता है, बोलने और सीखने की स्वतन्त्रता है, इन सब से व्यक्तित्व की विशृंखलित शक्तियाँ उभरती हैं। जो इन स्वतन्त्रताओ का आदर करते हैं और समाज के लिए इन्हे हाथ से जाने देने को बहुत महगा सौदा जानते है लेकिन जिन्हें सामाजिक जीवन की विशृंखलता भी स्वीकार नही, उन्हे स्वतन्त्रता के साथ समाज के मस्तिष्क के लालन-पालन और जातीय समाज को सुदृढ बनाने के उपाय भी सोचने चाहिये, उन्हे देखना चाहिये कि पाठशाला एक सामाजिक पाठशाला के विचार से इस विषय में हमारी क्या सहायता कर सकती है। आज तो वह शिक्षा व्यक्तित्व को कुचलती है इसलिए कि सब के लिये वह मार्ग निश्चित करती है जो बहुत कम के लिए ठीक मार्ग हो सकता है। बनाने और उत्पन्न करने के लिए बेचैन बच्चो को पुस्तकों पर झुकाती है, उन औजारों के स्थान पर जिन की ओर बच्चों की ललचाई नजरे तकती है, उन्हे कलम और दवात देती है, उछलने-कूदने के लिए बेचैन बच्चो को घंण्टो चुपचाप बैठने पर लाचार करती है। एक ओर तो व्यक्तित्व के साथ यह व्यवहार, दूसरी ओर स्वार्थ के मार्गों पर इन्हे चलाने हेतु यह प्रबन्ध कि जिस से आश्चर्य होता है। अपनी पाठशाला के पाठ्यक्रम पर, इन के कार्यों पर तनिक होशियारी से ध्यान

दीजिये और जरा गभीरतापूर्वक विचार कीजिये तो ज्ञात होगा कि इन मे शायद एक ही कारोबार होता है, वह यह कि व्यक्तित्व के मस्तिष्क, इस की स्वतन्त्रता को शक्ति, कुशलता सब का व्यक्ति के लिए विकास हो । सामाजिक गतिविधियो के प्रयोग के लिए न अवसर मिलता है न वे उभरती है न उनकी शिक्षा होती है । मस्तिष्क मे चेतना आती है, मन को सुलाया जात है, अधिकार याद रहते है , कर्त्तव्य भुलाये जाते है । व्यक्तिगत स्वार्थ के ढालू पथ पर बच्चे ढकेले जाते है । नि स्वार्थता और सेवा के द्वार बन्द रहते है । दूसरे को कोहनी मार कर बढ जाने का हरदम अभ्यास, सिद्ध है, साथी को सहारा देकर आगे बढने का कही नाम नही । सब अपने-अपने लिए है, सब के लिए कोई नही । हाँ, जबान से कभी-कभी कौम सेवा, पडौसी के अधिकार, आपसी सहायता की शिक्षा हो जाती है । परन्तु करने के कार्य बातो से पूरे नही होते । कार्यकर्त्ता की आदते बातो से नही बनती । जीवन से वास्तविक सम्बन्ध की माँग विचारो, अनुभूतियो के अतिरिक्त कार्य क्षेत्र से भी है । समाज की अपनी योग्यतानुसार कुछ सेवा करने मे इस के लालन-पालन और विकास का भेद है । अच्छा समाज अपने व्यक्तियो को इस का अवसर देता है कि वे मिल कर इस के लिए कुछ करे और इस पर खुश हो सके । अच्छी पाठशाला भी सामाजिक काम की खुशी के अवसर निकालती है । कार्य के सफल होने से खुशी तो व्यक्तिगत प्रयास मे भी होती है, परन्तु वह सामाजिक उद्देश्यो से सम्बन्धित होती है । कार्य का इस व्यक्तिगत प्रसन्नता को जो कि स्वार्थ पूर्ण इ जन है, सामाजिक उद्देश्य की पाटरी पर डाल देना चाहिये । व्यक्तिगत कार्य की खुशी को सामाजिक कार्य की लगन और इस पर गौरव मे बदल देना चाहिये । यू समाज से व्यक्ति का सम्बन्ध व्यक्ति के लिए खुशी और गौरव का कारण बन जाता है और व्यक्ति और समाज की गुत्थी वाद-विवाद बिना खुल जाती है ।

रुचि के अनुसार काम

अब देखना यह है कि काम की खुशी किस प्रकार के कार्य से प्राप्त हो सकती है । मैं समझता हूँ कि यह उस समय मिलती है जब काम, काम करने वाले की योग्यता, इस की रुचियो, इस की तबीयत के झुकाव के अनुसार हो और सज्जनो, आप से बेहतर कौन जानता है कि यह योग्ययता क्या होती है और यह झुकाव किधर होता है, पुस्तको की ओर होता है या कार्य करने की ओर । इसलिए यह व्यक्तिगत रुझान और कौमी समस्या दोनो की माँग है कि हमारी पुस्तकीय पाठशालाओ को कार्य करने की पाठशालाए बनाया जाये ।

चार जरूरी कदम

इस पहले कदम से पूरा लाभ उठाने के लिए दूसरा कदम यह आवश्यक है कि प्रयोगिक कार्य की व्यक्तिगत इच्छा को सामाजिक कार्यो मे लगाने का प्रबन्ध किया जाये और पाठशाला के कार्य को समाज के काम का रूप दे दिया जाये और जब स्वार्थ पूर्ण कार्य की भावना सामाजिक सेवा मे परिवर्तित हो जाये, दूसरो को सहायता करने, दूसरो से सहायता लेने की आदत पडने लगे और उत्तरदायित्व का विचार पैदा हो जाये तो तीसरा कदम यह है कि आदतो को बुद्धि मे अर्थात् योग्यताओ मे बदल दिया जाये । इस प्रकार व्यक्तिगत और सामाजिक उद्देश्यो के साथ-साथ पूरा हो सकने की

डा० जाकिर हुसैन . व्यक्तित्व और विचार

सम्भावनाएँ प्रकाश में लाई जाये और चौथा कदम यह है कि अध्यापकों के प्रबन्ध स्वय इन के हाथ मे दे दिये जाये । उत्तरदायित्व का अहसास और अपने काम को अपने बस भर अच्छे ढंग पर संपन्न करने की रुचि स्वतन्त्रता और लगातार कार्य करते रहने से पैदा होती है । पाठशाला के समान और एक उद्देश्य वातावरण में सहानुभूतिपूर्ण निगरानी और परामर्श के साथ ये सब मजिलें सरलता से तय हो सकती है और पाठशाला इस लोकतन्त्रीय राज्य का जो इसे चलाता है, सब से लाभ दायक केन्द्र बन सकती है तथा इस राज्य को उत्तम राज्य बनाने में सब से प्रभावशाली शक्ति सिद्ध हो सकती है ।

सज्जनो ! मैने आप का वहुत समय लिया । परन्तु मै समझता हैं कि अपनी बुनियादी पाठशालाओ में अर्थात् अपनी कौमी तालीम के सब से आवश्यक भाग में यदि हमें कुछ करना है तो बस करने की वस्तु यही है कि इन पाठशालाओ को सूचनात्मक शिक्षा केन्द्रो के स्थान पर अनुभवी शिक्षा की पाठशालाएँ बनाया जाय । पुस्तको की पाठशाला के स्थान पर प्रायोगिक पाठशाला बनानी चाहिये । व्यक्तिगत स्वार्थ के स्थान पर नि स्वार्थ सामाजिक सेवा के शैक्षणिक केन्द्र बनाने चाहिये । यह कठिन कार्य है परन्तु आवश्यक कार्य । हमारा भविष्य इन उद्देश्यो की सफलता के साथ-साथ बँधा हुआ है । इस कार्य मे आप के बहुत से सहायक होगे और इस से अधिक रुकावट डालने वाले । परन्तु यह कार्य उसी समय सम्पन्न हो सकता है जब अध्यापक अपने कर्तव्य को जाने और शिक्षा के विषय में अपने उत्तरदायित्व को पहचाने । मुझे यकीन है कि "न्यू एजूकेशन फैलोशिप" के कार्यकर्ता इस क्षेत्र में सब से आगे होगे ।

किफायतशारी जरूरी

आज की तकलीफे हमारी आर्थिक व्यवस्था की किसी आन्तरिक कमी के कारण से नही है । ये तो ऐसे प्रतिकूल कारणों से है जिन पर हमारा वश नही—एक कारण यह भी है कि हम तेजी से विकास करने को लालायित थे । आज सब से बड़ा काम 'स्फीति' रोकना और औद्योगिक उत्पादन तथा निर्यात बढाना है । इसलिए सरकारी, गैर-सरकारी सभी क्षेत्रो मे सख्त किफायतशारी की जरूरत है ।

—डा० जाकिर हुसैन

भारत में शिक्षा का पुनर्निर्माण (१)

[नई दिल्ली मे १२ दिसम्बर, १९५८ को सरदार पटेल स्मारक व्याख्यान माला के अन्तर्गत डा० जाकिर हुसैन का भाषण]

सब से पहले मैं सूचना तथा प्रसारण-मन्त्रालय को धन्यवाद देना चाहता हूँ कि उसने पटेल-स्मारक व्याख्यान माला के अन्तर्गत तीन व्याख्यान देने के लिए मुझे आमन्त्रित किया। दिल्ली में मैंने अपने कार्यकारी जीवन का अधिकाश समय बिताया है, इसलिए यहाँ आने के लिए मुझ पर अधिक ज़ोर देने की जरूरत नही पडती। जब मैं यहाँ आता हूँ, मुझे घर लौटने-जैसे आनन्द का अनुभव होता है। किन्तु मैं इस अवसर पर इसलिए खास तौर से खुश हूँ कि मुझे उस व्यक्ति की स्मृति से अपने को सम्बद्ध करने का मौका मिल पाया है, जिसे मैंने देश की आजादी के लिए बहादुर सेनानी के रूप मे आदर के साथ देखा था, जिसने देश के भावी गौरव को सुसघटित राजनीतिक ढाँचे की मजबूत नीव पर खडा किया था। यह महान् सरदार की बुद्धि और ताकत से ही सम्भव हो सका कि ५५० से भी अधिक देशी रियासतो की बेमेल प्रशासकीय इकाइयों का समस्त देश के साथ इस प्रकार सघटन किया गया है कि उन्हे एक सन्तुलित रूप प्राप्त हुआ। दृष्टि की सूक्ष्मता, व्यवहार की दृढता, हर बात को अच्छी तरह समझने की खूबी, दृढग्राहिता, आदमियो और कामो की जानकारी तथा साधनो मे महान् साध्य की शक्ति डालने की विलक्षण क्षमता—ये तथा इसी तरह के अन्य गुण उस महान् राजनेता के उन कठिन कामो को सफल बनाने में जाहिर होते है, जिनमे वह लग जाता था। आज हमारे राष्ट्रीय जीवन के महान् निर्माताओ मे उसका स्थान अमर हो गया है। आइए, उस महान् पुरुष की याद मे हम कृतज्ञता और प्रशंसा के अर्घ्य चढायें।

लेकिन अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करते हुए हमें भूलना नही चाहिए कि राष्ट्रीय जीवन की इमारत कभी पूरी नही होती। वह हमेशा बनती ही चलती है। उसका विकास और विस्तार होता रहता है। उसकी बनावट के नक्शे की तफसील में हमेशा विस्तार की माँग होती है। उसके अगणित तत्त्वो का पारस्परिक सन्तुलन आवश्यक होता है, क्योकि उनमें से प्रत्येक एक-दूसरे को प्रभावित करता है। प्रशासनिक इकाइयो के एकीकरण के साथ ही एकीकरण की पद्धति समाप्त नही हो जाती। वह तो स्थायी पद्धति है। हमने अपने राष्ट्रीय विकास के लिए जो सामान्य रूपरेखा अपनाई है, उसमें यही निरन्तर पद्धति हमारे राष्ट्रीय अस्तित्व का मूल आधार है, क्योकि हम अपने जन-जीवन को धर्म-निरपेक्ष लोकतन्त्र के रूप मे सयोजित करने का निश्चय कर चुके है। साथ ही, चूँकि अपने लिए हम एक समाजवादी ढाँचे के समाज का विकास करने का निश्चय कर चुके है, हम एक सामाजिक लोकतन्त्र भी कायम करने को कटिबद्ध है। सच्ची शिक्षा ही इस तरह के लोकतन्त्र की जीवन-शक्ति है।

सम्भव है, यह बात थोथी दलील मालूम पडे। किन्तु थोडा विचार करने पर मालूम होगा कि यह बिल्कुल ठीक है। दूसरे प्रकार के सामाजिक सगठनो से भी काम चल सकता है तथा चला भी है, जिसमे केवल शिष्ट-समुदाय की शिक्षा की व्यवस्था रहती है और बाकी लोगो को अपना प्रबन्ध आप करने के लिए छोड दिया जाता है। अथवा विभिन्न श्रेणियो और विभिन्न वर्गो के लिए तरह-तरह की शिक्षा की व्यवस्था हो सकती है और होती भी रही है। सामतों और नागरिको तथा भद्रपुरुषो, रईसो या व्यापारियो के अथवा शिल्पियो के अपने बहुत कुछ स्पष्ट शैक्षिक आदर्श होते थे। परन्तु अक्सर, इन विभिन्न आदर्शो का आधार किसी सामान्य धार्मिक विश्वास मे ही होता था। शैक्षिक आदर्शो को विभिन्नता धार्मिक एकता का रूप ले लेती थी, किन्तु धर्म-निरपेक्ष समाज मे यह सम्भव नही है। विभिन्न विभागो, जातियो तथा व्यवसायो वाले व्यापक समाज मे धार्मिक एकता नही हो सकती। पुरानी तरह का ऐसा शैक्षिक आदर्श गढना, जिसके साँचे मे हर नागरिक का दिमाग ढाला और परिवर्तित किया जा सके, और जो सब के लिए मान्य समझा जाए, बिलकुल विफल प्रयास होगा। किसी लोकतान्त्रिक समाज में इस किस्म का प्रयास करना मूर्खता ही होगी; क्योकि ऐसी समाज-व्यवस्था में व्यक्ति की अनगिनत प्रवृत्तियाँ विकसित हो कर तथा स्वतन्त्र बढ कर, नैतिक रूप से स्वच्छन्द तथा व्यक्तित्व के रूप में बदल जाना चाहती है।

यह स्थिति, जो यूं तो विषम कठिनाइयाँ प्रस्तुत करती दिखाई देती है, वास्तव में शिक्षा के सामने एक सुअवसर प्रदान करती है, क्योकि इसी के द्वारा लोकतन्त्र में शिक्षक इस योग्य बन पाता है कि वह शिक्षा-सम्बन्धी कुछ भ्रान्तियाँ दूर करे, जैसे यह भ्रान्ति कि शिक्षा का अर्थ है किसी मानी हुई वर्गगत पद्धति के अनुसार, किसी बने-बनाए शैक्षिक आदर्श के अनुकूल, स्पष्ट रूप से वर्णित विषयों की सहायता से, शिक्षार्थी को एक साँचे में ढाल लिया जाए। शिक्षक यह अनुभव करने मे समर्थ हो पाता है कि शिक्षा वास्तव में व्यक्तित्व गढने वाला कोई चाप-यन्त्र नही है, बल्कि स्वच्छन्द तथा उन्मुक्त करनेवाली वह क्रिया है, जिससे शिक्षार्थी के निजी विशिष्ट व्यक्तित्व को मान्यता मिलती है। इससे उसे एक सुयोग प्राप्त होता है—एक चुनौती मिलती है कि वह शिक्षा-सम्बन्धी कोई ऐसी विचारधारा प्रस्तुत करे, जो धर्मनिरपेक्ष सामाजिक लोकतन्त्र में शिक्षा के पुनर्निर्माण का आधार बन सके, क्योकि हमारे राष्ट्रीय जीवन का भविष्य बहुत-कुछ उन विचारो और सिद्धान्तो पर निर्भर करेगा, जिनसे

भारतीय शिक्षा को प्रेरणा मिलती है । यह इस पर निर्भर करेगा कि शिक्षा किस प्रकार प्रजातान्त्रिक जीवन की वृद्धि और विकास मे योग देती है, किस प्रकार व्यक्तित्व के पूर्ण विकास और वृद्धि मे सहायता पहुँचाती है, किस प्रकार सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए शिक्षा, सामजस्यपूर्ण विकसित व्यक्तित्व को सन्नद्ध करती है, किस प्रकार यह आत्मरहस्यो का दर्शन कराती है और किस तरह निःस्वार्थता के रहस्यो का अर्थ समझने मे हमारी सहायक होती है ।

यदि शिक्षा का महत्व इतना अधिक है—और मैं समझता हूँ कि आप भी मानते है कि उसका महत्व बहुत अधिक है, तो केवल प्रशासनिक विवरणों में थोडा-बहुत हेर-फेर करना ही काफी नही होगा, किसी क्रम-स्थल पर एक साल जोड़ देने या घटा देने से, यहाँ-वहाँ एकाध विषय जोड देने से, या खराव पाठ्य-पुस्तको के स्थान पर, यदि सम्भव हुआ तो, और भी खराव पुस्तके लाकर, या स्कूलो का वर्त्तमान नाम बदल लेने से तथा इसी तरह के ऊपरी कामो से हम शिक्षा के पुनर्निर्माण के सामने आई वडी चुनौती का सामना नही कर पाएँगे ।

शिक्षा-सम्बन्धी उपकरणो की वृद्धि-मात्र से भी इस चुनौती का सामना नही किया जा सकता, जब तक कि इसके वास्तविक लक्ष्यो तथा उद्देश्यो का पूर्ण तथा सक्रिय बोध न हो और जब तक इनकी प्राप्ति के लिए अपनाए गए साधनो और साध्य मे घनिष्ठ सामजस्य न हो । हमारी शिक्षा की इमारत के उपयुक्त पुनर्निर्माण के लिए शिक्षा के रूप तथा लोकतात्रिक समाज की वृत्तियो की गहरी तथा अधिक विस्तृत जानकारी आवश्यक है ।

पहले शिक्षा को लीजिए । सबसे पहले हमे इस आम धारणा को दूर करना चाहिए कि शिक्षा का काम इन्सान के खाली दिमाग में सूचनाएँ भरना है । नही, शिक्षा का अर्थ प्रसाधन करना नही है, न ही इसका अर्थ किसी साफ-सुथरे स्लेट पर लकीरे खीचना है । इसका अर्थ यह भी नही कि किसी ऐसी प्रशिक्षण या प्रसाधन-व्यवस्था को थोपा जाए, जो किसी औद्यौगिक अथवा आर्थिक सर्वेक्षण या किसी विशेष राजनीतिक विचारधारा को सामने रख कर स्वेच्छाचारी ढग से निश्चित की गई हो । लोकतन्त्र मे शिक्षा का मूल सिद्धान्त वच्चे के व्यक्तित्व के प्रति सम्मान की भावना रखना है । उस वच्चे के प्रति जो बड़ा होकर कल का नागरिक बनने वाला है । लोकतन्त्र का भविष्य ही उसके पूर्ण विकास पर निर्भर करता है, तथा इस पर निर्भर करता है कि लोकतन्त्र को अधिकाधिक न्यायपूर्ण बनाने मे, अधिकाधिक इसे एवं नैतिक रूप से सम्पूर्ण सामाजिक सगठन बनाने में नागरिको का कुशल तथा हार्दिक सहयोग मिले । कारण, प्रत्येक नागरिक-द्वारा यथाशक्ति अपने एव समाज के प्रति यथोचित कर्त्तव्य के पूर्ण निर्वाह से ही लोकतन्त्र सफल होना है । शिक्षा द्वारा प्रतिभाओ की खोज तथा उनके पूर्ण विकास के परिणामस्वरूप ही कर्त्तव्य सम्बन्धी ऐसी योग्यता हासिल हो सकती है ।

यह कैसे हो सकता है ? शिक्षा किस प्रकार सम्भव हो सकती है ? मैं अपना विचार संक्षेप मे व्यक्त करूँगा । शिक्षा की पद्धति या बुद्धि का संस्कार, मेरे विचार में, मानव शरीर के उत्तरोत्तर विकास पद्धति के बहुत समान है । जिस प्रकार शारीरिक एवं रासायनिक नियमानुसार, अनुकूल गुणकर भोजन, सूर्य-किरणें एव कसरत के सहारे शरीर भ्रूणावस्था से विकसित होकर पूर्ण आकार

में आ जाता है, उसी प्रकार मानसिक विकास के नियमानुसार, मानसिक भोजन एवं कसरत के द्वारा मस्तिष्क भी अपनी मौलिक अवस्था से पूर्ण विकसित अवस्था तक वृद्धि पाता एवं विकसित होता है।

हमें इस मूल तथ्य को नही भूलना चाहिए कि शिक्षित किया जाने वाला दिमाग विशिष्ट होता है। जिस भोजन पर उसे समृद्ध तथा विकसित होना है, उनमें उसके वातावरण की सस्कृति का प्रभाव है, जो प्राय. अन्य सभी प्रकार के मस्तिष्को के ठोस मानसिक प्रयास का परिणाम है।इस पारस्परिक सम्बन्ध के प्रथम तत्व को समझने के लिए हमे, मोटे तौर से, विशिष्ट मानव-मस्तिष्क के विकास को, उसकी शिशु-अवस्था से समझना होगा।

यहाँ आपको यह ध्यान दिलाना अनावश्यक है कि किसी व्यक्ति का मस्तिष्क मूल प्रवृत्तियों का सग्रह होता है। शुरू मे शारीरिक प्रेरणा के फलस्वरूप वह शारीरिक कार्य करता है। इसके बाद ही मानसिक प्रेरणा एव प्रवृत्तियो के फलस्वरूप मानसिक कार्य होते है।

इन शारीरिक एवं मानसिक कार्यों के करने में, बच्चा अपने प्रथम आनन्दो एवं प्रथम निराशाओ का अनुभव करता है। वस्तुओ और कार्यो को पसन्द करने, उन्हे आँकने तथा उनका मूल्याकन करने लगता है। मूल्याकन की यह पद्धति अपने अनुभव के साथ सार्थक अथवा नकारात्मक मान्यताओं को मिलाने की पद्धति जितनी किसी अन्य बात के लिए, उतनी ही मानसिक विकास के लिए आवश्यक है। ये मूल्याकन बच्चे की स्मृति ये सचित होते है और बच्चे का मानसिक जीवन आगे बढता है—उद्देश्य और साधन की चेतना जाग पड़ती है।

वह उन वस्तुओ और कार्यों की ओर लक्ष्य करना शुरू कर देता है, जिन्हे वह पसन्द करता और जिनकी कद्र करता है। वह अपने सौम्य, किन्तु लगातार विकसित होने वाले अनुभव के प्रसग में उन लक्ष्यो की ओर पहुँचने का साधन अपनाता है तथा उन से संलग्न मूल्यो का अनुभव करने लगता है। धीरे-धीर ऐसे महत्वपूर्ण उद्देश्य सख्या मे बढते जाते है। मूल्याकित लक्ष्यो की प्राप्ति में ये साधन यदि सफल हुए तो इन साधनो के प्रति बच्चे की रुचि दृढ होती है। मूल्याकित उद्देश्य की पूर्त्ति के कारण ये साधन भी मूल्यवान् हो जाते है। मूल्य-लक्ष्य और रुचि की एक पद्धति का विकास होता है और यही विकसित होते हुए व्यक्तिव्य को विशिष्ट मानसिक बनावट प्रदान करती है।

विकास की आरम्भिक अवस्था में अनुभूत मूल्य प्रायः वासनायुक्त पार्थिव मूल्य होता है। मूल्यांकन-मापक में केवल सुखद, एव दुखद, आरामदेह और तकलीफदेह शारीरिक स्वच्छन्दता एवं बन्धन तथा ऐन्द्रिक सुख या खीज दर्ज होते है। एक तरह से कहा जाय तो मूल्य लक्ष्य और रुचि की पूरी पद्धति ऐन्द्रिक स्तर पर कायम रहती है। यह वह स्तर है जिस पर सूक्ष्म भेदो में मनुष्य तथा उच्चतर पशु कायम है।

किन्तु मानव-व्यक्तित्व एक तीसरे प्रकार के कार्यों का विकास करता है, जिन्हे हम लोग बौद्धिक तथा आध्यात्मिक कह सकते है। उन कार्यों की सन्तुष्टि से भी हमें मूल्य का अनुभव होता है, किन्तु ये मूल्य उन मूल्यों से बिलकुल भिन्न है, जिनका अभी मैने उल्लेख किया। इन दो प्रकारों के

बीच कितना बडा अन्तर है, यह केवल उनके नामो के उल्लेख से ही स्पष्ट है, जैसे—सत्य, सुन्दर, शिव तथा पावन को शारीरिक स्वास्थ्य, विषय-सुख, भौतिक लाभ तथा वासनामय प्रेम। इन से स्थायित्व की भावना की विशेष सन्तुष्टि और पूर्ण श्रेष्ठता तथा न्याय संगत स्थिति की भी प्राप्ति होती है। वे वाध्यता के लिए जोर देते है। वे अनुभूति कराने के लिए आग्रह करते है। जैसे ही वे हमे अपने अधिकार मे कर लेते है, वे हमारे मूल्य की माप निश्चित करने मे प्रधान एवं निश्चित तत्व बन जाते हैं। विषयात्मक मूल्य सहज ही गौण बना दिए जाते है। वे रूप बदलते तथा आकार परिवर्त्तित करते है। शिक्षा सच्चे अर्थ मे शिक्षार्थी के मस्तिष्क को इन चरम नैतिक और बौद्धिक मूल्यो का अनुभव करने मे सहायता कर रही है, ताकि वे बदले में उसे इस योग्य बना सके कि वह अपने काम और जीवन मे यथा सम्भव इन मूल्यो को प्राप्त करने के लिए प्रेरित हो सके। जिस प्रकार आदमी के अन्दर का स्थूल प्राणी, क्षणिक वैयक्तित्व मूल्यो की प्राप्ति मे प्रकट होता है, उसी प्रकार उसका नैतिक और आध्यात्मिक अन्तर उसे स्थायी और बाह्य मूल्यो की पहचान और प्राप्ति के लिए, प्रेरित करता है। वे उस के अस्तित्व को अर्थ और उद्देश्य प्रदान करते है। पशु के लिए न तो जीवन का अर्थ है, न महत्व, उस के लिए आत्मानुशासित उद्देश्य नही है। वह सिर्फ जिन्दा रहता है, जैसे उसे रहना है। दूसरी ओर मनुष्य, जब वह एक बार इन नैतिक चरम मूल्यो का अनुभव कर लेता है, तो उनके प्रति उसकी वाध्यता उसके जीवन को महत्व एव उद्देश्य प्रदान करती है, अर्थात् इन चरम मूल्यो की सेवा, निर्वाह तथा प्राप्ति। वे उसके क्षणो को अनन्तता प्रदान करते हैं।

इन चरम मूल्यो का अनुभव, मस्तिष्क सास्कृतिक सामग्री द्वारा करता है जो उसके सामने आती है और जो स्वय किसी ऐसे व्यक्ति अथवा व्यक्तियो के ऐसे सम्प्रदाय के मानसिक प्रयास की उपज होती है, जिन्होंने स्वय मे इन मूल्यो को रूप दिया हो। समाज के इन सास्कृतिक अवदानो का, विज्ञान, कला, तकनीक, धर्म, रीति-रिवाज, नैतिक एव वैधानिक सहिताओ, सामाजिक गठन, व्यक्तित्व विद्यालयो, सस्थाओ आदि द्वारा प्रतिनिधित्व होता है। अन्तिम विश्लेषण में वे सब के सब सामूहिक मस्तिष्क या व्यक्ति की बौद्धिक एव नैतिक शक्ति की उपज हैं। वे मस्तिष्क के बौद्धिक एव नैतिक मूल्य है। वे मनुष्य की नैतिकता और आध्यात्मिकता के द्योतक है।

संस्कृति के ये लाभ शैक्षिक पद्धति की कार्यान्विति के एक मात्र साधन है। मानव मस्तिष्क के पोषण के लिए वे ही एकमात्र भोजन हैं। इन सास्कृतिक लाभो के साथ जो सामना होता है, उसमे घर, स्कूल उच्च शिक्षा की सस्थाओ, सार्वजनिक सगठनो और जन-जीवन के सर्वव्यापी लोककार्यो तथा उदाहरणों द्वारा मध्यस्थता होती है। विकसित मस्तिष्क पहले तो अनजाने, पर बाद मे अधिक से अधिक जान-बूझ कर, उनका अनुसरण करता है तथा विशेष मानवीय विकास के लिए उसका उपयोग करता है। जब संस्कृति के इन लाभो का ऐसा उपयोग होता है तब वे शैक्षिक लाभ बन जाते हैं। वे पहले संस्कृति की उपज थे। उर्वर मस्तिष्क ने उन्हे पैदा किया था। वे अब मस्तिष्क को उर्वर बनाते तथा उन्हें शिक्षित करते है।

डा० जाकिर हुसैन : व्यक्तित्व और विचार

की ओर, आदमियों की दुनिया के प्रति प्रतिक्रिया का अपना-अपना विशेष तरीका होता है। इसका कारण है, उसकी शारीरिक और मानसिक प्रवृत्तियों का विलक्षण ढाँचा। प्रतिक्रया के इस विशेष ढंग को, जो अनुभूति, प्रवृत्ति एवं क्रिया मे प्रकट है, हम जन्मजात व्यक्तित्व का नाम देते है। इस मौलिक व्यक्तित्व के आधार पर, जिसमें शायद ही कोई बडा परिवर्तन सम्भव होता है, अधिक विकसित व्यक्तित्व का निर्माण होता है। उसे ही स्प्रेन्जर ने जीवन-स्वरूप की सज्ञा दी है। ऐसे विकसित व्यक्तित्व के निर्माण में बाह्य संस्कृति, जिनमें उसका विकास, गति एव अस्तित्व है, द्वारा सहायता मिलती है। बाह्य सस्कृति के वैयक्तिक आन्तरिक पुनरुत्थान का नाम शिक्षा है। बाह्य मस्तिष्क से आन्तरिक मस्तिष्क के रूपान्तर को ही शिक्षा कहते है। वह विशेष सगठित मूल्य की भावना है। सस्कृति के लाभो से यह जाग्रत होती है। ये लाभ व्यक्ति के अनुभव के दायरे मे आनेवाले मूल्यों का मूर्त्त रूप है।

अगर इसी को शिक्षा कहा जाय, या यही शिक्षा होनी चाहिये तो दो प्रकार के विचारो की ओर हमारा ध्यान जाना चाहिए।

(१) ऐसे विचार, जो मेरे खयाल में सभी प्रकार की शिक्षा के लिए लागू है, तथा (२) ऐसे विचार, जो उस प्रकार की शिक्षा के लिए लागू है, जो समाज अपने सदस्यो के लिए स्थापित करता है। मै पहले प्रथम श्रेणी, अर्थात् सभी प्रकार की शिक्षा पर लागू विचार को लूगा।

शिक्षा-सम्बन्धी जितने विचार हमने निर्धारित किए है, उनसे उत्पन्न सभी सिद्धान्तो में लोकतन्त्र के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण दीखने वाला तथा साथ ही, सभी शिक्षण-सस्थाओ द्वारा सम्भवत सामान्यतया उपेक्षित होने वाला, व्यक्ति का ही सिद्धान्त है। यह सिद्धान्त हमें जो कुछ बताता है, वह शैक्षिक प्रणाली की आधार-भूत स्वय सिद्धि के रूप में एक प्रकट बात है, अर्थात् यह कि व्यक्ति के मस्तिष्क की शिक्षा अथवा उसे उर्वर बनाना ऐसे सास्कृतिक लाभों द्वारा ही सम्भव है, जिनकी मानसिक बनावट पूर्णत: या कम से कम अंशत: व्यक्ति के मानसिक उभार से मेल खानी चाहिए। शिक्षार्थी की विशेष मानसिक बनावट, अर्थात् उसका व्यक्तित्व, मूल्यो—उद्देश्यो और हितो—की अपनी मौलिक प्रणाली को निर्धारित करती है। सस्कृति के उत्कर्षों की ओर वे प्रेरित होते है, जो अनुरूप मानसिक बनावट, अनुरूप मूल्यो के प्रतीक, अनुरूप उद्देश्यो तथा हितो की प्राप्ति के परिणाम है। मूल्यो उद्देश्यो और हितो की इस पद्धति में, जो प्रत्येक व्यक्ति का चरित्र चित्रित करती है, उस व्यक्ति के जीवन का पूर्ण प्रतिनिधित्व कहा जा सकता है और इसलिए उन हितो की खोज की क्रिया में, व्यक्तित्व के सभी पक्षो का मानो व्यायाम हो जाता है और वे विकसित होने लगते है। इसके वाद और भी ऊचे तवके के अनुरूप सास्कृतिक लाभ की दृढ़ता होती है तथा मस्तिष्क अपने विकास को शक्ति को मजबूत से मजबूत वनाता जाता है और, जो बिल–कुल स्वभाविक है, ये हित अथवा स्वार्थ प्राय नये–नये तथा ताजे--ताजे अन्त स्वार्थो में विभक्त हो जाते है और कभी-कभी तो ये नये स्वार्थ पुराने स्वार्थो से ही महत्व और उग्रता में प्रतिस्पर्धा करने लगते है तथा व्यक्ति की मानसिक बनावट के अन्य उपकरणो की वृद्धि एव विकास के लिए जिम्मेवार भी वे ही है। किसी भी स्फूर्तिशाली बालक का मूल तकनीकी व्यावहारिक स्वार्थ बदल कर सैद्धान्तिक और सौन्दर्य सम्वन्धी तथा धार्मिक स्वार्थो में भी वृद्धि पा सकता है। किन्तु, अधिकतर सैद्धान्तिक झुकाव वाले बालक वालिकाओ को सैद्धान्तिक सास्कृतिक लाभ के माध्यम के सिवा अन्य तरह से आप शिक्षित नही कर सकते। आप उसे न्यूनाधिक रूप में प्रथमत· सैद्धान्तिक लाभ के द्वारा अन्य सास्कृतिक क्षेत्रो की विशेष समझ

ग्रौर मूल्याकन की ओर ला सकते है । सौन्दर्यानुभूतिमूलक लाभ के द्वारा ही सौन्दर्याभूतिपरक विद्यार्थी के मस्तिष्क का सच्चा सस्कार सम्भव है, सैद्धान्तिक या व्यवहारिक मानसिक बनावट के उत्कर्षो द्वारा ऐसे विद्यार्थी को शिक्षा देना बेकार है । उसके लिए केवल सौन्दर्यानुभूतिपरक ढग के लाभो के जरिये ही सस्कृति का द्वार खुल सकता है । जब एक बार किसी विद्यार्थी के लिए उसको मनोनुकूल कुंजी से सस्कृति का दरवाजा खुल जाता है तब उसके अन्तर के अनेक मार्ग खुल जाते है । क्योकि, सस्कृति के क्षेत्र एक-दूसरे मे बिलकुल पृथक् नही है, वे हजारो सूत्रो द्वारा एक-दूसरे से सम्बद्ध है । कला से विज्ञान ग्रौर तकनीक, विज्ञान से कला ग्रौर तकनीक, तकनीक से विज्ञान ग्रौर कला के हजारो परिवर्तन हजारो-हजार सूक्ष्म भेदो के साथ सम्भव है, किन्तु यदि मानसिक बनावट के कुछ रूप किसी मस्तिष्क मे बिलकुल नही है तब उनसे मिलते जुलते-सास्कृतिक लाभ ऐसे मस्तिष्क को उर्वर बनाने के साधन नही हो सकते । सगीत के प्रति नीरस व्यक्ति को किसी महान सगीत के वास्तविक सौन्दर्य की अनुभूति करा कर उससे उसका आध्यात्मिक पोषण नही करा सकते । रगो का भेद न पहचानने वाले व्यक्ति के मस्तिष्क को उच्च कोटि की चित्र-कृतियो द्वारा उर्वर बनाने की आशा हम नही कर सकते । व्यावहारिक कार्यो मे तत्पर रहने वाले अपने अधिकाँश बच्चो के मस्तिष्क को, हम सैद्धान्तिक विचारो की सहायता से उर्वर बनाने की व्यर्थ चेष्टा करते है । सहानुभूति, प्यार, विश्वास ग्रौर आदर जैसी सामाजिक मानसिक रचना की मूल प्रवृति के द्वारा ही वह अत्यन्त मूल्यवान सास्कृतिक उत्कर्ष, अर्थात् कोई महान् व्यक्तित्व, दूसरे के मस्तिष्क को उर्वर बनाने मे योग दे सकता है । व्यक्तित्व भी केवल हमारी भाषा मे ही हमसे सम्भाषण कर सकता है——हमारी आत्मा की भाषा मे जो हमारी विशिष्ट मानसिक रचना की भाषा है । व्यक्तित्व मे पाई जाने वाली बिलकुल बाहरी रचनाएँ हमारी समझ के बिलकुल परे है । ऐसे व्यक्तित्वो को हम आसानी से छोड भी सकते है, हम उनका लाभ भी नही उठा पाते । हम लोगो के समान ही——मानसिक बनावट-वाले व्यक्तित्व जितना हमे आकर्षित कर सकते है, उतना कम ही चीजे कर सकती है । वैसे व्यक्तित्व हमारे बौद्धिक, नैतिक ग्रौर आत्मिक विकास मे सहायक होते है । शिक्षा की आधारभूत स्वय-सिद्धि शिक्षार्थी के मन की मानसिक नैतिक रचना मे तथा मस्तिष्क को शिक्षित, उर्वर तथा विकसित बनाने-वाले सस्कृति के लाभ या लाभो की रचना में समान तथा अनुरूपता मे है । सिमल ने ठीक ही कहा है कि 'सस्कृति, मस्तिष्क के क्षणिक विश्राम का वह रास्ता है, जो एक खुलनेवाली, विकसित होनेवाली विभिन्नता के जरिये एक सँकीर्ण बन्द इकाई से होते हुए एक विकसित, सर्वद्धित इकाई तक जाता है ।'

व्यक्ति के मानसिक ढाँचे के वर्गीकरण पर किए गए अत्यन्त महत्वपूर्ण एव सुरुचिपूर्ण कार्य की विशेष चर्चा करके मै आपका समय नही लेना चाहता । उसमे बहुत समय लगेगा ग्रौर भाषण मे लम्बाई उनकी दिलचस्पी को कम से कम ऊब मे तो बदल ही सकती है । जर्मनी के महान् शिक्षाविद् जार्ज कर्शेन्स्टाइनर ने वर्गीकरण का जो सुझाव दिया है, उसका मै आपके साथ ही समर्थन करना चाहता हूँ । मै विशेषकर ऐसा ही चाहता हूँ कि मै उनके कुछ पारिभाषिक शब्दो का व्यवहार आगे चलकर अपने भाषणो मे करूँगा ग्रौर इसलिए भी कि उनकी कृति इस देश मे उतनी अधिक प्रचलित नही है ग्रौर यदि मै किसी बात कहूँ तो वह यह है कि मेरे शिक्षा-सम्बन्धी चिन्तन का प्राय सम्पूर्ण ढाचा उन्ही के विचारो पर अवलम्बित है । बाद मे चलकर गाधीजी के चरणो मे बैठने ग्रौर उनके शिक्षा-सम्बन्धी विचारो के अनुसार काम करने के फलस्वरूप शिक्षा सम्बन्धी मेरा चिन्तन, दृढ, गभीर तथा समृद्ध हुआ, पर इससे मेरा अस्थिर सैद्धान्तिक ढाचा——मेरे जीवन के स्थायी अ ंश मे बदल गया, क्योकि अब शब्द

डा० जाकिर हुसैन व्यक्तित्व ग्रौर विचार

कार्यरूप में परिणत हो जाते थे। कसन्स्टाइनर व्यक्ति की जिन मौलिक मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों को देख कर चलते है वे दो है——मननशील प्रवृत्ति एव क्रियाशील प्रवृति। शुद्ध मननशोलता का सम्बन्ध बाह्य दुनिया में किसी काम को करने या कोई चीज तैयार करने से नही रहता। किन्तु उस कारण निष्क्रियता, जडता या सुस्ती से उसकी तुलना नही की जा सकती। हॉ, बाह्य दुनिया से जो कुछ वह ग्रहण करती है, उसका विकास भी करती है। शुद्ध मननशीलता का काम चुपचाप केवल ग्रहण करना नही है। इसमें देखने, गौर करने, चिन्तन-मनन करने और औचित्य पर विचार करने एव विवेक के तत्व का अर्थ बतलाने की आन्तरिक मानसिक क्रिया निहित है। यह एक महत्वपूर्ण तथा अर्थपूर्ण बोध की क्रिया अथवा प्रवृत्ति है, जो ज्ञान के क्षेत्र में निर्माण, आकार तथा रचना का कार्य सम्पन्न करती है। वास्तव में इसमें बहुत कुछ मनसिक क्रिया निहित है। किन्तु उस दूसरी मूल प्रवृत्ति के अर्थ में यह क्रियाशील नही है, जो व्यक्तियो में फैली है, जिसे कर्सेन्स्टाइनर ने क्रियाशीलता की सज्ञा दी है यानी इस अर्थ में कि प्राकृतिक विषयो की दुनिया मे, बाह्य वास्तविक सम्बन्धो के ज्ञान की ओर इसका निर्देश किया जाए। मननशील प्रवत्ति की इस क्रियाशीलता के साथ ही, सक्रिय प्रवृत्ति की क्रियाशीलता भी या मुख्यत अनुकरणात्मक या मुख्यत रचनात्मक हो सकती है। अनुकरणात्मक क्रिया शुद्ध रूप से यान्त्रिक हो सकती है या जिस वस्तु का अनुकरण करना चाहती है, पहले उसे समझ कर एव उसका मनन कर अनुकरण करती है।

फिर मनन तथा क्रिया, इन दोनो में से प्रत्येक अपने लक्ष्यों, फलों तथा उद्देश्यों की दृष्टी से दो प्रकार की हो सकती है। ऐन्द्रिक अनुभवो के क्षेत्र में, हम किसी वस्तु या उसके कुछ पक्षों के प्रत्यक्ष बोध से चिन्तन की स्थिति में प्रवेश कर सकते है, अथवा तब, जब कि ऐसी वस्तुओं का सम्बन्ध किसी ऐसी चीज से हो, जो हमारे अनुभवो के परे हो—फल या उद्देश्य, या तो विश्वव्याप्य है, या अतिश्रेष्ठ। पहली स्थिति में इसकी रुचि वस्तुस्थिति और सच्चाई में रहती है, यथा उनके रहने और होने में, वे कैसे आते है और समाप्त हो जाते है, इसमें अथवा यह उनके कार्य मूल्य एव महत्त्व में अभिरुचि रखता है। चिन्तन की इन दोनो प्रवृत्तियो को सैद्धान्तिक कहा जा सकता है। प्रथम शुद्ध सैद्धान्तिक, दूसरा उद्देश्यवादी सैद्धान्तिक। सस्कृति की वैज्ञानिक उपयोगिता इन दोनो प्रवृत्तियो के प्रत्यक्षीकरण के फलस्वरूप है। इन दोनों में पार्थक्य का ज्ञान है—अन्तर और वाह्य के बीच हो नहो, चिन्तन करनेवाले और चिन्तन की वस्तु के बीच ही नही बल्कि दूसरी प्रवृत्ति के रूप और विषय वस्तु में भी।

जहाँ चिन्तन और वस्तुओ के औचित्य तथा वास्तविकता से सम्बद्ध नही है, बल्कि वाह्य या आन्तरिक दिखावट से सम्बद्ध है, वहाँ यद्यपि अन्तर तथा बाह्य का भेद रहेगा, पर आकार और विषय वस्तु के बीच भेद मिट जाता है। ऐसी अवस्थाओ में विषय वस्तु की पहचान कल्पना-द्वारा नही, बल्कि प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा होती है। इसी का नाम सोन्दर्यात्मिक प्रवृत्ति है। इसके प्रत्यक्षीकरण से सस्कृति की सौन्दयात्मक, कलात्मक अच्छाइयो की उत्पत्ति होती है।

वह मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति, जिसे सर्वश्रेष्ठ मूल्यात्मक सम्बन्ध के चिन्तन से सन्तोष प्राप्त होता है, धार्मिक प्रवृत्ति कही जाती है। इसकी कुछ चरम प्रकट अवस्था मे जैसे आध्यात्मिक एकता में, केवल विषय-वस्तु और रूप की भिन्नता ही नही, बल्कि विषय और वस्तु की भिन्नता मिट जाती है जैसे हर्षातिरेक की स्थिति मे। इस प्रवृत्ति के प्रत्यक्षीकरण से सस्कृति की धार्मिक उत्कृष्टता की उत्पत्ति

होती है, इसके धार्मिक प्रतीक और नियम तथा रीतिया तथा इसके धार्मिक व्यक्तित्व की जो कम महत्व-पूर्ण नही, उत्पत्ति होती है । क्योकि, वास्तविक आध्यात्मिक या धार्मिक अनुभव एक ऐसे प्रकाश को प्रज्जवलित कर देता है, जो जीवन—भर जलता रहता है, और जो इसके निकट आता है, उसे गर्मी तथा प्रकाश प्रदान करता है ।

अब चिन्तक प्रवृत्ति से क्रियात्मक प्रवृत्ति की ओर आये । यह प्रवृत्ति वास्तविक सम्बन्धो को अगीभूत करती है । यह भी अपने लक्ष्य की प्रकृति या कार्य के अनुसार दो प्रकार की हो सकती है । किसी क्रिया का लक्ष्य या कार्य, उस कार्य के द्वारा आकॉक्षित मूल्य से निर्धारित होता है । क्रिया से जो सन्तोष प्राप्त होता है, वह या तो उस मूल्य के कारण, जो कर्त्ता के लिए क्रिया प्रत्यक्ष रूप से लगती है अथवा उस मूल्य के कारण, जो दूसरो को सन्तोष पैदा कर प्राप्त किया जाता है । दूसरे शब्दो मे यही कह सकते है कि क्रियात्मक प्रवृत्ति या तो आत्मश्लाघी, आत्मकेन्द्रित या बहुकेन्द्रित एव अन्यकेन्द्रित है । आत्मश्लाघी क्रियात्मक प्रवृत्ति, पुन जीवन के भौतिक उपकरणो के विस्तार या उपार्जन एव रक्षा के हेतु लक्ष्य कर सकती है या किसी के नैतिक व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा एव समृद्धि की प्राप्ति की दिशा मे चेष्टा कर सकती है । पहली स्थिति मे इसे हम आत्मश्लाघी भौतिक प्रवृत्ति कहेगे, दूसरी स्थिति मे इसे आत्मश्लाघी आदर्श को प्रवृत्ति कहेगे । आत्मश्लाघी क्रिया की जडे आत्मरक्षा एव आत्मदृढता मे स्थित है, उधर बहुकेन्द्रित क्रियात्मक प्रवृत्ति का लक्ष्य (क) कर्ता के नही, किसी दूसरे के सन्तोष मे निहित है, या किसी ऐसे दल के सन्तोष मे, जिसका सदस्य कर्त्ता नही है, अथवा (ख) उस दल, जिसका कर्त्ता भी सदस्य है, के सन्तोष को भी वह लक्ष्य कर सकता है । पहले मे परोपकारी भावना है और दूसरे मे सामाजिक भावना, तथा (ग) एक तीसरी क्रिया भावना वह है, जिसमे कर्त्ता के लिए काम का मूल्य, किसी व्यक्ति या दलगत सन्तोष मे न होकर स्वय कर्म मे ही निहित है । यही सक्रिय सामाजिक अथवा प्रयोजनीय भावना है ।

परिणाम के स्वरूप मे कर्सेन्स्टाइनर ने इस प्रकार तीन मूल चिन्तक आदर्शों को माना है—सैद्धान्तिक चिन्तक, सौंदर्यमूलक चिन्तक और धार्मिक चिन्तक—और तीन मौलिक क्रियात्मक आदर्श—सैद्धान्तिक, सौंदर्यमूलक और धार्मिक—इनमे से प्रत्येक के चार प्रभेद है (१) आत्मश्लाघी, (२) सामाजिक, (३) परोपकारी और (४) प्रयोजनीय । विशुद्ध आदर्श तो विरल है । व्यक्तित्व का ढाँचा केवल इन एक या अनेक मौलिक रूपो की प्रधानता पर निर्भर नही है, वल्कि गहनता के विभिन्न परिणामो पर, जिनमे विभिन्न प्रकार की प्रवृत्तियाँ उनके निर्माण मे प्रवेश करती हैं ।

मुझे भय है कि एक प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री द्वारा किए गये व्यक्तित्व के वर्गीकरण का मेरा यह संक्षिप्त स्पष्टीकरण न्यूनोक्ति के अर्थ मे कहे, तो कुछ नीरस हो गया है । किन्तु मुझे विश्वास है कि ऊबे हुए श्रोताओ को यह जानकर कुछ राहत मिलेगी कि उन्हे उबा डालने वाला व्यक्ति अपने अपराध के प्रति सजग है । क्योंकि स्थिति तब दुर्वह हो जाती है, जब वह अपने-द्वारा किये गये अपराध से निरा अपरिचित रहता है । सान्त्वना के तौर पर मै आप से कहूँ कि इसी तरह की परिस्थितियो का कुछ संभावनाओं को छोड़, जिन पर मेरा कोई काबू न था—मैंने भी वीरतापूर्ण आत्मसंयम के साथ सामना किया है और आपने भी उसी संयम का परिचय दिया है, मैं इस बात का साक्षी हूँ ।

डा० जाकिर हुसैन : व्यक्तित्व और विचार

खैर विनोद की बात छोड़िए। मै सोचता हूँ कि वैज्ञानिक शिक्षा और सास्कृतिक मनोविज्ञान का एक अत्यन्त उपयोगी काम यह होना चाहिए कि वह एक ओर तो विभिन्न प्रकार की मानसिक बनावटो तथा मूल्य-लक्ष्यो—हितो की प्रणाली का अनुसधान करे, और दूसरी ओर विभिन्न प्रकार की सास्कृतिक उपादेयता में निहित शैक्षिक मूल्यो का अनुसधान करे। इन क्षेत्रो मे अभी तक बहुत काम हो चुका है और यद्यपि भारतीय शिक्षाशास्त्रियो और मनोवैज्ञानिको से यह आशा की जाती है कि इन क्षेत्रो मे ज्ञान की सीमा का वे विस्तार करेगे,तथापि शिक्षा के नीतिनिर्धारक एव शिक्षाविद् अपेक्षाकृत साधारण और आडम्बर-रहित, किन्तु शायद अधिक आवश्यक काम में अपने को लगा सकते है, वह जरूरी काम है, उपलब्ध परिज्ञान का उपयोग।

अब मै दूसरे सिद्धान्त की बात करूगा। शिक्षा में व्यक्तिवादी सिद्धान्त के उपसिद्धान्त-स्वरूप, शिक्षार्थी के विकास की अवस्था भी विचारणीय है। शिक्षा की प्रक्रिया वह निरन्तर प्रक्रिया है, जिसमें यात्रा मजिल से कम महत्वपूर्ण नही, क्योकि, सचमुच कोई मजिल पूरी नही कर पाता है। इसमें हर अवस्था का अपना महत्व और गौरव है। इसकी विभिन्न अवस्थाओ को केवल अन्तिम लक्ष्य प्राप्त करने का साधन मानना बिल्कुल भूल है। शिक्षा के विकास की एक तरह से आरम्भिक और प्राथमिक अवस्था, जैसे स्नातक होने या डॉक्टरेट' प्राप्त करने को ही अन्तिम लक्ष्य मान लिया जाता है, जो कि अनुचित है; क्योकि वहाँ व्यक्ति रुक जाता है और जिन्दगी भर के लिये शिक्षा के कारनामो को निरर्थक बना बैठता है, और प्रारम्भिक अवस्था में की जानेवाली उस सुन्दर तथा स्फूर्तिदायी यात्रा को पूर्णतया खराब कर बैठता है, जिसके कारण भविष्य मे इसी तरह की या इससे भी आनन्दोत्पादक यात्रा के लिए उसेकाफी शक्ति मिल सकती थी। शिक्षा में, यदि हम अन्तिम की प्राप्ति के लिए तात्कालिक का बलिदान करे, तो शिक्षा का ही अहित होगा। जर्मनी के महान् शिक्षा-मनीषी श्लाइरमेखर ने ठीक ही कहा है कि सभीतैया-रिया सन्तोषजनक अनुभव हो, तथा सभी सन्तोषजनक अनुभवों में तैयारी निहित रहनी चाहिए। प्रत्येक सुसगठित शिक्षा प्रणाली का यह काम होना चाहिए कि वह विद्यार्थी के मानसिक विकास की गति को हस्तक्षेप द्वारा प्रभावित नही करे। अगर विद्यालय, वहकारखाना नही है, जिसमें पूर्व-निर्धारित कार्य करने के लिए यन्त्रस्वरूप प्रशिक्षित मनुष्य तैयार किए जाते है और अगर वह शिक्षा का स्थान है, जो यह होना भी चाहता हो, तो उसमें विद्याथी के विकास की प्रत्येक अवस्था की विकसित परिष्कृति की व्यवस्था होनी चाहिए, और उसे सावधान और सतर्क भी रहना चाहिए, ताकि ऐसा न हो कि वह अगली अवस्था के आगमन के लक्षणो को न पहचान पाए। क्योकि, खींचने और धकेलने—दोनो का शिक्षा पर बहुत भयकर असर पड सकता है।

कर्सेन्स्टाइनर ने अपने 'बनावट-सिद्धान्त' (थ्योरी डर-बिल्डुंग), में जीवन की प्रारम्भिक अवस्था के विकास की तीन मुख्य अवधियो का प्रतिपादन किया है। प्रत्येक का काल सात वर्षो का है। सात वर्षो तक उम्र की पहली अवधि को वे खेल की उम्र मानते है। दूसरी सात से चौदह वर्ष तक की उम्र स्वकेन्द्रिक (इगोसेन्टिक) की है, और तीसरी चौदह से इक्कोस वर्ष की उम्र में काम की बहुकेन्द्रिक अभिरुचि होती है। प्रत्येक अवस्था का सम्मान अपने आप में होना चाहिए तथा बाद में आनेवाली अव-स्थाओ के अधीन नही माना जाना चाहिए।

कुशलता-प्राप्ति मे प्रशिक्षित करने के लिए खेल की इच्छा तथा उसकी स्वच्छन्द निरपेक्षता को नष्ट नहीं करना चाहिए। खेल का अपना ही लक्ष्य होता है। खेल की उम्र मे वच्चा अपने खेल के वाहर अपना कोई उद्देश्य नहीं रखता। खेल को अच्छी तरह खेलने को कुशलता के विकास का भी लक्ष्य उसके सामने नहीं रहता, केवल बडे न होकर हम लोग अधिक बुद्धिमान् भी हो तो उसके खेल का इस प्रकार निर्देश कर सकते है कि अपनी आनन्ददायक क्रिया के अन्तगत वार-वार एक ही कार्य को करने या अन्य उपायो मे, बच्चा अपने कार्य मे विशेष कुशलता का विकास कर सकने मे समर्थ हो सकता है। बाद के कार्य काल मे उसके आत्मनिर्धारित लक्ष्य की पूर्ति मे उनका सहारा लिया जा सकता है और तव वह जान बूझ कर उसे ही अपना लक्ष्य मानकर उसके आगे विकास कर सकता है। बालक के लिए खेल के उद्देश्य को समस्या बना कर भ्रष्ट नही करना चाहिए।

स्वकेन्द्रिक कार्य को उम्र जो खेल की उम्र से ही निकलती है, क्रियात्मक होती है। किन्तु अब उसकी उद्देश्यपूर्ण, व्यावहारिक स्थिति होती है, जो आंशिक रूप से तकनीकी तथा सामाजिक है। अत्यन्त विरल स्थिति को छोडकर, सैद्धान्तिक और सौन्दर्यात्मक चिन्तन अब भी दूर होते है। सात से चौदह वर्ष की उम्र वालो के लिए विद्यालय को क्रियात्मक व्यावहारिक उत्तेजनाओ की तृप्ति की व्यवस्था करनी चाहिए। विद्यालयो को इस प्रकार अपनी-अपनी कार्य-योजना व्यवस्थित करनी चाहिए कि अपनी व्यावहारिक, तकनीकी और सामाजिक प्रेरणाओ के प्रयोग से मिलने वाले सन्तोष से विद्यार्थी वचित न रह जाए। साथ ही बाद मे आनेवाली सैद्धातिक तथा चिन्तन-क्रिया की नीव भी शायद पड जाए। वहुत सी स्कूली व्यवस्थाओ मे कुछ प्रतिकूल प्रवृत्तिया देखी जाती है, यानी यह कि प्रतिभाशाली विद्यार्थी पर पूर्व-सामयिक दबाव डाला जाता है। वे अपने बच्चो को प्रतियोगिता-परीक्षाओ मे वार-वार बैठाना चाहते है, तथा नौकरशाही एकता का कल्पनाहीन प्रयोग, जिसके द्वारा खरहे को कछुए के साथ समान गति से चलाने की बात सोची जाती है। बच्चे के वास्तविक विकास के हित मे ये दोनो ही स्थितिया समान रूप से घातक है।

अब मैं तीसरे विचार पर आता हूँ। हम लोगों ने पहले जिन दो विषयो पर विचार किया हे, वे शिक्षा के कुछ रूप मे विकसित हुए, जिसके अनुसार शिक्षा अर्न्तनिर्माण करती है, वाह्य वृद्वि नही। आपको स्मरण होगा कि शिक्षार्थी के प्राकृतिक व्यक्तिमूलक गठन के तथा उसके विकास की विशेष अवस्था, दोनो का, किसी व्यवस्था के अन्तर्गत स्कूलो के निर्माण, सगठन तथा वर्गीकरण मे, मौलिक महत्व है।

तीसरा तथा चौथा विचार, जिन्हे मैं अब आपके सामने रखूगा, शैक्षिक कार्यो के सचालन से सम्बन्धित है। ये समग्रता (टोटेलिटी) और क्रियात्मकता के सिद्धान्त है। मैं समझता हूँ मुझे आज इतना ही समय है कि मैं इन दोनो मे से प्रथम सिद्धान्त समग्रता के विषय में सक्षेप मे कहूँ। मै अपने दूसरे भाषण मे क्रियात्मकता की शैक्षिक सिद्धान्त के रूप मे चर्चा करूगा।

शास्त्री ने शैक्षिक क्रिया की क्रमिक एकता पर विशेष जोर देकर लोगों को इसका महत्व समझाने की भरपूर चेष्टा की है। साथ ही शैक्षिक क्रिया का सम्बन्ध उससे है जिसे उन्होंने बच्चे की मूल बौद्धिक, नैतिक तथा शारीरिक शक्ति कह कर बताया है या जिसे साधारण शब्दों मे बुद्धि, हृदय और हाथ की शक्ति कहते है। हमारे देश मे ही गांधीजी ने बच्चो की प्रकृति के सम्बन्ध मे अपने विस्तृत एवं प्रेमपूर्ण अनुभव, बच्चों के साथ एकता का अनुभव करने की मुक्त सामर्थ्य तथा उनकी सम्भावनाओं मे अपनी गम्भीर अन्तर्दृष्टि-द्वारा, उन्होंने अपने महान् व्यक्तित्व से शैक्षिक क्रिया को प्रभावित किया, तथा कार्य के सिद्धान्त पर भी शिक्षा के एक प्रभावशाली साधन के रूप मे जोर दिया। तो भी सारे विश्व के विद्यालय तथा हमारे देश के लाखों विद्यालय मस्तिष्क को सूचनाओ से भरने की गलतफहमी मे, या बुद्धि के स्वतन्त्र विकास की महत्वाकाक्षी चेष्टाओ के साथ इस तरह काम कर रहे है, मानो गांधी और पेस्तालोजी महोदय कभी थे ही नही। उन्होंने ऐसा इसलिए किया है कि वे निदेश से सन्तुष्ट है और वास्तविक शिक्षा की जरा भी परवाह नही करते। वे विद्यार्थियो की योग्यता किसी खास कार्य एवं किसी वस्तु की निपुणता मे बटाने मे सन्तुष्ट है किन्तु वह आगे चलकर किस प्रकार का आदमी होगा, इस बात को मामूली बात समझकर, आसानी से इसकी उपेक्षा करते है। इसमे उनका यह विचार निहित मालूम पडता है कि किसी विद्यालय ने किसी को लिखना सिखाया है तो वह अपना इस बात से कोई सरोकार नही समझता कि जिस आदमी ने निपुणता प्राप्त कर ली है क्या वह इस योग्य बना दिया गया कि एक अमर काव्य-कृति की सृष्टि कर सके, या वह उस योग्य हो गया कि कुछ पैसे कमाने के लिए किसी दस्तावेज की जालसाजी कर सके। अगर उसे पढना सिखाया गया है तो विद्यालय को इस बात की चिन्ता नही है कि वह महाग्रन्थो का पाठक बनेगा या रद्दी साहित्य में रुचि लेगा। अगर उसे केवल परीक्षा मे उत्तीर्णता प्राप्त करने के लिए समुचित ढग से शिक्षा दी गई है-जो परीक्षा न न्याय- सिद्ध है और न विश्वसनीय, तो यह शिक्षा का काम नही होता कि उससे पूछे कि वह ईमानदार एव सच्चा समाज का सहयोगी एव सहायक बना है या नही, वह कला और प्रकृति मे कोई सौन्दर्य देख सकता है या नहीं, जिस पूर्ण इकाई का वह एक अंश-मात्र है, उसके हित के लिए वह अपने क्षुद्र स्वार्थो का बलिदान करने में समर्थ हो सकेगा या नही।

नही होगा जितना शिक्षको तथा विद्यार्थियो के बीच, खेल के मैदानो तथा पर्यटनो मे बुद्धिपूर्ण सहानुभूति-पूर्ण तथा स्नेहपूर्ण विनिमय सहायक होगा, तथा जितना कर्म तथा जीवन के समुदाय-स्वरूप स्कूल मे तथा बहार किए गए पारस्परिक सहायक रचनापूर्ण काम सहायक होगे। अगर विद्यालय अपने सगठन मे विभिन्न प्रकार की अभिरुचियो के साथ ही विशेष आयु-वग के लिए सामान्य अभिरुचि के प्रसार का ध्यान रखे, केवल तभी हम इस अर्जित ज्ञान का, विद्यार्थियो के हित मे, शिक्षा के सफल उपयोग के लिए लाभ उठा सकेगे।

मेरा खयाल है, आज का भापरण मै यही समाप्त करू, क्योकि यदि अब तक मैं आपको थका डालने मे सफल न हुआ, तो अब थकाने की कोशिश करना बेकार है, काफी देर हो चुकी है। कल मै फिर कोशिश करूगा। ●

सभी हाथ बटाएँ

देश के इतिहास मे पहली बार करोडो व्यक्तियो के हाथ मे राष्ट्र जीवन है—किसी एक व्यक्ति के हाथ मे नही। अतः उन करोडो व्यक्तियो को ऊचा उठाने से राष्ट्र ऊचा उठेगा। इसके लिए भावी नागरिको को अच्छी से अच्छी शिक्षा की व्यवस्था करनी होगी।

भारत को नमूने का देश बनाने के लिए हर नागरिको को यह महसूस करना पडेगा कि यह उसका देश है और अपने देश को हर तरह से अच्छा बनाना उसका कर्त्तव्य है। परन्तु यह काम केवल बाते करने से नही होगा, बल्कि इसके लिए मिल-जुल कर काम करना होगा। क्योकि एक व्यक्ति छप्पर नही उठा सकता और राष्ट्र का छप्पर उठाने के लिए तो हम सबको मिलजुल कर हाथ बटाना होगा।

डा० जाकिर हुसैन

भारत में शिक्षा का पुनर्निर्माण-(२)

[नई दिल्ली में १३ दिसम्बर, १९५८ को सरदार पटेल स्मारक व्याख्यान माल के अन्तर्गत डा० जाकिर हुसैन का दूसरा भाषण।]

अपनी दो पूर्व-निश्चित धारणाओं के साथ मै यह वार्त्ता शुरू कर रहा हूँ, जिसके लिए क्षमा चाहता हूँ, क्योकि मेरी इन धारणाओं से असहाय आशावादिता तथा दिल पसन्द विचार प्रकट होते है। मेरी पहली धारण यह है कि आप मे से कुछ लोग मेरे प्रथम व्याख्यान को सुन लेने के बाद अब मेरा दूसरा व्याख्यान सुनने का खतरा उठाने जा रहे है। मेरी आशावादिता, आपके दृढाग्रह एवं धर्म का मुकाबला करना चाहती है। दूसरी ओर शायद उससे भी अधिक तीव्र यह धारण है कि जो कुछ मैने पिछली बार कहा, उसे आपने याद रखा होगा। मै आपको याद दिला दूँ कि शिक्षा के विषय में अपने विचार आपके सामने रखने के बाद, मैने कुछ विचारो का विवेचन आरम्भ किया था, जो मुझे शिक्षा के रूप से निकलते-से लगे। मैने व्यक्तिगत तीन महत्वपूर्ण सिद्धान्तो, उस व्यक्तित्व के विकास की अवस्था और शिक्षा द्वारा निर्मित अविभाज्य सर्वागीणता के सम्बन्ध में विचार किया था। मै क्रियात्मकता के सिद्धान्त का भी उल्लेख कर चुका था और आज का अपना व्याख्यान उस सिद्धान्त के स्पष्टीकरण एव व्याख्या से आरम्भ करना चाहता हूँ।

एक प्रकार से, किसी भी युग में कोई भी विद्यालय, विद्यार्थियो की किसी स्वक्रिया के बिना नही रहा है। पढने-लिखने और हिसाब की कठोरतम कसरत में भी, तथा दूसरे की कृपा से किसी के मस्तिष्क मे सूचनाओ का अम्बार भर कर स्मृति में केवल उन्हे जमा रखने में भी कुछ स्वक्रिया रहा करती थी। किन्तु, यह अधिक से अधिक एक आकस्मिक ससर्ग था, क्योकि इसे न लक्ष्य माना जाता और न विशेष शैक्षिक महत्व का समझा जाता था। मै समझता हूँ कि स्विट्जरलैंड के महान्

शिक्षाशास्त्री पेस्तालोजी के कारण शैक्षिक चिन्तन और व्यवहार मे, स्वक्रिया के सिद्धान्त को अभिन्न अग माना गया और उचित ढग से इसे स्वीकार किया गया । अब तक प्राय इसने सार्वभौम मान्यता प्राप्त कर ली है, किन्तु, अपने रोज के अनुभव पर आप भी कह सकते है कि किसी सिद्धान्त को मान लेना अक्सर सिद्धान्त के लिए बहुत बुरी चीज होती है । अत्युत्साही समर्थक मूल-सिद्धान्त के पीछे निहित भावना का हनन कर देते है । छिपे स्वार्थो के कारण सिद्धान्तो को मानने वाले कुशल सशयवादी, सिद्धान्तो की कायापलट करना भी जानते है । उनको नष्ट करने के लिए यह उनके पास सबसे आसान तरीका है । 'केवल नाम रखो, सार की चिन्ता छोडो' यही उनका गुप्त प्रण है । हमारे देश मे ही अनेक अच्छे सिद्धान्तो का नतीजा ऐसा ही हुआ है । खैर, पिछली शताब्दी मे यूरोप तथा अमेरिका के विद्यालयो मे इन स्वक्रियात्मकता के सिद्धान्त का प्रादुर्भाव हुआ, यद्यपि मुख्य काम अर्थात् निष्क्रिय ग्रहणीयता की तुलना मे यह क्रियात्मकता प्राय. काफी साधारण अ शो मे ही रहती थी । निष्क्रिय ग्रहणीयता विद्यालयो का मुख्याधार थी । स्वक्रियात्मकता की यह साधारण खुराक भी बाहर से ही सक्रिय रूप मे दी गई है । साधारणत यह नही माना जाता था कि बच्चे या शिक्षार्थी मे समझने, बोध होने काम करने और सिद्धि प्राप्त करने की जन्मजात प्रवृत्ति होती है अपनी मानसिक बनावट द्वारा निर्धारित तरीको से अपने को सलग्न रखने की सहज प्रवृत्ति । विद्यालय के लिए यह भी मानना बहुत कठिन रहा है और अब भी है कि शिक्षा, छाप छोडने या बाहर से प्रणिधान करने की वस्तु नही है । सच्ची शिक्षा वास्तव मे स्वशिक्षा है । किन्तु, यही बात तो पेस्तालोजी के ध्यान मे थी । वस्तुत उनके प्रसिद्ध जीवनी लेखको मे से एक, प्रसिद्ध चिन्तक पाल नेटोर्प ने उनके 'क्रिया-सिद्धान्त' को, 'स्वच्छन्दता का सिद्धान्त' कहा है ।

फिर भी इधर एक प्रतिक्रिया ध्यान देने योग्य हुई है । यहाँ तक कि 'ग्रन्थ-प्रधान' विद्यालय से 'कार्य-प्रधान' विद्यालय या 'जनता-विद्यालय' की ओर जाने की मूल स्वस्थ प्रवृत्ति भी कभी-कभी विवेक-रहित अतिशयोक्ति-सी लगने लगती है । उदाहरणार्थ, मैने ऐसे बुनियादी विद्यालयो को देखा है, जिनके कार्यो का प्रधान केन्द्र दस्तकारी के कार्य को माना जाता है, पर जहाँ उस अर्थ मे किसी प्रकार का कोई कार्य नही होता और मै ऐसे बुनियादी विद्यालयो के शिक्षको से भी मिल चुका हूँ, जिन्होने बहुत उत्सुकता तथा कुछ गौरव से कहा कि वे अपने विद्यालयो मे कोई पुस्तक नही रखते, क्योकि उनका विद्यालय तो वस्तुत सक्रियता तथा कर्म के लिए है । मैने उनसे यह नही पूछा कि किस प्रकार के काम वे अपने विद्यालय मे लेते है—और मुझे विश्वास है, मेरी इस स्वीकारोक्ति पर आप मेरे प्रति हमदर्द होगे । प्रथम महायुद्ध के बाद होने वाले शिक्षा सम्बन्धी प्रयोगो की अवधि मे मैने एक प्रसिद्ध जर्मन शिक्षाशास्त्री को अपने स्कूल के सम्बन्ध मे यह कहते पाया "मेरे स्कूल मे छात्राए ही सब कुछ करती है, शिक्षक कही सामने नही आते ।" मै शिक्षा के सभी चरणो मे प्राकृतिक स्व-सक्रियता की माँग करता हूँ—उद्देश्य के निर्धारण मे, कार्य के सगठन तथा कार्यविधियो के निरीक्षण मे, निर्णय-योग्य सभी प्रश्नो मे, आवश्यक सशोधनो मे, प्रक्रिया के मूल्याकन एव उसके फलो मे, प्रत्येक विषय मे उन्हे स्वतन्त्रता देता हूँ । मेरा अपना अनुमान है कि इन वीरोचित अतिशयोक्ति की मनोदशाओ मे मनुष्य यह भूल सकता है कि वास्तविक स्वतन्त्रता की राह बहुत ज्यादा निर्देशित प्रयास के क्षेत्रो से होकर जाती है । बिना किसी निर्देश या अधिकार वाला स्कूल एक बुद्धिहीन, तथा उससे भी खराब, एक निष्फल प्रयास होगा । नही ससार भर की सारी स्वच्छन्दता के बावजूद, शिक्षा की ओर जाने का कोई ऐसा मार्ग नही है जो स्वत्व के ही चारो ओर घूमता रहे । सम्भावित से लेकर पूर्ण मानवीय व्यक्तित्व तक मे कोई ऐसा नही, जो समाज

तथा उसकी सस्कृति के उपकरणो से होकर न गुजरे। केवल धीरे-धीरे और उचित चुनाव के साथ इनके साथ किए गए सम्पर्क मे, और इन्हे ग्रहण करने की क्रिया में व्यक्ति का मस्तिष्क जाग्रत् होता है और अपने अस्तित्व के नियम को जानने मे समर्थ होता है। बच्चे की रचनात्मक तथा स्वक्रियात्मक प्रवृत्तियो का पालन-पोषण पूर्व उपलब्धियो तथा उदाहरणो से प्राप्त, अनुशासन तथा शिष्टता के पालन-पोषण के साथ-साथ चलता है।

इस स्थल पर मुझे ऐसा लगता है कि स्वक्रिया-सम्बन्धी विचार के प्रति सम्भावित गलतफहमी और अतिशयोक्ति का निर्देश करने मे मै जरा जल्दी कर गया। पहले मुझे यह स्पष्ट करना चाहिए था कि एक शैक्षिक सिद्धान्त के रूप मे मै 'स्वक्रियात्मक प्रवृत्ति' का क्या अर्थ समझता हूँ।

चार प्रकार की क्रियाए मेरे ध्यान में आती है.—खेल की क्रिया, दौड-धूप या क्रीडा की क्रिया, यदा-कदा की व्यावसायिक क्रिया और कार्य की क्रिया। खेल एक ऐसी क्रिया है जिसका उद्देश्य स्वयसिद्ध है, इसके बाहर कोई उद्देश्य नही है। खेल, खेल के लिए है। बच्चे के बाहर किसी वस्तु या उसके अन्दर किसी गुण की उत्पत्ति इसका लक्ष्य नही है। अपना प्रतिफल वह आप ही है। जब भी वह क्रिया मृगमरीचिका के आगे बढती और कुछ धुधले प्रकार के लक्ष्य अपनाती देख पडती है, तब भी वह लक्ष्य वास्तविक रूप में प्राप्त नही हो पाता। खेलते हुए बच्चे की कल्पना वस्तु के नियमो को नही मानती। वह किसी वस्तु को कुछ भी मान बैठता है, छडी को घोड़ा, कागज के टुकड़े को फूल, दूसरे टुकडे को फूल-दानी, अपने को शिक्षक, मा को विद्यार्थी और दियासलाई को गुरूजी की छड़ी मान लेता है और काम चलता है, बच्चा खुश रहता है।

दूसरी ओर दौड-धूप या क्रीडा की क्रिया कुछ उद्देश्य लेकर होती है। वह उद्देश्य किसी कार्य या गति की योग्यता-वृद्धि या सुविधा का होता है। किन्तु, क्रीड़ा भी अपने-आप से बाहर किसी वस्तु की उत्पत्ति नही करती। उसका उद्देश्य उसमें निहित होता है, और खेल-कूद में चैम्पियन बनने तथा रेकार्ड स्थापित करने मे, उत्कृष्ट निपुणता का बोध होता है। अगर क्रीड़ा को अन्य उद्देश्यों की ओर लगाया जाए, उदाहरणार्थ धन प्राप्ति के लिए, तब वह पेशा बन जाता है, या यदि स्वास्थ्य के लिए इसका प्रयोग किया जाए तो वह क्रीडा नही रह कर, शारीरिक व्यायाम बन जाता है।

इन दोनो के अतिरिक्त, दूसरी दो प्रकार की क्रियाएँ, यदा-कदा की वृत्ति तथा कार्य, अपने से बाहर प्राप्त किए जाने वाले स्पष्ट निश्चित उद्देश्यों को रखती है। वे अपने आप में अभी उद्देश्य नही है। वे कुछ विचारको की साकार वस्तुनिष्ठ प्राप्ति की ओर लक्ष्य करते है। वस्तुनिष्ठ साकारता की पूर्णता तथा सम्बद्ध क्रिया में ही, यदा-कदा की वृत्ति तथा व्यसन (हाबी) के उद्देश्य होते है। लक्षित उद्देश्य की पूर्ण तथा उत्तम प्राप्ति में, इसकी कोई अत्यधिक अथवा अति गहरी दिलचस्पी नही है। क्रिया की आनन्ददायक स्थिति जब समाप्त हो जाती है या जैसे ही काम किसी एक या अन्य रूप मे पूरा होने पर होता है, यह क्रिया भी रुक जाती है—जो क्रिया खेल में उत्पन्न हो, और केवल आकस्मिक वृत्ति से रुक जाए, वह नए कला-प्रेमियो के लिए एक विकास-साधन है। शैक्षिक प्रक्रिया का मुख्य उद्देश्य इस क्रिया को, चौथे प्रकार की क्रिया अर्थात् 'कार्य' की ओर ले जाना है।

मुझे भय है, कुछ देर के लिए मै यह बताऊँगा कि कार्य, यदि शिक्षा का एकमात्र यन्त्र नही, तो एक अत्यन्त आवश्यक यन्त्र है। 'अत्यन्त आवश्यक यन्त्र' कहना भी आपको सम्भवत एक विशेष अतिशयोक्ति लगे। किन्तु, आशा है कि इससे आपका यह सन्देह दूर होगा कि मै बिना सोचे-समझे सभी कामो को शिक्षाप्रद ही मानूँगा। हमारे देश के अधिक से अधिक लोगो के भाग्य ने काम, कठिन और दुरूह शारीरिक परिश्रम का काम बदा है, फिर भी दुर्भाग्यवश कोई भी यह नही कह सकता कि उनको अच्छी शिक्षा दी गई है, यह और बात है कि उनमें से कुछ लोग बिना साक्षरता की छलावापूर्ण कुशलता प्राप्त किए ही अनेक शिक्षित कहानेवालो से कही अच्छी तरह शिक्षित है। हाँ, सभी काम शिक्षाप्रद नही होते, यद्यपि शिक्षाप्रद कार्य, वास्तविक शिक्षा के सबसे बडे साधन है। मेरे इस परस्पर-विरोधी कथन के बाद यह आवश्यक हो जाता है कि मैं यह बताऊँ कि शिक्षाप्रद कार्य से मेरा क्या तात्पर्य है, अर्थात् वह कार्य जो व्यक्तित्व और चरित्र के निर्माण मे तथा मस्तिष्क को सुसस्कृत बनाने मे सहायक हो।

इस सम्बन्ध मे सबसे पहले हमे यह समझना है कि शारीरिक श्रम, चाहे वह कितनी उत्सुकता दिलचस्पी और मेहनत से किया जाए, तब तक शिक्षाप्रद कार्य नही बन सकता, जब तक वह किसी प्रारम्भिक क्रिया से उत्पन्न नही होता। कार्य की दिशा मे यह मानसिक क्रिया, एक आवश्यक तथा निर्णयात्मक कदम है। कुछ शारीरिक कार्यो मे यही वह आवश्यक उपकरण है, जो उन्हे शिक्षाप्रद कार्यो का रूप देने मे सहायता पहुँचाता है। हस्तकार्यो के विकास के साथ ही, उस प्रथम बौद्धिक निर्णयात्मक कदम मे संशोधन, परिष्कार या परिवर्त्तन की आवश्यकता आ सकती है किन्तु यह प्रारम्भिक बौद्धिक कदम हमेशा समस्त शिक्षाप्रद कार्य-कर्त्ताओ के मानसिक हस्तकार्यो से पहले आएगा। जीवन से अलग शुद्ध यान्त्रिक कार्य कभी शैक्षिक नही हो सकते। निपट अनुकरण भी शैक्षिक नही हो सकता, जब तक कि कम से कम जिस चीज का अनुकरण करना है, उसकी समझ-बूझ पहले न हो जाए।

शैक्षिक कार्यो की साधारणत चार अवस्थाएँ है — १ वस्तुत क्या करना है, इस समस्या का स्पष्ट ज्ञान, २ कार्य की योजना की तैयारी के उपयुक्त साधनो का चुनाव, विभिन्न अवस्थाओ का जिनमे कार्य का, सम्पादन होना है, चिन्तन, ३ कार्य का वास्तविक कार्यान्वियन और ४ वास्तव मे क्या करना है, इस प्रश्न के समक्ष, किए गए कार्यो के फल की स्वय-समीक्षा। इन्हे प्रत्यक्षीकरण की चार अवस्थाएँ कहा गया है।

शैक्षिक प्रकृति वाले हस्तकार्य मे, केवल तीसरी अवस्था, कार्यो का वास्तविक कार्यान्वियन हस्तात्मक है, अन्य तीन मानसिक उद्यम से सम्बद्ध है। जो कार्य हस्तात्मक नही है उनकी चारो अवस्थाएँ, मुख्यत मानसिक क्रियाओ से सम्बद्ध है। इस मानसिक क्रिया का, जो किसी हस्तात्मक कार्य के साथ होती है, या निश्चित चुनाव-द्वारा किसी नैतिक समस्या के समाधान या सैद्धान्तिक समस्या के समाधान के साथ आती है, विशेष मूल्य है, क्योकि यह क्रिया मस्तिष्क को प्रशिक्षित कर देती है, ताकि बाद मे भी जब ऐसे अवसर आएँ, तब मस्तिष्क इस प्रकार की समस्याओ का समाधान आसानी तथा अधिक विश्वास के साथ कर सके। यह क्रिया तार्किक विचार-प्रणाली मे निपुणता तथा प्रणाली का विकास प्रदान करती है। यह यद्यपि शिक्षा की पूर्णता नही है, फिर भी उसकी ओर प्रगति का यह एक महान् कदम है। क्योकि, चिन्तन की प्रक्रियाएँ उसी स्तर पर विकास करके नही की जा सकती, जिस पर वे बचपन की प्रारम्भिक अवस्थाओ मे अपने को प्रकट करती

है। बच्चा, अपनी शिशु-अवस्था में ही अपने सदा विकसित होने वाले अनुभव-भण्डार में एक प्रकार की व्यवस्था लाना शुरू कर देता है। बच्चे के बोलने और विचारो तथा वस्तुओ के शब्द-रूपो का व्यवहार करने के बहुत पहले ही सादृश्य, भेदकरण और पहचान की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। जैसे ही वह अपनी स्वत क्रियात्मकता के लक्ष्य से अभिज्ञ हो जाता है और साध्य तथा साधन के भेद की जानकारी प्राप्त कर लेता है, वह केवल साध्य साधन के उचित सम्बन्ध की स्थापना की आवश्यकता ही अनुभव करना नही शुरू करता, बल्कि कारण और प्रभाव, वास्तविकता और बाह्य रूप, पूर्णतया एव अ श इसी प्रकार के स्पष्ट सम्बन्धो की स्थापना की खोज करना आरम्भ कर देता है। अनुभव के आधार पर स्थापित ये सम्बन्ध सत्य है कि नही, सम्बद्ध विचारो के प्रतीक सन्दिग्ध है या नही, तथा उसी प्रकार के अन्य विचार, अभी तक बच्चे को परेशान नही करते। क्या और कह, क्यो और कहाँ-से, जैसे उसके प्रश्नो की बौछार बिलकुल छिछले उत्तरो से भी कुछ समय के लिए बन्द हो सकती है। वह केवल उत्तर के लिए जिद्द करता है, क्योकि उसके द्वारा स्पष्ट और तार्किक सम्बन्ध का स्थापन हो जाता है, जिसकी उसे तलाश होती है। बच्चा निष्कर्षो पर पहुँचने की कोशिश करता है, और उनको सयुक्त कर अपने नियमित फैसले तैयार करता है, बिना इसकी परवाह किए हुए कि उसके निष्कर्ष सगत और न्यायोचित है या नही ? बिना किसी उचित अनुशासन के, बिना प्रक्रिया को विशेष विश्वस्त बनाने की चेष्टा किए ही, उसका एक प्रकार तर्कपूर्ण चिन्तन होता है।

इसके विरुद्ध शुद्ध तर्कशास्त्र और गणित मे तार्किक प्रक्रिया का व्यवहार विधिवत् होता है। यहाँ चिन्तन कठिन समस्याओ का, जो अनिवार्य रुप से निश्चित प्रस्तावनाओ से उद्भूत समाधान करता है। ये या तो स्वयसिद्ध होती है या पहले ही इनकी सत्यता सिद्ध हो चुकी होती है। गणित और तर्कशास्त्र, ये दोनों प्रमाणित स्वयसिद्धि से, आगे बढते है, और स्पष्ट विचारो से काम लेते है जिनका प्रतिनिधित्व निश्चित प्रतीको-द्वारा किया जाता है। अपना विचार वास्तविकता से उधार नही लेता, बल्कि अपने आप में से उन्हे पैदा करता है।

किन्तु, मनुष्य को अनन्त तथा विविध वास्तविकताओ का सामना करना पडता है, जिन्हे वह अपने मस्तिष्क से नही उत्पन्न करता, और जिनका अनुभव वह धीरे-धीरे अपने कार्यो और व्यवहारो में करता है। इस बाहरी वास्तविकता का उपयोग करने के लिए, उसे इसको भेदना होगा। इसके लिए उसे तार्किक चिन्तन के औजार की आवश्यकता पडती है, जो स्पष्ट सम्बन्ध स्थापित करने के अतिरिक्त संश्लेषणात्मक तथा विश्लेषणात्मक निर्णय करने मे भी सहायक होता है। उसे निष्पक्ष चिन्तन की आदत की आवश्यकता है, जिसके लिए सावधानी पूर्ण प्रशिक्षण होना चाहिए। बच्चे की प्राकृतिक और आसानी से सन्तुष्ट होने वाली तार्किक प्रक्रिया को एक सुव्यवस्थित तथा आत्म-आलोचनात्मक प्रक्रिया के रूप मे विकसित करना होगा, क्योकि, चिन्तन की आदत किसी भी हालत में बनेगी ही। अगर सतर्क चिन्तन की आदत विकसित न की जाए, तो बिल्कुल छिछली और जल्दबाजी के चिन्तन की आदत पड जाएगी। अगर सत्यता की जाँच के लिए निर्णय को रोक रखने की आदत नही डाली जाती, तो किसी बात को सुनते ही सच समझ लेने की, या सन्देहास्पद अविश्वास की आदत पड जाएगी। गुणो की निश्चितता चिन्तन-क्रिया मे सावधानी दृढता और परिपूर्णता जैसे गुणो की प्राप्ति के लिए, उनके व्यवहार का अवसर प्रदान करना आवश्यक है। इस मानसिक क्रिया की कार्यान्विति की शर्तो की, बुद्धिजीवी ग्रन्थ-प्रधान

विद्यालयो, साथ ही, व्यावहारिक कार्य-प्रधान विद्यालयो-द्वारा उपेक्षा की जा सकती है और की जा रही है। कोई भी स्कूल, उसके कार्यक्रम मे चाहे जिस पर भी जोर दिया जाए, वह शिक्षा का स्थान तब तक नही बन पाएगा, जब तक वह इस प्रकार की मानसिक क्रिया, इस प्रकार के कार्य के लिए पर्याप्त सुविधाएं न प्रदान करे।

वे विद्यालय को जानकारी हासिल कराना और कौशल के विकास की शिक्षा देना अपना कर्त्तव्य समझते है। अगर बराबर नही तो अक्सर, इस आवश्यक मानसिक कार्य को अपना प्रधान कर्त्तव्य न मान, इसकी उपेक्षा करते है। शैक्षिक संस्थाओ से सम्बद्ध कुछ व्यक्ति मेरे इस विचार को जान कर, जिसका मैने पहले ही प्रतिपादन किया है, चौंकेगे कि जानकारी और कौशल, शिक्षा के पर्याय नही है। और फिर भी, आपको चौंकाने का जोखिम अपने ऊपर ले लूंगा, क्योकि जो कुछ मैने कहा है, उसमे मेरा विश्वास है। दरअसल, जानकारी और कौशल तो शिक्षा के विश्वसनीय माप-दण्ड भी नही है। उन्हे इस प्रकार सेवा-योग्य बनाने के लिए हम लोगो को एक विभाजक रेखा खीचनी होगी। जानकारी, जैसा आप साधारणतया जानते है दो प्रकार की हो सकती है, यह किसी दूसरे के मानसिक श्रम द्वारा प्राप्त ज्ञान हो सकता है जो हम लोगो को तैयार जानकारी के रूप मे दिया जा सकता है अथवा ज्ञान जो हम लोगो के अपने अनुभव-द्वारा प्राप्त होता है, ज्ञान जो निजी प्रयासो-द्वारा हम लोगो के मस्तिष्क मे उत्पन्न होता है। उसी प्रकार, कौशल भी दो प्रकार के हो सकते है। यह यान्त्रिक कौशल हो सकता है। इसकी प्राप्ति उस अनुकरणात्मक परिश्रम-द्वारा होती है, जिसके फलस्वरूप, वर्त्तमान मूल्यो की आवृत्ति होती है। अथवा वह स्वभाविक प्रवृत्तियो पर आधारित अयान्त्रिक कौशल भी हो सकता है, जो नए मूल्यो का निर्माण करता है। प्रथम प्रकार की जानकारी और कौशल, बाह्ययोग है। दूसरे प्रकार की जानकारी और कौशल आन्तरिक रूपान्तर और सम्पन्नता है। प्रथम प्रकार, बाहरी वृद्धि का प्रतिनिधित्व करता है, दूसरा, आन्तरिक विकास का द्योतक है। प्रथम निर्देश है, दूसरा शिक्षा। प्रथम ऊपरी चमक है, दूसरी अनिवार्य संस्कृति। प्रथम और द्वितीय प्रकार के विद्यालयो मे प्रधान अन्तर, उस प्रकार के मानसिक कार्यो की सहज अनुपस्थिति या फिर अति स्पष्ट व्यवस्था है, जिनके स्वत स्वीकार किए जाने पर, सतर्क और सम्पूर्ण चिन्तन की प्रवृत्ति का विकास होता है।

आपको याद होगा कि मैने शिक्षा के चौथे सिद्धान्त, अर्थात् प्राकृतिक क्रिया की व्याख्या के आरम्भ मे कुछ अतिशयोक्तियो की जो इस सिद्धान्त के साथ सुनी जा सकती है, चर्चा की। इन अतिशयोक्तियो मे से एक की मांग यह है कि अच्छे विद्यालय मे प्राकृतिक क्रिया ही एकमात्र क्रिया हो, और यान्त्रिक कौशल तथा परम्परागत ज्ञान का निषेध किया जाता है। मेरी समझ मे यह अतिशयोक्ति पूर्णत गलत है और उस तथ्य की उपेक्षा करती है कि प्रत्येक बच्चा एक सुसंस्कृत समाज मे उत्पन्न होता है। स्वेच्छापूर्ण स्वाभाविक कार्य के उद्देश्य, मानो मनुष्य के सम्पूर्ण अस्तित्व को आच्छादित करते है, और स्वाभाविक उद्देश्यो की प्राप्ति के काम मे व्यर्थ की शिथिलता को रोकने के लिए वह पर्याप्त परम्परागत ज्ञान और यान्त्रिक कौशल की प्राप्ति की प्रेरणा देते है। इसलिए, शिक्षा मे, परम्परागत ज्ञान का तथा यान्त्रिक कौशल का हमेशा अपना स्थान रहेगा, लेकिन तभी, जब कि प्रत्यक्ष अनुभवो द्वारा-प्राप्त किए गए अथवा प्राप्त किए जाने वाले ज्ञान की खाई पाटने मे आए या जब रचनात्मक कार्यो द्वारा प्राप्त हुए अथवा प्राप्त होने वाले कौशल की खाई पाटने आए। परम्परागत ज्ञान और यान्त्रिक कौशल के द्वारा इस प्रकार की खाई को निरन्तर दूर करना आवश्यक है।

मै यहाँ पर कार्य के शैक्षिक मूल्य, जैसे मैने इसके वर्णन की चेष्टा की है, के विषय में एक महत्वपूर्ण और अनिवार्य प्रश्न उठाना चाहता हूँ । इसके सम्बन्ध में मैंने जो सबसे अधिक दावा किया है– और यह कोई छोटा दावा नही है—कि यह मानसिक क्रिया का सुअवसर प्रदान करता है, केवल जिसकी सहायता से ही शिक्षार्थी मे सावधानीपूर्ण, फलप्रद तथा तार्किक चिन्तन की अत्यन्त आवश्यक आदते डाली जा सकती है । कुछ मानसिक क्रियाओ का यह विधिवत् प्रशिक्षण है । यह मानसिक एव बौद्धिक कौशल उत्पन्न करता है । यह फल उत्पन्न करने वाले काम को, चाहे फल कितना भी महत्त्वपूर्ण क्यो न हो, क्या सचमुच शैक्षिक कहा जा सकता है ? मुझे भय है, मै इस प्रश्न का उत्तर 'हाँ' मे नही दे सकता । कौशल और गुण को वास्तविक शिक्षा का फल केवल उसी हालत मे माना जा सकता है, जब वे प्राप्त किए जाए और जब पदार्थ-विषयक मूल्यो मे उनका उपयोग हो । फलत , दोष-रहित और तार्किक चिन्तन की कुशल आदते ऐसे आदमी मे हो सकती है जो कभी अपने बाहर की किसी चीज से प्रभावित नही हुआ है, जो अपने सकीर्ण दायरे से कभी बाहर नहीं आया हो, जिसमें उच्च विचार कभी न जन्मे हो, जो कभी उत्कृष्ट उद्देश्य के प्रति उत्साहित नही हुआ हो और जिसने प्रेम द्वारा कभी महानता न पाई हो । ये आदते उनमें भी हो सकती है, जो समाज-विरोधी तथा अपराधपूर्ण उद्देश्यो के लिए इनका प्रयोग करे । शिक्षित मनुष्य का विशिष्ट गुण, सस्कृति के उपकरणो की ओर उसकी ठोस प्रवृत्ति मे है, अर्थात् चरम निरपेक्षित मूल्यो की ओर उसकी प्रवृत्ति । यह प्रवृत्ति, शैक्षिक तथा निर्देशात्मक क्रिया का इच्छित फल होना चाहिए ।

कर्शेन्स्टाइनर ने, जिनके नाम से अब आप परिचित हो चुके है, अपने विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ (बेग्रिफफ यर आरबाईटशूले) (BEGRIFF DER ARBEIT SCHULE) में ठीक ही कहा है कि सच्चे अर्थ मे शिक्षित व्यक्ति में पाच स्पष्ट लक्षण होते है । मै उन पाँचो लक्षणो को, अनुवाद मे नही, बल्कि स्वतन्त्र वाक्य व्याख्या में प्रस्तुत करूँगा । हरेक मे मैंने अपनी ओर से नकारात्मक कथन भी जोड दिए है ।

(१) वस्तुओ और व्यक्तियो से सम्बद्ध मूल्यो के प्रति, शिक्षित व्यक्ति का बौद्धिक क्षितिज विस्तृत होता है । उसकी आँखो पर पर्दा नही होता ।

(२) वह जीवन्त मुक्त विचारो वाला व्यक्ति होता है, और नए मूल्यो और विचारो को ग्रहण कर सकता है । वह जडवादी नही, सस्कृति से बे-रुख नही ।

(३) नैतिक विकास की दिशा मे उसे अन्त प्रेरणा होती है, और स्वय मे तथा अपने चारो ओर की दुनिया मे, वह पूर्णता की ओर निरन्तर बढता चलता है ।

(४) वस्तुओ के मूल्य सम्बन्धो के प्रति उसका रवैया नर्म तथा बहुग्राही है, रुढिवादियो या नौकरशाही वाले सख्त तथा कठोर रवैये जैसा नही । वह लकीर का फकीर नही ।

(५) चूँकि उसका मूल्य-सम्बन्धी अनुमान, बिल्कुल निरपेक्ष मूल्याकन के आधार पर होता है, वह इस बात का स्पष्ट प्रमाण देता है कि उसमें एक केन्द्रीय मानसिक प्रकाश है, जो उसके सारे कार्यो, विचारो तथा भावनाओं को प्रकाशित कर देता है । वह अन्दर से खोखला तथा दूसरो के कामो मे टाँग अडाने वाला व्यक्ति नही ।

कर्शेन्स्टाइनर ने इन गुणो का साराश, शिक्षा की एक सुथरी परिभाषा मे दिया है, जो इस तरह है—'संस्कृति के उपकरणो द्वारा जाग्रत्, व्यक्तिगत रूप से सगठित मान्यो की भावना ।' जैसा आप देखेंगे मुख्य जोर संस्कृति के उपकरणो पर दिया गया है, क्योकि उन्ही मे ये निरपेक्ष मान्यताए सम्मिलित पाए सचित की जाती हे । इन्ही के द्वारा विकसित होता हुआ मस्तिष्क इन मान्यताओ का अनुभव कर सकता हे, और संस्कृति के उपकरणो मे सोई हुई सचित शक्ति परिवर्त्तित होकर चेतन मानस की चलायमान शक्ति वन जाती है । इन मूल्यो का अगीकरण तथा पालन ही 'निरपेक्षिता' है, व्यक्ति के आत्मिक मूल्यो को, उचित निरपेक्षित मान्यताओ के अधीन करने की स्वीकृति । सक्षेप मे हम यो कहे, हाथ या मस्तिष्क का ऐसा कोई भी कार्य, जिसमे कार्यकर्त्ता निरपेक्ष रहना चाहता है शैक्षिक कार्य है । ठीक ही कहा गया है कि निरपेक्षता नैतिकता है क्योकि नैतिक आचरण इसके अलावा और क्या है कि मन के निजी झुकाव तथा हितो से ऊपर, निरपेक्ष मूल्यो को माना जाए ? निरपेक्षता का उद्देश्य है मान्यताओ की सम्पूर्ण प्राप्ति । निरपेक्षता का दूसरा नाम अवैयक्तिकता है ।

किन्तु व्यक्ति अपनी क्रिया मे किस तरह इस निरपेक्ष प्रवृत्ति को अपनाता है ? किस तरह कोई सच्ची शिक्षा की राह पर खडा किया जाता है ? आपको शायद याद हो, इस वातचीत के सिलसिले मे कुछ पहले हम लोगो ने चार प्रकार की क्रियाओ का भेद माना था (१) खेल, (२) क्रीडा (दौड-धूप), (३) आकस्मिक अथवा अनियमित कार्यवृत्ति तथा (४) उद्योगपूर्ण कार्य । इन सभी प्रकारो मे कर्त्ता किसी न किसी तरह के अनुरूप अथवा प्रतिरूप मूल्यो का अनुभव करता है । ये सभी, कर्त्ता मे किसी न किसी प्रकार के कार्य के विकास की चेष्टा करते है । किन्तु यदि आपको इन चारो क्रियाओ की निजी विशेषताए याद हो, तो आप मेरी इस वात से सहमत होगे कि उन सभी मे केवल 'काम' ही है, जो कुछ परिस्थितियो मे, शिक्षात्मक मूल्य रख सकता है । क्योकि, केवल उद्योगपूर्ण कार्य मे ही कार्यकर्त्ता न केवल फल-प्राप्ति का लक्ष्य रखता है, वल्कि लक्षित फल को यथासम्भव सम्पूर्ण तथा उत्तम भी वनाना चाहता हे । अपूर्ण, असावधानीपूर्ण वेतरतीव काम, और चाहे कुछ भी हो, शैक्षिक तो कदापि नही है । मैने 'सम्पूर्ण लक्ष्य' की वात कही है—दोप-रहित लक्ष्य की, और सम्पूर्णता अथवा दोपहीनता स्वय ही सर्वोच्च विधिवत् मूल्यो मे है । और कार्यो की अपेक्षा कुछ कार्य, सम्पूर्णता के मूल्य के अनुभवो को धीरे-धीरे प्राप्ति कराने के लिए, अधिक उपयुक्त है । ऐसे कार्यो मे यह आसान है, जिनके फलो के समक्ष कर्त्ता आसानी से अपनी सफल आलोचना कर सकता है । उदाहरणार्थ, टेकनिकल कार्यो को यह लाभ असाधारण रूप मे प्राप्त हे ।

जो स्कूल कार्य को शिक्षात्मक वनाना चाहता है, उसके किसी भी ऐसे काम को अति पर्याप्त नहीं कहा जा सकता, जिसके अन्तर्गत वह अपने विद्यार्थियो को, सम्पूर्णता के मूल्य-सम्वन्धी सुखद तथा स्फूर्ति दायक अनुभवो की प्राप्ति के वहुत काफी अवसर देता है, किसी चीज मे, किसी काम मे चाहे वह कितना भी छोटा हो, यथासम्भव सम्पूर्णता लाने, और जव तक सम्पूर्णता प्राप्त न हो जाए, काम न छोडने की प्रेरणा देता हो । कई मामलो मे, सम्पूर्णता की यह प्रवृत्ति, निरपेक्ष उद्देश्यो मे नही, वल्कि स्वकेन्द्रिक उद्देश्यो मे आरम्भ होगी । किन्तु सम्पूर्णता की प्राप्ति के अनुभवो की वहुधा पुनरावृत्ति के कारण, इस प्रवृत्ति का भी रूपान्तर हो जाएगा । ज्यो ही ऐसा होता है सम्पूर्ण अथवा शुद्ध फलो की प्राप्ति के प्रत्येक साधन की प्राप्ति जानने की प्रेरणा वडी प्रवल हो जाती है । इन साधनो मे क्या-क्या है ? साधारणतया ये चीजे है, संस्कृति के विविध उपकरण, कोई टेकनिकल (तकनीकी) प्रयोग अथवा कोई विदेशी भाषा, या विज्ञान

की कोई शाखा या कुछ व्यक्तियो की जीवनी या किसी कवि की कृतियो का अध्ययन, इत्यादि-इत्यादि। इन साधनो पर अधिकार पाने की प्रवृत्ति के द्वारा विद्यार्थी इनके निकट सम्पर्क में आ जाता है। अब वह उन मान्यताओ को, जो इन उपकरणो में मौजूद है, अनुभव करता है। वे मूल्य जो उसके निजी मानसिक ढाँचे के अनुरूप है, मानो उसके मस्तिष्क के ससर्गीय क्षेत्रों को जगाकर क्रियारत कर देते है, तथा उसे इस उद्देश्य की ओर आगे वढाते है कि अपने काम में वह इनमें से कुछ मूल्यो को प्राप्त करे, तथा फिर, उन्हे यथासम्भव परिपूर्णता के निकट लाए। क्योकि, जैसा इस वातचीत मे हम पहले भी जान चुके है, चरम मूल्यो का एक आवश्यक गुण यह है कि वे प्राप्ति तथा परिपूर्णता के लिए प्रेरणा पैदा करते है। इस आनन्दमय अनुभव मे सलग्न मूल मानसिक स्वकेन्द्रिक उद्देश्य, विभिन्न मूल्यो तथा उनके सन्दर्भ में परिपूर्णता के साकार मूल्य के पूर्ण पालन में दब जाता है।

मुझे भय है, मैने इस चौथे सिद्धान्त की मीमासा में कुछ अधिक समय ले लिया; क्योकि शुरू में मैंने शिक्षा का जो प्रारूप बताया था, यह सिद्धान्त उसी से निकलता हुआ-सा लगा। लेकिन मेरा यह विचार बनता जा रहा है कि हम, जो पूरे दो दशाब्दों से यह सोचते आए है कि कार्य-प्रधान विद्यालय हमारी राष्ट्रीय शिक्षा की इमारत का आधार बने, शिक्षा के इस विशेष पक्ष के प्रश्न पर जरा और ध्यान से सोचे, ताकि प्रभावहीन कार्यो को जन्म देने वाले अस्पष्ट विचारो तथा धुँधली धारणाओ को परे रखा जाए, तथा चिन्तन तथा व्यवहार में पहले की अपेक्षा कुछ अधिक दृढता लाकर, समस्या का सामना किया जाए। यदि इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर हम गम्भीरता से विचार करे, तो हम उस कथन से सहमत हो सकते है, जिससे मैने आज का यह व्याख्यान शुरू किया, अर्थात् यह कि 'कार्य, शिक्षा का सबसे जरूरी औजार है।' कार्य मे, हस्तकार्य में भी, कार्य-सम्बन्धी मानसिक क्रिया शिक्षात्मक है, जिसकी उपेक्षा नही की जा सकती, वरना कार्य के सारे शैक्षिक गुण समाप्त हो जाएँगे, क्योकि कार्य शिक्षात्मक है, क्योकि सतर्क तथा व्यवस्थापूर्ण चिन्तन की आदत के विकास में इसका प्रयोग हो सकता है। यह शिक्षात्मक तब हो, जब निरपेक्ष हो, यथासम्भव परिपूर्णता तक लाने की प्रेरणा से उद्भूत हो, क्योकि इसके शैक्षिक उद्देश्य का महत्त्व, काम के फल के समक्ष आत्म-आलोचना के अवसर से बहुत बढ जाता है। यह अवसर हस्तकार्य तथा टेकनिकल कार्यो में, यद्यपि ये दोनो इसके एकमात्र साधन नही, सबसे आसानी से पूर्ण होता है।

मैं अब सक्षेप में दो और सिद्धान्तो की चर्चा और व्याख्या कर दूँ जो सभी प्रकार की शिक्षा के लिए लागू हैं। इनमें से पहला, शिक्षा का सामाजिक दायित्व है। अभी तक हम लोगों ने जिन सिद्धान्तो की चर्चा की है, उनमें मुख्यत व्यक्ति को ही सामने रखा गया है, समाज के साथ व्यक्ति के सम्बन्ध की पूर्ण मान्यता का ध्यान नही रखा गया। व्यक्ति के मस्तिष्क का मानसिक तथा नैतिक विकास, व्यक्ति के समाज के सास्कृतिक उपकरणो के उसके सम्बन्धों तथा अंगीकरण से उत्पन्न होता है, और नि सन्देह इस आश्वासन के कारण हमने व्यक्ति तथा समाज के बीच एक रेशमी सूत्र की स्थापना कर ली है, पर तो भी अब तक व्यक्ति के मस्तिष्क के विकास तथा एक स्वतन्त्र नैतिक व्यक्तित्व की वृद्धि पर ही जोर दिया गया है। जिस सिद्धान्त पर हम अभी विचार कर रहे है, उसके अनुसार शिक्षा का एक उद्देश्य, अधिक उन्नत, अधिक न्यायपूर्ण तथा अधिक शालीन जीवन-शैली की ओर समाज की निरन्तर बढती हुई प्रवृत्ति है। हमें निश्चय ही यह मानना पड़ेगा कि व्यक्ति का मस्तिष्क अपनी सम्पूर्ण सम्भावनाओ की

प्राप्ति तब तक नही कर सकता, जब तक, साथ-साथ सामूहिक रूप से समाज की भी प्रगति नही होती। जो कोई व्यक्ति मे श्रेष्ठता पाना चाहता है, उसे प्राय. हमेशा इसका लक्ष्य और इसकी तलाश, समाज मे करनी चाहिए। प्लेटो जैसे महान् दार्शनिक को भी, व्यक्ति के गुण की खोज मे समाज के पूरे ढाँचे और विकास की छानबीन करनी पडी थी। समाज का भण्डार—जिसमे और कई उपयोगी चीजो के अलावा, लोगो के शैक्षिक उपयोग के लिए विगत मानवीय प्रयासो से निर्मित संस्कृति के उपकरण भी होते है—अपनी पूर्ति तथा विकास के लिए समाज के लोगो पर निर्भर है। समाज के लोग इस भण्डार की रक्षा करते है, पोषण करते है, इसके नष्ट प्राय तथा जीर्ण द्रव्यो को दूर हटाते है, और इसकी समृद्धि के लिए ताजे तथा मूल्यवान् उपकरण जुटाते है। यदि व्यक्ति अपने ही मानसिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक विकास तक अपने को सीमित रखता, और अपने निजी अस्तित्व की ही सास्कृतिक उन्नति मे लीन रहता, यदि उसे इसकी चिन्ता न होती कि समाज का क्या होगा, यदि उसे यह फिक्र न होती कि सामाजिक सगठन मे किस हद तक और कितनी सफलता के साथ चरम मूल्यो की प्राप्ति हो रही है, तो सम्भवत वह अपनी आत्मिक दशा सुधार लेता। किन्तु यदि उसका उदाहरण सामान्यत मान लिया जाए, तो शिक्षा और संस्कृति के सारे रास्ते—व्यक्ति की शिक्षा और संस्कृति के रास्ते भी—अन्धकारपूर्ण तथा शून्य गलियो मे बदल जाएँगे, जिनकी मजिल होगी एक बजर प्रान्त। फिर तो आत्मकेन्द्रितो उच्च आध्यात्मिको नैतिक रूप से स्वेच्छाचारियो तथा स्वतन्त्र व्यक्तियो को शायद उसी बजर भूमि की किसी ऊँची और सूखी चट्टान पर अपना अड्डा बनाना होगा, जहाँ वे अपने स्वार्थपूर्ण सकीर्ण विचारो से बढकर, कोई और विषय नही पाएँगे। इस प्रकार की पृथक्, किन्तु शुष्क नैतिक प्रसिद्धि के अवसर बहुत सी सामाजिक व्यवस्थाओ मे, जनतान्त्रिक समाजो मे भी उपलब्ध, है, क्योकि जो समाज बहुत गरीब नही है, वे इस प्रकार के शुष्क गुणो को सह सकते है, बल्कि प्रोत्साहन और समर्थन प्रदान कर सकते है। क्योकि, सम्भवत ऐसे समाजो यह विचार उत्पन्न होता है कि इस प्रकार का अलग-अलग वाला अच्छा जीवन मात्र भी, अपने अस्तित्व के कारण एक शैक्षिक शक्ति का काम कर सकता है। किन्तु ऐसा केवल अपवादो तथा बहुत थोडे-से मामलो मे सम्भव है। ऐसा उन समाजो के बहुत-से दलो, मगर छोटे छोटे दलो, के लिए ही सम्भव है, जो स्पष्ट तथा व्यक्त रूप से शोषक समाज है, और जिन बहुसख्यक श्रमिको के बल पर कुछ थोडे से आरामतलब लोग सभी प्रकार की उच्चवर्गीय सुख-सुविधाओ के अधिकारी बन बैठते है। किन्तु जनतान्त्रिक समाज मे तो यह आवश्यक है कि व्यक्ति, जो अपने शरीर, मस्तिष्क तथा आत्मा के पोषण के लिए सहवासी नागरिको का अनुगृहीत है, समाज के नैतिक तथा भौतिक जीवन को उन्नत बनाने के उत्तरदायित्व मे खुशी से हाथ बटाए। केवल व्यक्ति के जीवन मे ही उच्चतर मान्यताओ के प्रति निष्ठा नही होगी, समाज को भी, इसके सगठित सामाजिक जीवन मे इसी निष्ठा के प्रति उठाना होगा। संस्कृति के सफल उपकरणो मे—जिन्हे अनुभव तथा स्वीकार किए जाने पर, मान्यताओ की एक सगठित व्यक्तिवाचक व्यवस्था का जन्म होता है—अच्छे तथा न्यायपूर्ण समाज, शुद्ध राजनीतिक जीवन, सामान्य दिनो मे रत सतत तथा स्पष्ट नेतृत्व की उच्चतम शैक्षिक मूल्योवाली शक्तियाँ है।

हमारे शैक्षिक सगठन मे व्यक्ति और समाज की पारस्परिकता पर शायद ही ध्यान दिया जाता है। स्कूल तथा शिक्षण-सम्बन्धी दूसरी संस्थाएँ तथाकथित बौद्धिक प्रगति के काम मे इतनी अधिक व्यस्त है कि उन्हे इन बातो के लिए—जो उनकी नजर में छोटी बाते है—समय नही है। सामाजिक उत्तरदायित्व की शिक्षा देने के लिए इन संस्थाओ का सगठन सामूहिक निवास की अच्छाइयो के रूप मे

होना चाहिए। पानी में तैरने से ही तैरना आता है, समाज में सेवा करने से ही सेवा भी आती है। जब तक यह सिद्धान्त हमारी शिक्षण संस्थाओं का प्राण नहीं बन जाता, दूसरे सारे सुधार के कार्य छुट-पुट रूप से किए गए ऊपरी या सतही कार्य होंगे। ऐसे संगठन के सदस्य रहने के सिवा भला किसी सुदृढ सामाजिक संगठन के नैतिक मूल्य का अनुभव और कैसे किया जा सकता है ?

सुदृढ सामाजिक जीवन के गुणों के पक्ष मे आदमी बहुत-कुछ कह सकता है, इसके सैद्धान्तिक स्पष्टीकरण के लिए अपनी जान लड़ा सकता है, जितना भी इतिहास उपलब्ध है तथा जितना भी नागरिक शास्त्र तैयार किया जा सकता है—, वह सब पढा जा सकता है, पर यह आशा नहीं की जा सकती कि विद्यार्थी एक अच्छे और न्यायपूर्ण समाज का सदस्य बनने का प्राणदायक तथा स्फूर्तिदायक अनुभव प्राप्त करेगा, अथवा उसमे उस तरह की कोई स्पष्टता होगी, जिसकी सहायता से उसमें समाज-सेवा की आवश्यक नैतिक चुनौती जागती है, ताकि समाज के वर्त्तमान सद्गुणों की रक्षा हो सके और इसके भावी गुण उन्नत प्रकार के हों। अच्छे घर में, अच्छे स्कूल-समुदाय मे समान विचारने वाले लोगों सामाजिक दल मे अनुभव प्राप्त कर, नगर, राज्य तथा मानव-जाति के लिए भी आजीवन समर्पण हो सकता है। सामान्य मूल्यों तथा सामान्य सांस्कृतिक उपकरणों पर आधारित स्कूल-समुदाय, जैसे इंगलैण्ड के 'पब्लिक स्कूल', यूरोप, संयुक्त राज्य अमरीका तथा फिलस्तीन में बहुत से प्रयोगात्मक स्कूल तथा स्कूल-समुदाय तथा निकट भविष्य मे सोवियत गणतन्त्र मे इस प्रकार के बहुत-से समुदायों की स्थापना की योजना विभिन्न वातावरणों के तथा विभिन्न उद्देश्यों और मान्यताओंवाले प्रगतिशील शैक्षिक विचारों की द्योतक है। किन्तु ये उदाहरण इने-गिने हैं, नक्कारखाने मे तूती की आवाज की तरह है। इनकी महीन आवाज लाखों शिक्षण-कारखानों के शोर मे खो जाती है। किन्तु फिर भी, यह विचार अब प्रबल होता दीख रहा है कि सामाजिक उत्तरदायित्व की शिक्षा के लिए, तथा की दशा उन्नत बनानेवाले साधन के रूप में इसके व्यवहार के लिए भी किसी स्कूली समुदाय में रहकर सामाजिक रहन-सहन का वास्तविक अनुभव प्राप्त करना आवश्यक है। हर जगह सभी बच्चों के लिए आवासीय स्कूल-समुदायों की इच्छा करना आसमान के तारे तोड़ने की इच्छा के समान होगा। किन्तु मैं मानवीय बुद्धि और सूझ-बूझ के भरोसे यह छोड़ना चाहूँगा कि वह ऐसे उपाय और साधन ढूंढ निकाले कि स्कूल, कार्यों के समुदायों में सन्गठित हो जाएँ, जिनके उद्देश्य समान हों, साथ ही यह भी जरूरी न हो कि उन्हे बोर्डिंग या आवासीय स्कूल बनाना ही पड़े। मुझे ऐसा लगता है कि यह कदम पहले और भी वह शायद जल्दी अधिकेन्द्रित सम्पूर्ण सत्ताधारी देशों (टोटेलिटेरियन) में उठाया जायगा, और जैसा बहुत-सी बातों मे हुआ, है, जनतन्त्रीय देश कुछ दिनों बाद जानेंगे कि उन्होंने क्या खो दिया है, और दूसरों की अपेक्षा उन्हें, अपनी जीवन-शैली की रक्षा के लिए किस चीज की सख्त जरूरत है। अधिकेन्द्रित सम्पूर्ण सत्ताधारी देश तो सारी जनता को जबरदस्ती सेवा ले सकते हैं, किन्तु जनतन्त्रीय देशों को इसके लिए प्रतीक्षा करनी होगी कि लोगों मे सामाजिक उत्तरदायित्व की स्वाभाविक भावना जगे, व्यक्ति तथा समाज के पारस्परिक रचनात्मक, स्फूर्तिदायक अनुभवों को प्रदान कर, एक उन्नत समाज के निर्माता का साधन बनने की प्रेरणा जगे। व्यवस्थाहीन ढंग से जनतन्त्र यह काम परिवारों मे कर सकता है, जो इसकी औद्योगिक प्रगति के कारण शीघ्रता से कमजोर पड़ते जा रहे हैं तथा यह काम, व्यवस्थापूर्वक स्कूली समुदायों में हो सकता है जिन्हें बहुत आवश्यक मानकर शीघ्र स्थापित करना चाहिये। इस दिशा में शीघ्रता की आवश्यकता तो इसी स्पष्ट तथ्य से प्रकट हो जायेगी कि जनतन्त्रीय जीवन-शैली अथवा समाज-व्यवस्था का भविष्य स्कूलों में बनना या बिगड़ता है।

अब, जब कि वार्त्ता खत्म होने को है, मै एक अन्तिम प्रश्न आपके सामने विचारार्थ रखन चाहता हूँ। शिक्षा की जो परिकल्पना हमने की है, उसी के कारण यह प्रश्न भी हमारे सामने स्पष्टीकरण की मांग करता है। यह प्रश्न है शिक्षा मे स्वातन्त्र्य तथा अधिकार का। यह प्रश्न का महत्व जनतान्त्रिक समाज मे और भी वढ जाता है, जो—यदि सच्चे अर्थो मे जनतान्त्रिक है—व्यक्ति का आदर करता है मनुष्य को साध्य मानताहै, केवल साधन नही है, और सस्कृति के उपकरणो के माध्यम से, मानव-मस्तिष्क की मूल्यो-लक्ष्यो-हितोवाली व्यवस्था का पोषण तथा विकास कर इसे नैतिक रूप से स्वतन्त्र व्यक्तित्व की प्राप्ति की शिक्षा देता है। व्यक्ति पर वल दिये जाने पर वल दिए जाने से तथा केवल उसके विशेष जीवन-रूप के आधार पर ही व्यक्ति के विकास की सम्भावना की विशेष मान्यता से यह प्रतीत होगा कि जनतन्त्र की सम्पूर्ण शैक्षिक व्यवस्था मे, शासकीय अधिकार को परे रखकर, अनिमियत स्वच्छन्दता रखी जायगी। इस प्रकार की धारणा केवव सैद्धान्तिक अनुमान नही, वल्कि पूर्ण विकास के लिए तथा वाधापूर्ण प्रभावो को दूर करने के लिए अवसर प्रदान करने वाली शिक्षा की गम्भीरता से एक रूप भी माना गया है। 'वाखजेन लास्सेन' अथवा 'वढने दो' की भावना रर आधारित एक सम्पूर्ण दर्शन ही तैयार हो गया है।

चू कि अपने इस सुरक्षित देश मे हम अपनी समस्याओ को व्यवस्थित ढग से सुलझाने के आदी रहे है (क्योकि, हमे इस अमिट तथ्य की आश्वासनपूर्ण याद आती है कि हमारे पूर्वजो ने विचारा और चिन्तन किया है, और हम सहज ही यह भी जानते है कि अव भी कही कोई हमारे लिए सोचने का परिश्रम कर रहा है, इसमे आरामदेह, वेपरवाही की एक निश्चिन्त और सुखद भावना पैदा हो जाती है। और, चू कि हम मूल समस्याओ से खास तौर से शिक्षा के क्षेत्र में, विशेष परेशान नही होते, इसलिए सम्भव है हमारी इस वार्त्ता मे कोई अर्थ, कोई वास्तविकता हमें न दीख पड़े। किन्तु मै इस पलायनवादी विचार को नही मानता। हमे इन समस्याओ का सामना आज नही तो कल, करना ही पडेगा, वल्कि शीघ्र ही करना पडेगा। सघर्ष जारी है, इसका समाधान, इसकी प्रकृति की उचित समझ के अतिरिक्त और किसी उपाय से नही हो सकता। वौद्धिक मान्य शक्तियो, आलोचनात्मक स्वीकृति, नि शक अनुसरण की पुरानी परम्परा जिसे शिक्षा-सम्वन्धी इस प्रचलित विचार से वल मिलता है कि शिक्षा, सूचना-सम्वन्धी तैयार माल को लेने तथा देने का एक साधन है, परीक्षा की सफलता सोपानो मे हमारी धार्मिक-जैसी आस्था इसका प्रतीक है), तथा यन्त्रवत् प्राप्त किए जाने वाले ज्ञान की शिक्षा, वच्चे को न मारने से उसके विगड जाने का भय, अथवा इसके विपरीत, वच्चे पर हाथ न उठाने की अति प्रवल भावना—इन सवसे यही पता चलता है कि हमारी शैक्षिक त्रियाओ मे अधिकारी शक्ति ही मूल सिद्धान्त है, और इसमे स्वच्छन्दता का कोई स्थान नही। लेकिन तस्वीर का दूसरा पहलू भी है। अपने कृत्यो- अकृत्यो मे विद्यार्थी जो मनमानी कर रहे है जो छूट ले रहे हैं, अपने व्यवहारो मे वे जिन अनियन्त्रित आवेशो, व्याकुलता तथा अपव्यय को अक्सर प्रकट कर रहे है, और जिनके प्रति शिक्षको की दयनीय उपेक्षा, वेरुखी अथवा वेपरवाही है, एक ओर क्रुद्ध नौजवान तथा अतिक्रुद्ध तरुण है, तो दूसरी ओर उदासीन, वेपरवाह अथवा निराश या तन्न निढाल है (जब वे स्वय क्रुद्ध नौजवानो की श्रेणी में नही गिने जाते)—तो इन सारे लक्षणों से यही मालूम होता है कि हमारी इस स्वतन्त्र भारत भूमि मे शिक्षा, 'वाखजेन-लास्सेन' अथवा 'वढने देने' के सिद्धान्त का अनिश्चय सम्पूर्णता के साथ पालन कर रही है। इस सिद्धान्त के अनुसार, यदि हम इन्हें वढा कर फल-फूल नही वना सकते, तो घास-फूस ही वनने दे।

इस उलझी हुई परिस्थिति में राष्ट्रीय शिक्षा की किसी सफल व्यवस्था के सगठन की आशा हम नही कर सकते । मै इस प्रश्न पर अपने विचार सक्षेप में रखू गा । मै समझता हूँ कि शिक्षा में स्वच्छन्दता तथा अधिकारी शक्ति, दो विपरीत चीजे नही है । क्योकि, शिक्षा में ऐसी कोई अधिकारी शक्ति नही, जिसमें वह आन्तरिक स्वतत्रता न हो, जो शिक्षा को मान्यता देती है, साथ ऐसो कोई स्वतन्त्रता नही है, जो नियम तथा व्यवस्था के, जो अधिकारिक माने जाते है, वगैर हो । य द अधिकारी शक्ति से अनिवार्य वाध्यता का बोध हो, और स्वतन्त्रता का अर्थ उच्छृखलता तथा स्वेच्छाचारिता माना जाय, तो बेशक, वे अधिकार तथा स्वतन्त्रता, दो विपरीत चीजे होगी । पर ऐसा कोई समुदाय नही——चाहे वह परिवार स्कूल तथा राज्य हो और जो स्वतन्त्रता को चाहे जितना भी चाहता हो——जहा ऐरो नियम और व्यवस्था न हो, जो उसके सदस्यो पर लागू, है तथा इसलिए अधिकार नियम है । ऐसे स्वतन्त्र व्यक्ति की कल्पना नही की जा सकती, जो कुछ ऐसे नियमो से नही बधा है, जिसके द्वारा उसकी पाशविक प्रवृत्तियो और भावनाओ पर नियन्त्रण होता है ताकि मानव-मस्तिष्क स्वतन्त्रता के साथ अपने उच्चत्तर कार्यो को सम्पन्न कर सके । इस प्रकार के नियन्त्रक सिद्धान्तो के वगैर, समाज में विप्लव तथा अव्यवस्था पैदा हो जाएगी, और व्यक्ति पाशविक वासनाओ और भूख का गुलाम बन जायगा ।

वचपन से ही किसी आदमी को विना किसी निर्देश के छोड दिया जाय तो सम्भव है, वह अपने ही ऐसे नियत्रक सिद्धान्तो तक पहु च सकता है । मस्तिष्क के विधान की व्यापकता सम्भवत. ऐसी सम्भावना को पूर्णत अस्वीकार नही करती किन्तु यह रास्ता बडा लम्वा और वेतरह कठिन होगा और उसके पास इतना काफी समय भी नही बच रहेगा कि वह इन सिद्धान्तो का उपयोग कर सके । व्यक्ति के सच्चे स्वशासन तक पहु चने के पहले, समाज उसे वाह्य अधिकारिता की अवस्था से गुजरने में उसकी सहायता करता है । स्वतन्त्रता के पथ का निर्माण अधिकारी शक्ति द्वारा होता है । अधिकारी शक्ति को पूर्णतया काट देगा तथ को काटना होगा । शिक्षा सम्वन्धी वास्तविक प्रश्न यह अथवा वह का नही बल्कि यह फैसला करने का है कि स्वशासन की स्वीकृत मजिल पर पहु चने के लिए वाहरी निदेश तथा अधिकार कव तक जरूरी है । कव तक अधिकारी व्यवस्था रहेगी कितनी जल्द स्वतन्त्रता उसकी जगह लेगी । क्योकि वह जगह तो इसे लेनी है, यदि नैतिक रूप से स्वतन्त्र व्यक्तित्व का विकास हमारा ध्येय हो । शिक्षा के आदि और अन्त दोनो अवस्था में अधिकारी भ्यवस्था है । आदि अथवा प्रारम्भ मे उम्र तथा अनुभव का अधिकार है, स्नेहपूर्ण प्रदर्शन तथा सवेदनशील निदेशन का अधिकार है । जिनके साथ अभाग्यवश सम्भवत कुछ अरुचिकर सुविधाये है जो उच्चतर शक्ति को मिली होती है और जिन्हे कोई भी अच्छा स्कूल पृष्टभूमि से रखने की भरसक चेष्टा करता है । शिक्षा के अन्त मे आने वाला अधिकार उन मान्यताओ का अधिकार है जिनका स्वच्छन्द अनुभव आत्मिक तथा अनात्मिक सास्कृतिक उपकरणो मे किया जाता है । यदि समस्या को संयोग पर न छोडा जाए तो काफी प्रारम्भिक अवस्था मे ही इस वात को सामान्य रूप से मान लिया जा सकता है कि शैक्षिक सगठन मे अधीनता तथा एकीकरण की आवश्यकता है । शिक्षा तथा शिक्षक जिन मान्यताओं के प्रतीक है उनके प्रति समाज में आदर की भावना पैदा करना कठिन लग सकता है, किन्तु जव तक ऐसा किया जाता हमे लेना चाहिये कि शिक्षा नही हो रही है । शिक्षक को तथा शैक्षिक समुदायो के रूप मे स्कूल और कालेज का कर्त्तव्य तथा सुविधा यह है कि वे अपने अधीनस्थ युवाओ को इस प्रकार ,सहायता दे, उनका पथ प्रदर्शन

करे कि उनमे अपने कामो और खामियो के प्रति जिम्मेदारी की भावना बढे उनमे आत्मिक के लिए प्रदत्त प्रेरणा जगे, और जिस हद तक वे इस दिशा मे सफल हो, उनकी सफलता के अनुसार उन्हे पूर्ण स्वतन्त्रता तथा स्वशासन प्रदान कर सके। कहना तो आसान है, पर पीढियो तक आने वाले अच्छे शिक्षकों के लिए यह कठिन काम होगा। मुझे आशा और विश्वास है, ऐसे शिक्षक अवश्य आएगे। ●

काम का महत्व

कोई काम वडा या छोटा नही होता। प्रत्येक को अपने काम मे श्रेष्ठता लाने का उद्देश्य रखना चाहिए। यही एक जरिया है जिससे कोई भी अधिक अच्छा व्यक्ति वन सकता है।

सभी लोगो को भरसक अच्छा काम करना चाहिए, क्योकि काम मनुष्य के जीवन मे सकल्प और एक महान सुअवसर है तथा इसका एक अग है। यदि हम अच्छा काम करते है तो इसके परिणाम स्वरूप देश का हित सम्पादन होगा।

डा० जाकिर हुसैन

भारत में शिक्षा का पुनर्निर्माण–(३)

[नई दिल्ली मे १४ दिसम्बर, १९५८ को पटेल स्मारक व्याख्यानो के अन्तर्गत डा० जाकिर हुसैन का तीसरा भाषण]

इस वार्त्तामाला की प्रथम दो वार्ताओ में मैने कोशिश की कि आपके सामने अपने शिक्षा-सम्बन्धी विचार रखूँ क अपनी सम्भावित पूर्णता की ओर मस्तिष्क के विकसित होने के अर्थ मे शिक्षा का क्या महत्व है, और मैने सक्षेप में उन छ. सिद्धान्तो की व्यवस्था की, जिनका निर्वाह शिक्षा के सभी प्रकार के आयोजनो मे किया जाना चाहिये। वे सिद्धान्त ऐसे थे कि जो मुझे सभी प्रकार की शिक्षा के लिए उचित लगे, क्योकि मेरे विचार में वे शैक्षिक प्रक्रिया के मूल तत्व से ही निलकले है। किन्तु सम्पूर्ण शिक्षा' का अर्थ 'सब के लिए शिक्षा' नही है, सम्पूर्ण शिक्षा अथवा सब प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था राजनीतिक रूप से सगठित समाज या देश नही करता। इस पर होनेवाले साधनिक व्यय मे सभी नागरिको का योग नही होता। 'सम्पूर्ण शिक्षा' एक व्यापक श्रेणी है, और इसमे बहुत-सी ऐसी शैक्षिक प्रक्रियाएँ तथा शैक्षिक सस्थाएँ आ जाती है, जो समाज के कुछ विशेष व्यक्तियो अथवा व्यक्ति-समुदायो के लिए बनी है। मानव-जाति ने अपने इतिहास के दौरान में हमेशा किसी न किसी प्रकार की शिक्षा पाई, किन्तु उसकी प्रारम्भिक आदिम अवस्था को छोड जब कि शिक्षा, जीवनयापन का एक ही रूप थी, और वह किसी विशेष तथा अलग सस्था के सुपुर्द नही थी, मेरे विचार में शिक्षा ने शायद ही कभी सार्वजनिक रूप ग्रहण किया। यह हमेशा कुछ लोगो के लिए रही— ऐसे कुछ लोगो के लिए जिनके पास अवकाश था, या धन था, या जो शासक थे, अथवा (जीवन मे मानवीय बन्धुत्व के धार्मिक विचारो के समावेश के साथ) जो दाता-दानियो की सहायता से विद्या-अर्जन कर अपने मस्तिष्क को समृद्ध करने के विलक्षण कार्य मे लगे थे। उन युगो की समस्या थी व्यक्तियो के ऐसे वर्ग को शिक्षित करना जो समाज मे

बहुसंख्यक कदापि नहीं थे, अर्थात् शासक-वर्ग, पेशेवर लोग या ऐसे लोग, जिन्हे जीवन-यापन के लिए काम नहीं करना पड़ता था। साधारणतया इस समस्या का समाधान अपने लिए यह वर्ग स्वय कर लेता, सम्पूर्ण समुदाय नहीं। आधुनिक राज्य अथवा राष्ट्र की समस्या है अपने सभी नागरिको को राष्ट्रीयता की भावना की शिक्षा देना तथा उन्हे इस योग्य बनाना कि वे योग्य होकर राष्ट्र मे अपना उचित स्थान ले सके। वर्त्तमान युग की आमूल परिवर्तित परिस्थितियो के कारण सामाजिक सगठन तथा औद्योगिक जीवन की बढती हुई जटिलताओ के कारण, जनता मे एकता और निपुणता लाने के लिए नए सामाजिक सगठनो के निर्माण की नितान्त आवश्यकता के कारण इस नए तथा, निश्चय ही, विलक्षण शैक्षिक कार्य-सार्वभौमिक शिक्षा—की जरूरत हुई। सभी लोगो के लिए शिक्षा, सभी लोगो के सभी बच्चो के लिए शिक्षा, और साथ ही यह है कि यह कार्य केवल बच्चो की शिक्षा तक ही सीमित नही। फिर कोई आश्चर्य नहीं कि देश की ओर से बच्चो को मिलनेवाली शिक्षा तथा उसके अनिवार्य रूप का इतिहास बहुत पुराना नही है। पहले-पहल शायद यह व्यवस्था जर्मनी मे लागू की गई थी, जिसे केवल करीब २५० वर्ष हुए है। सयुक्त राज्य अमरीका के कुछ राज्यो मे अनिवार्य शिक्षा-सम्बन्धी कानूनो को बने लगभग सौ साल से कुछ ऊपर हुए है। बहुत से दूसरे देशो मे तो अभी और कम ही समय बीता है। यह बात आप को दिलचस्प लगेगी कि उन्नीसवी सदी के पिछले तीन दशाब्दो मे, जब अमरीकी सब के राज्य अनिवार्य शिक्षा-सम्बन्धी कानूनो को पास करने की क्रिया मे सलग्न थे, कानून के विरोधियो ने कुछ वर्गो को यह विश्वास दिला दिया कि अनिवार्य शिक्षा-कानून न केवल प्रश देश से आए है, बल्कि स्वेच्छाचारी तथा निष्ठुर राज्य-प्रणाली के साधन भी है, जिनका किसी जनतान्त्रिक स्वतन्त्र सरकार मे कोई वैधानिक स्थान नहीं होना चाहिए। उन्नीस सौ तीस के दशक के उत्तरार्द्ध मे, सार्वजनिक तथा अनिवार्य बुनियादी शिक्षा-योजना पर विचार करने के लिए बनी एक समिति मे, मुझे स्वय उस लम्बी बातचीत का निजी अनुभव है, जो मेरे तथा एक प्रसिद्ध शिक्षा-निर्देशक के बीच हुई थी, 'व्यापक तथा अनिवार्य शिक्षा क्यो'? —एकाएक यह क्रोधपूर्ण सवाल मुझसे पूछा गया। और इसके पहले कि मैं तथा मेरे सहयोगी इस आकस्मिक आघात से आश्वस्त हो, शिक्षा निर्देशक महोदय ने सच्ची घृणा के स्वर मे आक्षेप करते हुए कहा—'ये लोग ऐसे देश मे अनिवार्यता का प्रारम्भ करना चाहते है, जो स्वतन्त्र होने की बाट जोह रहा है।' मैंने इस द्वन्द्व मे जो बराबरी का न था, उनसे काफी बहस की। बराबरी का मेरे लिए न था; क्योकि निर्देशक मुझसे बहुत अधिक चतुर थे, और बराबरी का उनके लिए भी न था, क्योकि वह ऐसी समिति मे थे, जो उनसे सहमत न थी। मुझे याद है, वह निर्देशक, जो एक योग्य, विद्वान्, ईमानदार प्रशासक तथा पक्के देशभक्त थे, अन्त तक असन्तुष्ट, क्षुब्ध तथा उच्च शिक्षित बुद्धिजीवी एकाकी विरोधी बने रहे उनकी पीढी के तथा वर्ग के बहुत-से लोग, भी लोगो के, सभी बच्चो के लिए शिक्षा' के अजीबोगरीब विचार से मेल न कर पाए। साक्षरता को शायद वे स्वीकार कर लेते थे, किन्तु व्यापक शिक्षा का विचार बिना गहरे सन्देहो तथा आशकाओ के स्वीकार नहीं किया जाता था। पर मै समझता हू, यह बताने के लिए उस बहस की ज्यादा जरूरत नही है कि पिछले दशको मे जो सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक परिवर्तन हुए है, और जो बडी तेजी से हमारी आखो के सामने ही होने लगे तथा है, तथा इसमे भी और अधिक तेजी से निकट भविष्य मे होगे, उनके कारण राष्ट्र के लिए यह अनिवार्य हो गया है कि वह प्रत्येक नागरिक को शिक्षा दे, और हर नागरिक के लिए अनिवार्य होगा कि वह शिक्षा ग्रहण करे। विशेष रूप से हमारे देश की विशेष परिस्थिति मे, जब कि एक धर्मनिरपेक्ष, जनकल्याण-राज्य मे जनतान्त्रिक जीवन का ढाचा तैयार कर रहा है, सार्वजनिक शिक्षा की आवश्यकता नितान्त अनिवार्य

है। क्योकि, जनतान्त्रिक समाज दूसरो के बताए हुए विचारों और योजनाओं की पूर्त्ति के लिए ही काम नही करता, बल्कि इसका प्रत्येक नागरिक, राष्ट्रीय मच के एक छोटे हिस्से की हैसियत से राष्ट्र के जीवन के नक्शे की वनावट मे योग देता है। यह याद दिलाने की जरूरत नही कि जनतन्त्र को व्यक्तिगत प्रयास पर, ऊपर से आनेवाले निर्देश पर नही, निर्भर करना पडता है। इसका अनुशासन है, ऊपर से लादा गया अनुशासन नही। अनुशासित प्रयास मे सहयोग (आस्था तथा उपयोग) आपसी समझ-बूझ और उदार सहनशीलता पर, जो जनतन्त्र की आवश्यक शर्ते है, निर्भर करता है। इसका एक अत्यन्त कठिन काम है प्रत्येक नागरिक को इस तरह शिक्षित करना कि उसमें एक समान राष्ट्रीय चरित्र की भावना विकसित हो जाए। यह एक ऐसी समस्या है, जिससे कोई गणतान्त्रिक समाज अपने विधान के मूल सिद्धान्तो के कारण, अपने रहन-सहन के विशिष्ट ढग के कारण, बच नही सकता। क्योकि इन मूल सिद्धान्तो के चुनाव से ही केन्द्र से दूर हटनेवाली (विकेन्द्रीकरण) वे शक्तियाँ पैदा हो जाती है, जो आसानी से जनतन्त्रीय सामाजिक व्यवस्था को छिन्न-भिन्न करने लगती है, इसलिए अपने को सगठित रखने के लिए जनतान्त्रिक राष्ट्र को कुछ करना पड़ेगा। इसके पास इस कार्य के लिए सबसे सवल अस्त्र शिक्षा है। फिर भी हमें याद रखना चाहिए कि किसी राष्ट्र का उद्देश्य अदूरदर्शी भी हो सकता है, दूरदर्शी भी, वह अपनी प्रत्यक्ष समस्याओ में ही तल्लीन रह सकता है, या अन्त की भी कल्पना कर सकता है, वह नैतिक स्वातन्त्र्य के विकास को ध्येय बना सकता है, इसके विनाश का भी लक्ष्य रख सकता है।

यदि कोई पूर्ण सर्वसत्ताधारी, अत्याचारी राष्ट्र सार्वजनिक शिक्षा-व्यवस्था का उद्देश्य स्थापित करे और किसी निश्चित उम्रवाले अपने सभी नागरिको के लिए अनिवार्य शिक्षा लागू करे और जिस तरह वह उनके जीवन-क्रम का निर्धारण करता है, उसी तरह उनके पाठ्यक्रम का निर्धारण करे, तो स्कूलो के लिए इसके द्वारा स्थापित किए गए उद्देश्यो और लक्ष्यो से हमें ऐसी कोई चीज नही मिल सकती, जो उनका वास्तविक शैक्षिक महत्व बनाने में सहायक हो। किसी कर्त्तव्यपरायण सजीव व्यक्ति को चाहे कितनी ही उच्च कोटि की शिक्षा क्यो न प्राप्त हो, यदि वह मनमाने ढग से लाद दी जाए, तो वह उस अर्थ में शिक्षा नही होगी कि जिसकी हम लोगो ने परिभाषा की है। पर यदि कोई राष्ट्र नम्रतापूर्वक तथा उचित ही एक सम्पूर्ण कर्त्तव्यपरायण राष्ट्र बनने की दिशा में अपने को एक विकासशील अवस्था मानता है, जिसका सतत प्रयास अपने नागरिको के लिए एक स्वतन्त्र नैतिक व्यक्तित्व के विकास की राह तैयार करना है, और नागरिकों के परम वैयक्तिक विकास, तथा उनके सक्रिय और इच्छापूर्ण सहयोग के द्वारा जो स्वंय एक वास्तविक तथा न्यायपूर्ण राष्ट्र बनता है, तव अवश्य वह उचित रूप से अपने स्कूलो का ध्येय निश्चित कर सकता है।

जो राष्ट्र नैतिक आदर्श को अपनाता है, वह स्वय एक सर्वोच्च नैतिक अस्तित्व है। क्योकि तब हर नागरिक के लिए एक पूर्ण विकसित कर्त्तव्यपरायण व्यक्ति बनने के लक्ष्य की दिशा मे राष्ट्र आवश्यक पूर्वावस्था बन जाता है। राष्ट्र और नागरिक परस्पर सार्थक होने लगते है। राष्ट्र को उसके नैतिक आदर्श की ओर बढाने की चेष्टा करने मे नागरिक स्वय अपनी पूर्णता प्राप्त करने के सुअवसर का लाभ उठा लेता है। मै जानता हूँ कि यह वात सभी राष्ट्रो के लिए सच नही है। कुछ राष्ट्र तो स्वतन्त्र नैतिक व्यक्तित्व की प्राप्ति में निश्चित तथा प्रवल रूप से बाधक है। तब राष्ट्र जैसा कुछ महान् लोगो ने कहा है, परम दुष्ट का रूप धारण कर लेता है। पर मानव-जाति के भविष्य के प्रति

यह इन्कार कर. आशा रखने की जरूरत नहीं कि ऐसे राष्ट्र भी सामुदायिक जीवन की एक ऐसी सामाजिक तथा राजनीतिक व्यवस्था बनाएंगे, जो एक न्यायपूर्ण तथा निरपेक्ष, अच्छे तथा उदार राष्ट्र के आदर्शों मे हिस्सा लेगी। किसी व्यक्ति को एक सच्चे नागरिक के रूप में शिक्षित करने का अर्थ है उसे वह साधन बनाना जिसके द्वारा उसका राष्ट्र, एक न्यायपूर्ण राष्ट्र के नैतिक आदर्शों को प्राप्त कर सकता है। असली शिक्षा वह नही है जिससे नागरिक ऐसी आदतो, विचारो कर्मो और प्रतिक्रियाओ का गुलाम हो जाए कि वर्तमान अपूर्ण राष्ट्र अपनी विकासशील वृत्ति से उदासीन या उसके विरुद्ध हो जाए अपनी वर्तमान खामियो मे सन्तुष्ट रहे, अपनी जीवन-प्रक्रिया से अपने विधान की सारी अच्छी चीजे खत्म कर दे तथा चरम शेष की ऐसी गन्दी और काली तलछट छोड़ दे, जिसमे किसी भी अच्छी चीज की जड़ नहीं पनप सकती।

एक अच्छा राज्य, जो अपने भविष्य के प्रति सजग है दो प्रकार के उद्देश्य रखता है (१) आन्तरिक शान्ति तथा सुरक्षा, अपने स्थायी अस्तित्व के लिए आक्रमण के विरुद्ध सुरक्षा, तथा अपने नागरिको के भौतिक और नैतिक कल्याण की चिन्ता—ये सभी उसके आत्मकेन्द्रित उद्देश्य है, और (२) एक मानव ससार अथवा मानव जाति-सघ की स्थापना। वह स्वय अपना नैतिक विकास कर तथा समान विचार वाले राज्यो के सहयोग से, ऐसे सघ की स्थापना में एक सफल साधन बनता है। यदि कोई अच्छा राज्य अपने सारे नागरिको के सारे बच्चो की शिक्षा का भार ग्रहण करता है, तो उससे यह आशा रखना तो ठीक ही है कि वह उन्हे ऐसी शिक्षा देगा कि वे अपने स्वाभाविक सामर्थ्य के अनुसार इन उद्देश्यो की प्राप्ति मे योग दे। वरना और किस लिए राज्य सारे लडके-लडकियो को पढाने की जिम्मेदारी ले, और किस लिए शिक्षा को इन लडके लडकियो के लिए अनिवार्य बनाए ? राज्य इसलिए शिक्षा प्रदान करता है कि इसके दोनो उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए अच्छे तथा उपयोगी नागरिक तैयार हो। इसके शिक्षण का दृष्टिकोण है—उपयोगिता तथा नैतिकता।

राज्य के इस द्विमुखी उद्देश्य की दृष्टि से हम कह सकते है कि अनिवार्य सार्वजनिक स्कूलो के तीन लक्ष्य होंगे।

इसका पहला लक्ष्य होगा नागरिक को किसी उपयोगी काम की शिक्षा देना, ताकि सामर्थ्य और रुझान के अनुकूल समाज मे वह अपना निश्चित कर्त्तव्य निभा सके। इसका पहला ध्येय है व्यावसायिक या पेशा-सम्बन्धी शिक्षा प्रदान करना, अथवा अनिवार्यता के लिए निर्धारित उम्र के अनुसार इस प्रकार की शिक्षा की यथासम्भव तैयारी कराना। उपयोगितापूर्ण लक्ष्य है, पर साथ ही स्कूल के नैतिक और शैक्षिक कार्य का यह आधार भी है।

दूसरा लक्ष्य होगा व्यावसायिक शिक्षा को एक नैतिक अनुभव का रूप देना और विद्यार्थी को यथासम्भव स्पष्ट रूप से यह समझाना कि कोई व्यवसाय केवल जीविकोपार्जन का साधन न हो, बल्कि वास्तव में एक संगठित सहयोगी समुदाय में जनसेवा का कर्त्तव्य है, और नैतिक सामाजिक व्यवस्था की पूर्ति तथा विकास में उसका उपयोग होना चाहिए।

अनिवार्य सार्वजनिक स्कूल का तीसरा लक्ष्य होगा समाज के विकसित होते हुए सदस्य (विद्यार्थी) मे यह इच्छा जगाना और इसके लिए उसमे शक्ति बढाना कि वह अपने निजी नैतिक व्यक्तित्व को तैयार करनेवाली लम्बी तथा सुन्दर यात्रा शुरू करे और इस व्यक्तित्व को अपने समाज की नैतिक सम्पूर्णताओ के लिए लागू करे। इससे वह यह समझ पायगा कि नैतिक रूप से एक पूर्ण समाज बनाने का आकाक्षित आदर्श तभी प्राप्त किया जा सकता है, जब नैतिक रूप से स्वतन्त्र व्यक्ति पूर्ण समन्वय के साथ मिलकर काम करे।

आइए, अब हम लोग उन स्कूलो की बात सोचे, जिनकी स्थापना से ये तीनो लक्ष्य प्राप्त हो सकेगे। पहला लक्ष्य था विद्यार्थियो का ऐसी शिक्षा देना कि वे आगे चलकर अपने जीवन में कुछ कर सके तो स्कूल यह काम किस तरह करेगा ? यदि समाज का सगठन उस समाज की तरह करे जैसा पेस्तालीजी के काल मे स्विट्जरलैण्ड मे था, या उस ग्राम-समाज की तरह जिसकी ओर गाधीजी का अति विशेष ध्यान गया, तो विद्यार्थियो को उनके व्यवसाय के लिए तैयार करने में स्कूल बहुत कुछ कर सकता है। देश से औद्योगिक विकास के वढते हुए वेग के कारण काम और जटिल हो गया है। लेकिन इस जटिलता के कारण हमें गुमराह नही होना है। कोई भी स्कूल, शायद, सात या आठ वर्षो मे, यद्यपि हम केवल इसी सम्भावना पर विचार कर सकते है, अपने विद्यार्थियो को व्यावसायिक जीवन-सम्बन्धी सारी आवश्यक शिक्षाए नही दे सकता। तव इसे उस स्थिति मे होना चाहिए कि मानसिक और हस्तकार्यो से उन्हे उतनी प्रारम्भिक दक्षता दे दे, जितनी उन्हे समाज मे कुशलतापूर्वक तथा सफलता से काम करने के योग्य बना सके। अधिकतर इन स्कूलो से निकलने वाले अधिकाँश विद्यार्थियो को उन्ही स्थानो को भरना होगा जहाँ हस्तकार्य सबसे मुख्य क्रिया है।

केवल किताबी शिक्षा वाले स्कूल, जैसा अब अत्यन्त स्पष्ट हो गया हमारे बहुसंख्यक छात्र-छात्राओं के जीवन में सहायक होने वाले स्कूल नही है। उनके लिए तो वह स्कूल होना चाहिए, जहाँ शैक्षिक क्रिया का मुख्य साधन हस्तशिल्प हो। और उनके लिए जिन्हे बौद्धिक कार्यो को करना है जिनकी सख्या अपेक्षाकृत कम होगी, दूसरी तरह की पढाई की व्यवस्था की जा सकती है। बुद्धिवादियों की इस अभिमानपूर्ण धारणा के परे कि उनकी सन्ताने भी अवश्य बुद्धिवादी होगी, कोई आसान उपाय भी नही, जिससे बच्चो के आधार समूह मे से, जो निश्चित रूप से अपनी सक्रिय व्यावहारिक रुचि व्यक्त कर रहा हो, इन बुद्धिवादी बच्चो को छाँट लिया जाए।

इसलिए, जो स्कूल हम स्थापित करना चाहेगे, कार्य वाला स्कूल होगा, मानसिक या हस्तकार्य, तथा जब तक वह समय नही आता कि उस उम्र मे ही किताबी बुद्धिवादियो की शुद्ध नस्लो को निश्चित रूप से छाँटा जा सके, इस स्कूल मे हस्तकार्य, शैक्षिक क्रिया का केन्द्र होगा। आशा है, मैने अपने दूसरे व्याख्यान मे स्पष्ट कहा है कि शैक्षिक हस्तक्रिया का एक आवश्यक तथा अत्यन्त प्रमुख भाग मानसिक क्रिया है। इसलिए हस्तशिल्प का यह स्कूल वह सफल आधार बन सकता है, जो मानसिक तथा हस्तशिल्पीय दोनो प्रकार की व्यावसायिक शिक्षा में उपयोगी हो। अच्छी तरह सगठित किए जाने पर यह स्कूल ग्रामीणो और नागरिको, दोनो के लिए, कृषि और औद्योगिक, दोनो प्रकार के व्यवसायो के लिए, तथा

अन्त मे हस्तशिल्पीय और बौद्धिक, दोनो प्रकार के कामो के लिए अच्छा सावित होगा। यहाँ से शिक्षित होकर विद्यार्थी जब निकलेगे, तब उन्हे काम की आदत पड चुकी होगी, वे सीख चुके होगे कि अपने बहुत से समस्या–समाधानवाले कामो मे वे किस तरह तार्किक चिन्तन के सहारे अपनी कार्य-योजनाएँ बना सकते है, अपने काम के सम्भव साधनो पर सावधानीपूर्वक विचार करना उन्हे आ गया होगा, वे यथा-सम्भव सावधानी से अपने जिम्मे आये काम को करना सीख चुके होगे, वे यह भी जान चुके होगे कि किस तरह अपने आत्मगत विचार को अनात्म के तर्क के अधीन किया जाता है, वे सम्पूर्णता को लक्ष्य मानकर उसकी प्राप्ति का आनन्द व्यक्त करना भी जान चुके होगे, और अन्त मे, उन्हे यह रहस्य भी मालूम हो चुकेगा कि और अधिक सफलताओ की प्राप्ति का निश्चित उपाय अपनी सफलताओ पर स्वय समीक्षात्मक नजर डालना है। हममे से अधिकाँश लोगो ने स्कूलो मे अपेक्षाकृत अधिक समय विताकर जितना कुछ पा लिया है, शायद उससे बहुत ज्यादा, कार्य-प्रधान स्कूल के ये विद्यार्थी प्राप्त करेगे, जबकि उनकी पढाई की अवधि भी अपेक्षाकृत कम होगी। मुझे सन्देह नही कि सुचारू रूप से सगठित कार्य-प्रधान स्कूल अपने उद्देश्य मे सफल होगे। यह बात कि अब तक हमने जिन कार्य-प्रधान स्कूलो की स्थापना की है, वे साधारणतया इन उद्देश्यो को न प्राप्त कर सके, केवल इस बात की द्योतक है कि हमारी पीढी कार्य के साधन से शिक्षित नही हो पाई।

आशा है, मैने इसे स्पष्ट कर दिया है कि जिस सार्वजनिक शिक्षा की हमे आवश्यकता है, उसके प्रथम उद्देश्य की प्राप्ति, शैक्षिक हस्तशिल्प को उस शिक्षा का प्रमुख अ ग बनाने से होगी। दूसरा उद्देश्य था शिक्षा को एक नैतिक अनुभव और नैतिक प्रशिक्षण बनाना। विद्यार्थी को यह समझना कि कोई पेशा जीविकोपार्जन का निमित्त मात्र नही है, लेकिन श्रम के विभाजन पर आधारित एक सहयोग-समुदाय मे जनसेवा का कार्य है। मेरा विचार है कि इस उद्देश्य को, हम अपने स्कूलो को कार्य तथा जीवन के समुदायो के रूप मे सगठित कर, प्राप्त कर सकते है। इस समुदाय को अपने सदस्यो की उम्र के उपयुक्त नैतिक आदर्शो का प्रतीक बनना चाहिए। यह कार्य-प्रधान समुदाय कई आदर्शो का प्रतीक हो सकता है, जैसे–उदार हृदय के बन्धुत्व का, अज्ञात की सक्रिय खोज का तथा प्राकृतिक और ऐतिहासिक सत्यो की प्राप्ति के सौन्दर्य की रचना और समझ-बूझ का, स्वच्छ जीवन के स्तर के समर्थन का, असहायो की सहायता का, साहसपूर्ण स्पष्टवादिता का, आए हुए उत्तरदायित्वो को सर्वश्रेष्ठ ढग से निभाने का, स्कूल-समुदाय के हित के लिए काम करने को तैयार, अथवा यदि जरूरत पडी तो, स्कूल-टीम की ओर से खेलने की तत्परता का। इस प्रकार और भी कई आदर्श समुदाय का आधार बन सकते है। इस प्रकार के समुदाय मे कार्य, सेवा का रूप ले लेता है तथा उस चीज का निर्माण करता है जिसे चरित्र की सज्ञा दी जाती है।

इसी चरित्र के निर्माण मे अत्यन्त बहुमूल्य उपकरण है सामाजिक अनुभूति तथा भावना की कोमलता, जो किसी कार्य-प्रधान समुदाय के इसके विभिन्न तथा विविध फलप्रद सम्बन्धो के कारण, व्यस्त वातावरण मे विकसित होगी। एक दूसरा गुण है उत्तरदायित्व। ऐसे समुदाय मे उत्तरदायित्व के विकास की भी अत्यन्त प्रचुर सम्भावनाएँ है।

जिन बच्चो ने इस प्रकार की व्यवस्था मे काम करने का अकथनीय आनन्द और आत्मसन्तोष प्राप्त किया, वे निश्चय ही अपने भावी जीवन के कार्यो में इस आनन्द और सन्तोष की तलाश और प्राप्ति

करेंगे। सारे ससार मे इस प्रकार के स्कूल-समुदायो की स्थापना के प्रयोग किये जा रहे है। यदि हम शिक्षा को महत्व देते है, तो हमे भी ऐसा ही करना पडेगा। किन्तु इसके लिए हमे उपाय और साधन ढू ढने होगे, जो केवल खर्चीले पब्लिक स्कूलो पर ही नही, बल्कि सब लोगो के सभी बच्चो के लिए खुलनेवाले स्कूलो पर भी लागू होगे। हमारे श्रेष्ठ शिक्षाविदो को चाहिए कि वे भारतीय अनिवार्य स्कूलो को वास्तविक समुदाय-स्कूलो मे बदल देने का उपाय सोचे।

तीसरा उद्देश्य है स्व-शिक्षा की प्रक्रिया का आरम्भ कराना, विद्यार्थी मे निश्चित तेजी के साथ यह इच्छा जगाना कि वह एक स्वतन्त्र कर्तव्यपरायण व्यक्ति बने, और स्वय जिस समाज का है उसे नैतिक रूप से उन्नत बनाए। बच्चे की विकास-अवस्था की दृष्टि से अधिक से अधिक यही सम्भव है कि इस उद्देश्य पर काम अनिवार्य स्कूल मे शुरू किया जाए। चौदह वर्ष की उम्र के पहले विद्यार्थियो को स्कूल से निकलने का मतलब होगा कि इस उद्देश्य की प्राप्ति मे स्कूल को बिल्कुल मौका न देना।

इस स्वतन्त्र शिक्षा, जिसकी हमे जरूरत है, और जिसके उद्देश्य और प्रणाली पर हम विचार कर चुके है, की व्यवस्था का मुख्य प्रश्न यह है कि देश की कुल आबादी मे से इसके लिए किन्हे चुना जाए।

यदि हम तीनो उद्देश्यो को ध्यान में रख कर बात करे, तो इस निश्चय पर पहुँचेगे कि सात वर्ष और उससे कम उम्र वाले बच्चे, जाहिर है, नही चुने जा सकते। यह खेल की उम्र है, और जैसा मैने कहा है, खेल एक स्वयसिद्ध उद्देश्य है, और उन तीनो मे से किसी भी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए इसका उपयोग, ध्यान देने-योग्य मात्रा में, नही किया जा सकता।

तो फिर प्रौढ (परिपक्व) व्यक्तियो को ले, जिनकी उम्र मान ले, इक्कीस वर्ष की हो, कि वे इस प्रकार के आकाँक्षित शिक्षा-स्कूलो में जाएँ? सच पूछे तो इस प्रकार की सम्भावना जितनी अजीब शुरू मे लगेगी, उतनी वह सच मे नही है। फिर भी, आर्थिक जीवन की आवश्यकताएँ इस सम्भावना मे बाधक बनेगी, यद्यपि, उदाहरण के लिए हम कह सकते है कि कुशल शैक्षिक निर्देशन मे श्रम-शिविरो मे इस प्रकार के कार्यो के संगठन मे हमें अत्यन्त लाभ होगा। लोग उस चीज को कुछ तो समझ जाएँगे, जिसकी अन्तहीन चर्चा करते वे थकते नही। बहुत-से देशो में, कुशल नागरिकता तथा अनुशासित जीवन की शिक्षा देने के लिए प्रभावकारी पूरक साधन के रूप मे इस प्रकार की श्रम या सैनिक सेवा की व्यवस्था स्कूलो मे लागू की गई है। मगर, हमारा औसत जीवन जितना निम्न है, उसके कारण यदि हम काफी देर से यह काम करे, अर्थात् यदि इक्कीस वर्ष की उम्र के विद्यार्थियो को ले, तो हमारे बहुत-से देशवासी इस आवश्यक आकांक्षित शिक्षा से वंचित रह जाएँगे, तथा उनके पास, जनता के लिए इसके सदुपयोग का काफी समय भी नही बना रहेगा।

इसलिए हमें दो निम्न उम्र वर्गो १४-२१ तथा ७-१४ पर विचार करना होगा। दोनो मे कुछ समान विशेषताएँ है। १४-२१ उम्र वर्ग की अवस्था, वास्तव मे, दूसरे तथा तीसरे उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अधिक अच्छी होगी, जिनकी प्राप्ति के लिए हमने कहा कि इस आकाँक्षित शिक्षा की योजना की जरूरत है, और प्रथम उद्देश्य की दृष्टि से यह और भी अच्छी कही जा सकती है। लेकिन इसमें तीन बडे दोष होगे। इसके कारण समाज के ऐसे लोग काम से अलग हो जाएँगे जो उत्पादन के लिए बहुत उपयोगी साबित होते। इस शिक्षा की लपेट में कोई नव-विवाहित पत्नि, जिसका छोटा बच्चा भी होगा, आ

सकती है, और शिक्षा की दृष्टि से जो सबसे जरूरी बात है, वह यह कि ऐसे लोगों की शिक्षा इतनी देर से शुरू होगी कि वे बचपन की उन प्रमुख व्यावहारिक प्रवृत्तियों के लाभ से वंचित हो चुके होंगे जो कार्य-प्रधान जीवन की शिक्षा के लिए प्रेरित करती है, तथा विभिन्न व्यक्तियों के विरूद्ध केन्द्रिक कार्यों मे अपनी प्रति विभिन्न दिलचस्पियों के कारण, शिक्षण-सस्थानो के सामने भी अतिरिक्त झमेले खडे हो जायेगे ।

इसलिए ७—१८ की उम्र का चुनाव ही अमूमन ठीक जचता है । लेकिन शुरू मे ही कोई यह भी कह सकता है कि वह आकाँक्षित शिक्षा १४ वर्ष की उम्र तक तो जरूर ही दी जानी चाहिए । यदि हमे उनकी भी सुननी है, जिसका यह विचार है कि जीवन के प्रारम्भिक वर्ष वडे महत्वपूर्ण होते है, और यदि हम ऐसे लोगों को खुश करना आवश्यक समझते है तो हम यह शिक्षा उस प्रारम्भिक अवस्था मे शुरू करे, जिस अवस्था मे इन लोगों को सन्तोष हो—यदि वे गला फाडकर चिल्लाए, तो बच्चे के जन्म से ही शुरु की जाए, या छ वर्ष की आयु से करे, जिस पर लगता है, अब हम सहमत हो चुके है । यदि हम बच्चे के जन्म से ही शिक्षा की व्यवस्था करेगे, तो याद रखे, हमे कम से कम चौदह वर्ष की अवधि-वाली शिक्षा की योजना बनानी होगी, यदि आप ६ वर्ष की उम्र से आरम्भ करे, तो आठ साल की अवधि वाली शिक्षा चाहिए, और इस विचार पर लगता हे, देश भी सहमत है । आकाक्षित अनिवार्य शिक्षण की उपयोगिता या कारण के खयाल से मै समझता हूँ कि शिक्षा को अल्पावस्था मे शुरू करने की अपेक्षा कुछ बाद तक उसे जारी रखना ज्यादा महत्वपूर्ण होगा । मुझे इसमे जरा भी सन्देह नही कि यदि हमे आठ वर्षीय अनिवार्य शिक्षण-योचना चालू करनी हो तो ६ से १४ वर्ष की अवस्था की अपेक्षा ७ से १५ वर्ष की अवस्था अधिक लाभप्रद होगी । लेकिन यह शिक्षण चाहे जिस उम्र से शुरू किया जाए १४ वर्ष की उम्र से पहले इसका खत्म किया जाना उन उद्देश्यो के लिए घातक सिद्ध होगा, जिनके कारण किसी स्वतन्त्र समाज मे अनिवार्य शिक्षा की योजना बनाई जाती है ।

अपने मुश्किल वायदो को याद करते रहना भी अच्छी बात होगी । आप जानते है, भारतीय सविधान का निर्देश हे कि सविधान के लागू होने के दस वर्षों के अन्दर, चोदह वर्ष के बालक-बालिकाओं को नि शुल्क शिक्षा दी जाएगी तथा यह शिक्षा अनिवार्य होगी । होशियारी और दूरदर्शिता की बात हे कि निर्देशन मे यह नही बताया गया कि यह शिक्षा शुरू किस उम्र पर की जाएगी । लेकिन यह स्पष्ट बताया गया कि यह शिक्षा किस उम्र तक दी और ली जाएगी । और आप जानते हे, मजिल से अभी हम कितनी दूर है । इस लक्ष्य-प्राप्ति की अभी कोई सुदूर आशा भी नही दीखती । कहा जाता हे कि इसकी प्राप्ति के पर्याप्त साधन नही हे । इस मत को लेकर मैं अभी विवाद खडा नही करूँगा, पर यह कहूँगा कि मै इसका समर्थन नही करता । बहुत सी ऐसी चीजो के लिए जिनके सम्बन्ध मे कोई सवैधानिक निर्देश नही है, साधन जुटाए गए है, और आगे भी जुटाए जाएँगे । जनतन्त्र मे योजना बनाने का अर्थ है जनता की स्वीकृति के साथ योजना बनाना । जनता अपने सविधान-द्वारा अपनी इच्छाओं को, निर्णयात्मक तथा स्पष्ट ढग से व्यक्त करती हे । इसलिए इस बात पर गम्भीरता से विचार करना होगा, हमे टटोलना होगा, कि इस दिशा मे सविधान के निर्देशन का पालन न कर, क्यो किसी और चीज पर जनता के साधनो के व्यय की योजना बनाई जाती है । लेकिन, जैसा मैने पहले कहा, मै इस बात पर, कि सभी साधन प्राप्त नही है झगडना नही चाहता । मान लिया कि आवश्यक कारणो से द्रव्य-साधन नही मिल सके, और ६—१४ अथवा ७—१८ वर्षों की आयु-अवधि पर काम न हो सका, फिर भी मेरी समझ मे यह नही आता कि इस अवधि को बदल कर ५—११ क्यो किया जाए, ६—१८ क्यो नही । जो

देश शिक्षा को महत्व देते है, उन देशो के अनिवार्य उपस्थिति-कानूनो को देखिए। आपको शायद ही कोई देश ऐसा मिलेगा, जो अपने बच्चो को १४ वर्ष की आयु से पहले ही अनिवार्य नि शुल्क स्कूलो से बाहर निकालता है। अब तो वहाँ आयु-सोमा को १४ वर्ष से ऊँचा करने की प्रवृत्ति देखी जा रही है। कुछ देशो ने तो बढाकर इसे १५-१६ बल्कि १२ भी कर दिया है। कई देश ऐसे मिलेगे, जो यह शिक्षा देर से शुरू करते है—अधिकतर बच्चे को सात वर्ष की आयु मे, कई आठवे वर्ष मे, और कुछ तो नवे वर्ष मे भी शुरू करते है। यह बुद्धिहीन विचार कि उच्च आयु-सीमा को काटकर शिक्षण-अवधि कम की जाए, अथवा यह दृढ आग्रह कि बालक के प्रारम्भिक वर्षो का बडा महत्व होता है (मानो जीवन के और दूसरे वर्ष किसी न किसी रूप मे कम महत्वपूर्ण है . या सार्वजनिक अनिवार्य शिक्षा के विशिष्ट लक्ष्यो तथा उद्देश्यो के प्रति उदासीनता – ये ही है वे कारण, जिनसे हमारे देश में दूसरा विचार अपनाया गया। यदि हमें केवल इतने ही साधन मिल सकते है कि हम पाँच वर्षीय अवधि की नि शुल्क अनिवार्य शिक्षा दे, तो मेरा पक्का विचार है कि यह अवधि ९ से १४ वर्ष की आयु की होनी चाहिए।

मै सोचता हूँ, मै उन कोशिशो के बारे मे भी बाते करूँ जो हमारे देश में कार्य-प्रधान स्कूलो की स्थापना, जिसे बुनियादी स्कूल कहा जाता है, के लिए अब तक की गई है। मेरी बाते, मेरे काफी विस्तृत प्रेक्षण तथा उनसे उत्पन्न विचारो पर आधारित होगी, वे किसी नियमित वैषयिक अध्ययन के परिणाम नही। वे सारे भारत के सम्बन्ध मे भी लागू नही है। लेकिन, चूँकि मुझे कुछ अनुमान है कि बुनियादी स्कूल के क्या उद्देश्त होने चाहिए, और किन उद्देश्यो को यह सहज प्राप्ति कर सकता है, और चूँकि मैने ऐसे विद्यालयो के बहुत-से छुटपुट उदाहरण देखे है, मै अपने इस विचार पर आपकी सहमति चाहता हूँ कि सामान्यत हम लोग उस बीज को न पा सके जिसकी सहज प्राप्ति, सुसगठित कार्य-प्रधान स्कूलो में हो सकती थी। बहुत-से कारण है, अधिकतर सगठन सम्बन्धी, किन्तु एक अत्यन्त महत्वपूर्ण शैक्षिक कारण है और वह यह कि इन स्कूलो में हमने साधारण तौर पर कार्य-सम्बन्धी उन आवश्यक शैक्षिक शर्तो का ध्यान न रखा, जिनकी व्याख्या मैने अपने पिछले भाषण मे की थी। जिस तरह हम किसी तथाकथित बुद्धिजीवी किताबी स्कूल को हम यान्त्रिक स्मृति-प्रशिक्षण-स्कूल मे बदल सकते है (भगवान् हमारा भला करे, हमने ऐसा लाखो स्कूलो के साथ किया और किसी ने चूँ न को और यह सख्या बढती ही गई) उसी तरह हम यह भी कर सकते है (और कई मामलो मे किया भी है) कि अपने कार्य-प्रधान स्कूल को, बुनियादी स्कल को, यन्त्रवत् कार्य (कल्पनाहीन कार्य) की जगह बना दे। काम बाह्य रूप से तथा एक जैसा निर्धारित किया गया है, बच्चे में स्वाभाविक प्रवृति का चिह्न भी नही है, उसके काम के पीछे क्या व्यक्तिगत या सामाजिक उद्देश्य है, इसकी उसे कतई खबर नही। वह काम शुरू करता है, तो उसकी कोई दिलचस्पी नही होती, सिवाय इसके कि शायद उसमे कुछ उत्सुकता होती है, अपने हाथो कुछ करने का आकर्षण होता है। जैसा कहा जाता है, वह करता जाता है। किसी समस्या से, जिसका उसे समाधान करना है वह शुरू नही करता। स्वाभाविक ही उसे अपनी समस्याओ के समाधान का चिन्तन नही करना पडता, क्योकि समस्याएँ होती नही। न रहने वाली समस्या के समाधान के लिए उसे कोई दूसरे सम्भव उपायो को सोचने की भी जरूरत नही। किसी निर्धारित तरीके से इसे करने के लिए उसे कहा जाता है। इस प्रकार, वह अपने शिक्षक के साथ मिलकर समाधान प्राप्त करने की अनुप्रेरित खुशी से भी वचित रखा जाता है। कभी–कभी उससे काम कराया जाता है–आम तौर से नियमित रूप से नही–और चाहे जैसा भी फल हो, काम लेने वाले प्राय सन्तुष्ट हो जाते है।

ग्रापको याद होगा यह आकस्मिक अथवा अनियमित काय का लक्षण है, और जैसा मैंने निवेदन किया थ शिक्षा का यह काम है कि इस कार्य को उस वास्तविक काम मे बदल दे, जिसमे यथाश्रेष्ठ परिणाम बल्कि और अधिक अच्छे परिणाम की तब तक अपेक्षा रहती है, जबतक पूर्णता की प्राप्ति न हो जाए सच पूछे, तो स्कूल मे इसपेक्टर या किसी बहुत बडे आदमी [वी० आई० पी०] के आने पर अक्सर इ प्रगतियो अथवा फलो मे कोई दिलचस्पी नही दिखाते। शिक्षको को मालूम है कि इन अतिथियो का कि प्रकार वर्गीकरण किया जाना चाहिये। उन्हे पता है कि कौन आदमी बुनियादी शिक्षा को एक सन समझता है और कौन इसे महत्व देता है। पहले प्रकार के अतिथ महोदय को माला पहनाई जाती स्वागत-गान गाया जाता है, रिपोर्ट पढी जाती है और मान्य अतिथि भाषण देते है, तत्पश्चात् जाने क और कैसे लोग चाय की मेज पर इकट्ठे हो जाते है। हा 'बेसिक एजुकेशनवालो को तो कुछ काम दिखा ही पडता है, और यह रस्म अदा भी की जाती है। यह अतिथि क्या देखता है? तकलिया नाच रही चर्खे चल रहे है, खासे अच्छे कते हुए सूत का मोटा गोला लिपटा होता है, उन तकलियो या टेकुओ पर अक्सर ऐसे विद्यार्थी चला रहे होते जिनके सूत मोटे और सधे कते नही होते, और जबतक अतिथि व खडे देखते होगे, सूत बराबर टूटता जाएगा। अनियमित क्रिया के आकस्मिक परिणाम को कुछ ऐसे बच्च या शिक्षको पर इसे लाद दिया जाना कहेगे, जो अपेक्षाकृत अच्छा सूत कात सकते है। यदि शिक्षक व यह लगता है कि अतिथि वर्त्तमान परिणामो के सन्देहजनक गुणो की अपेक्षा यह देखना पसन्द करेगे पहले किस मात्रा मे काम हुआ है (वी० आई० पी० 'बहुत बडे आदमियो' के बार-बार आते रहने कारण— जिन्हे और कोई काम साधारणतया होता नही — कुछ चालाक शिक्षको ने इस दिशा बिजली की तेजी से भाँप लेने की समर्थता प्राप्त कर ली है), वे अतिथि को कोने मे पडी मेज पर रख बहुत-सी चीजो का ढेर दिखाते है जो किसी अच्छे विदेशी कपडे के कोई मैले से टुकडे से ढका होता है यदि अतिथि मे उत्सुकता है, या वह केवल यह दिखलाना है कि स्कूल के प्रति उसकी दिलचस्पी समझ बूझवाली है, और धूल का उस पर अनावश्यक आतक नही है, तो वह क्या करता है? मेज के पा जाकर जादूगर के उस कपडे को उठाता है। क्या देखता है? कष्टपूर्ण, दारुणपीडा से भरी, छिन-भि होती हुई, लपेटी न जा सकनेवाली और धूल से भरी वह चीज, जो किसी जमाने मे केचुए जैसी रूई की पू थी, और अब जो, मानो अपना पाप धोने के लिए कष्टदायक यातनाओ से गुजर रही थी, इसलिए कि व अपनी मूल पाप-रहित आराम-भरी जिन्दगी मे वापस आ सके — कच्ची रूई के एक छोटे से रेशेवाल जिन्दगी मे। मै सोचता हूँ, ये रेशे बेचारे सोचेगे कि लडके-लडकियो के अपने शिक्षको की आज्ञा से उ पूर्ण कोमलता से बिना मतलब, बेकार, करीब-करीब दुष्टता के कारण ही अलग कर दिया था आखिर क्यो? ये रेशे तो तब खुश होते, जब इनके सुलझने तोडने, ऐठने, मोडने और खोलने के बाद किसी की नगी पीठ ढकने के लिए बनने वाले कपडे मे बदल जाते। तब बच्चो के काम को महत्व प्राप्त होता। इस प्रकार के कार्य मे जिसका स्कूल ने आयोजन किया है, गुण तथा मात्रा, दो मे से किसी की भी प्राप्ति नही हुई।

ऐसा काम जो यान्त्रिक अथवा यन्त्रवत् है, ऐसा काम जिसमे मानसिक श्रम नही करना पडत ऐसा काम जिसमे हम चाहे जैसे भी परिणाम मे सन्तुष्ट हो जाते है और जिसमे इसकी सम्पूर्णता प्राप्त करने की कोई निरन्तर प्रेरक शक्ति न हो, ऐसा काम जिसमे स्व-आलोचना न हो, और इसलि

वास्तविक प्रगति न हो — किसी तरह भी, ऐसे काम शक्षिक नही है। ऐसे कामो वाले स्कूल किसी तरह भी काय-प्रधान स्कूल नही है।

व्यवस्था-सम्बन्धी दूसरी समस्याए भी है। मै केवल दो का उल्लेख कर दू। अक्सर बुनियादि स्कूलो को भारतीय शिक्षा के शान्त वातावरण में जबर्दस्ती आनेवाली बाधा के रूप मे देखा जाता है। बुनियादी स्कूलो से निकलने वाले लडके-लडकिया दूसरे उच्च स्कूलो में प्रवेश पाना कठिन, बल्कि कभी-कभी असम्भव, पाते है। इसलिए उनकी सुविधा के लिए उत्तर-बुनियादी स्कूलों (पोस्ट-बेसिक) की स्थापना की गई है जो बहुत कम सख्या मे और दूर-दूर पर है। फिर, लडका उत्तर-बुनियादी स्कूल से निकलता है, १२ साल की उस पढाई के बाद जो सरकार द्वारा प्रतिभूति स्कूलो मे दी जाने वाली सारी प्राथमिक तथा आशिक माध्यमिक शिक्षा का भावी रूप माना गया है, वह किसी विश्वविद्यालय मे नही जा पाता, क्योकि उन्हे भरती करने का आदेश सरकार विश्व विद्यालयो को नही दे सकती। विश्वविद्यालय तो, सच मे, स्वतन्त्र सस्थाएँ है। विश्वविद्यालयो की वास्तविक स्वतन्त्रता के लिए मै स्वय बडा उत्सुक हूँ। किन्तु, मुझे अब भी यह देखना है कि कोई विश्वविद्यालय हर वर्ष आनेवाले उन लाखो विद्यार्थियो को वापस करदे, जो माध्यमिक तथा इण्टरमीजिएट शिक्षा-बोर्डो-द्वारा उनकी मुहर लगाकर वहाँ भेजे जाते है, यद्यपि, स्वय विश्वविद्यालय के लोगो के कथनानसार, वे किसी तरह भी उस शिक्षा का लाभ उठाने योग्य नही, जो विश्वविद्यालयो मे (जिस तरह अभी वह काम कर रहे है) उन्हे प्रदान की जाएगी। विश्वविद्यालय चुपचाप उन्हे दाखिल कर लेते है, क्योकि, वास्तव, मे वे स्वतन्त्र सस्थाएँ है। लेकिन बुनियादी शिक्षण स्कूल से आये हुए विद्यार्थी को जिसकी स्कूली शिक्षा की पूर्व तथा पूर्ण अवधि अपेक्षाकृत एक या कभी-कभी दो साल अधिक होती है, इस सुविधा से वचित कर दिया जाता है। इससे शिक्षण-कार्य में शोचनीय कमी का बोध होता है, और वास्तव मे शीघ्र ही इस दिशा मे कुछ किया जाना चाहिए।

यदि अब भी बहुत से ऐसे बुनियादी स्कूल है, जो दूसरे स्कूलो की अपेक्षा समान आयु-वर्ग के विद्यार्थियो के लिए अधिक अच्छे है तो कारण यह है कि आस-पास के जीवन से, वातावरण से, उनका सिम्बन्ध अपेक्षाकृत कम दूर है, और वे कुछ समान मान्यताओवाले छोटे-छोटे शैक्षिक समुदायो मे सगठित होने लगते है। उनका व्यवहारिक कार्य, चाहे उसकी शैक्षिक कमियाँ कुछ भी हो, उस अवस्था मे उनके मानसिक व्यक्तित्व में कुछ ठोस गुणो का विकास कर पाता है। लेकिन हमें तब तक सन्तुष्ट नही होना है जब तक इन शैक्षिककार्यो द्वारा उन्हे शिक्षण के बीच सच्चे केन्द्र न बनादे। इसके लिए पक्के निश्चय क तथा सम्पूर्णता की मजिल तक पहुँच जाने की सच्ची लगन की जरूरत होगी। इस दिशा मे शैक्षिक कार्यो का शिक्षाप्रद कार्यो का रूप लेने के लिए भरपूर चेष्टा करनी होगी। मै चाहता हूँ कि शैक्षिक कार्यो में हमारे सामने हमेशा यह आदर्श वाक्य रहे — जो कार्य-प्रधान स्कूल के लिए भी एक अति उपयुक्त आदर्श वाक्य होगा — 'चिन्तन और कार्य, कार्य और चिन्तन।' क्या यह अफसोस की बात नही है कि गाँधीजी जैसे महान् पुरुष द्वारा भारतीय शिक्षा-विचारधारा मे बुनियादी शिक्षा के समावेश के करीव दो दशाब्द बाद, आज भी सार्वजनिक शिक्षा तथा सार्वजनिक जीवन मे, नीति बनाने वाले और नीतियों को कार्यान्वित करने वाले, दोनो मे ही ऐसे महत्वपूर्ण लोग है, जो सम्मेलनो मे नही वल्कि प्रभावकारी गुप्त वार्त्ताओं में अपनी कही गई बातो से या न कही गई बातो से यह सन्देह पैदा करते है कि वास्तव में हमें इन कार्य-प्रधान स्कूलो की जरूरत है या नही? यदि बुनियादी शिक्षा की प्रगति इतनी धीमी, इतनी असमतल तथा

[illegible] इतनी प्रभावहीन नहीं होती है, जितनी मुझे भय है हुई है तो इस प्रकार के सन्देहों को दूर करने के लिए भी कुछ करना होगा।

यदि यह विचार प्रबल है कि इस प्रकार के स्कूल हमारे लिए कोई अर्थ नहीं रखते, योजना ठीक अथवा सम्भव (व्यवहारिक) नहीं, तो बेशक ही ऐसा कह दिया जाए, और इससे छुट्टी पा ली जाए। ऐसा करना अधिक ईमानदारी होगी और मुझे विश्वास है, यदि ऐसा किया गया, तो भारतीय शिक्षा में कार्य-प्रधान स्कूल-व्यवस्था अधिक शक्ति से लौट आएगी, और इसे अधिक लगन से अधिक पूर्णता के साथ, तथा [illegible], लागू किया जाएगा। कार्य प्रधान स्कूल को ज्यादा बड़ा खतरा तो इस बात से है कि इसके सिद्धान्त को मानते समय मन में सैकड़ों निग्रह (संशय) रखे जाएँ और इसके विचारहीन तथा असंगतिपूर्ण प्रयोग से बाद में इसे बदनाम किया जाए।

मेरे विचार में कम से कम सात या आठ वर्ष तक बुनियादी शिक्षा दी जानी चाहिए और यदि इसे कम करना ही है, तो हम इसे निम्न आयु-सीमा पर कम करें। लेकिन, जैसा मैंने कहा, अनिवार्य शिक्षा के उद्देश्यों की आंशिक प्राप्ति के लिए भी कम से कम जरूरत यह है कि १४ वर्ष की आयु तक शिक्षा जरूर दी जाए। इससे अधिक की व्यवस्था की शीघ्र आवश्यकता है। शिक्षा को महत्व देनेवाले देशों को इस बात का ज्ञान है कि १४ वर्ष की आयु तक समाप्त होने वाली ८ वर्षों की अवधि वाली अनिवार्य शिक्षा भी इसके लिए कदापि पर्याप्त नहीं है कि युवा नागरिक अपने पेशे में सफल हों, तथा नागरिक के कर्त्तव्य निभा सकें। इसके लिए तो बिना उसे, काम से पूरा अलग किए ही उसकी शिक्षा को जारी रखना होगा। उन देशों में निरीक्षित व्यवसाय-प्रशिक्षण में धीरे-धीरे कमी आने के कारण, तथा इस बात को स्पष्ट समझने के कारण कि युवा पेशेवर नागरिकों को शिक्षा देना तथा उनका पथ-निर्देश करना समाज की जिम्मेदारी है क्योंकि सफल नागरिकता के लिए उनकी सीमित स्कूली शिक्षा काफी नहीं होती, और इसलिए कि जीवन-भँवर में वे उसी समय प्रवेश करते हैं, जब वे यौवनावस्था की कठिन घड़ियों में कदम रख चुके होते हैं — वहाँ यह निर्णय अपनाया गया। करीब तीस ऐसे देश हैं, जहाँ इस प्रकार के अवकाश कन्टीन्युटी (Continuity) स्कूलों की व्यवस्था है। और चूँकि मेरे आँकड़े ताजे नहीं हैं, इसलिए हो सकता है यह संख्या और बड़ी हो। भारत इन देशों में नहीं है। जर्मनी को यह व्यवस्था शुरू किए हुए काफी दिन हो गए। म्यूनिक के जार्ज कर्शेन्स्टाइनर के कार्यों के परिणाम-स्वरूप जर्मनी के फोर्टबिल्डुंगशुलेन (Fortbildungschulen) अथवा, बाद में दिए गए नाम के अनुसार, बेरूफशुलेन (Berufsschulen) शिक्षा के सच्चे केन्द्र बन गए। कर्शेन्स्टाइनर के उदाहरण का अनुकरण यूरोप के बहुत-से देशों तथा अमेरिका के बहुत-से राज्यों ने किया। यह शिक्षा शुरू में उन युवकों को दी जाती थी, जो वाणिज्य [illegible] में काम करते थे, किन्तु अब कृषि, खान तथा अन्य कामों लगे हुए व्यक्तियों को भी यह [illegible]। [illegible] इसका प्रारम्भ सन्ध्याकालीन कक्षाओं के रूप में हुआ था, पर अब [illegible] में कुछ निश्चित घण्टों के लिए विद्यार्थियों की उपस्थिति पर जोर देते हैं, और इन अवकाश [illegible] विद्यार्थियों द्वारा बिताया गया समय, उनके द्वारा अपने-अपने कामों में बिताए गए समय के [illegible]

भारतीय शिक्षा-व्यवस्था मे अभी बहुत-कुछ करने की जरूरत है। लेकिन आवश्यक काम पहले होने चाहिए। कुछ शिक्षा ऐसी है जो सभी बच्चो के लिए है। राष्ट्र का कर्त्तव्य है कि इस उत्तरदायित्व को वास्तविक रूप मे पूरा किया जाए। कम से कम सातवर्षीय अनिवार्य शिक्षावाला कार्य-प्रधान स्कूल खोला जाए, जिसका सगठन, उन तीनो लक्ष्यो के साथ, जिनका मैने उल्लेख किया था, एक समुदाय के रूप में किया जाए। सैद्धातिक अथवा पुस्तकीय शिक्षा के एकपक्षीय केन्द्र के स्थान पर इसे व्यावहारिक तथा मानवीय शिक्षा का बहु-पक्षीय केन्द्र बनाना होगा, क्रियाहीन किताबी ज्ञान का स्थान न होकर इसे क्रियाशील, उद्देश्यपूर्ण कार्य का स्थान बनाना होगा--ऐसे कार्य का, जिसकी योजना विचारपूर्ण हो, जिसे ईमानदारी से पूरा किया जाए, जिसकी खरी आलोचना को जा सके, जिसकी उदार ढग से सराहना की जा सके। १४ साल की आयु पर विद्यार्थी को यह सुविधा दी जाए कि वह अपनी पढाई जारी रखने के लिए किसी अवकाश व्यावसायिक शिक्षण-सस्था (Continuation vocational institute) मे जा सके, जहाँ १ वर्ष की आयु तक उसे खण्डकालिक (Part time) अनिवार्य शिक्षा दी जाए। तभी हम न सिर्फ ठीक शिक्षा की, बल्कि मजबूत तथा गतिशील प्रजातन्त्री समाज की भी नीव डाल सकेंगे।

काम की जिम्मेवारी तो सरकार ही सँभालेगी, किन्तु इसकी सफलता अधिकतर शिक्षको तथा भारत के नागरिको पर ही निर्भर होगी।

आज मेरे श्रोताओ मे कुछ शिक्षक हो, तो मुझे आश्चर्य नही, किन्तु मुझे भय है, उनमे प्राथमिक या बुनियादी स्कूलो के शिक्षक ज्यादा नही होगे। वे आम तौर से विज्ञान-भवन मे नही आते। आकाशवाणी को हमारा धन्यवाद कि इसके द्वारा, मेरे शब्द उन बहुत-से शिक्षको तक पहुँचेगे, जो विज्ञान-भवन मे उपस्थित नही है, किन्तु फिर भी प्रारम्भिक तथा बुनियादी स्कूल के बहुत-से शिक्षको तक नही पहुँचेगे। साधारण तौर पर वे अग्रेजी-प्रसारणो को नही सुनते। किन्तु चूँकि अपने अधिकाश जीवन में मै स्वय एक शिक्षक रहा हूँ और परिस्थितियो के अद्भुत सयोग से मेरा शिक्षा-प्रक्रिया की सभी अवस्थाओ से सम्बन्ध रहा है, किडरगार्टन से लेकर, बुनियादि, और माध्यमिक शिक्षा के जरिए, विश्वविद्यालय की शिक्षा तक, इसलिए मैने शैक्षिक वृत्ति की एकता की भावना बना ली है। दुर्भाग्य, जातीयता के भूत से पीडित हमारा समाज इस एकता को तोडकर, अलग-अलग हिस्से तैयार करना चाहता है। यदि मै किसी जादू के जोर से शिक्षण-कार्य में सलग्न व्यक्तियो के बीच इस अत्यन्त गहन अन्त सम्बन्धित क्रिया (शिक्षण-क्रिया) की एकता की भावना पैदा कर सकता, तो मेरा जीवन कुछ सफल होता। किन्तु निराशापूर्ण सम्भावना तो सामने आएगी अवश्य, क्योकि वह जादू मे लाऊँगा कहाँ से ?

फिर भी, यहाँ मौजूद अपने शिक्षक-बन्धुओ को तथा उनके द्वारा अपने इस बडे देश मे फैले बाकी दूसरे शिक्षक-बन्धुओ को मै दो शब्द कहना चाहता हूँ। उन्हे कहने के लिए मेरे पास कोई नई बात नही। इन तीस वर्षो से, बल्कि और अधिक समय से मै शिक्षक-श्रोताओ को वही बात कहता आ रहा हूँ। मै उन्हे उनके महान् दायित्व की याद दिलाना चाहता हूँ। यह दायित्व वे देश के प्रति रखते है, जो कठिनाई से जीती हुई अपनी स्वतन्त्रता की नीव पर, राष्ट्रीय महानता का भवन खड़ा करने में सलग्न है। वे शिक्षित व्यक्ति है, जिन्हे स्वतन्त्र और नैतिक व्यक्तित्व की हैसियत से उस समाज की, जिसके लिए वे काम करते है, नैतिक उन्नति के लिए चिन्तित होना चाहिए। उन्हे याद रखना होगा कि वे इस नाते, उन

उच्चतम मूल्यो के सरक्षक है जिनकी आकाक्षा और रचना जनता करती है, और मानव की सस्कृतियो मे जो सबसे अच्छी बाते है, उनमे अधिकाश का सुन्दर प्रतिनिधित्व स्वय शिक्षको के व्यक्तित्व मे है। यदि उनमे से कुछ ऐसे है, जिनका मर्म ऐसे कुछ मूल्यो से कभी छू न गया और उन्होने इनका मीठा दर्द कभी न जाना, तो सच मे, उनका स्थान शिक्षको मे नही है। जो इस प्रकार कभी द्रवित नही हुआ, जो कम से कम कुछ देर के लिए ही किसी भी उच्चतम मूल्य के सम्मोहन का शिकार होने का मजा न ले पाया, जो निस्तेज है, और जो अपने क्षुद्र भौतिक अस्तित्व से आगे किसी भी मूल्य के सबध मे निस्तेज रहने की सम्भावना दिखाता है, ऐसे व्यक्ति को शिक्षक बनने या बने रहने का विचार, वास्तव मे, नही करना चाहिए। अपने व्यक्तित्व-द्वारा, तथा सस्कृति के उपकरणो-द्वारा, जो उसके औजार है, शिक्षक को अपने विद्यार्थियो तक इन उच्चतर मूल्यो को पहुँचाने मे सहायक बनना पडता है। किन्तु यदि उसने स्वय ही इन्हे नही जाना, इनका अनुभव नही किया, प्राप्ति के लिए बराबर उठने-वाली कभी उनकी पुकार न सुनी, तो फिर वह इन्हे किस प्रकार विद्यार्थियो तक पहुँचा सकता है, किस प्रकार इन्हे उनमे प्रज्वलित कर सकता है? इसके अलावा, एक अच्छे शिक्षक को सामाजिक ढग का व्यक्ति भी होना चाहिए। इस ढग का उल्लेख मैने अपने प्रथम व्याख्यान मे किया है। शिक्षक के कार्य का सार यह है कि यह विद्यार्थियो की आवश्यकताओ के प्रति सहानुभूति तथा उनकी प्रतिभा की समझ-द्वारा, उनमे इन मूल्यो की प्राप्ति की चेष्टा करे। उसकी मुख्य व्यस्तता विकसित होते हुए अपरिपक्व जीवन से ही है, कलियो-जैसे व्यक्तित्व से है। अपने विद्यार्थी पर वह किस तरह का प्रभाव डालेगा, इस सम्बन्ध मे शिक्षक अपने विद्यार्थी की विशिष्टताओ का ध्यान रख अपना निर्णय करेगा। कली के पूर्ण प्रस्फुटन के लिए शिक्षक को उसकी सहायता करनी होगी, अपने मन की लहर पूरी करने के लिए कागज के फूल नही बनाने होगे। उसके प्रयासो का उद्देश्य और लक्ष्य, नैतिक रूप से स्वतन्त्र व्यक्तित्व का विकास है, सस्कृति के उपकरणो का प्रयोग जो उसके कार्य के औजार है, तुच्छ नकले तैयार करने वाले साधन के रूप मे नही करेगा। सच्चा शिक्षक तो विद्यार्थियो को उनके आन्तरिक नैतिक स्वातन्त्र्य की प्राप्ति की दिशा मे ले चलता है जिससे वह उस निज अपूर्ण समाज के नैतिक उत्थान का प्रयास कर सके, जिसके सदस्य, विद्यार्थी तथा शिक्षक, दोनो हैं। इस लक्ष्य की उपलब्धि के लिए उसे काम करना होगा— और कोई भी अच्छा प्रजातन्त्री समाज इस लक्ष्य की पूर्ति चाहेगा— तो, शिक्षक को काम करना पडेगा चाहे इस अनिवार्य नैतिक कर्त्तव्य के लिए उसे अपने अपूर्ण समाज-द्वारा फेके गए पत्थरो की चोट से जान भी गँवानी पडे। उसको सोचना होगा कि सुकरात और क्रीस्ट तथा हुसैन और गाधी व्यर्थ ही पैदा न हुए थे, न ही उन्होने व्यर्थ ही अपने को बलिदान किया। शिक्षक का काम आज्ञा देना और शासन करना नही है, उसका काम है सहायता देना और सेवा करना। विश्वास, प्रेम और आदर को समझना और ग्रहण करना। व्यक्ति तथा समुदाय मे ठीक सन्तुलन पैदा करने के लिए उसके कार्य मे उसके सम्पूर्ण अनन्त प्रेम की तथा उसके अक्षय धैर्य की जरूरत है। जैसा आप जानते है, व्यक्ति तथा समुदाय, दोनो मे से प्रत्येक का महत्व बढा-चढ़ाकर बताया गया है। अब यह शिक्षक का काम है कि दोनो मे सामजस्य लाए। अन्य लोग तो इस प्रश्न पर पक्षपाती बन जाते है किन्तु शिक्षक वास्तविकता से परिचित होता है। उसे मालूम है कि व्यक्ति समष्टि का केवल रजिस्टर्ड नम्बर, परिचय पत्र (Identity card) अथवा सख्या नही। यदि वे विद्यार्थी जिन्हे वह कार्य तथा ज्ञान और अनुभव के माध्यम से विकसित कराएगा, अपने-अपने विशेष ढग से परिपूर्ण तथा सक्रिय सन्तोषप्रद जीवन की माग नही करते, तो शायद स्वय जीवन ही सत्य नही,

मिथ्या कथा हो। दूसरी ओर शिक्षक यह भी जानता है कि समूह केवल व्यक्तियो का योग ,अथवा सगठन के लिए रचा गया कोई सुलभ सिद्धान्त-मात्र नही है। वह जानता है कि व्यक्ति जीवन को समझने और इसको बदलने की शक्ति समूह से पाता है। लेकिन शिक्षक यह भी जानता है कि कितनी आसानी से समूह का विचार गिरकर दमन के साधन के रूप मे बदला जा सकता है। आनन्द से थिरकते, चपल पैरों की तालमय गति मे तथा आक्रमणकारी सेना के बढते हुए भारी बूटो की आवाज में थोडा-सा फर्क है। शिक्षक के लिए यही फर्क यही भेद, महत्वपूर्ण है, और उसे ऐसा अनुभव होता है, कि, अवसर दिये जाने से, उसे उन व्यक्तियो के विकास मे योग देना चाहिए जो खुश हो, साथ-साथ चलेगे, और अपने स्वार्थ से परे उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए अदम्य उत्साह के साथ मिलकर काम करेगे।

मेरे शिक्षक-बन्धुओ! आशा करता हूँ, शिक्षको को बन्धु का सम्बोधन करने का मेरा अधिकार मुझ से छिना नही है। रूप चाहे कितना भी बदल गया हो, अब भी मै अपने को शिक्षक-समुदाय का ही समझता हूँ। मैने शिक्षक-समाज की सेवा की है इस भावना के कारण तथा मेरे विचार में इसके जो उद्देश्य है, उनके साथ अपने मिल जाने की भावना के कारण, मुझे अपने को अब भी शिक्षक-वर्ग मे गिनने की शक्ति मिलती है, हॉ तो मेरे शिक्षक-बन्धुओ! हमे एक महान् चुनौति का सामना करना है। हम लोग वीरता पूर्वक इसका सामना करे। हमें सदा ही उस समय तक बैठे नही रहना चाहिए कि दूसरे लोग कार्य-निर्धारण करे, और हम मन्त्रवत्, चेतनाविहीन रूप से उसके पालन को तैयार हो जाएँ। हम एक स्वस्थ व्यवसायिक मत, राष्ट्रीय कर्तव्य की उच्च व्यवसायिक भावना तैयार करे। हम लोग पैसा कमाने-वाले वे मजदूर नही है, जैसा हमारे देश के लाखों-लाख लोग है, कि किसी तरह के जीवन-यापन के लिए वे वह काम करते है जिसे वह समझ नही पाते, ऐसे कामो पर जीतोड मेहनत करते है जिसका उनके लिए कोई अर्थ नही, जो उनके जीवन को कोई अर्थ नही प्रदान करता। हाथ के कामो मे हमे बुद्धि निरपेक्ष नैतिकता तथा सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना फूकनी होगी और बौद्धिक कार्यो को स्पष्ट उद्देश्यपूर्ण क्रिया की मजबूत नीव पर आधारित करना होगा।

अन्त में भारतीय स्कूलो की ओर से अपने नागरिक बन्धुओ को दो शब्द कहना चाहता हूँ। दोस्तों, मै आपसे निवेदन करूगा कि हमारे स्कूलो को आप उनका उचित स्थान प्रदान करे। शून्य मे स्कूलो की स्थापना नही होती। वह समाज का अभिन्न तथा कोमल अग है। स्कूल समाज के जीवन में उदाहरण (आदर्श) की तलाश करता है और उससे प्रभावित होता है। इसलिए मै आप सब लोगो से, जो जीवन के हर तरह के क्षेत्र में है, ऐसी सार्वजनिक सहायता तथा सहयोग की भावना चाहता हूँ कि प्रतिदान-स्वरूप स्कूली समुदाय मे भी ऐसी ही भावना का पूर्ण विकास हो, कि स्कूलो को भी ऐसी भावना की कमी की शर्म न उठानी पडे। मै आपमे पारस्परिक सहिष्णुता की याचना करता हूँ, ताकि भविष्य के युवक यह समझे कि वह अपने विकास के लिए जगह बनाकर, तथा अपने ढग से अपने को व्यक्त कर तथा अपना व्यक्तित्व जता कर, वह किसी अधिकार की माँग नही कर रहे, जो समाज के व्यस्क तथा प्रभावशाली सदस्य स्वभावत एक-दूसरे को नही देते। सामाजिक उद्देश्यो मे व्यक्तित्व का प्रकाशन, इस सुविधा के अतिरिक्त और कुछ नही कि वह कोई सफल ढग से समाज की सेवा करे। व्यक्तित्व का यह प्रकाशन, किन्तु अनिच्छुक हाथो से छीनी गई सुविधा नही वल्कि वस्तुत एक अधिकार है, जो मुक्त रूप

से दिया और खुशी से लिया जाता है, और सबसे बढ़कर तो यह कि सभी समुदाय मिल-जुलकर काम करें, चाहे वे छोटे हों या बड़े धर्म, या भाषा पर आधारित हों, या जाति अथवा किसी दूसरे प्रकार के दलीय स्वार्थों पर। स्कूल ऐसा भी हो सकता है, जो एक-एक छोटे तथा विशिष्ट समुदाय को लेकर बना हो, और जहा लोग केवल स्कूल के हित मे सहयोग देते हो, या ऐसे कौशल सीखते हो, ऐसी आदते बना लेते हो, जिनका उपयोग वे निजी लाभ के लिए करते हो, समाज की तरफ से पाये अवसर और सुविधाओ के बदले वे समाज को कुछ देते हो हमे ऐसे स्कूल भी नही चाहिएँ। यह भी सम्भव है कि किसी स्कूल मे छोटे-छोटे लडके-लडकियाँ कोई काम सीख ले, पर अपने आगे के जीवन मे वे केवल एक छोटे-से दल या समुदाय के हित मे लग जाएँ, तथा जान-बूझकर या अनजाने ही, अधिक विस्तृत तथा महत्व पूर्ण मानवीय मूल्यो की उपेक्षा कर बैठे। हमे ऐसे स्कूल भी नही चाहिए। महान् मूल्यो से विमुख करा के, हमे क्षुद्र स्वार्थ मे विद्यार्थी की आस्था नही जगानी चाहिए। यह उचित ही है कि आप ऐसे स्कूल चाहेगे जहाँ सभी सदस्य अनुशासन को ग्रहण करे, जो स्कूल के कार्य के लिए आवश्यक है, और आप स्कूलो से इस प्रकार की व्यवस्था की अपेक्षा करेगे कि सम्पूर्ण स्कूल-समुदाय को यह अनुभव हो कि वह जनता की, जनता से परे मानवीय मूल्यो की, तथा—साधारण शब्दो मे कहे तो—ईश्वर की सेवा कर रहा है। यह चरम, सर्वव्यापी आस्था सर्वोच्च मूल्य के रूप मे सबसे आगे होनी चाहिए। ईश्वर की सेवा हम किस तरह कर सकते हे—केवल अपने देश की सेवा-द्वारा, अपने पड़ोसी, अपने व्यक्ति-बन्धुओ की सेवा-द्वारा, इसके लिए स्कूल आपकी सहायता चाहेगा। यदि आप जाँच मे सफल न हुए, यदि आपने अपने जीवन के उदाहरणो से स्कूल-समुदाय मे यह विश्वास न पैदा किया, अपने स्नेह, सेवा, सहानुभूति तथा आस्था मे आप व्यक्तिगत तथा पारिवारिक हितो तथा वर्गीय स्वार्थो से ऊपर नही है, तो बाकी चीजो का अधिक महत्व नहीं होगा। अपने देश के भविष्य के लिए, अपने बच्चो के लिए, जिन्हे आप कुछ भी देने से जल्दी इन्कार नही करते, आप स्कूल के बाहर के जीवन मे, जिस जीवन का निर्माण आपमे से हर कोई करता है, ऐसा जनमत तैयार करे, सहायता, सहयोग, निरपेक्षता, उच्चतम उद्देश्यो के प्रति सेवा और भक्ति की ऐसी आदते बनाने मे योग दे, केवल जिनमे ही सच्ची मानव-जाति की तरह सच्चा स्कूल भी पनप सकता है। शैक्षिक कार्य का पुनर्निर्माण तथा जनता का नैतिक पुनर्जागरण, दोनो अभिन्न रूप से एक-दूसरे से सम्बद्ध है। आइए, इन दोनो मे हम हिम्मत से हाथ लगा दे।

— — — —

अच्छा अध्यापक

[१७ मई १९६५ को गुलाबपुरा स्थित विद्यालय के रजत जयन्ती समारोह में डा० जाकिर हुसैन का भाषण]

मुख्य मत्री जी, विद्यालय में काम करने वाले शिक्षको और विद्यार्थी भाइयो तथा बहनो सबसे पहले मुख्य मत्रीजी का शुक्रिया अदा करता हूँ कि जिन्होने इस अवसर पर मुझे याद किया। मै अपने जीवन का बडा हिस्सा शिक्षा के क्षेत्र मे बिता चुका हूँ, इस लिए कुछ ऐसा हो गया हूँ कि जब कभी किसी विद्यालय में जाना होता है चाहे बडा हो चाहे चाहे छोटा, जितना छोटा है उतना ही अच्छा होता है, मुझे ऐसा लगता है जैसे कि भटका हुआ मुसाफिर अपने घर में पहुँच गया है। जोवन का बडा हिस्सा बिता कर पिछले कुछ सालो मे मैं कुछ भटक गया हूँ इसलिए बहुत खुशी होती है जब किसी अच्छे विद्यालय मे जाता हूँ। मैने गाधी विद्यालय के बाबत सुना है। जानने वालो से तथा रिपोंट द्वारा भी जो मालूम हुआ है उससे मुझे यह अन्दाजा होता है और उम्र भर शिक्षा का काम करने से अटकल भी हो गई है। जब कभी अच्छे विद्यालय को देखता हूँ तो समझ लेता हूँ कि अच्छा है मै अच्छे विद्यालय मे हूँ।

लेकिन मै यह कहना चाहता हूँ कि अच्छे से-अच्छा विद्यालय हो सकता है। कोई विद्यालय ऐसा नही है जो यह कहा जा सके कि और अच्छा नही हो सकता। इसलिए इस रजत जयन्ती के अवसर पर इसके काम करने वालो को यह कहता हूँ कि जो कुछ भी कर लिया है, यह अच्छा है जितना कुछ कम है उसके लिए कोशिश करो। इस कोशिश मे ढीले मत पड़ जाना कि यहा सख्या बढ जायगी तो अच्छा हो जायगा। या कालेज हो जायगा तो अच्छा होगा। बुरे कालेज से अच्छा हाई स्कूल अच्छा होता है और

बुरे हाई स्कूल से मामूली हाई स्कूल अच्छा होता है और बुरे हाई स्कूल से किंडर गार्टन अच्छा होता है एक अच्छा किंडर गार्टन बुरी युनिवर्सिटी से अच्छा होता है। जो काम करे अच्छा करे जो स्कूल हो वह स्कूल अच्छा हो। गाँवी विद्यालय को कालेज बनाने से अच्छा नही हो जायगा। संख्या बढने से नही हो जायगा इससे होगा कि इसके अन्दर काम अच्छा हो।

मुखाडिया जी ने यह सब कुछ कह दिया जो मुझे कहना था। इमारत बनाने से विद्यालय अच्छा नही बनता है अच्छे शिक्षको से बनता है, और अच्छे विद्यार्थियो से बनता है।

शिक्षक भी बहुत मेहनत करे और विद्यार्थी साथ न दे तो विद्यालय नही बनता है। और विद्यार्थी जान खपादे और शिक्षक ध्यान न दे तो भी अच्छा विद्यालय नही बनता है। विद्यालय दोनो के योग से अच्छा बनता है। जहाँ अच्छे विद्यार्थी अच्छे शिक्षक जमा हो जाते है, वहा बुरा विद्यालय भी अच्छा बन जाता है। इसलिये मुझे उम्मीद है कि आप इस विद्यालय को दिन प्रतिदिन ऊचा उठाने की कोशिश करेगे।

कहने को तो मैने कह दिया परन्तु मै यह जानता हूँ कि सोहन सिह जी के दिल मे भी इसका ख्याल पैदा हुआ होगा कि अच्छा हो तो कैसे अच्छा हो। अपनी जानकारी के लिहाज से मै समझता हूँ कि अच्छे विद्यालय मे जो चीज होनी चाहिये वह बयान करता हूँ।

पहली बात तो मैं यह समझता हूँ कि हर विद्यार्थी का झुकाव देखना होगा। हर विद्यार्थी के मस्तिष्क की बनावट अलग अलग होती है कोई उससे हटाया नही जा सकता। सब विद्यार्थी भेडो की तरह हाके नही जा सकते, एक एक विद्यार्थी को नजर मे रखना पडता है। आपको परीक्षा के काम है और उनके कायदे कानून नियम है उसकी वजह से एक एक विद्यार्थी पर ध्यान देना मुश्किल है लेकिन अच्छे विद्यालय के शिक्षक बराबर इस धुन मे लगे रहते है कि किसी तरह व विद्यार्थी के लिये वह करे जो उसके लिये जरुरी है, वहा हर वक्त ख्याल नहीं रखा जा सकता इसीलिये हर जरूरी काम को अलग अलग समझना यह शिक्षक का बहुत बडा फर्ज है।

दूसरी चीज अच्छे विद्यालय मे होती है और होनी चाहिए वह यह जानना है कि हर विद्यार्थी यात्रा मे होता है, वह एक जगह से दूसरी जगह जाता है, उसका मस्तिष्क एक जगह से दूसरी जगह जाता है। एक जगह का काम इसलिये किया जावे कि वह आगे जहाँ जाने वाला है मदद दे और उसने उस काम को बताये उसकी जो परीक्षा होने वाली है केवल रटाई कराई जाती है। १० वर्ष मकारथ है परीक्षा तो अच्छी हो जाती है परन्तु मजिल को नही पहुँचाती।

कोई जमाना होता है जब बच्चा खेलना चाहता है। उसे खेल से अलग कर काम मे लगाना उसकी शिक्षा को खराब करना है। फिर वक्त आता है तब अपने लिए काम करना चाहता है और उसे दूसरे के लिए काम मे लगाना उस पर समय खराब करता होता है।

वह यात्रा में जिस जगह है उस जगह को समझना उस जगह का प्रबन्ध करना यह अच्छे विद्यालय का काम है। हर जगह अपना रस होता है और जगह आगे की तैयारी होती है ये दोनो बाते सामने रखनी चाहिये।

तीसरी बात जो अच्छे विद्यार्थी को ध्यान में रखती चाहिये वह यह है कि विद्यार्थी के जीवन को टुकड़े-टुकड़े नहो समझना चाहिये। उसकी वृद्धि तो आपने परख ली, पर इससे ऐसा नही है कि उसकी वृद्धि को आपने तरक्की दे दी, नैतिक तरक्की दे दी। ऐसा नही है कि उसको अलग तरक्की दे दी। सब मिले—जुले है उसकी नैतिक और बौद्धिक और शारीरिक तरक्की अर्थात इसका प्रारम्भ-साथ साथ होना चाहिए।

चौथी बात है कि अच्छे विद्यालय मे सब काम, काम के ढग से हो, मस्तिष्क का काम भी और हाथ का काम भी। मस्तिष्क का काम भी हाथो से होता है और हाथों का काम भी मस्तिष्क से होता है। हर काम के लिए मालूम करना है कि काम क्या है? फिर कैसे करना है और साधन क्या है?

पाचवी बात है काम करने के बाद जॉच करना चाहिए कि यह काम वही है जो मैं करना चाहता था। नैतिक फैसला हो चाहे बौद्धिक मामला हो चाहे कोई हाथ का काम हो, इन पाचो बातो को ध्यान में रखा जाये तो काम बनता है। शिक्षा ऐसी हो। मेरे ख्याल से सिर्फ काम से शिक्षा होती है। यह तो मशहूर है कि बेसिक ऐज्यूकेशन बुनियादी शिक्षा से मेरा सम्बन्ध है, इसमे काम को रखा गया है इसके लिए यह नही समझना चाहिए कि मैं केवल हाथ के काम को महत्व देता हूँ। बौद्धिक काम को भी महत्व देना चाहिए। इसका विद्यालय के सारे काम के साथ सम्बन्ध जोडना चाहिए।

छठी बात, कि विद्यालय को एक समाज समझना चाहिए। विद्यालय मे अकेले का, समाज का काम भी मिला हुआ रहता है। हर शिक्षक व विद्यार्थी का काम सारे समाज के लिए होता है और इसकी बुराई से सारा विद्यालय बदनाम होता है। हर एक की बुराई से सारा समाज बुरा होता है, इसको समाज समझना चाहिये और इस समाज के कुछ नियम होने चाहिए, तथा कुछ परम्परा बननी चाहिए। कभी ऐसा हो कि गाधी विद्यालय के बालक के लिए कोई कहे कि बालक ने झूठ बोला है, तो हैड मास्टर खडे होकर कह सके कि मेरा लडका झूठ नही बोलता। मै ऐसे मदरसे जानता हूँ ऐसे विद्यालय जानता हूँ जिनके हैड मास्टर कहते है कि मेरा बच्चा झूठ नही बोल सकता। चोरी में पकडा जाता है, पुलिस आती है तो वे कहते है कि मेरा लडका चोरी नही कर सकता। यदि बच्चे ने झूठ बोला तो वह कह सकता है कि मेरा लडका झूठ नही बोल सकता है और यह सही साबित होता है। इसलिये इस समाज के ऐसे नियम है और ऐसी परम्परा है कि वहा लोग समझते है, वहा झूठ नही बोल सकता, चोरी नही कर सकता। बहुत सी चीजे है इनकी आदते हो जानी चाहिए, नियम बन जाने चाहिए, परम्पराये बन जानी चाहिए। हिम्मत से अपने दिल की बात कहने के लिए नियम और एक दूसरे को सहारा देने तथा सहारा लेने के नियम हो जाये तो समाज अच्छा समाज बन जाता है। विद्यालय का समाज और वह फिर सारे समाज के लिए बीज का काम देता है और सारे समाज को अच्छा कर देता है। इससे बच्चो की, जो विद्यार्थी है उनकी, नजर सध जाती है। इनकी पसन्द निखर जाती है, उनका जीवन अच्छा हो जाता है। किसी ने ठीक कहा है कि हुनर तो अकेले ही बनता है

लेकिन परसनलिटी हुनर से नही वनती है, समाज से वनती है, इसलिए स्कूल को समाज वनाना चाहिये और उनसे अच्छे से अच्छा विद्यार्थी पैदा करना चाहिये ।

सातवी वात : जव विद्यार्थी विद्यालय छोड कर जाय उसके दिल मे यह लगन पैदा हो कि मै उमर भर अपनी शिक्षा के काम को जारी रखू गा, । उसे जानना चाहिए मनवाना चाहिये और यकीन दिलाना चाहिए कि वह यात्रा का अ त करने नही आया है । उसकी उम्र भर शिक्षा का काम आप करने की ओर ख्वाहिश होनी चाहिए ।

आप ऐसा कर देगे तो विद्यालय वहुत अच्छा विद्यालय हो जायेगा और मै तो यह समझता हूँ कि इसमे ये सव वाते होगी ही जो होनी चाहिएँ और जो कम है उनको वढाना चाहिये और फिर रजत जयन्ती पर वडी खुशी मना सकते है, हिम्मत से आगे वढ सकते है ।

लेकिन यह वात तो मैने विद्यालय से कही । एक वात मै आपसे कहना चाहता हूँ जो विद्यालय मे नही है किन्तु विद्यालय को पसन्द करते है । विद्यालय वडे समाज का अङ्ग होता है अगर वडा समाज खराव है तो छोटा समाज वहुत मुश्किल से ठीक हो सकता है । छोटा समाज, आपका समाज आपकी तरफ ताकता है और ताकता हुआ आपकी एक–एक भूल को देखता है, आपकी एक-एक अच्छाई को देखता है और एक-एक वुराई को देखता है । अगर आप मे वुराई ज्यादा फैली हुई है, तो उस समाज मे भी वुराई ज्यादा हो सकती है. आपमे अच्छाई ज्यादा है तो अच्छाई ही पैदा होती है, इसलिए आप विद्यालय को अच्छे जीवन का नमुना दीजिये अपने जीवन को अच्छा वनाइये, अपने व्यवहार को अच्छा वनाइये । आप अपने व्यवहार को ठीक करे । साथ मे जो छोटा समाज अपने विद्यालय मे वन रहा है जिससे हमारी आगे की वहुत सी उम्मीदे है वह अच्छा समाज वन सके, आगे की उम्मीद विद्यालय से ही है । मैने वार-वार कहा है, फिर कहता हूँ अगर इस देश मे हर चीज अच्छी होगी, वैसे ससार मे हर चीज अच्छी नही है आप भी जानते है, शिक्षा अच्छी वही होगी तो मै चैन से नही मर सकता । मै यह समझता हूँ देश विगडता है जव शिक्षा अच्छी नही हो और सव कुछ अच्छा न हो तो फिर चैन मे मरना मुश्किल है । लेकिन सव कुछ विगडा हुआ हो और ईश्वर जानता है कि सव कुछ विगडा हुआ नही है, लेकिन सव विगडा हुआ हो और शिक्षा अच्छी हो तो मै चैन से मरु गा । यह देश अच्छा हो जायगा, और उभर जायगा । शिक्षा का वडा स्थान है । मुझे उम्मीद है कि आप सव काम करने वाले है, जैसे कि विद्यालय मे काम करने वाले मलूम होते है, वे इस विद्यालय को एक आदर्श विद्यालय वनायेगे । मोहन सिह जी को तो आदर्श शिक्षक का सम्मान मिल ही चुका है ।

मुझे उम्मीद है यह विद्यालय आगे वढेगा दिन पर दिन तरक्की करेगा, सख्या वढने से नही अपने काम का शिक्षा के गुण भरने मे, और विद्यालयो को भी इसे देख कर आगे वढने की इच्छा होगी ।

मुझे कुछ ऐसा लगा कि वह तंगी और बे-सामानी के दिन अच्छे ही दिन थे, सामान नही था, अरमान थे। दौलत नही थी, हिम्मत तो थी। सामने एक आदर्श था, जिसमें एक लगन थी, अधिकार माँगने पर ध्यान नही था कर्तव्य पूरा करने की धुन थी, वेतन वढने का अवसर कह था, जान खपाने में जी सुख पाता था। हर बच्चा, हर स्नातक जो हमारे पास कुछ पढने, सीखने, बनने के लिए आता था उसकी आखों में हमे आजादी की चमक दिखाई दी थी। हमसे गुलामी ने जो कुछ छीन लिया था वह सव हमे एक गाधी, एक टैगौर, अरविन्द, एक नेहरू, एक विनोबा छिपा लगता था, जो आगे चलकर अपने जीवन से, अपने काम से, अपने विचारो से देशका नाम उजागार कर देगा।

असली शिक्षा

[गुजरात विद्यापीठ में डा० जाकिर हुसैन के दीक्षांत भाषण का सारांश]

असली शिक्षा आदमी के अपने ही हाथो होती है। दूसरा घोडे को पानी तक ले जा सकता है, पानी पीना तो उसे आप ही पडता है। मेरी प्रार्थना आप सवसे, शिक्षको से भी, स्नातको से भी यही है कि इस काम को अपना काम बनाइए, ऐसा काम, जिससे मन का विकास हो। आप अच्छे आदमी वने, आप से यह वात भला क्यो छिपी होगी कि आदमी का मस्तिष्क अपने किये को परख कर, उसके अच्छे-बुरे पर नजर कर के ही उन्नति करता है। आदमी जव कोई काम करता है, चाहे हाथका काम हो, चाहे दिमाग का, तो उस काम से उसे मानसिक लाभ—उसी वक्त पहुच सकता है जव वह उस काम का पूरा-पूरा हक अदा करे, काम के लिए अपने को जरा तजे, अपने ऊपर कावू पाए। उससे लाभ शैक्षणिक उसी को होता है, जो उस काम के डिसिपलिन को अपने ऊपर ओढे। यह शैक्षणिक काम, मस्तिष्क का यह विकास मानसिक आहार पाकर वुद्धि के नियमो के अनुसार होता है।

मस्तिष्क को यह आहार मिलता है संस्कृति से, उसकी लौकिक और चीजो से, समाज की वैज्ञानिक व्यवस्थाओ से, समाज की कलाओ से, समाज के धार्मिक संस्कारो से, उसके धन्धो से, उसके नैतिक सिद्धान्तो से, समाज के कानून से, समाज के रस्म रिवाज से समाज की घरेलू जिन्दगी की सहूलियत से, समाज के गाव, कस्बो, शहरो के जीवन से समाज के शासन से अदालतो से, पाठशालाओ से, सबको सब से, नहीं किसी को किसीसे, किसीको किसी से । इस बात को फैलाकर कहने का यह समय नही है । मैं जो बात आज खास तौर पर आपसे कहना चाहता हूँ, वह यह है, इस मानसिक आहार मे समाज के बडो, अच्छो, सच्चो के जीवन-चरित्र से यह काम जितना होता है, या हो सकता है, वह शायद और किसी चीज मे नही हो सकता । और चीजो से जानकारी बढ जाती है, कुशलताए मुहय्या हो जाती है ।

इसी सच्ची शिक्षा के लिए समाज के अच्छो, सच्चो, नेको, बडो का जीवन-चरित्र, जैसा काम करता है और कोई चीज नही करती ।

उस महात्मा, महापुरुष का खास गुण है कि एक मामूली लडका होकर उसने अपनी सच्चाई से सच्चाई पर लडने की आदत से, अपनी मेहनत से, जिस काम मे हाथ डाला उसका हक अदा कर के, यह दर्जा हासिल किया । अदब से, हमेशा अच्छाई की तलाश से, चाहे कही से मिले, दूसरो की नेकियाँ और अच्छाइया ढूँढ-ढूँढ कर निकालने से, उनकी बुराइयो और कमजोरियो के दर गुजर कर के अपनी कमजोरियो पर कडी पकड करके उसने अपने जीवन की गोद नेकियो से मालामाल कर ली अपनी कमियो को एक-एक करके छाँट डाला और अपने को उस ऊ चे मरतबे पर पहुँचा दिया । उसकी बडाई कुछ पैदाइश के इत्तिफाक पर निर्भर न थी, कुदरत की बेहिसाब देन भी न थी । यह एक हिम्मत वाले मेहनती आदमी की उम्र भर की कोशिश का नतीजा था । अपने हाथो अपनी शिक्षा का फल था, उसने अपनी जिन्दगी की कच्ची धातु को मोहब्बत की भट्ठी मे तपा-तपा कर सच्चाई के निथरे पानी मे बुझा-बुझा कर और बेगरज सेवा और मेहनत के हथोडे मे पीट-पीट कर एक ऐसी खरी, ऐसी पक्की, ऐसी वजनदार, ऐसी सुन्दर, ऐसी दमकती जिन्दगी बनाई थी, जो शताब्दियो मे किसी को नसीब होती है ।

जिन्दी बनाने मे सब से पहले इच्छा शक्ति दरकार होती है । गाँधीजी के जीवन से यह सबक मिलता है कि इरादे को आजाद इरादा, इच्छा को आजाद इच्छा होना चाहिए । आदमी इरादा आप करे, यह नही कि दूसरा इरादा कर के थोप दे ।

अच्छे आदमी बनना और अच्छा समाज बनाना, अच्छे आदमियो को अच्छे समाज की सेवा मे लगाने के लिए तैयार करना – यह कोई एक या दो की जिन्दगी मे पूरा होने वाला काम है ? सच यह है कि यह तो कभी खत्म न होने वाला काम है । यह तो बराबर किये जाने और बराबर हुए जाने वाला काम है । हमे इस काम को करने का मौका दिलाने के लिए ही गाधीजी ने हमारे देश की आजादी चाही थी । आजादी हुई है बधनो से बेडियो से, बेजा पाबन्दियो से । गाधीजी ने आजादी किस लिए, दिलाई थी ? इस लिए कि हमारे इरादे आजाद हो, हम जो बन सकते है, वह बने, अच्छे आदमी बन सके, अच्छा समाज बना सके । अच्छे बनने और अच्छा समाज बनाने का जो रास्ता उन्होने बताया है यह मैं समझता हूँ कि तीन तरहो से बयान हो सकता है – अहिंसा, विज्ञान, काम ।

अहिंसा का रास्ता जैसा कि मैं समझता हूँ मोहब्बत का रास्ता है, सहन शक्ति का रास्ता है, पार्लियामेन्ट के इस्लाम, मनुष्यता के आदर का रास्ता है, आदमी को आदमी के जुल्म से बचाने का

रास्ता है दिलो की सफाई का रास्ता है, भाई को भाई से मिलने का रास्ता है, दुश्मन को दोस्त बनाने का रास्ता है, सच पर भरोसे का रास्ता है, अमन का सुलह का रास्ता है।

दोस्तो, हमे इस रास्ते पर चलकर एक नया देश, एक नया समाज बनाना है। जब तक इस देश मे आदमी आदमी पर जुल्म करता है, जब तक इस देश मे बसने वाले एक दूसरे पर भरोसा नही करते, जब तक यहा के बसने वाले हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई अपने को भाई भाई नही जानते और नही मानते, जब तक अमीर-गरीब को और ताकतवर कमजोर को उभरने नही देते, जब तक यहा किसी की मेहनत-मशक्कत से कोई दूसरा बेजा लाभ उठाता है, उस वक्त तक यह देश गाधीजी के विचारो का देश नही है। उनका काम बाकी है और मुझे और तुम्हे पूरा करना है। इसी को पूरा करने के लिए तो हमें आजादी मिली है।

दूसरा रास्ता विज्ञान का है। गाधीजी का सच पर जमना, समाजी एख्ला की मामलो में भी था और अपने ईर्द-गिर्द की कुदरत को समझने और इससे काम लेने के मामलो मे भी। दोनो मैदानो में सच का रास्ता ही भलाई का रास्ता है। एक मैदान में यह अहिसा और एखलाक और न्याय का रास्ता है और दूसरे मैदान में साइन्स और विज्ञान का। जब तक हमारे देश मे करोडो आदमियो को जीते-जी पेट भर खाना नही मिलता है, जब तक करोडो आदमियो को दुख-दर्द मे दवा नसीब नही होती जब तक हमारे देश मे आदमियों की जान मक्खियो और भुनगो की जैसी सस्ती है, जब तक इस देश मे करोड़ो आदमी अनपढ है और करोडो बच्चो को मदरसे जाना नसीब नही होता, उस वक्त तक अंग्रेजी साम्राज्य से निजात पा जाना ही काफी नही है। हमें इस देश के पहाड काटने है, समुन्दर पाटने है, खाने खोदनी है, नदियाँ मोड़नी है, इसके रेगिस्तानो को गुलजार बनाना है, जहालत को खत्म करना है, गरीबी को मिटाना है, रोगो को भगाना है, गाधीजी को आरजुओ वाला देश बनाना है। तो यह सभी करना होगा और यह सब विज्ञान के रास्ते से होगा।

मगर दोस्तो, याद रखो, अहिसा और विज्ञान खयाली बाते भी होकर रह जा सकते है, किताबी चीजे बन जा सकती है और बहुतो के लिए है भी। गाँधीजी की अहिसा और गाधीजी का विज्ञान खयाली और किताबी न था। इसलिए उन्होने एक तीसरा रास्ता बनाया था। वह काम का रास्ता है। अहिसा को भी जीवन में बरतना और विज्ञान को भी जीवन के लिए काम मे लाना, उन्होने अपने जीते ही यह करके दिखाया था।

राष्ट्र के प्रति हमारा दायित्व

[राष्ट्रपति के शपथ-ग्रहण के समय १३ मई १९६७ को दिये गये भाषण का सारांश]

स्वीकार करता हूँ कि हमारी जनता ने इस उच्चतम पद के लिए निर्वाचित करके मुझ पर जो विश्वास प्रकट किया है, उससे मै अधिक प्रभावित हुआ हूँ। यह भावना इस वजय से और भी प्रवल हो जाती है कि भारत के महान् सपूत डा० राधाकृष्णन् जी के वाद मुझसे इस पद को सभालने के लिए कहा गया है, जो वर्षो से मेरे पथ प्रदर्शक, दार्शनिक और मित्र रहे है और जिनके अधीन मुझे पिछले पाच साल से काम करने का अवसर प्राप्त हुआ है। मै उनके कदमो पर चलने की कोशिश करूगा, परन्तु उनकी बराबरी कैसे कर सकूगा। डा० राधाकृष्णन् ने राष्ट्रपति पद को बुद्धिमत्ता, पॉडित्य और ऐसा सुसम्पन अनुभव प्रदान किया, जिसका उदाहरण नही मिलता। ज्ञान तथा सत्य की खोज के लिए समर्पित सारे जीवन मे उन्होने भारतीय दर्शन के विचारो को, सभी आध्यात्मिक सिद्धान्तो के एकत्व को वताने तथा उन्हे स्पष्ट करने के लिए किसी भी अन्य व्यक्ति से, सम्भवत अधिक कार्य किया है। उन्होने मनुष्य की अन्तरतम मानवता पर विश्वास कभी नही छोडा और स्यय मिनुष्यो के इज्जत और इन्साफ के साथ रहने के अधिकार का सदा समर्थन करते रहे। शक्षा के क्षेत्र मे उनकी सेवाएं वहुमूल्य रही है। उप-राष्ट्रपति तथा राज्य सभा के सभापति के रूप मे उन्होने १० वर्ष तक राष्ट्र की अनुपम सेवा की और यह उचित ही हुआ कि इस कार्यकाल के उपरान्त वे राष्ट्रपति चुने गये। अपने पद से अवकाश ग्रहण करते समय उन्हे सारा राष्ट्र कृतज्ञता से धन्यवाद दे रहा है और उनके प्रति अपना प्रेमपूर्ण आदर समर्पित कर रहा है। हमारी कामना है कि वे अनेक वर्षो तक स्वस्थ और सुखी रहें।

आपको इतना ही यकीन दिला सकता हूँ कि मै इस पद को प्रार्थना-सहित और नम्रता से तथा सच्ची लगन से स्वीकार करता हूँ। मैने अभी भारत के सविधान के प्रति वफादारी की शपथ ली है। और देशो के मुकाबले यह एक नये राष्ट्र का सविधान है, जिसको स्वतन्त्र नागरिको ने अपने इतिहास में पहली बार अपने लिए अपनाया है। यह एक प्राचीन देश के लोगो का युवा राष्ट्र है, जिन्होने हजारो सालो में और अनेक जातियो के सहयोग से देश-काल से परे परम तत्वो को अपने जीवन मे अपने ढग से उतारने का प्रयास किया है। मै उन तत्वो का अनुसरण करने की प्रतिज्ञा करता हूँ। हालाँकि परिस्थिति के बदलने से कोई मूल्य पूरी तौर से साकार भले ही न हो सके, मगर वह मूल्य हमेशा वही रहता है और नित-नूतन अनुभव करने को प्रेरित करता है। अतीत कभी भी निर्जीव तथा गतिहीन नही होता। वह सजीव तथा गतिशील होता है और इसका निश्चय करता है कि हमारे वर्तमान और भविष्य का स्वरूप क्या होगा ! अपने अनूठे ढग से कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा है

हे शाश्वत अतीत
मैने तेरे आगमन का अपने रक्त मे अनुभव किया है,
कोलाहलपूर्ण दिवस के मध्य मैने तुम्हारी शाँत मुद्रा को देखा है।
हमारे भाग्य की अदृश्य रेखाओ में
हमारे पिता की अधूरी कथाएं
लिखने के लिए तुम्हारा आगमन हुआ है,
तुम नवीन बिम्बो को स्वरूप देने के लिए विस्मृत काल को फिर जीवन देते हो।

उसे बराबर जीवन देना ही असल में राष्ट्रीय सस्कृति और राष्ट्रीय चरित्र का विकास है। मेरे विचार से शिक्षा का लक्ष्य इस प्रकार बराबर नवीन जीवन देने में योग देना ही है और मुझे यह मानने के लिए माफ किया जाय कि इस ऊचे पद के लिए मै मुख्यत, यद्यपि पूर्णत. नहीं, इस कारण चुना गया हूँ कि मेरा अपने देशवासियो की शिक्षा से बहुत काल तक सम्बन्ध रहा है। मेरी यह धारणा है कि शिक्षा राष्ट्र के लक्ष्यो को प्राप्त करने का मुख्य साधन है। जैसी उनकी शिक्षा होती है, वैसा ही उनका स्वरूप भी हो जाता है। इसलिए मै अपने अतीत की समग्र सस्कृति के प्रति, चाहे वह जिस-जिस स्रोत से प्राप्त हुई हो, चाहे उसके निर्माण में जिस किसी ने भी योगदान किया, हो, अपनी निष्ठा व्यक्त करता हूँ। मै अपने देश की सम्पूर्ण सस्कृति की सेवा का व्रत लेता हूँ। मै अपने देश के प्रति अपनी वफादारी व्यक्त करता हूँ क्षेत्र व भाषा चाहे जो हो, मै उसे सशक्त और उन्नत बनाने और बिना जाति, रग और धर्म-भेद के अपने लोगो की भलाई के लिए कार्य करने का व्रत लेता हूँ। सारा भारत मेरा घर है और उसके लोग मेरा परिवार है। लोगो ने कुछ समय के लिए मुझे इस परिवार का कर्त्ता चुना है। मै सच्ची लगन से इस घर को मजबूत और सुन्दर बनाने की कोशिश करूगा, ताकि वह मेरे महान् देशवासियो का उपयुक्त घर हो जो कि एक सुन्दर जीवन के निर्माण के प्रेरणापूर्ण कार्य मे लगे हुए है, जिसमे इन्साफ और खुशहाली का अपना स्थान हो। यह परिवार बडा है और बराबर ऐसी गति से बढ रहा है जो अनुकूल नही है। हममे से हर एक को देश के नये जीवन के निर्माण कार्य मे अनवरत अपने-अपने ढग से भाग लेना होगा। हमे जो काम करने है, वे इतने जरूरी है कि कोई भी आराम से देखता नही रह सकता और देश में निराशा को जड़ पकड़ने नही दे सकता; स्थिति ऐसी है कि हम काम करे,

अधिक काम करे, शाति मे और सच्ची लगन से काम करे और अपने देशवासियो के समूचे भौतिक और सास्कृतिक जीवन का ठोस और सतुलित ढग से फिर निर्माण करे।

जैसा कि मै देखता हूँ इस कार्य के दो पहलू है—एक वह जो अपने लिए किया जाता है और दूसरा वह जो अपने समाज के लिए। असल मे ये दोनो सहायक अङ्ग है, जो कार्य को सफल बनाते है। अपने लिए जो कार्य किया जाता है, वह स्वतन्त्र और स्व-अनुशासित लोगो का नैतिक विकास के लिए है, जिसमे ही वह विकास सम्भव है। उसकी अन्तिम परणति स्वतन्त्र नैतिक व्यक्तित्व है। हम अपने आपको खतरे मे डालकर ही इस अन्तिम परणति की उपेक्षा कर सकते है।

यह अन्तिम परणति तभी स्थायी हो सकती है जब इसमे न्यायपूर्ण और सुन्दर जीवन के अनुरूप समाज के निर्माण को चेष्टा तथा शक्ति निहित होगी। किसी व्यक्ति का पूर्ण विकास तब तक नहा हो सकता जब तक कि सामूहिक रूप मे समाज मे उसके व्यक्तित्व का उसी प्रकार विकास न हो। हम सब व्यक्तिगत और सामाजिक कार्यो मे पूरे दिल से लगने का सकल्प करे। यह दुहरा प्रयास राष्ट्र के जीवन को एक विशेष सौरभ प्रदान करेगा, क्योकि राष्ट्र हमारे लिए शक्ति का सगठन मात्र न होगा, किन्तु वह एक नैतिक सस्था होगा। हमारे राष्ट्र का यह स्वभाव है और हमारे स्वतन्त्रता सग्राम के महान् नेता महात्मा गाँधी की यह विरासत है कि शक्ति का उपयोग नैतिक उद्देश्यो के लिए ही किया जाय। समर्थ लोगो को शाति प्राप्त करने के लिए ही हम प्रयत्न करेगे। हमारे राष्ट्र के भविष्य की कल्पना मे विस्तारवादी विचारो और साम्राज्यवादी विकास का कोई स्थान नही होगा और हम हमेशा उद्दड देश-प्रेम से दूर रहेगे। हम यह कोशिश करेगे कि हरेक नागरिक को कम-से कम वे चीजे हासिल हो, जो सुन्दर मानव-जीवन के लिए जरूरी है। हम बौद्धिक शिथिलता और आवश्यक सामाजिक न्याय की अपेक्षा से सघर्ष करेगे। हम सकीर्ण सामूहिक खुदगर्जी को मिटायेगे। और यह सब हम एक नैतिक कर्तव्य को खुश से स्वीकार करेगे। हम अपने राष्ट्रीय जीवन मे नैतिकता मे शक्ति का, सदाचार मे कार्य-कौशल का, ध्यान मे कार्य का, पश्चिम मे पूर्व का, बुद्ध मे सीगफ्रीड का समावेश करेगे। हम शाश्वत और सासारिक, जागृत आत्मा और दक्षतापूर्ण कार्य-कौशल, विश्वास और सफलता के दोनो लक्ष्यो को ध्यान मे रखेगे।

मुझे अपने लोगो से पूरी आशा है कि वे इस दुहरे कार्य को सतोषजनक रूप से निभाने की शक्ति का परिचय देगे।

इन आकर्षक उद्यम मे अपना योग देने मे मै अपना गौरव समझूगा।

नए मूल्य

[२२ फरवरी, १९६७ को राष्ट्रपति का संगीत–नाटक अकादमी में भाषण]

कला को केवल समकालोन जोवन का प्रतिबिम्ब नही, बल्कि सामाजिक परिवर्तन के माध्यम का काम करना चाहिए। जो लोग कला के सृजन में लगे हुए है, उन्हे राष्ट्रीय एकता के आदर्श को लोकप्रिय बनाने का प्रयास करना चाहिए।

महान् कलाकारो का सम्मान करना अपना ही सम्मान करना है। एक दृष्टि से अच्छाई की तरह कला स्वय में एक सम्मान की चीज है। उसे किसी बाहरी मान्यता की अपेक्षा नही है। महान् कलाकार अपनी गहन एव तीव्र सचेत्यता के कारण कोई महान् विचार या रूप कल्पित करता है और फिर उसमें एक सुन्दर कृति की रचना की उद्दाम इच्छा होती है। किसी महान् कविता, नाटक, संगीत मूर्ति अथवा चित्र का जन्म इसी प्रकार होता है। प्रतिभाशाली व्यक्तियो की कलात्मक प्रतिभा का समाज बहुत बडा ऋणी होता है, क्योकि किसी सभ्यता की परख कला और सस्कृति से ही होती है। यो तो इसमें सदेह नही कि किसी आधुनिक समाज की भौतिक समृद्धि के लिए हमें विज्ञान और शिल्प-शास्त्र का सहारा लेना आवश्यक है। लेकिन कोई भी राष्ट्र संस्कृति या अध्यात्मवाद के अभाव मे जीवित नही रह सकता। ललित कलाए शाश्वत होती है और जीवन को सुन्दर बनाती है।

भारतीय सभ्यता में बहुत प्राचीन काल से ही मस्तिष्क और आत्मा सम्बन्धी विषयो को प्रमुखता दी जाती रही है। इसी कारण हमारी सस्कृति एव सभ्यता तमाम ऊंच-नीच और परिवर्तनो को झेल

सकी। मुझे इस बात की बडी खुशी है कि संगीत-नाटक अकादमी सगीत, नाटक एव नृत्य सम्बन्धी हमारी शानदार परम्पराओ को बनाए रखने तथा उन्हे लोकप्रिय बनाने के लिए यथासाध्य प्रयत्न कर रही हे। प्राचीन काल मे कुछ अमीर लोग ही ललित कलाओ का सरक्षण किया करते थे, किन्तु सामन्त कालीन अभिजात्य वर्ग के समाप्त होने पर अब ललित कलाओ की उन्नति की जिम्मेदारी जनता एव इस अकादमी जेसी सस्थाओ पर हे। अकादमी के पुरस्कार हमारी सास्कृतिक विरासत के प्रति जनता का ध्यान आकर्षित करते है और उसमे कलात्मक अभिरुचि जगाने के लिए उपयुक्त वातावरण बनाते हे। आज हमने जिन कलाकारो एव लेखको का सम्मान किया है, वे हमारी कला विधाओ की विविधता एव जीवतता के प्रतिनिधि है।

हमारा देश इस समय एक कठिन समय से गुजर रहा है। ऐसे समय मे मेरा यह दृढ विश्वास है कि सगीत नृत्य, और नाटक जैसे माध्यम जनता को शिक्षित बनाने और उनके विचारो, रुचियो तथा आकाक्षाओ को रूप देने मे बडा सशक्त और ठोस योगदान कर सकते है। आज जब भाषायी विवाद, सम्प्रदायिक वेषम्य और अनुशासनहीनता इतनी फैली हुई है, ऐसे समय कलाकारो का यह कर्त्तव्य हे कि वे राष्ट्रीय एकता के आदर्श को लोकप्रिय बनाने मे सहायता करे। हमे ऐसे नये सिद्धान्तो और मूल्यो की स्थापना करनी चाहिए जो गतिशील समाज के लिए उपयुक्त हो।

सगीत, नृत्य एव नाटक के अलावा राष्ट्रीय एकता लाने का और कोई बेहतर साधन नही है। ये कलाएँ ऐसी है हो कि इनकी सहायता से लोग समीप आयेऔर उनमे सद्भाव बढे। आज यह आवश्यक हे कि इन नवयुवको मे कला एव कला सम्बन्धी प्रयासो के प्रति दिलचस्पी बढे।

मै आशा करता हूँ कि आज यहाँ जिन लोगो को फैलोशिप व पुरस्कारो से सम्मानित किया गया है, नई पीढी को उनसे प्रेरणा मिलेगी।

अध्यापको की सहायता कीजिये

हमारे भविष्य के निर्माण मे हमारे माता-पिता के बाद अध्यापको का सबसे अधिक प्रभाव रहता है और जब हम स्वय मा-बाप बन जाते हे, तो अध्यापक हमारे बच्चो की देखभाल तथा दिशा–निर्देश करते हे, जिससे हम उनके ऋणी हो जाते ह।

आइए, हम अध्यापको को इस बात का अहसास करा दे कि हम समाज के प्रति उनकी सेवाओ को महत्व देते ह। उनके काम और लगन की हम सराहना करते है, और आइए, हम इन अध्यापको की यथाशक्ति सहायता करे, जो कठिनाई के दौर से गुजर रहे है।

—डा० जाकिर हुसैन

छात्र असन्तोष

[उत्कल विश्वविद्यालय में २६ जनवरी १९६८ को राष्ट्रपति का भाषण]

हमारे देश के इतिहास में पहली बार विश्वविद्यालयो और कालेजो मे लगभग २० लाख छात्र अध्ययन कर रहे है। पहली बार छात्र-समाज एक शक्तिशाली वर्ग के रूप में उभरा है। ये समाज के सभी वर्गो से आये है। शिक्षा को प्रभावकारी और सोद्देश्य बनाकर राष्ट्रीय प्रगति और विकास मे इनका पूरा पूरा उपयोग किया जा सकता है। इसके विपरीत यदि छात्रो मे व्याप्त असतोष को काबू मे न लाया गया तो उसका समाज पर बुरा प्रभाव पडेगा।

आज हम एक कठिन समय से गुजर रहे है। इसका प्रभाव छात्रो के असतोष के रूप में विश्वविद्यालय के जोवन पर भी पडा है। मै चाहूगा कि आप सब इसकी ओर तत्काल और पर्याप्त ध्यान दे। छात्र असतोष स्वय एक बीमारी नही है किन्तु एक बीमारी का लक्षण है, जो शिक्षा को जीवन की वास्तविकताओ, राष्ट्रीय और सामाजिक जीवन से अलग रखने के कारण उत्पन्न हुई है। इसकी वजह से औसत युवक को हमारी अधिकाश शिक्षा निरुद्देश्य लगती है।

विश्वविद्यालय की डिग्री मात्र से अब नौकरी नही मिल जाती। हमारे अधिकाश छात्र गरीब परिवारो से आये है और पहली बार उच्च शिक्षा पा रहे है। उन्हे यथेप्ट सुविधाये और पथप्रदर्शन नही मिल रहा है। छात्रो और अध्यापको के बीच की खाई निरन्तर बढ रही है। इसके अलावा सार्वजनिक जीवन मे लगातार गिरावट आ रही है जिसके कारण नई पीढी में सामाजिक उत्तरदायित्व और राष्ट्रीय जीवन के विकास में भाग लेने की भावना नही पनप रही है।

अब तक हमारे विश्वविद्यालय जन साधारण के जीवन से परे, अछूते और अलग रहते थे। किन्तु अब विश्वविद्यालयो को विकास का केन्द्र बनाना चाहिए। उन्हे समय-समय पर राष्ट्रीय विकास का मूल्याकन करना चाहिये और बरबादी रोकने और कार्यक्रमो को सुधारने मे सहायता देनी चाहिए। विश्वविद्यालयो मे राष्ट्रीय सेवा की शुरुआत की जानी चाहिए, जिसमे छात्र और अध्यापक भाग ले और देश के विकास मे योग दे।

राष्ट्र नेताओ का दायित्व

हमारे भारत की बहुत समस्याए है जैसा बडा हमारा देश है और जैसी पुरानी सस्कृति और रवायात है, वैसी ही बडी और जटिल उसकी समस्याए भी है, लेकिन स्वतन्त्रता के बाद हमारे देश मे पुरअमन तरीके से एक तबदीली हुई है और बराबर होती जा रही है। हमारा भारत बीस वर्ष पहले जो था आज वह नही है। लोगो मे नई आशाओ की किरण फूटी है और इनमे नई आकाक्षाओ और नये जज्बो की उमगे पैदा हो रही है। राष्ट्रनेताओ के लिए सबसे पहला काम यह है कि वे इन प्रेरणाओ की पूर्ति करने की कोशिश करे और जन-समूह को राष्ट्रीय सम्पति के आधार पर मुनासिब ढग से तरक्की के रास्ते पर लगाए। यह एक बहुत बडा काम है और उसको पूरा करने के लिए बडे आत्मसमर्पण और मजबूत इरादे की जरूरत है। हमे यह काम करना ही होगा। इसमे झिझकने या नाकाम होने का कोई सवाल ही नही है। हमे अपने निर्धारित लक्ष्य की तरफ मजबूती से आगे बढना है।

—डा० जाकिर हुसेन

देशवासी हिंसा व अनु-शासन-हीनता त्यागें

[गणराज्य दिवस, १९६८ पर राष्ट्रपति का संदेश]

यह हमारी १९वी गणराज्य दिवस से पहले की शाम है। मै देश और विदेश में रहने वाले सब देशवासियो को इस अवसर पर बधाई देता हूँ और भविष्य के लिए अपनी शुभ कामनाए पेश करता हूँ।

हमारा गणराज्य अठारह वर्ष का हुआ है। यानी अब बालिग हो गया है। दरअसल अब हमें ठण्डे दिल से सोचना चाहिए और जायजा लेना चाहिए कि हम कहा पहुचे है और अपने करोड़ो नागरिको को अमन और खुशहाली की मजिल की तरफ ले जाने के लिए हमने क्या-क्या कदम उठाये है और क्या-क्या और करना है।

जब मै सोचता हूँ तो मेरी पहली भावना जिसमे आप भी यकीनन मेरे साथ शरीक होगे, अहसानमन्दी और शुक्रगुजारी की भावना है। पिछला साल जिसे हमने अभी पार किया, इसमें शक नही कि बहुत कडा साल था। एक बार और सूखा पडने से हमे ऐसी खाद्य समस्या का सामना करना पडता कि हमें इस पर काबू पाना मुश्किल हो जाता। ऐसी स्थिति थी कि कई महीनो तक हमारे बहुत से लोग खासकर बिहार और उत्तर प्रदेश में बहुत ज्यादा दुखी थे, पर शुक्र है कि हमारे मित्रो की सहायता और हमारी अपनी कोशिशो से, जिसमे जनता का साहस भी था, हम इस चुनौती का मुकावला कर सके और अकाल की मुसीबत और उसके बुरे नतीजो को टाल सके। सच तो यह है कि अभी तक हम मुश्किलो से पूरे-पूरे बाहर नही निकले है। फिर भी मै जब देश भर मे अपने दौरे पर लहलहाते खेतो को देखता हूँ, तो मेरा दिल नई उम्मीदो से और अपने देश तथा इसके निवासियो मे नई आशा और विश्वास की लहर देखकर वाग-वाग हो उठता है और मुझे पूरा भरोसा हो जाता है कि हम

कृषि-उत्पादन मे जो कि हमारे देश की अर्थ-व्यवस्था का आधार है, महत्वपूर्ण बढावे के लिए पूरी तरह तैयार है । मै अपने किसानो से खास करके अपील करता हूँ कि वे ज्यादा से ज्यादा उत्पादन करने मे कोई कसर न उठा रखे । इसी मे हमारी आर्थिक स्थिरता बनेगी ।

पिछले कुछ महीनो मे तैयारशुदा माल की माँगो मे कमी रही और इसका नतीजा यह हुआ कि औद्योगिक उत्पादन मे ढील के कारण हमे आर्थिक मन्दी को सहना पडा । ऐसा होने मे जो सबसे बडा वजह रही, वह यह थी कि हमारे कृषि-उत्पादन मे कमी रही, जिसका नतीजा यह भी हुआ कि उससे हमारी अधिकाश जनता की कूवते खरीद पर असर पडा । किसानो को दो अच्छी फसलो से जो अन्न मिलने की आशा है, उससे इस समस्या का बहुत हद तक हल हो सकेगा । परन्तु विदेशी लेन-देन मे जो बकाया है, उसकी अदायगी और विदेशी मुद्रा की हमारी माग की जटिल समस्याओ का अभी हमे सामना करना है । हमे पूर्ण आशा है कि देहली मे फरवरी मे होने वाले सयुक्त राष्ट्र के व्यापार और विकास सम्मेलन से उभरते-विकसते मुल्को और सनती तरक्की किये हुए मुल्को के दरमियान आपसी व्यापार मे नई दिशा मे बढावा मिलेगा । लेकिन हमे यह नही भूलना चाहिए कि हम आज मुकाबले की दुनिया मे रह रहे है और अगर हमे अपना माल विदेशो मे बेचना है, तो हमारा वह माल दाम और क्वालिटी दोनो लिहाज मे उन देशो का मुकाबिला करने के योग्य होना चाहिए । यह एक निराली बात है कि हमारी मजदूरी की दरे तरक्कीयाफ्ता देशो के मुकाबले मे कम है, लेकिन फिर भी जो माल हम तैयार करते है वह सस्ता नही होता और कई बार तो उन मुल्को से महगा ही होता है । इसका नतीजा यह होता है कि इसकी बिक्री मे कठिनाई होती है । जाहिर है कि हम मजदूरी को कम नही कर सकते । लिहाजा बेहतर तरीके से आदमियो की शक्ति और साधनो को प्रयोग मे लाने मे उत्पादन की बढोत्तरी ही उन तमाम समस्याओ का जवाब है । कारखानो मे काम करने वाले और दफ्तरो मे काम करने वाले सब ही कर्मचारियो से मै दरख्वास्त करता हूँ कि वे अपनी मेहनत, ईमानदारी और लियाकत से यह मुमकिन कर दिखाएं ।

तरक्की करने वाली कृषि और खुशहाल सनत के लिए उचित राजनीतिक, सामाजिक और सास्कृतिक वातावरण की आवश्यकता है । जहाँ के लोग परिश्रम से जीवन बिताते हो और अमन से रहते हो और अपने मामलो को सुचारु रूप से चलाने की लियाकत रखते हो, ऐसा ही सगठित राष्ट्र आर्थिक स्थिरता पा सकता है । अगर हम काम की ताकत को बेकार झगडो मे जाया करेगे, तो हमारा भविष्य तारीक हो जाएगा । हमारे बुजुर्गो ने अपनी दानाई से राष्ट्र-जीवन मे प्रजातन्त्र को अपनाया है । लेकिन हमे यह नही भूलना चाहिए कि प्रजातन्त्र केवल मशीनी तौर से बस बहुमत का ही शासन नही, बल्कि उसके पनपने के लिए जनता मे फैला हुआ अखलाकी वातावरण दरकार होता है । यही एक अखलाकी सत्ता है, जो तरक्की या देशो की कमियो को पूरा कर सकती है । यही हर शख्स पर एक फर्ज आयद करता है । यह अखलाकी सत्ता जो इन्सान के कैरेक्टर पर असरअन्दाज होती है, इसे हासिल करने मे हर एक नागरिक को प्रयास करना चाहिए ।

हमारे नव प्रजातन्त्र को बदनाम करने वाली बहुत सी बाते हो सकती है । इन गड्ढो मे गिरकर रहने के लिए मै अपने देश के प्रत्येक नागरिक से इल्तजा करूगा । आजकल के हालात पर विचार करते हुए मै चन्द गड्ढो का जिक्र भी करूगा । पहला अन्धकूप है हिंसा । हिंसा प्रजातन्त्र की सारी व्यवस्था का प्रतिवाद है । हमे अपने राष्ट्रीय जीवन मे समस्याओ को हल करने के लिए इस हिंसा

के प्रयोग को जड से निकाल देना चाहिए। मुझे दु ख है कि हम अपने व्यक्तिगत राजनीतिक झगड़ो को खुले-आम गली कूचो मे हल करने का प्रयास करते है। हमे इस मौजूदा रुझान का भौ हल ढू ढना है। पेचीदा समस्याए खाली प्रदर्शनो से हल नही होती । यह प्रदर्शन वहुत करके कानून को भी तोड़ते है और कभी-कभी तो जान-लेवा भी साबित होते है। इसके अलावा यह बात भी है कि जो यह समझ लिया गया है कि शिकायते बस इस तरह सुनी जा सकती और दूर हो सकती है, उसको भी हटाने की सूरत करनी चाहिए।

दूसरा खतरनाक अन्धकूप है—अनुशासनहीनता, जो हमारे राजनीतिक दलो, विचारक सस्थाओ और तालीमी सस्थाओ मे फैल रहा है। लोकतन्त्र की बुनियाद है अपने ऊपर खुद अनुशासन लगाना । लोकतन्त्र मे पूरी तरह से बहस करने की इजाजत है। लेकिन वहस के बाद एक मत से या बहुमत से जो फैसला किया जाए, उसे ईमानदारी और खुशी से लागू करना चाहिए।

प्रजातन्त्र की कार्यवाही मे हिस्सा लेने वाले प्रत्येक व्यक्ति को अपने से हमेशा यह सवाल पूछना चाहिए कि वह इस लोकतन्त्र अनुशासन का पालन कर रहा है या नही। केवल इस तरह ही वह लोकतन्त्र को सफल बना सकता है। और हमे यह साफ तौर से समझ लेना चाहिए कि अगर हम मे से किसी को सरकार के चन्द सुझावो या प्रस्तावो की आलोचना करनी पडे, तो भी इसकी राष्ट्र के प्रति वफादारी ता सदा वनी ही रहनी चाहिए।

शासन बदल सकते है और बदलते भी है, लेकिन राष्ट्र हमेशा अपनी अखलाकी सत्ता और नागरिको की वफादारी का दावा करता है। अपने लगातार प्रयासो से नागरिक राष्ट्र को शुद्ध मूल्य की मूर्ति मानकर अखलाकी सत्ता का बाना पहनाते है और राजभक्ति की भेट अर्पण करते है।

यह हमारा सौभाग्य है कि इस प्राचीन देश मे राष्ट्र का नव-निर्माण करने मे हमें हाथ बॅटाने का अवसर मिला है। आओ, इस मनोरजक कार्य मे दिल से जुट जाए । यह एक महान् और शुभ कार्य है, जो केवल भाषणो से, शीशो पर पथराव से या राष्ट्र-सम्पत्ति को विना सोचे-समझे नुकसान पहुँचाने से पूरा नही होगा, बल्कि पीढी-दर-पीढी लगातार और कठिन परिश्रम करने से होगा।

अपने देशवासियो, खासकर नवयुवको से मेरी अपील है कि वे इस महान् कार्य के महत्व को जाने और इसमे अपनी पूरी ताकत से जुट जाए । मुझे पूरा यकीन है कि उनकी कोशिशो से यह काम जरूर पूरा होगा।

मुझे इस वात की खुशी है कि पिछले आठ महीनो मे भारत के बहुत सारे राज्यो मे दौरा करने, तरह-तरह के लोगो से मिलने और हमारी सेना के योग्य और चुस्त दलो को नजदीक से देखने का मुझे मौका मिला है। आपसे यह कहते हुए बड़ी खुशी हो रही है कि यह सब देख कर मुझे इस बात का यकीन है कि हमारे सविधान का ढाँचा और उसको सहारा देने वाले खम्भे हमारी जनता के दिलो की तरह मजबूत और दुरुस्त है। मै आप सबसे दरख्वास्त करता हूँ कि हम हमेशा एकता को बनाये रखे और एकदिल होकर सभी मसलो का डटकर मुकाबला करे।

आज के शुभ दिन मै अपने दिल से आपके सब कार्यो की सलफता चाहता हूँ जिससे आप भी हमारे सपनो के इस नये भारत के निर्माण के दिल गरमाने वाले काम मे एक दूसरे का हाथ बटा सके। मेरा यह पक्का विश्वास है कि यह प्राचीन देश हमेशा-हमेशा के लिए एक शानदार प्रजातन्त्र रहेगा और ससार के देशो मे अपना उचित स्थान लेगा ।

●

देश का भविष्य जन सहयोग पर निर्भर

[स्वतंत्रता दिवस, १९६८ पर राष्ट्रपति का संदेश]

कल हमारे स्वतन्त्रता दिवस की इक्कीसवी सालगिरह है। इस शुभ अवसर पर मैं आपको मुबारकबाद देता हूँ और भविष्य के लिए अपनी शुभ कामनाये पेश करता हूँ।

पिछले साल जब मैने योमे आजादी के मौके पर आपसे खिताब किया था, उस वक्त से अब तक हमने खासी तरक्की की है। अकाल और भूख की अन्धेरी रातें जो हमारे कुछ प्रदेशो पर, खास कर बिहार और उत्तर प्रदेश पर छाई हुई थी, उनसे निकल कर अब हम उम्मीद के उजाले मे आ गये है। बीजो की नई-नई किस्मे और कृषि के नये-नये ढग बरतने से और इन सब से ज्यादा किसानो के नये-नये कृषि-सम्बन्धी विचारो को अपनाने से इस साल अनाज की पैदावार साढ़े नौ करोड टन से भी ज्यादा हुई है। कृषि सम्बन्धी अडचनो पर हम धीरे-धीरे काबू पा रहे है लेकिन इनको पूरे तौर पर हल करना इस बात पर निर्भर है कि हम किस तरह कृषि-सघटन की गम्भीर समस्या का मुकाबला करते है। इस पुण्य अवसर पर यह बात हम सब को माननी पडेगी कि हमारी नाकामी की खास वजह मानवता के क्षेत्र में हमारी अपनी ही कमजोरिया है और यह हम सब के लिए एक जबरदस्त चुनौती है। ऐसी स्थिति मे मेरी यही प्रार्थना है कि इस फसल की गैर मामूली पैदावार से हम कही गफलत मे नही पड जाये और पिछले वर्षों के सबक आमोज तजरबो को कही भूल न जाये।

फिर मनअत को ले तो कच्चा माल भी अब अच्छी मिकदार मे मिलने लगा है और लोगो की खरीद करने की ताकत भी बढ गयी है। इन से हमारी सनअती पैदावार को काफी बढावा मिलेगा। फिलहाल ऐसा लगता है कि जहाँ तक उद्योग के पिछडेपन

का सवाल था उसमें हमने यकोनन तरक्की की तरफ करवट ले ली है । उद्‌योग में हर तरफ हमने बडी उन्नति की है । पिछली तीन पचवर्षीय योजनाओं में हमने अपने सनअती विकास की ठोस बुनियादें कायम कर ली है । हमारे कारखानो में तरह-तरह की चीजे तैयार की जाने लगी है । बढती हुई सनअत के लिए कल-कारखानो और साजो-सामान की हमें जरूरत है । उनमें से ज्यादातर सामान जिसमे बढी-चढी कारीगरी की चीजे भी शामिल है हम खुद अब डिजायन कर सकते है और बना भी सकते है । कलो के मुतालिक अब तक जो काम विदेशी कारखानो के जरिये ही हो सकता था, अब हम उसे खुद कर सकते है । हमने मशीनो के डिजायन करने की ओर उस सिलसिले मे सलाह मशवरह देने की कावलियत भी पैदा करली है और इस वक्त इसकी बडी अहमीयत भी है क्योकि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कई ऐसी वजह है जिनसे बाहर की मदद, और सहारे मे हो-न-हो कमी ही होती जाती है । ऐसो हालत में इस सलाहीयत का होना एक बड़ी अहम बात है ।

लेकिन इन तमाम सनअती और जरायती तरक्कियो के होते हुए भी हमारी गरीबी में कोई नुमाया कमी नही हुई है । जब हम सोचते है कि हमें अभी क्या कुछ करना बाकी है तो ऐसा मालूम होता है कि जो कुछ हमने अभी तक किया है वह उसके मुकाबले मे कुछ भी तो नही है । इसमें शक नही कि हमारी समस्याये इतनी गम्भीर है कि दुनिया में उनकी मिसाल मिलनी मुश्किल है । हमारी जन–सख्या बहुत बडी है । सारी दुनिया को आबादी का चोदह फीसदी हिस्सा कुर्रा-ए-जमीन के ढाई फासदी से कम हिस्से मे आवाद है । दुनिया का कोई भी हिस्सा ऐसा नहीं है जहा करोडो की तादाद मे इस तरह लोग बसते हो, अपनी-अपनी मुख्तलिफ जवाने वोलते हो, जिनमें अपनेपन का भी अहसास हो और जो जमहूरी निजाम के एक ही सियासो रिश्ते मे गुन्थे हुए हों । हम जिस अन्दाज से राष्ट्रीय सस्कृति का निर्माण करना चाहते है, वह प्रयास भी एक अनोखे ढंग का है । अलग–अलग भाषाओं, जुदा-जुदा मजहबो और भिन्न-भिन्न संस्कृतियो से हम एक सुन्दर, मधुर और शानदार सस्कृति को जिसमे भारतोय तहजीब की नुमाया झलक हो, व्यावहारिक रूप देना चाहते है । हो सकता है कि इस काम में गैर मामूली दिक्कतो और कठिनाइयो का सामना करना पडे । उन्हे न तो नजर-अन्दाज करना चाहिए और न उनको ताकत को बढा-चढा कर ही दिखाना चाहिए ।

आज का दिन ऐसा है जवकि हमे वाकई शाति से सोचना चाहिए कि हम कहाॅ तक पहुँचे है, किधर जा रहे है और कहां जाना है

हम अपनी आर्थिक स्थिति को मूल रूप से बदलने के प्रयत्न में लगे हुए है, लेकिन इस महान् काम में जब तक जनता का उत्साह दिली सहयोग और लगातार अनुशासित प्रयास नही होगा, हमारे लिए आगे बढना मुश्किल है । विकास के लिए योजनाएॅ बनाना और उन्हें असली जामा पहनाना खाली सरकार ही का काम नही है बल्कि जनता का भी काम है कि अपनी स्थिति सुधारने मे तेज-तेज आगे बढे ताकि देश का भविष्य शानदार बन सके । एक सकारात्मक शक्ति जो कि इस विकास में हमें सहयोग दे सकती है, वह है स्वस्थ राष्ट्रीयता की सच्ची भावना जो तखरीबी रुहजानो को बढावा नही देती । हमारा देश एक प्राचीन और महान देश है जिसने युगों से मानव प्रयास के हर क्षेत्र में बड़ी-बड़ी सफलताये प्राप्त की है । उनके प्रति हमें अपने देशवासियो के दिलो में आदर और प्रेम की भावना उजागर करनी चाहिए । लोगो में देशभक्ति का जजवा और उस पर नाज भी होना चाहिए जिसके सहारे वह जबरदस्त और आगे ले जाने वाली ताकत पैदा हो सकती है, जिसकी आज हमे बडी सख्त जरूरत है । हमे फूट पैदा करने वाली सभी प्रेरणाओ का पूरी ताकत से मुकाबला करना चाहिए ताकि राष्ट्र

आत्म-परिचय और आत्म-विश्वास दोनो प्राप्त कर सके। इसी आत्मविश्वास और राष्ट्रीय गौरव से ही हमारे आर्थिक और सामाजिक सम्बन्धो मे नियमित परिवर्तन हो सकता है । अपने लम्बे इतिहास मे भारत ने सदा से ही वफादारी, आपसी समझ-बूझ और माद्दी कदरो के मुकाबले मे इखलाकी कदरो को ऊपर रखने के उसूलो को अपनाया है । हमे खबरदार रहना चाहिए कि हम कोई ऐसा काम न करे जिससे हमारी पुरानी परम्पराओ पर किसी प्रकार का धब्बा आये । अगर हमारा रवैया सही मानो मे इस शानदार विरसे के हसबे-हाल हो तो मुझे पूरा विश्वास है कि भारतीय राष्ट्रीयता सच्ची अन्तर्राष्ट्रीयता के निर्माण में बडा सहयोग दे सकेगी । हाल के इतिहास से यह बात साफ जाहिर है कि विचार-धाराओ की कोई भी शैली हो इन सब मे जबरदस्त कौमी जजबे काम करते है । हमे अपनी राष्ट्रीय शख्सीयत को पहचानना होगा और उसका सही तौर पर इस्तेमाल करना होगा ताकि लोगो की क्रियात्मक भावनाएं संगठित हो सके और तमाम बिगाडने वाली टूट-फूट पैदा करने वालो ताकतो का मुकाबला किया जा सके । हम सब मे एक जबरदस्त जजबा होना चाहिए और हमे मुस्तादी से सरगरम रहना चाहिए ताकि हम एक मजबूत और मुत्तहिद भारत का निर्माण कर सके और यह मजबूती हमारी तक्वीयत पर आधारित होनी चाहिए ताकि हम भरोसे और आत्मविश्वास से दुनिया की दूसरी ताकतो से बराबरी के स्तर पर व्यवहार कर सके ।

इस साल अक्टूबर मे हम गाधी जी के जन्म की शताब्दी का उद्घाटन करने जा रहे है। उन्होंने घोषणा की थी, मैं उन्ही के शब्दो को दोहराता हूँ "मै नही चाहता कि मेरा घर सब तरफ दीवारो से घिरा हुआ हो और उसकी सारी खिडकिया भी बन्द की हुई हो । मेरी ख्वाहिश है कि ससार की सारी संस्कृतियो की हवाएँ हमारे घर के चारो ओर बिना रोक-टोक चलती रहे, लेकिन इनमे से कोई भी मुझे विचलित न कर सके । मेरा धर्म कैद घर का धर्म नही है । मेरे मजहब मे खुदा की नाचीज से नाचीज मखलूक के लिए भी जगह है लेकिन उस धर्म मे किसी ढंग के गरूर या घमंड की कत्तई गुंजायश नही है, चाहे वह गरूर कौमियत का गरूर हो, धर्म का गरूर हो या रग का गरूर हो ।" आजकल के जमाने मे गाधी जी के उपदेश एक खास अहमीयत रखते है । पहले से कही ज्यादा आज देश को उनके सदेश की जरूरत है–निर्भयता के सदेश को, साहस, आत्मविश्वास और सच्चे, खलूस के सदेश को । गाधी जी का इखलाकी कानून की अजमत मे, बडा एतकाद था । हमे चाहिए कि हम उस एतकाद को फिर से अपनाये । आज हमारे देश मे सिद्धान्त और व्यवहार मे बडा अन्तर है, जिसका नतीजा यह कि राष्ट्र-जीवन के हर पहलू मे लोग आप अपने मेयार से गिर गये है और अनुशासन का अभाव बढता जा रहा है । लोग इसे माने या न माने कि अहिंसा धर्म की एक प्रथा है लेकिन इतना तो हमे मानना ही पडेगा कि यह एक ऐसी चीज है जो कि सभ्य व्यवहार और मानवता के लिए आदर की सीख देती है । अहिंसा जमहूरियत का रूह-रवा है और तशद्दुद या हिंसा जमहूरियत के मिजाज के बिल्कुल मनाफी है । हमे अहिंसा, रवादारी और आपसी समझ-बूझ का जजबा पैदा करना चाहिए । इसलिए कि यह जजबा हमारी कौमी जिन्दगी की कदरो को बरकरार रखने के लिए ही जरूरी नही है बल्कि हमारी बका के लिए लाजमी है । और यह हमारी जनता के लिए कोई मुश्किल बात भी नही है क्योकि कुदरती तौर पर उनमे इसकी सलाहियत मौजूद है । लेकिन जरूरत इस बात की है कि लोग आजकल की समस्याओ को [illegible] और शानदार माजी की रोशनी मे देखना सीखे । मुझे उम्मीद है कि ऐसा ही होगा । जय हिन्द !

गांधी जी–एक दीप्तिमान नेता

[१ अक्टूबर १९६८ को गाँधी शताब्दी समारोह पर राष्ट्रपति का संदेश]

'गाधीजो अकेले भारत के ही नही थे। उन्होने हर सभ्यता तथा सस्कृति के सर्वश्रेष्ठ तत्वों को आत्मसात् किया था। गाधी जी आध्यात्मिक तथा भौतिक जीवन को एक दूसरे से अविछिन्न मानते थे तथा उनके हर कार्यक्रम से इस तथ्य की झलक मिलती थी। गाधो जो एक दीप्तिमान नेता थे, जिनके व्यक्तित्व में प्रखर मेधा तथा उदारतम हृदय, ऊचे आदर्श तथा व्यवहारिकता दोनो का समावेश था। गाधी जी गहरी सत्यनिष्ठा तथा करुणा की साकार मूर्ति थे, इसी कारण उन्होने अहिसात्मक तरीके से कई क्रांतिकारी कार्य किए।

मेरा दृढ विश्वास है कि मानवता के विकास पर गाधी जी का जो प्रभाव पडा है, वह जेसे-जैसे शताब्दिया वीतती जायेगी, और भी महत्वपूर्ण तरीके से प्रकट होता जाएगा। गाधी जी को केवल सत के रूप में ही स्मरण करना भूल होगी। वह इसी ससार के व्यक्ति थे और आधुनिक भारत तथा विश्व की राजनैतिक, आर्थिक तथा सास्कृतिक कठिनाइयो से सम्बद्ध थे।' उनके व्यक्तित्व में आध्यात्मिक, नैतिक, सामाजिक तथा सास्कृतिक मूल्यो का, आदर्श कोटि का समन्वय था।

गाधी जी ने नैतिकता पर जो जोर दिया है उसकी चर्चा करते हुए राष्ट्रपति ने कहा कि कोई भी व्यक्ति या समाज अथवा राष्ट्र नैतिक कानून के दायरे के बाहर नही रह सकता और यदि वह ऐसा करेगा तो उसकी बरबादी निश्चित्त है। गाधी जी ने कभी इस बात को नही माना कि नैतिक आदर्श किसी व्यक्ति के लिए एक तथा वर्ग या राष्ट्र के लिए अलग हो सकता है। सभ्यता तथा सस्कृति तभी सार्थक होगे, जब व्यक्ति तथा राष्ट्र नैतिक कानून के दायरे में रह कर

राजनीतिक तथा आर्थिक शक्तियो का प्रयोग करे। नैतिक कानून मान लेने पर किसी भी प्रकार का शोषण, चाहे वह राजनीतिक, आर्थिक तथा सास्कृतिक किसी भी प्रकार का हो नही हो, सकता। नैतिक कानून के अन्तर्गत कुछ व्यक्तियो अथवा वर्गो की दूसरे वर्गो पर अधिपत्य की भी कोई गुंजाइश नही रह जाती। गाधीजी ने बार-बार इस बात पर जोर दिया है कि व्यक्तिगत, सार्वजनिक, तथा राष्ट्रीय नैतिकता को अलग-अलग नही किया जा सकता। नैतिक सिद्धान्तो को अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर मान लेने के इस सिद्धात के इतने दूरगामी परिणाम है कि हम मै से बहुत थोडे व्यक्ति ही इस चुनौती का सामना करने को तैयार है। परन्तु अगर हम इस चुनौती को स्वीकार नही करते तो इस विश्व मे जिसमे स्पर्द्धा, प्रतिद्वन्द्विता तथा आणविक हथियार जोडने की होड बढ रही है, क्या मानव समाज का कोई भविष्य रह जाएगा ?

गाधी जी के सम्बन्ध मे इससे अच्छी तरह और कोई बात नही जानी जाती कि वे कितना भी महान अथवा क्रान्तिकारी लक्ष्य प्राप्त करने के लिए पवित्र साधनो को ही काम मे लाने पर जोर देते थे। पवित्र साधनो से गांधी जी का अर्थ यह था कि जो कार्य किया जाय, वह प्रेम तथा अहिंसा की भावना से किया जाए। इनकी बड़ी सहज मान्यता थी कि प्रेम की कार्य रूप मे परिणति ही अहिंसा है।

गाधी जी के सत्याग्रह के व्यावहारिक पक्ष की व्याख्या करते हुए डा० जाकिर हुसैन ने कहा कि गाधी जी का 'सत्याग्रह' अहिंसात्मक तरीके से किया गया सक्रिय प्रतिरोध था। हम लोगो को यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि गाधी जी ने अहिसात्मक तरीके से काम करने पर जोर दिया था, अहिंसा के सिद्धात मात्र पर नही। उनकी अहिसा हर प्रकार के अन्याय तथा अत्याचार के विरुद्ध सक्रिय प्रतिरोध का दूसरा रूप थी। इस प्रकार अंहिसा का सिद्धात चाहे जितना पुराना हो, सत्याग्रह अथवा अहिंसात्मक तरीके से सक्रिय प्रतिरोध का तरीका गाधी जी की अहिसा का अपना रूप है। हमे यह भी याद रखना चाहिए कि सत्याग्रह व्यक्ति विशेष का कार्यमात्र नही है, बल्कि वर्ग का तथा सामुदायिक कार्य भी है। गाधी जी ने सत्याग्रह के सिद्धात की खोज ही नही की, बल्कि तीन महान अहिसात्मक आन्दोलन चलाए, जिसमे देश के लाखो लोगो ने भाग लिया और इस प्रकार ब्रिटिश शासन से भारत को मुक्ति दिलायी। इतिहास का कोई भी सत्यनिष्ठ विद्यार्थी इस बात को मानने से इन्कार नही करेगा कि भारत की स्वतन्त्रता की लडाई के मुख्य स्रोत गाधी जी के नेतृत्व मे आयोजित ये अहिंसात्मक क्रातिया थी। गाधी जी द्वारा सत्याग्रह को व्यवहार मे लाए जाने से पहले इतिहास का यह ध्रुव सत्य सा बन गया था कि कमजोर को या तो शक्तिशाली के सामने झुक जाना चाहिए अथवा नष्ट हो जाना चाहिए। परन्तु गाधी जी के बाद हमारे इतिहास की यह मान्यता समाप्त हो गई। सत्याग्रह की लडाई मे उस व्यक्ति के पास, जो शारीरिक दृष्टि से चाहे दुर्बल हो, परन्तु जिसमे आत्मिक दृढता हो, उस आदमी के खिलाफ लडने की अधिक ताकत है जो शारीरिक दृष्टि मे सुदृढ है परन्तु जिसका चरित्र दुर्बल है। इसीलिए सत्याग्रह के समर्थक इसे, न्याय तथा स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष मे, हर स्थिति में और सर्वत्र बहुत बडा हथियार मानते है। दुनिया जितनी जल्दी सत्याग्रह के सही अर्थ तथा इसकी ताकत को समझेगी, दुर्बल तथा कमजोर समझे जाने वाले लोगो की अत्याचार तथा अन्याय के विरुद्ध लडने की ताकत उतनी ही बढती जाएगी। कैसा भी अत्याचार तथा आधिपत्य उन लोगो की चुनौती का सामना नही कर सकता जो सिर झुकाने से बजाय मरना पसद करते है।

गाधी जी ने विश्व की तमाम धार्मिक परम्पराओ के प्रति समान आदरभाव रखने की शिक्षा

ी है । गाधी जो विभिन्न धर्मो में निहित शक्ति का पता लगाने के लिए सभी धर्मो की एकता के हामी े । धर्मो की इसी समन्वित शक्ति से वे राजनोति तथा अर्थनीति को प्रभावित करना चाहते थे। न्तर्राष्ट्रीय धार्मिक एकता की कुजी तमाम धर्मो के प्रति समादर को भावना, सहिष्णुता तथा उदार ृष्टिकोण में निहित है । जब तक धर्म तथा नैतिकता को भावना से हमारी राजनीति तथा अर्थनीति भावित नही होगी, हमारे धर्म अवसन्नता के शिकार रहेगे तथा आधुनिक विज्ञान तथा तकनीक की गति के साथ भौतिकता की जो प्रचंड लहर आएगी, उसमे ये धम नष्ट हो जायेगे । गाधी जी हमारे मय के एकमात्र महान राजनेता थे, जिन्होने इस बात को असदिग्घ रूप से सिद्ध कर दिया कि धर्म े निहित प्रेरणा का उपयोग मानवीय स्वतन्त्रता तथा सामाजिक न्याय के लक्ष्य की प्राप्ति में किया ा सकता है ।

गाँधो जी ने लोकतन्त्र की अपनी नई परिभाषा दी है । इस पर अमल किए बिना हमारा त्राण ही है, अगर हम सच्चे अर्थो मे लोकतन्त्रीय बनना चाहते है । जैसा कि कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा : लोकतन्त्र मे जो महत्व श्रेष्ठतम तथा अत्यधिक विकसित लोगो का है, वही निर्धनो, छोटे वर्ग के ोगो तथा उपेक्षितो का भी है । गाँधी जी ने बहुसख्यक वर्ग के अनियत्रित शासन को कभी लोकतन्त्र ही माना । अल्पसख्यक तानाशाही का तो उनके सामने कोई प्रश्न ही नही था, चाहे वह तानाशाही कितनी भी सुदृढ अथवा क्रातिकारी हो । उन्होने इस बात को कभी स्वीकार नही किया कि शक्तिशाली ी स्वतन्त्रता तथा समृद्धि के लिए दुर्बल वर्ग की उपेक्षा की जाए । नाम मात्र के लोकतन्त्र में भी न ेवल अल्पसख्यको की सुविधाओं का पूरा ध्यान रखना जरूरी है, बल्कि किसी जाति अथवा वर्ग के दभाव के बिना सबको समान स्वतन्त्रता तथा कल्याण की सुविधाए मिलना भी जरूरी है । उन्होने से जातिविहीन तथा वर्गहीन समाज का प्रतिपादन किया, जिसका निर्माण अहिसात्मक सघर्ष तथा ाति के साथ हो सकता है । गाधी जी के लोकतन्त्र की यह नई शाखा ही जिसमें सबसे निचले स्तर के यक्ति के कल्याण की चिता की जाती है, 'सर्वोदय' है ।

गाधी जी व्यक्ति के पूर्ण विकास के समर्थक थे । परन्तु साथ ही इस बात पर भी जोर देते थे क इसके लिए ऐसे समाज की नितांत जरूरत है, जिसमें सबको पूर्ण न्याय प्राप्त हो तथा जहा शोषण हो । नैतिक व्यक्ति तथा नैतिक समाज को अलग-अलग नही किया जा सकता । गाधी जी की दृष्टि में भ्यता तथा सस्कृति की कसौटी इस बात में है कि समाज मे हर व्यक्ति को समान न्याय तथा उन्नति ा समान अवसर मिले तथा साथ ही विशेष प्रतिभावान व्यक्ति उन्नति के चरम शिखर पर पहुँच सके ौर अपेक्षाकृत दुर्बल व्यक्तियो को उनकी सामर्थ्य के अनुसार विकास करने का अवसर मिले । हर न्नतिशील व्यक्ति की बुद्धि तथा उसके शरीर की शक्तियों का उपयोग कम विकसित व्यक्तियो की वा के लिए निस्वार्थ भाव से समर्पित होना चाहिए । इस लक्ष्य की प्राप्ति शिक्षा, कानून तथा जहा रूरी हो, सत्याग्रह से की जानी चाहिए ।

हमारी शताब्दी का या तो यह सौभाग्य होगा कि हम गाधी जी की शिक्षाओ पर ध्यान देकर याय, समानता तथा कल्याण पर आधारित नई तथा अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक व्यवस्था की दिशा मे आगे ढे अथवा हमारे युग का सबसे अधिक निराशाजनक पक्ष यह होगा कि हम उन्हे भूल जाए और धीरे-ीरे ऐसे स्थल पर पहुँच जाए, जिसके आगे आणविक शस्त्रो के अतिरिक्त और कुछ नही है । मै इस ात की वकालत नही करता कि गाधी जी की कोई बात बिना समझे बूझे मानी जाए । परन्तु मै यह ात दृढतापूर्वक कहना चाहूँगा कि हम, जिन आदर्शो के लिए गाधी जी खडे हुए, उनका गहन ध्ययन करे ।

आपसी सहयोग

[काठमांडू मे १३ अक्टूबर १९६८ को नागरिक अभिनन्दन समारोह में राष्ट्रपति का भाषण]

सम्माननीय प्रधान पंच जी, नगर पंचायत के माननीय सदस्यगण तथा काठमाण्डू के सहृदय नागरिकगण ।

आपके इस प्यार भरे स्वागत के लिए मैं आपका हृदय से आभारी हूँ । आपका यह स्वागत और इसमे निहित आपकी उदार भावनाएँ सिर्फ मेरे अपने लिए नही है, बल्कि यह भारत और नेपाल के लोगो के बीच गाढे प्रेम, मित्रता और एक दूसरे के नजदीक होने की निशानी और सबूत है। दूसरी ओर आपके इस स्वागत ने भारत और नेपाल के पुराने और नये संबंधो को भी बहुत सुन्दर रूप से प्रगट किया है । इस स्वागत के लिए मैं आप लोगो को भारत सरकार तथा भारत की जनता की ओर से धन्यवाद देता हूँ और साथ ही नेपाल की जनता के लिए भारत की जनता के अमर और चिरस्थाई आदर और प्रेम का विश्वास दिलाता हूँ ।

आपका यह नगर बहुत सुन्दर और मनमोहक है । प्रकृति ने हर प्रकार से अपने सौन्दर्य से काठमाण्डू घाटी को सजाया है। नेपाल के कुशल कलाकारो ने घाटी की इस सुन्दरता के साथ-साथ इस नगर मे अपनी कला से चार चाँद लगा दिए है । इस नगर के घर-द्वार, खिडकियाँ और कगूरे इन कलाकारो की बेमिसाल कला के अनोखे नमूने है । ऐसा लगता है कि इस हरी-भरी घाटी को और उसमे जडे हीरे जैसे सुन्दर नगर को प्रकृति और मानव दोनो ने मिलकर सजाया और संवारा है। आज आधुनिक युग के अनुरूप इन दोनो को और भी आकर्षक बनाने की विशाल संभावनाए हैं। मुझे विश्वास है कि नेपाल के कलाकारो की अद्भुत सूझबूझ और विज्ञान तथा तकनीकी युग के साधनो द्वारा निकट भविष्य मे ही काठमाण्डू एशिया मे ही नही, बल्कि दुनिया

के सुन्दरतम नगरो में गिना जाएगा और इसका श्रेय आपकी नगर पचायत को होगा ।

मैने सुना है कि काठमाडू घाटी के आकर्षण अब भी विदेशी टूरिस्टों को बड़ी संख्या में आकर्षित कर रहे है और यह सख्या हर वर्ष बढ रही है। हर दृष्टिकोण से यह एक बहुत ही अच्छी और खुशी की बात है ।

टूरिज्म यानी पर्यटन, अन्तर्राष्ट्रीय मित्रता और सद्भावना का अनन्त स्रोत है, साथ ही पर्यटन एक उद्योग माना जाता है। आज के युग में आर्थिक उन्नति और खुशहाली का यह एक बड़ा जरिया भी है। बहुत से देशो के लिए तो पर्यटन ही उनके बजटो और आमदनी का मुख्य आधार है।

खास तौर से ऐसे विकासशील देशों की उन्नति के लिए कि जिनके पास सय्याहों के लिए घने आकर्षण के स्थान है, पर्यटन उद्योग विदेशी मुद्रा की आमदनी का एक मुख्य साधन बन सकता है।

भारत सरकार ने नेपाल सरकार को पर्यटन उद्योग के विकास के लिए हर तरीके के सहयोग का आश्वासन दिया है। खासकर पोखरा और लुम्बिनी जो पर्यटन की दृष्टि से महत्वपूर्ण आकर्षण केन्द है, उनके विकास के लिए भारत ने पूरा-पूरा सहयोग देने का वचन दिया है। पोखरा की सुन्दर और विशाल झील और उसके किनारो से उभरते हुए ऊंचे-ऊचे हरे-भरे पहाड और बर्फ से ढकी हुई उन पहाड़ो की चोटियाँ जिनका अक्स उस पानी में दिखलाई देता है, दुनिया के किसी भी पर्यटन केन्द्र का मुकाबला कर सकते है। पर्यटन उद्योग के विकास की नेपाल में असीम सभावनाएँ है।

हमारे दोनो देश पर्यटन उद्योग को महत्व देते है और जानते है कि जैसे-जैसे सय्याहों के लिए जरूरी सुख-सुविधाओ का प्रबध होगा और जैसे-जैसे हमारे लोगो का सय्याहो के प्रति व्यवहार अधिक सुन्दर और सहायता और आदर की भावनाओ से भरा-पूरा बनता जाएगा, वैसे-वैसे हमारे देशो में पर्यटन उद्योग तेजी से बढेगा। भारत और नेपाल की भौगोलिक समीपता को दृष्टि मे रखते हुए यह आवश्यक है कि पर्यटन उद्योग के विकास के लिए दोनो देश एक दूसरे की सहायता करे और सहयोग दे।

नेपाल और भारत दोनो विकासशील राष्ट्र है, इसलिए अन्य क्षेत्रो मे भी दोनो को एक दूसरे की सहायता करना बहुत ही जरूरी है। यह खुशी की बात है कि दोनो देशो में आपसी सहयोग और सहायता की एक शानदार मर्यादा कायम हो चुकी है।

कोसी और गडक नदियों के पानी के सदुपयोग और बाढ की रोकथाम का जो महत्वपूर्ण काम हुआ है, उससे दोनो देशो की जनता के सुख और तरक्की का एक नया दौर शुरू हुआ है। इन योजनाओ मे भारत को नेपाल से जो सहयोग मिला है उसके लिए भारत सदा आभारी रहेगा।

इस आपसी सहयोग की भावना से हो नेपाल के विकास कार्यो में भारत ने अपने सीमित साधनो और शक्ति के अनुसार नेपाल का हाथ बँटाया है। मुझे बताया गया है कि भारत के सहयोग से नेपाल में अब तक ११० विकास योजनाए पूरी हो चुका है और बहुत सी विकास योजनाओ पर काम चल रहा है। जो विकास कार्य पूरे हो चुके है, उनमे सड़के और हवाई अड्डे बनाए जाने की योजनाए सिचाई तथा पीने के पानी की योजनाए, बिजली पैदा करने की योजनाए, शिक्षा और स्वास्थ्य की योजनाए, कृषि और पशुपालन की योजनाए तथा अन्य प्रकार की योजनाएं शामिल है। खास काठमाडू नगर मे ही भारत जाने वालो सड़क त्रिभुवन राजपथ, तारघर, बड़ा डाकघर, विदेशी डाकघर टेलीफोन

गेस्टहाउस, विश्वविद्यालय के कुछ भवन विजली सप्लाई और पीने के पानी की योजनाए इस आपसी सहयोग की प्रतीक है।

मै कामना करता हूँ कि दोनो देशो के बीच मित्रता, आपसी सहयोग और एक दूसरे के सुख-दुख मे शामिल होने की यह भावनाए दिन दूनी और रात चौगुनी बढती रहे। मै एक बार फिर काठमाडू नगर के नागरिको को उनके इस भाव भरे स्वागत के लिए धन्यवाद देता हूँ और काठमाडू के नागरिको के सुख तथा उन्नति के लिए हार्दिक शुभकामनाए अर्पित करता हूँ।

जय नेपाल—जय भारत !

राष्ट्रीय मार्ग

हमारी सभी भारतीय भाषाए है और उनका विकास करना राष्ट्रीय कार्य है जिसमे सब देशवासियो को योग देना चाहिये।

डा० जाकिर हुसैन

दो भाइयों का पुनर्मिलन

[२ जनवरी, १९६९ को ईरान के शहंशाह के स्वागत मे राष्ट्रपति का भाषण]

महामहिम शहंशाह और शाहबानो,

भारत मे फिर से आपका स्वागत करते हुए हमे खुशी है। लगभग बारह वर्ष पहले आपकी पिछली यात्रा की स्मृतिया अभी भी ताजा है।

आजकी दुनिया, ईरान और भारत बहुत बदल गये है। फिर भी, हमारे प्राचीन, परम्परागत और भाईचारे के सम्बन्ध इन परिवर्तनो के बावजूद न केवल नही बदले है बल्कि हमारे निरन्तर और व्यापक सहयोग के कारण दृढ हुए है। आपके विवेकपूर्ण नेतृत्व में ईरान ने जो बडी प्रगति की है, उसकी हमने प्रशसा की है। हमे आशा है कि अपनी पिछली यात्रा के बाद हमारी जनता के प्रयासो और उपलब्धियो को देखने मे आपकी रुचि होगी। हमे पूरा विश्वास है कि ईरान और भारत द्वारा एक दूसरे को फिर से खोज निकालने के कारण हमारे प्राचीन सबध पुनर्जीवित हो उठेगे, दोनो देशो के बीच सहयोग बढेगा तथा एशिया और विश्व में शाति, स्थायित्व और प्रगति को बल मिलेगा।

भारत सरकार और भारत की जनता की ओर से मै शाही मेहमानो के लिए विशेषकर आपकी सहधर्मिणी के लिए जो पहली बार हमारे देश की यात्रा कर रही है अपने देश की अत्यधिक सुखद यात्रा की कामना करता हूँ।

आज अपने बीच आप शाही मेहमानो की उपस्थिति इस बात की याद दिलाती है कि ईसा के दो हजार वर्ष पूर्व से कुछ समय पहले हम एक ही परिवार के थे। जो अनेक राष्ट्र और जातिया हमारे सम्पर्क मे आई है और जिन्होने हमारे जीवन और सस्कृति को प्रभावित किया है, उनमें सबसे प्राचीन और

--आर्य-ईरानी हो रहे हैं। भारत आर्य सभ्यता के आरम्भ से भी पहले के ये संबंध हैं। भारतीय आर्य और ईरानी एक ही मूल से अलग हुए। वैदिक धर्म और जरतुस्त मत मे बहुत समानता है तथा वैदिक संस्कृत और पुरानी पहलवी एक दूसरे से बहुत मिलती है। इस प्राचीन पूर्वज परम्परा ने निरंतर दोनो देशो की स्थापत्यकला, संगीत, चित्रकला और मूर्तिकला मे अभिव्यक्ति पाई है।

प्राचीन काल मे भारत मे फारसी भाषा के कुछ प्रतिभाशाली कवियो ने जन्म लिया, जबकि अशोक के भवनो पर भी 'पर्सेपेलिस" की स्थापत्यकला का प्रभाव पडा। आपके संग्रहालय मे डेरियस के नि : मे सूर्य और कमल के प्रतीक चिन्ह हैं जो पूरी भारत आर्य परम्परा मे समान रूप से पाये जाते हैं स्वर्गीय प्रधानमंत्री, श्री नेहरू ने कहा था कि भारत और ईरान की जनता के मूल और इतिहास के सम्बन्धों मे जितनी निकटता है, उतनी निकटता बहुत कम लोगो मे रही है।

अपनी पिछली यात्रा के दौरान आपने कहा था कि भारत और ईरान के राजनीतिक और आर्थिक सम्बन्धो के साथ अध्यात्मिक और सासारिक सम्बन्ध विश्व के प्राचीन इतिहास के सर्वाधिक रोचक तथ्यो मे से हैं तथा आप हमारे पूर्वजो से उत्तराधिकार मे प्राप्त सहयोग की भावना को पुनर्जीवित करने का प्रयास कर रहे हैं। इस सन्दर्भ मे आपकी भारत यात्रा हमारे मन मे सभ्यता के आरम्भ मे हमारे प्राचीन और पुनीत महाकाव्य रामायण मे वर्णित इतने ही समय बाद दो भाइयो के सुप्रसिद्ध पुर्नमिलन की याद दिलाती है। इस पुनर्मिलन के बाद ही सत्य और न्याय पर आधारित एक आदर्श प्रशासन "रामराज्य" का शुभारम्भ हुआ, जिस सिद्धात को पुन. गाधीजी ने हमारे सम्मुख रखा।

हमे पूरी आशा है कि आपकी यात्रा से, जो भारत-ईरान संबंधो मे एक महत्वपूर्ण चरण है, केवल दोनो देशो के बीच प्राचीन संबंध ही फिर से नये नही होगे, बल्कि शासन के आधुनिक सिद्धातो के परिपालन मे भी दोनो साथ-साथ आगे बढेगे।

आपकी पिछली यात्रा के बाद से दुनिया और हमारे दोनो देशो मे बहुत कुछ हुआ है तथा भारत और ईरान के बीच विभिन्न क्षेत्रो मे सहयोग के अनेक अवसर मिले हैं। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे हम सभी देशो विशेषकर अपने पड़ोसियों के साथ मैत्री से अधिक कुछ नही चाहते है और दृढतापूर्वक विश्वास करते हैं कि किसी देश के साथ हमारी मित्रता दूसरे देश की कीमत पर नही होनी चाहिए। हम अब भी मुख्य रूप से शान्ति और स्थायित्व चाहते है तथा बिना बाहरी हस्तक्षेप के संबंधित पक्षो द्वारा विवादो का शान्तिपूर्ण निपटारा चाहते हैं। आपकी स्वतंत्र राष्ट्रीय नीति तथा हमारी गुटो से अलग रहने की नीति मे बहुत समानता है।

देश के अन्दर हम अपनी लोकतन्त्री जीवन पद्धति का राष्ट्रीय एकत्रीकरण और दृढीकरण तथा अपनी जनता के रहन-सहन मे तेजी से सुधार लाना चाहते है। हमारी नीतिया और प्रयास इसी लक्ष्य की ओर है। इसके लिये शान्ति और स्थायित्व अनिवार्य है, यद्यपि आपकी तरह हम अपने व्यापक प्राचीन मूल्यो के दृढ समर्थन, अन्य सस्कृतियो और विश्वासो के लिए अधिक उदारता व सहिष्णुता बनाये रखते हुए, जैसे हम दोनो की सभ्यता सामने आई वस्तुओ को अपनाकर करती रही है, रचनात्मक परिवर्तन का स्वागत करते है।

ईरान और भारत के सम्बन्ध इस्पात जैसे मजबूत और रेशम जैसे कोमल हैं। हमारी कामना है कि शान्ति, समृद्धि और प्रगति के हित मे ये निरन्तर बढे। ●

स्वतत्रता की रक्षा का तकाजा

स्वतत्रता की रक्षा के लिए सतत जागरूकता आवश्यक है। इस काम को सेना के जवान और अधिकारी बखूबी कर रहे है। वे जहा कही भी है, अपने काम की जोखिमो और कठिनाइयो के उपरान्त भी सीमा की निरन्तर चौकसी कर रहे है और अपने काम मे ऊचे दर्जे की कुशलता, तैयारी और अनुशासन बनाए हुए है। मेरी ओर से उन्हे हार्दिक बधाई और शुभ कामनाएँ।

—डॉ० जाकिर हुसैन

शास्त्रीजी की पावन स्मृति

[१० जनवरी १९६९ को ताशकद घोषणा की वर्षगांठ पर राष्ट्रपति के उद्गार]

आज ताशकद घोषणा पर हस्ताक्षर होने की तीसरी वर्षगाठ है। इस करार के जरिये भारत और पाकिस्तान अपने सबध सामान्य बनाने पर तथा आपसी मतभेदो को द्विपक्षी बातचीत के जरिये शातिपूर्ण सुलझाने पर सहमत हुए। इस करार से मैत्री और सद्भावना के नये युग के बारे मे बडी आशाये पैदा हुई।

भारत-पाकिस्तान सबधो को सामान्य करने के लिए हमने कई बार पहल की है और उस पर बहुत कम प्रतिक्रिया के बावजूद हमारा विश्वास है कि दोनो देशो के बीच मामलो को सुलझाने के लिए ताशकद घोषणा ठोस आधार है। मुझे इस बात से खुशी है कि अनेक अन्य देशो ने भारत-पाकिस्तान समस्याओ को आपसी बातचीत और शातिपूर्ण ढग से निपटाने मे अपना विश्वास प्रकट किया है, जो ताशकद घोषणा की भावना के ही अनुकूल है।

ताशकद घोषणा के चौथे वर्ष मे प्रवेश करने के साथ ही मैं स्वर्गीय प्रधान मत्री शास्त्री जी की स्मृति मे श्रद्धाजलि अर्पित करता हूँ। उनके निधन ने इस घोषणा को पावन बना दिया।

मुझे आशा है कि भारत और पाकिस्तान चाहे उनकी वर्तमान कठिनाइयाँ कुछ भी हो, अपनी-अपनी जनता के कल्याण को नही भूलेगे, जो सघर्ष मे नही बल्कि शातिपूर्ण सहयोग मे है। ●

खण्ड : ४

प्रमुख घटनाएँ

एवं

चित्र

जीवन-क्रम

[डॉ० जाकिर हुसैन के जीवन की प्रमुख घटनाएँ]

सन् १८९७—८ फरवरी,	जन्म, हैदराबाद दक्षिण में ।
१९१३	इस्लामिया हाई स्कूल इटावा से मैट्रिक की परीक्षा पास की ।
१९१५	बी० एससी० में प्रवेश ।
१९१८	बी० ए० परीक्षा मे प्रथम श्रेणी में उत्तर्ण ।
१९२०	ऐंग्लो ओरियन्टल कालेज अलीगढ़ में एम० ए० मे प्रवेश ।
१९२०—१२ अक्टूबर,	महात्मा गाधी का अलीगढ़ आगमन । गाधीजी की प्रेरणा से डॉ० जाकिर हुसैन ने ब्रिटिश सरकार द्वारा सचालित कालेज का बहिष्कार किया ।
१९२०—२९ अक्टूबर,	जामिया मिलिया इस्लामिया की स्थापना ।
१९२२	प्रथम विदेश यात्रा ।
१९२४	जामिया मिलिया को जीवनदान का सकल्प ।
१९२५	जामिया मिलिया का गाँधी जी की राय से अलीगढ से दिल्ली स्थानातरण ।
१९२६	बर्लिन मे पी एच डी. की डिग्री प्राप्त । (अर्थशास्त्र मे)
१९२६	स्वदेश वापसी । जामिया मिलिया के उपकुलपति पद पर नियुक्ति । (डा.जाकिर हुसैन साहब इस पद पर सन् १९४६ तक रहे)
१९३०	गाँधीजी द्वारा निर्मित नई तालीम समिति के अध्यक्ष नियुक्त ।
१९३७	बुनियादी शिक्षा योजना को अन्तिम रूप दिया ।
१९३८	हिन्दुस्तानी तालीमी सघ सेवाग्राम के अध्यक्ष नियुक्त (डा जाकिर हुसैन साहब इस पद पर सन् १९५० तक रहे ।

१९४६		जामिया मिलिया की रजत जयन्ती।
१९४८		अलीगढ मुस्लिम विश्व विद्यालय के उपकुलपति नियुक्त । (इस पद पर जाकिर हुसैन साहिब १९५६ तक रहे।)
१९५२		अमेरिका यात्रा।
१९५४		पद्मभूषण से अलकृत।
१९५६		यूनेस्को के कार्यकारी मण्डल के सदस्य निर्वाचित ।
१९५६		सऊदी अरब को यात्रा।
१९५७		राज्य सभा के सदस्य।
१९५७	६ जुलाई	बिहार के राज्यपाल नियुक्त। (इस पद पर डॉ० जाकिर हुसन ११ मई, १९६२ तक रहे।)
१९६२	१३ मई	भारत के उपराष्ट्रपति बने।
१९६३		भारतरत्न की उपाधि से विभूषित।
१९६४		अल्जीरिया व मोरक्को की यात्रा।
१९६५		कुवैत, सऊदी अरब, जॉर्डन, तुर्की व यूनान की यात्रा।
१९६६		अफगानिस्तान की यात्रा तथा सीमान्त गाधी खान अब्दुल गफ्फार खाँ से पुर्नमिलन।
१९६६		थाईदेश, कम्बोदिया, सिंगापुर तथा मलेशिया की यात्रा।
१९६७	१० अप्रेल	कांग्रेस ससदीय बोर्ड द्वारा राष्ट्रपति पद के लिए सर्व सम्मति से नामाकन।
१९६७	६ मई	राष्ट्रपति निर्वाचित।
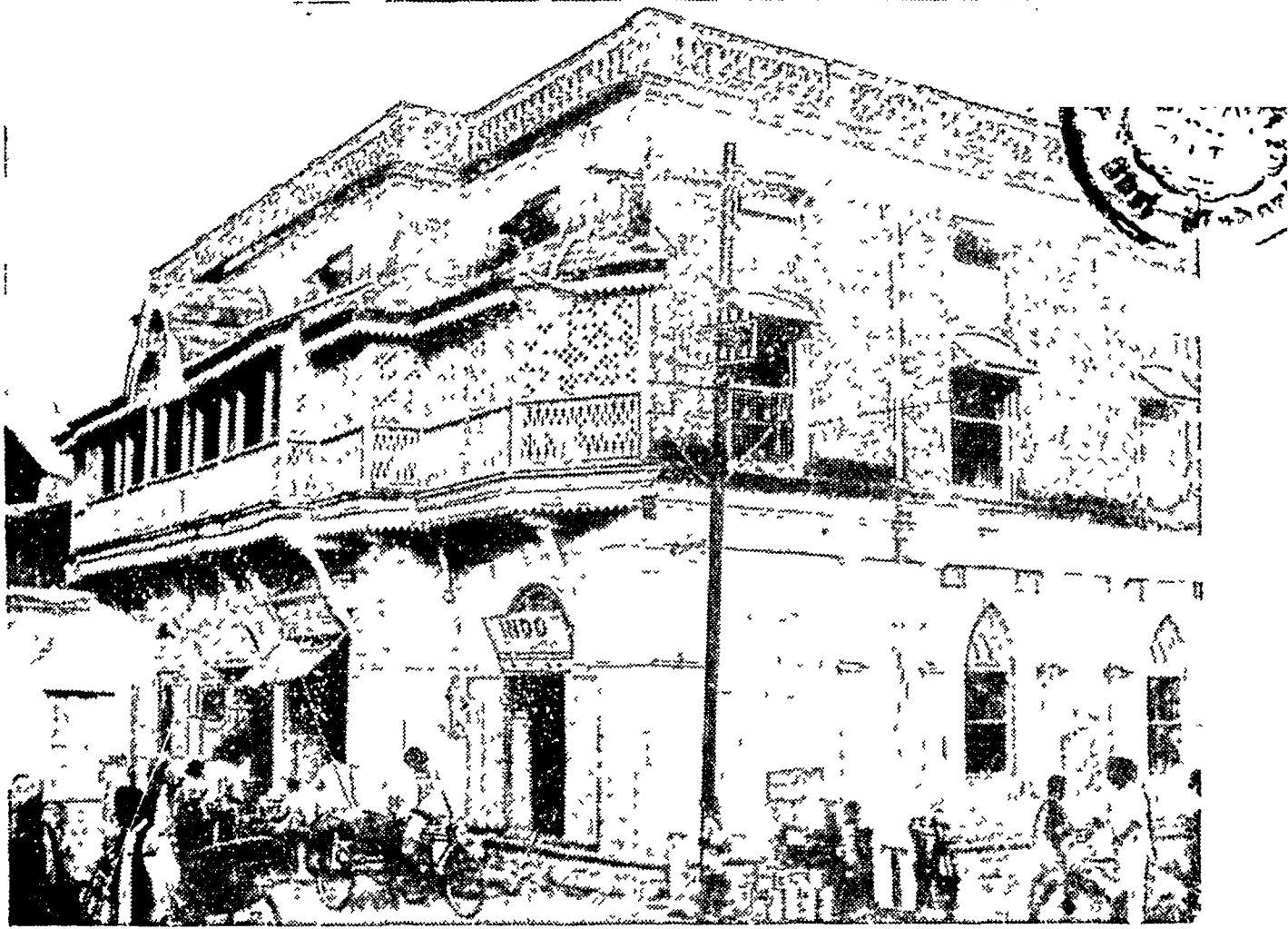
जहाँ बाल्यकाल व्यतोत किया।

पिथोरा, कायमगज

(उत्तर प्रदेश)

में

राष्ट्रपतिजी का

पुश्तैनी मकान

बचपन के दिन

युवा अवस्था में

परिवार के बच्चो के बीच

राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन् को विदाई देते हुए
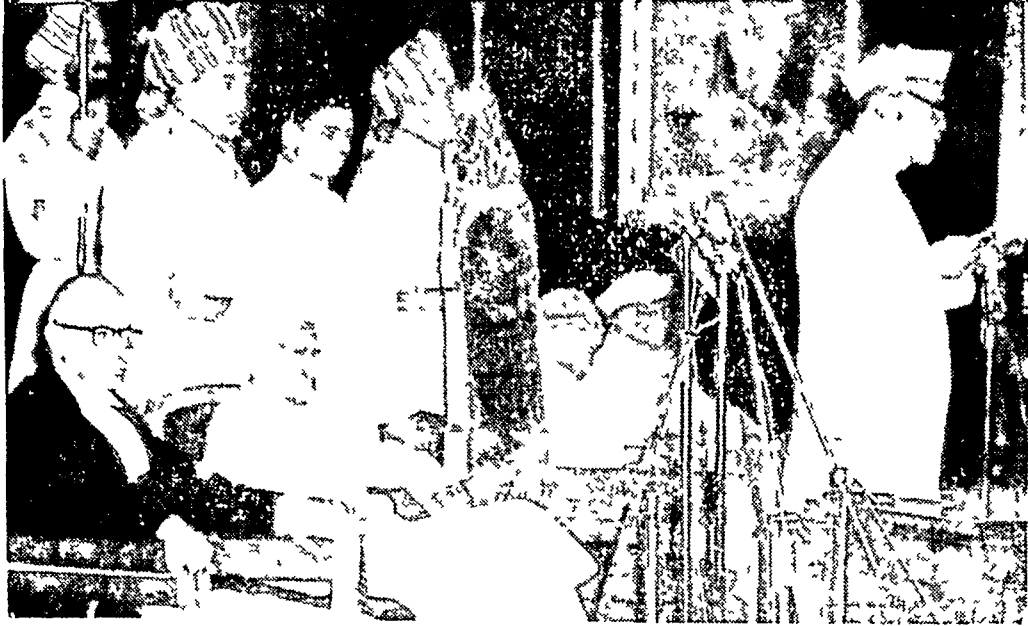
शपथ ग्रहण करते हुए
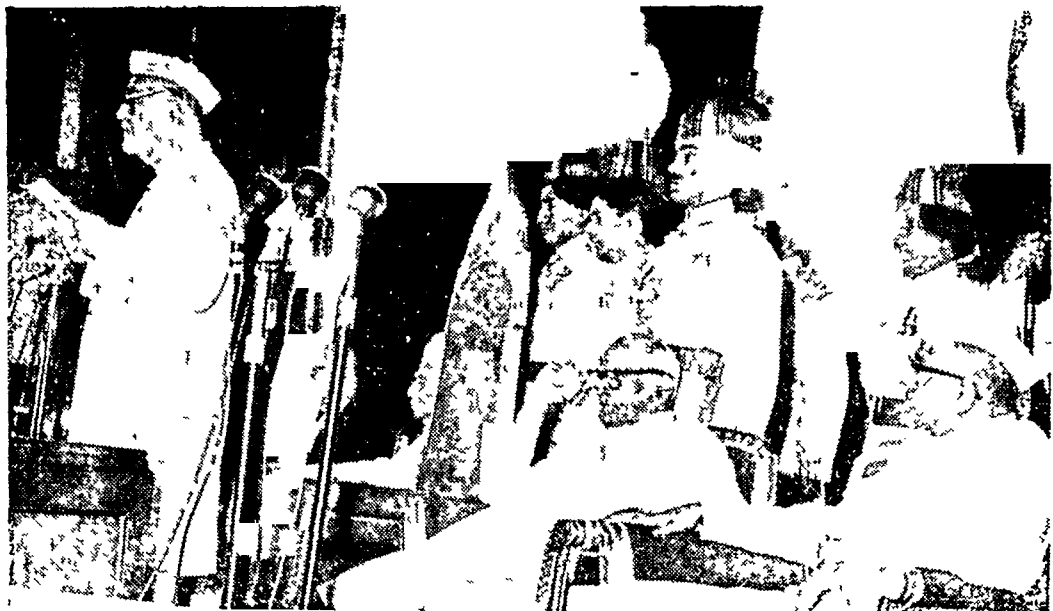
राष्ट्रपति पद को शपथ लेते हुए

प्रधान मंत्री
इन्दिरा गाधी
के
साथ
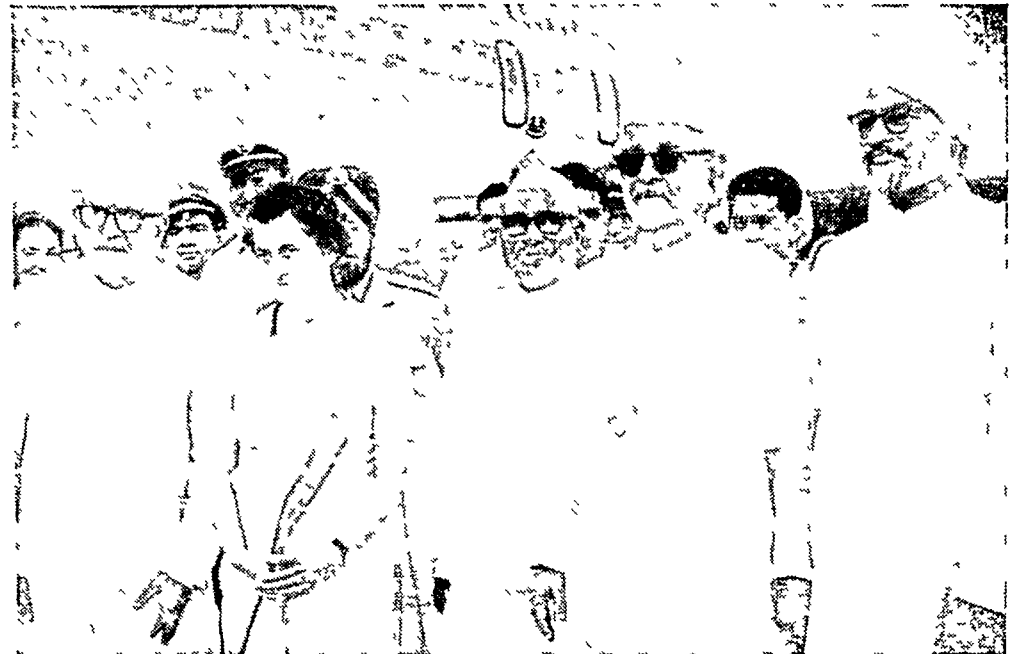
कनेडा से लौटने पर
प्रधान मत्री द्वारा
हवाई अड्डे
पर
स्वागत
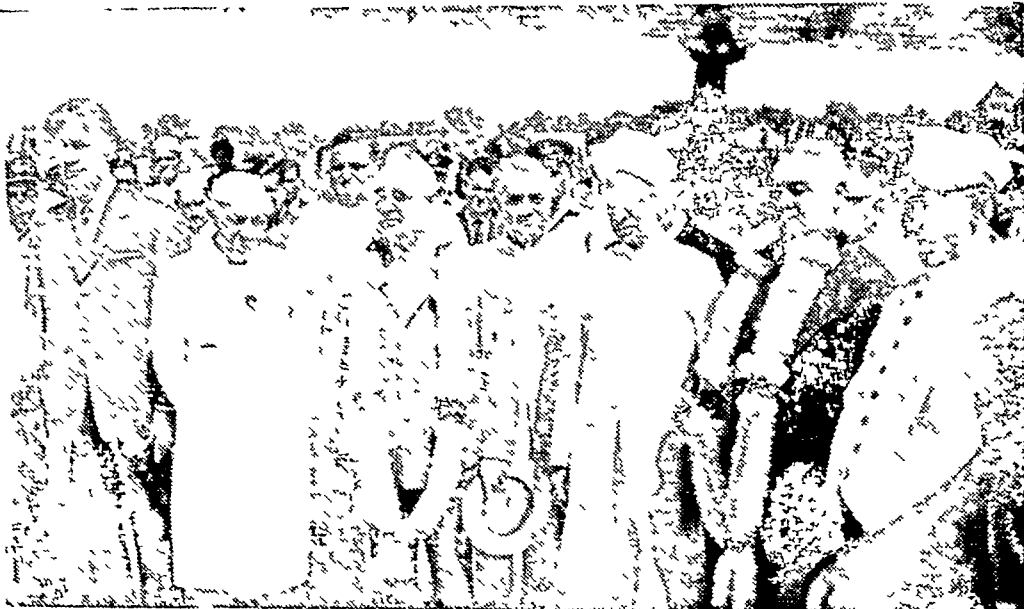
विदेशी अतिथियो
के
बोच

विदेशी नेताओं

के साथ विचार करते हुए

अ ति थि

स्वा ग त

विदेशियो
के
बीच
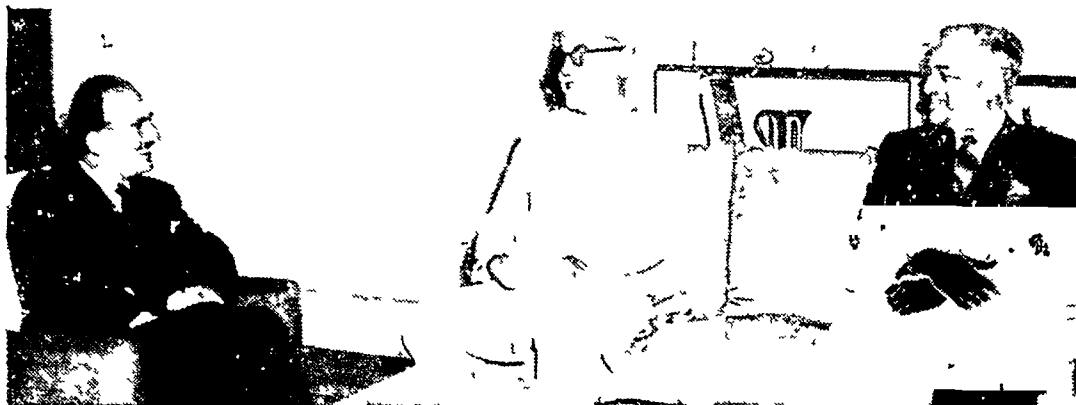
विदेशी नेताओं के साथ अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओ पर चर्चा करते हुए
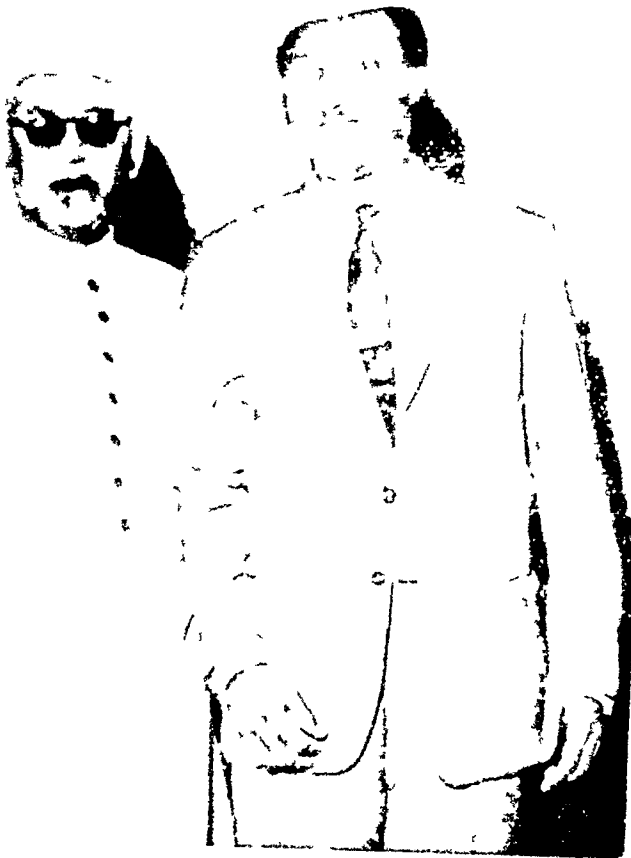
विदेशी राष्ट्रो के नेताओ से

मधुर वार्ता

विभिन्न समारोह में

मंत्रियों को परामर्श

विदेशी नेताओं से सम्पर्क

विदेशी नेताओं के साथ

महात्मा गांधी के साथ
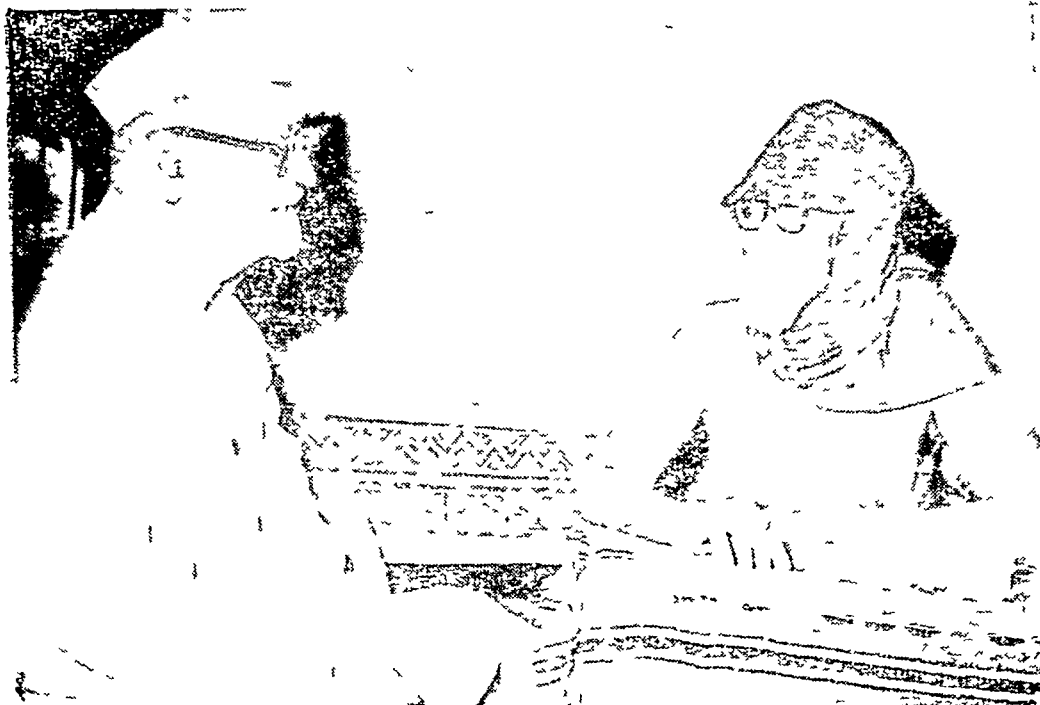
विनोबा भावे से विचार विनिमय करते हुए

श्रद्धाजलि

खिलाड़ी के साथ

उपाधि वितरण समारोह मे

उपाधि वितरण करते हुए

अध्ययनशील

बच्चे से प्रेम करते हुए

बच्चों के बीच

बच्चों से प्रेम

वनस्थली में बच्चों के बीच

राज्यपाल सरदार हुकुमसिंह जी के साथ

राष्ट्रपतिजी राजस्थान में

राज्य मन्त्रियों के बीच

जयपुर के नये सूचना केन्द्र में

जनसम्पर्क निदेशक श्री राजेन्द्र शंकर भट्ट द्वारा स्वागत

मुख्य मंत्री श्री मोहनलाल सुखाड़िया के साथ

राज्यपाल, मुख्य मत्री व जयपुर नरेश के साथ

राष्ट्रपतिजी राजस्थान में

जयपुर मे महाराजा सवाई जयसिह की मूर्ति के
अनावरण के लिए जाते हुए

जयपुर नरेश महाराजा मानसिंहजी तथा महारानी गायत्री देवी के साथ

राष्ट्रपतिजी राजस्थान में

शिक्षा मन्त्री व प्रस्तुत ग्रन्थ के सलाहकार श्री बरकतुल्ला खां के साथ

प्रस्तुत ग्रन्थ के सलाहकार तथा तत्कालीन शिक्षा मन्त्री श्री शिवचरण माथुर द्वारा स्वागत
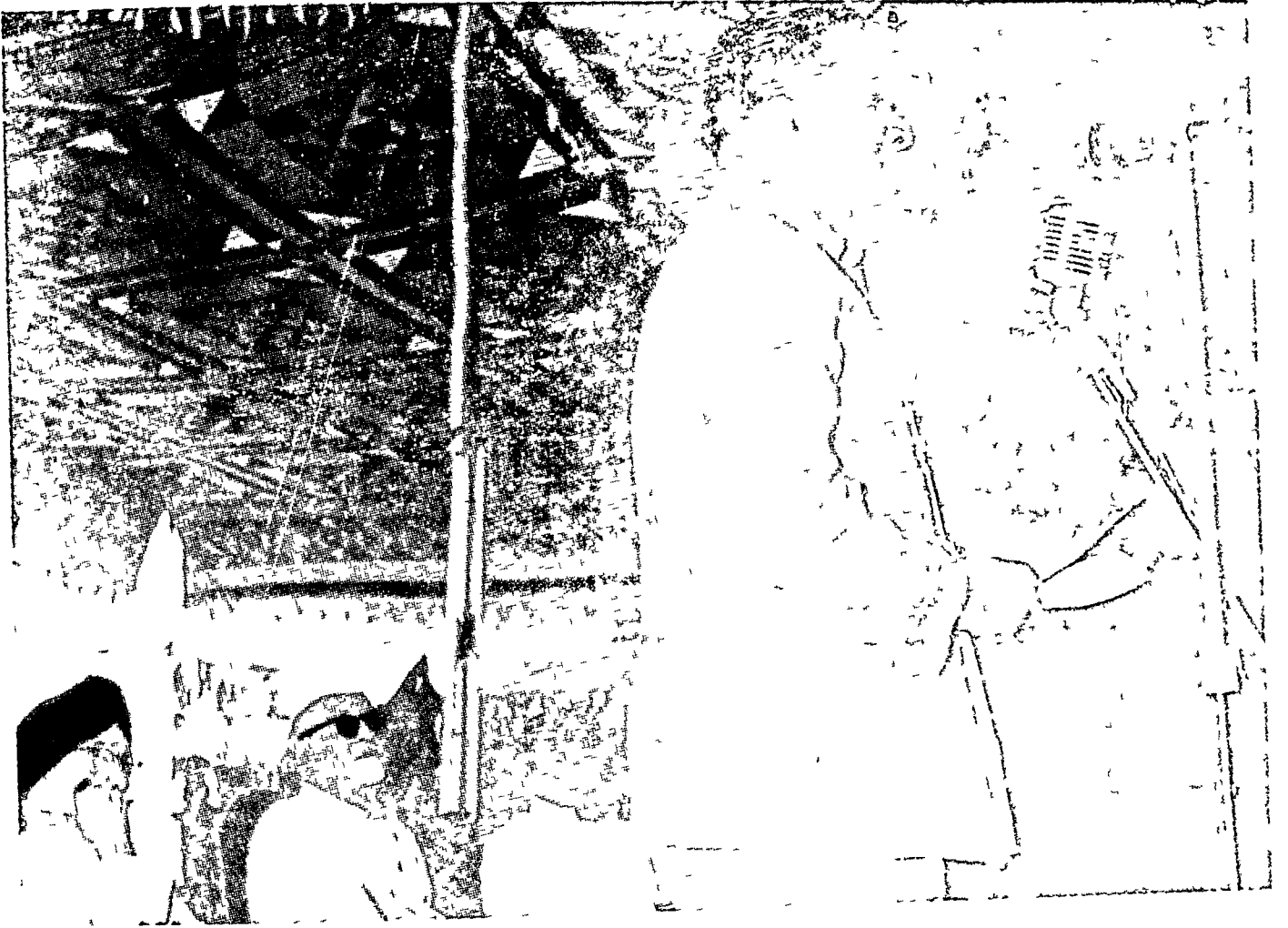
महाराजा बहू० उच्च मा० कन्या विद्यालय, जयपुर के शताब्दी समारोह में
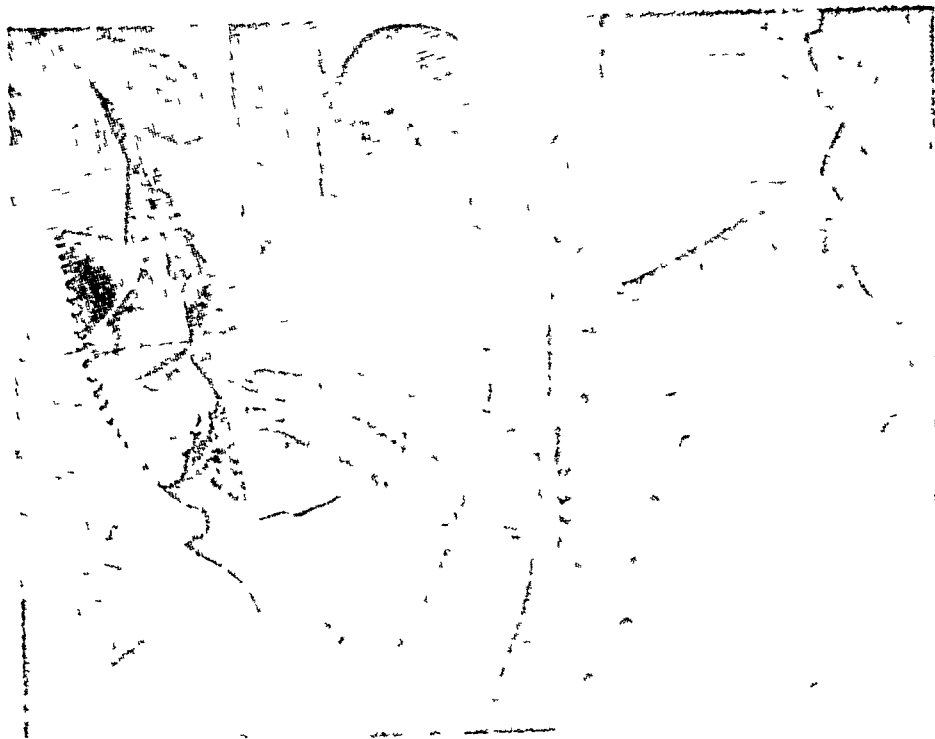
प्रधानाध्यापिका श्रीमती विमला शर्मा व छात्राओं द्वारा परम्परागत स्वागत

तत्कालीन शिक्षा मंत्री व प्रस्तुत ग्रन्थ के सलाहकार श्री शिवचरणजी माथुर के साथ

राष्ट्रपतिजी राजस्थान में

मुख्य व अन्य मंत्रियों के साथ

राज्य के मत्रियों से परिचय

राष्ट्रपतिजी राजस्थान में

हस्तशिल्प कृतियों का निरीक्षण
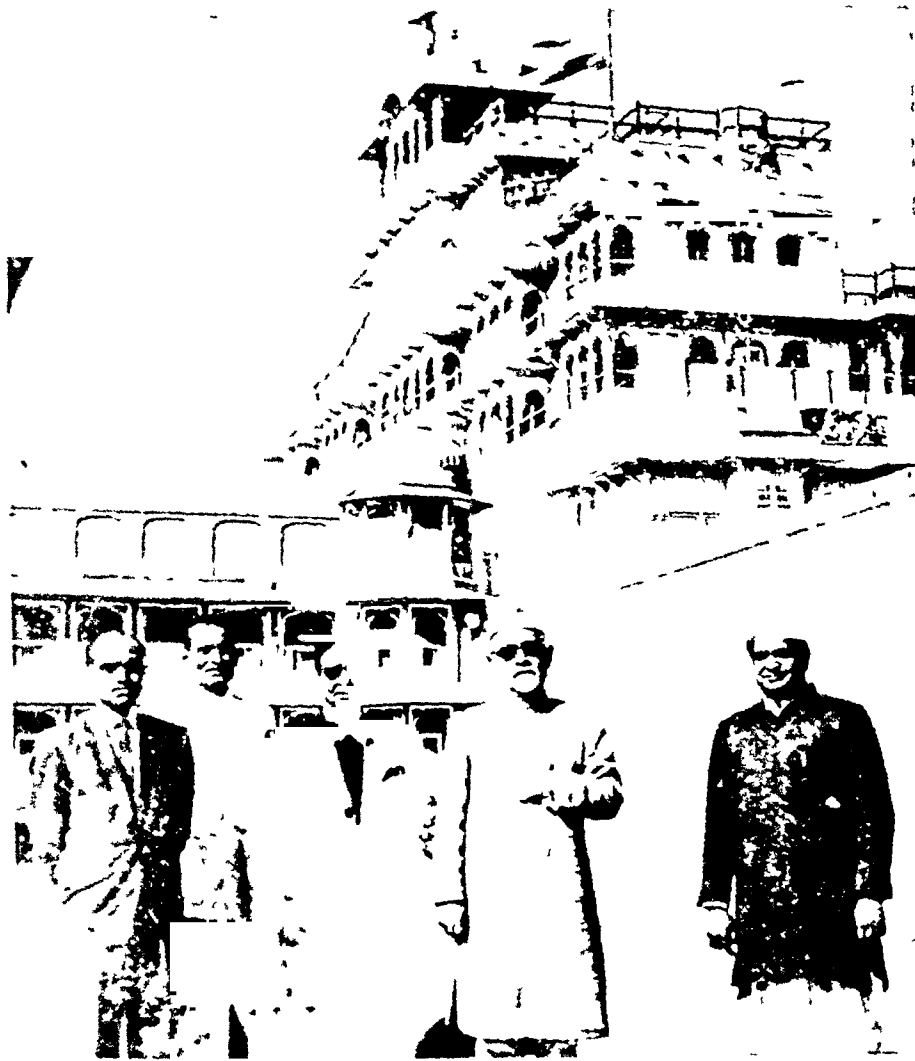
जयपुर मे श्री मोहनलाल सुखाडिया के साथ दर्शनीय स्थानो का निरीक्षण

राष्ट्रपतिजी राजस्थान में

राज्य मन्त्रियों के साथ
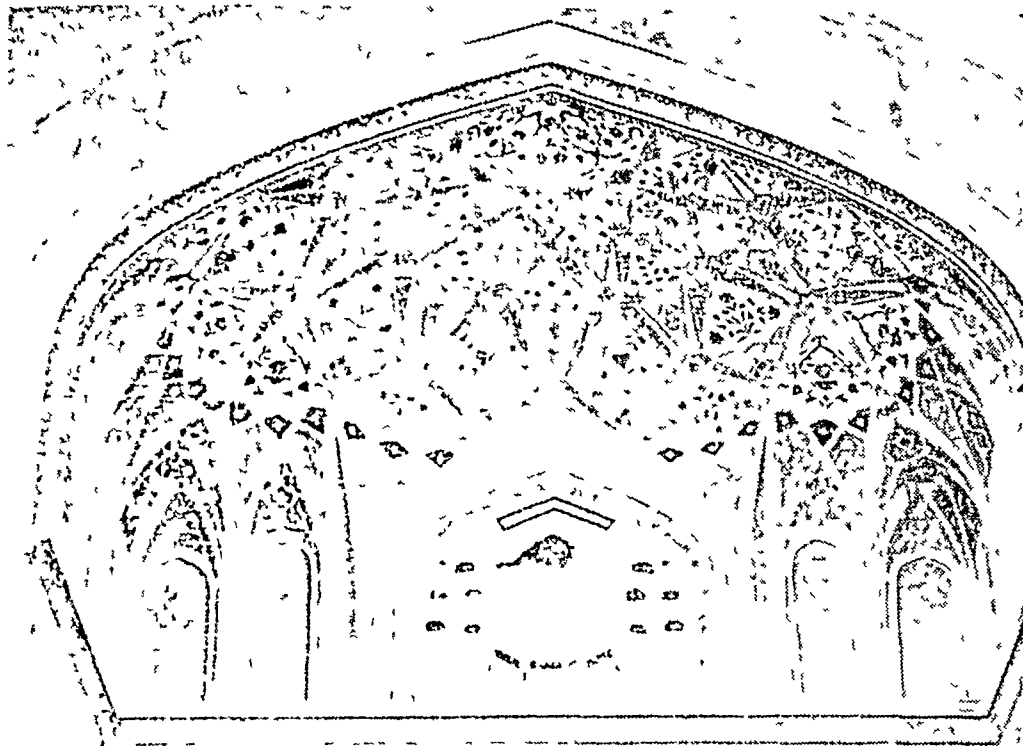
जयपुर में दर्शनीय स्थानो का निरीक्षण

राष्ट्रपतिजी राजस्थान में

राष्ट्र और राज्य के कर्णधारो की वार्ता

प्रमुख लोगों से भेंट

राष्ट्रपतिजी राजस्थान में

जन सभा में भाषण करते हुए
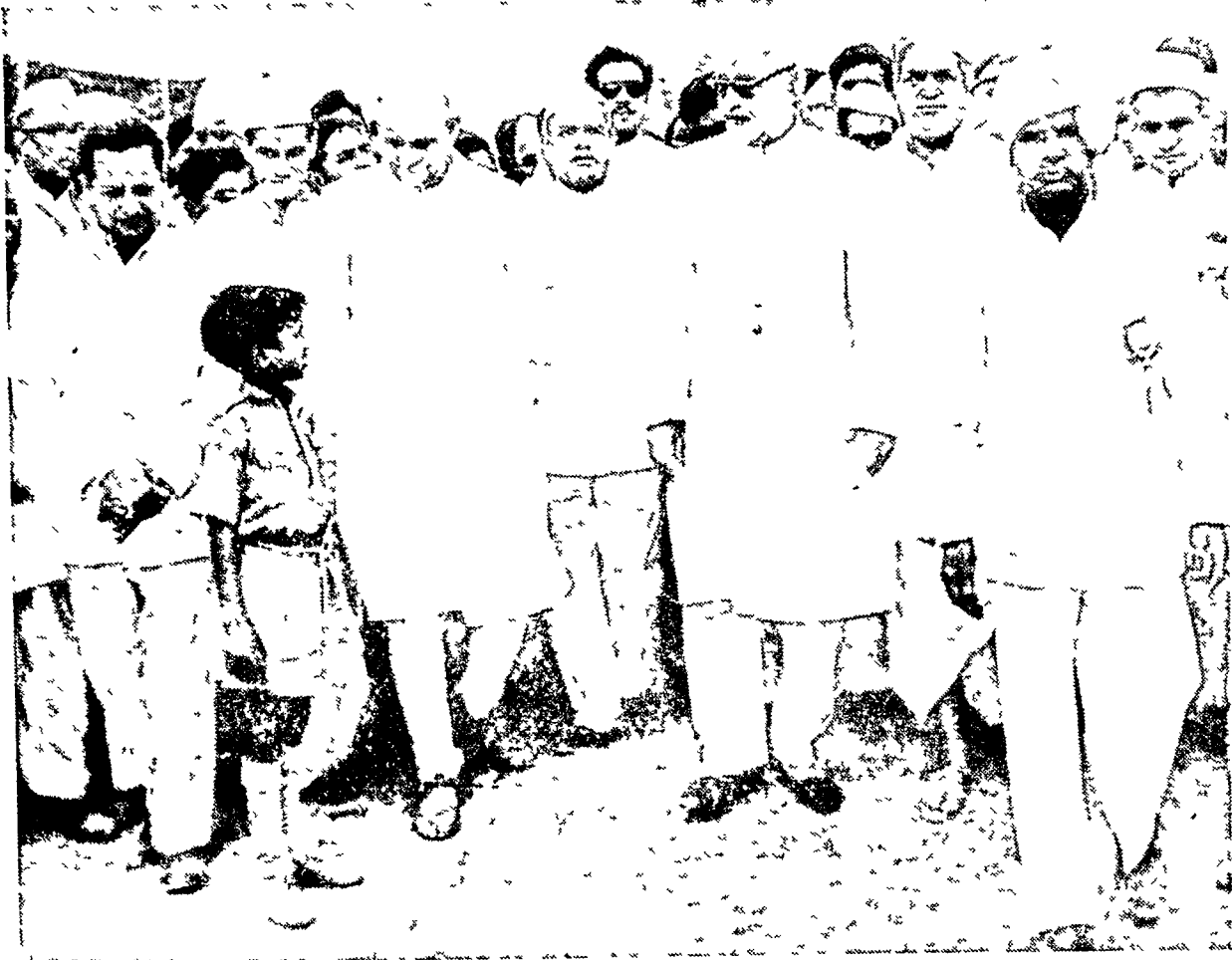
गाँधी विद्याल
गुलाबपुरा के
वार्षिकोत्सव मे

अग्रणी शिक्षण संस्थाओं में

वनस्थली विद्यापीठ मे

स्काउट नेताओं से भेंट करते हुए

राष्ट्रपतिजी राजस्थान में

ाष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित
ी वी० पी० जोशी, उदयपुर के साथ
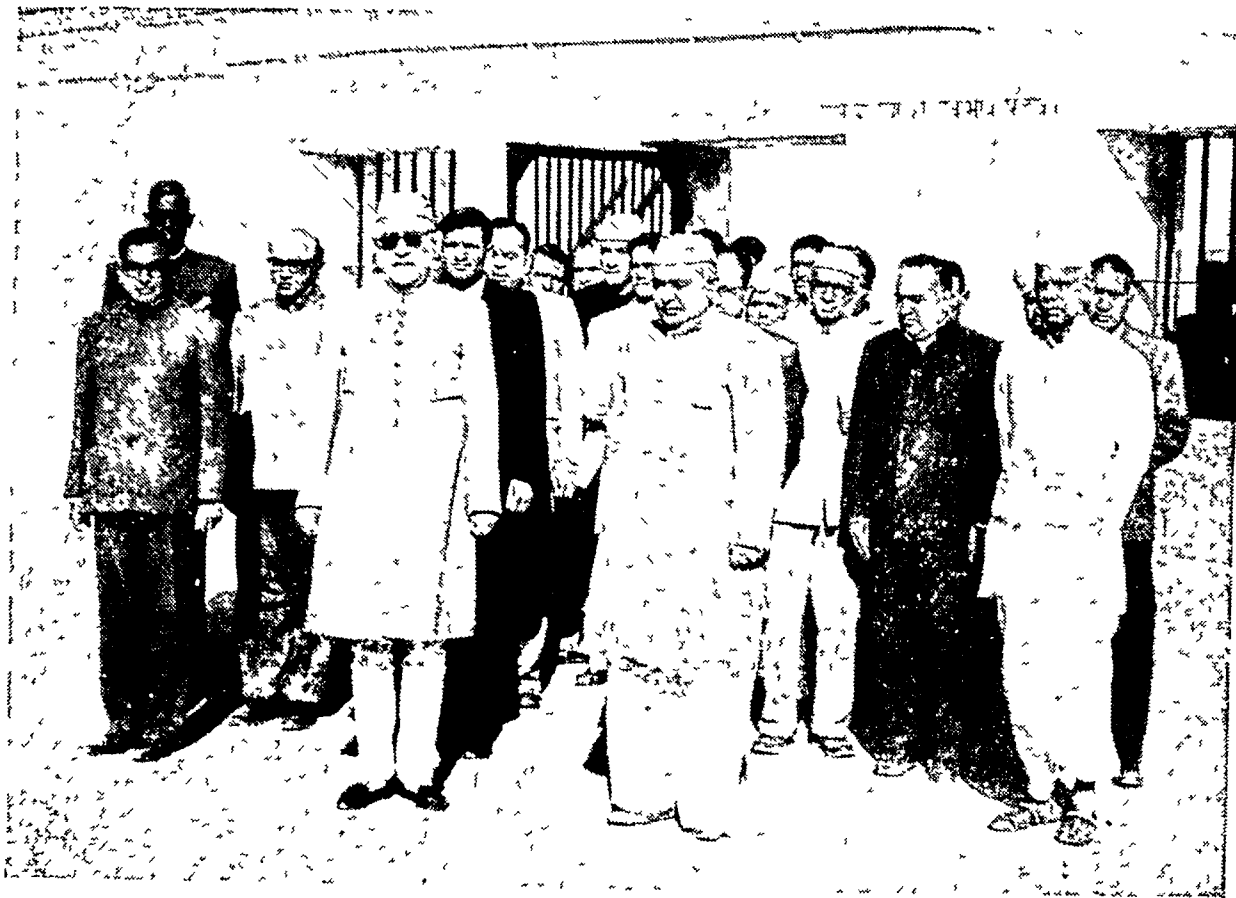
भारत-पाक युद्ध के दौरान पाक वमबारी से जोधपुर जेल मे हुई क्षति का निरीक्षण करते हुए

ग्रजमेर मे
दरगाह शरीफ मे
सम्मान

राष्ट्रपतिजी राजस्थान में

मजहबी नेताओं के साथ

[illegible]

अजमेर मे
दरगाह शरीफ मे
सम्मान

राष्ट्रपतिजी राजस्थान में

मजहबी नेताओ के साथ

विशिष्ट धार्मिक भेंट